॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीरामलीला रामायण-सटीक।

सातोंकांण्ड ७.

प्रसिद्ध टीकाकार आर्षग्रन्थोद्धारक विद्यावारिधि श्रीयुतपण्डित
ज्वालाप्रसादजीमिश्र सगृहीत :

जिसमें

कविकल्पतरु श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदासजीकृत रामायणकी
भावभक्तिभरित श्रीजगदाधार रामावतारकी सभी अद्भुत
लीला मुग्धमनोहर टीका और अनेक ग्रंथोंकी
सुविस्तारित टिप्पणी समेत उद्धृत हैं।

जिसको

सर्व रामभक्त लीलाअनुरक्त सद्गृहस्थ, साधु, सत, महत
और विशेषकर "रासलीला-धनुषयज्ञ"
करनेवालोको परमोपकारी जान,

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालयमें

मुद्रितकर प्रकाशित किया।

वैशाख संवत् १९६४, शके १८२९.

श्रीरामपञ्चायतन।



राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस—बंबई

भूमिका।

इसदेशमें भगवद्भक्तोंको भक्तिके दृढकरनें और इतरजनोंको सबप्रकारकी राजनीति सामाजिकनीतिके उपदेश करनेमें रामचरित्रके समान दूसरा कोई चरित्र नहीं है. प्रतिवर्ष सैकड़ों स्थानोंमें चैत्र तथा आश्विनमासमें रामलीला हुआ करती है, रामायणमें जितने स्वरूपहैं वे सब बंनकर रामचरित्रका अनुकरण करते हैं, परन्तु इससमय गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायणके आधारपर रामलीला होती है, यह ग्रंथ कथाकी रीतिपर रचा [illegible] जिससे लीलाकरानेवालोंको यह कठिनता उपस्थित होती है कि, लीलाकरानेके समय किस चौपाईको छोड़ना चाहिये, और किसको पढना चाहिये और सर्वत्र इसचरित्रके करानेमें चतुर पुरुषोंकी प्राप्तिभी कठिन है, और पढनेवालोंकी बुद्धिके अनुसार भिन्न२ प्रकारसे चरित्र किया जाताहै, यह देखकर हमारा यह विचार हुआ कि, इस तुलसीकृतरामायणमेंसे वही उपयोगी दोहा चौपाई चुनलीं जाय जिनका केवल रामलीलामात्रसे सम्बन्धहो, और कथाक्रम भंग न हो यही सिद्धान्तकर हमने रामायणमेंसे उपयोगी ग्रंथका उद्धार किया है और जो चौपाई पात्रोंके कहने योग्य हैं उनसे पहले कहनेवालोंका नाम लिखदिया है यदि वे दोहे चौपाई रामलीला करनेवाले अपने मुखसे कहें तो रामलीलाकी चौगुनी शोभा होसकती है और यदि चौपाई याद न हो तो उसका अर्थ कहदें और जिन दोहा चौपाइयोंके पहले कोई नाम नहीं लिखा है उनको रामलीला करानेवाले पंडित लीलाक्रम मिलानेके लिये स्वयं पढदें और पात्रोंके वचनभी पढ़दें तोभी लीला होसकतीहै परन्तु पूरी लीला जभी समझी जासकतीहै जब लीलापात्र अपने मुखसे चौपाई आदि पढैं, जो दोहे चौपाई केवल पंडितजीके पढनेके हैं उनको " " ( ) इसप्रकार चिह्नसे जता दिया है रामलीला कहीं दश, पन्द्रह, बीस कहीं तीस दिनतक हुआ करती है इस कारण हमने लीलामें दिनोंका विधान नहीं किया है कि, इसदिन इतनी लीला करो, केवल एक २

लीलाका एक २ दृश्य कल्पना करलियाहै लीलाकरानेवाले अपने २ दिनोंके अनुसार उनको विभक्त करलें, कहीं कहीं कोई कोई दृश्य अनुपयोगी है तो लीलाकरानेवाले उनको छोडसकते हैं, जैसे सुमन्तका आगमन और राजा दशरथका मरण, पर ऐसे स्थलोंपर हमने ❋ ऐसा फूल बनाकर नोटकरदिया है, सातकाण्डोंमें जिसपात्रकी जैसी आकृति वेष और पताहो उसकी एक अलग सूची दी है उसके अनुसार उनका वेष करना चाहिये। तथा दृश्योंमें जितने पात्रोंकी आवश्यकता होती है वे भी वहीं देख लेने, और रामलीला दो प्रकारसे होती है एक नेपथ्यबनाकर एक मैदानमें इसलिये दोनों प्रकारकी सामग्रीका ही इसमें वर्णन कियाहै।

यदि हम चाहते तो इसको सम्पूर्ण नाटकाकार करसकते थे, पर ऐसा करनेसे गोस्वामीजीकी वाणीकी तोड़फोड़ करनी पडती जैसे "पुनि आउब इहि बिरियां काली। असकहि मन बिहँसी इक आली" इसमें चौपाईका पिछलाभाग कथारूप बदलना पडता "चलहु अबार होत अब आली" ऐसा करनेसे तब यह सखीका वाक्य पूरा होता, पर ऐसा करनेसे रामायणकी सरसता जाती रहती और कदाचित् हरिभक्तोंको यह असह्य होता, और यह रामलीला है निरानाटक नहीं है यह विचारकर हमने ज्योंकी त्यों चौपाई लिखी हैं, और पूरे वाक्यके पहले पढनेवालेका नाम लिखा है यदि कहीं आधेवाक्यपर नाम हो तो आधावाक्य पात्र और आधा पंडितजी पढदें, ऐसा करनेसे पूरा कार्य निर्वाह होजायगा और यदि कोई निरी नाटकरीतिसे ही लीला करना चाहैं तो इसमेंसे केवल पात्रनामांकित दोहा चौपाई ही उच्चारण करा सकते हैं, ऐसा करनेसे उनका नाटक पूरा होजायगा, और कहीं कहीं बहुत उपयोगी जानकर हमने गद्य भी लिख दिया है, तथा सर्वसाधारणके समझने योग्य सरलार्थ टीका और प्रसंगपर भक्तजनोंके गानेयोग्य भजनभी लिखदिये हैं।

लीलाकरनेवालोंकी सामग्री तथा इस जनसमुदायका प्रबन्ध करना इत्यादिका उपदेशभी लिख दिया है।

मुझे पूर्ण आशा है कि, यह ग्रंथ हरिभक्त और लीलाकरानेवालोंको

बहुत रुचैगा, और विज्ञजन इसीके अनुसार अपने अपने ग्राम नगरमें रामलीला करावैंगे।

इसप्रकार यह ग्रंथ सर्वांगसे अलंकृतकर वैश्यवंशावतंस जगद्विख्यात सेठजी श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदासजी महोदयको समर्पण करदिया है, जिन्होंने इससमय हिन्दीके उद्धार करनेमें तन मन धन लगारक्खा है तथा विद्वानोंको अनेकप्रकारके सन्मानसे संतुष्ट करते रहते हैं।

अन्तमें पाठकमहोदयोंसे प्रार्थनाहै कि, यदि इसमें कोई त्रुटि पावें तो हमको सूचना दें उचित होनेपर द्वितीयावृत्तिमें ठीक करदी जायगी।

सज्जनोंका अनुगृहीत,
ज्वालाप्रसाद मिश्र,
दिनदारपुरा
मुरादाबाद.



दृश्यवर्णन

रामायणमें जितनी लीलाहैं संक्षेपसे वह दृश्य लिखते हैं ।

बालकाण्ड ।

अयोध्याकाण्ड ।

आरण्यकाण्ड ।

किष्किंधाकाण्ड ।

सुन्दरकाण्ड ।

लंकाकाण्ड ।

उत्तरकाण्ड

ग्रंथपूर्त्ति ।

श्रीः ।

रामलीला रामायणकी बृहत् अनुक्रमणिका ।

भिन्नभिन्न लीलाओं और कथाओंका आशय. पृष्ठांक.

किष्किन्धा काण्ड ।

भिन्नभिन्न लीलाओं और कथाओंका आशय.	पृष्ठांक.
वानरोंकी सेनाका आना	२१५
सीताकी खोजमें वानरोंका जाना	२१६
हनुमानजीका विवरमें प्रवेश	२१७
विवरस्थतपस्विनीस्त्रीसे वानरोंका वार्त्तालाप	२१८
वानरोंका समुद्र तटपर पहुँचना	"
सम्पातिमिलन	२१९
सम्पातिका वानरों प्रति अपनी पूर्व कथा कहना	२२०
वानरोंका अपनी २. उड्डानशक्तिवर्णन करना	२२२
जाम्बवन्तके वचनसे हनूमानजीका समुद्र उत्तीर्णार्थ उद्यत होना	"

सुन्दर काण्ड।

भिन्नभिन्न लीलाओं और कथाओंका आशय.	पृष्ठांक.
(प्रथम दर्शन) स्थान–सागरकातट। महावीरजीका समुद्रको लांघना	२२५
सुरसा हनुमान संवाद	२२६
छायाग्रासिनी निशाचरी वध	२२७
हनूमानजीकी मुष्टिकासे लङ्किनी निशाचरीका मूर्च्छित होना	"
हनूमानजीका लङ्कामें पहुँच सीताकी खोज करना	"
हनूमान बिभीषण संवाद	२२८
(द्वितीय दर्शन) अशोक वाटिकामें जानकीका दर्शन	२२९
रावण सीता संवाद	"
त्रिजटाका सब निशाचरियोंसे स्वप्नकहना	२३०
सीता त्रिजटासंवाद	२३१
हनूमानजीका मुद्रिका डारना और हनुमान सीता संवाद	२३२
हनूमानजी करके अशोकवाटिका विध्वंस होना	२३५
अक्षकुमार वध	२३६
मेघनादका महावीरको नागपाशसे बांध रावणकी सभामें लाना	"
महावीर रावण संवाद	२३७
निशाचरोंका महावीरजीकी पूंछ जलाना	२३९
लंकादहन। राक्षस चिल्लातेहैं महावीरजी नगर जलाते हैं	२४०
पुनः महावीर सीता संवाद	"
(तृतीय दर्शन) महावीरजीका रघुनाथजीके निकट गमन	२४१
महावीर–रघुनाथ संवाद	२४३
(चतुर्थ दर्शन) रावण मंदोदरी संवाद	२४५
रावणकी सभा, मंत्रियोंका विचार	२४७
विभीषण प्रपत्ति	२४८
विभीषणका रघुनाथजीकी शरण आना	२५०
विभीषण रावण संवाद	२५२
रामचन्द्रजीका समुद्रकी उपासना करना	२५४
प्रभुके सैन्यमें गुप्त रूपसे शुकदूतका आना	"
रावण शुक संवाद	२५५
प्रभुके क्रोध करनेपर समुद्रका प्रकट होना	२५९

लंकाकाण्ड।

भिन्नभिन्न लीलाओं और कथाओंका आशय.	पृष्ठांक.
(प्रथम दर्शन) स्थान–सागर तट। सेतु बधन	२६३
रामेश्वर स्थापन	२६४
प्रभुका सेनासहित समुद्रपार होना	"
स्थान–लंकापुरी। रावणकी सभा, मंत्रियोका विचार	२६५
स्थान–सुवेल पर्वत। राम विभीषण वार्त्ता। प्रभुके बाणसे रावणके छत्र मुकुट गिरना	२६६
(द्वितीय दर्शन) अंगदका रावणकी सभामें जाना	२६७
अंगद रावण संवाद	२६८
अंगदका प्रण करके सभामें पद रोपना	२७९
रावण मंदोदरी संवाद	"
(तृतीय दर्शन) प्रभुका मंत्रियोंसे	

उत्तर काण्ड।

इत्यनुक्रमणिका।

१-यद्यपि रामचरित्र उपदेशोंसेही भरापड़ा है परन्तु हम मुख्य २ उपदेशोंको यहां पाठकोंके विनोदार्थ लिखते हैं।

२- पुत्रोंकी प्राप्तिमें दैवी बलकीभी प्राप्ति करना चाहिये जैसे महाराज दशरथने यज्ञकर पुत्रोंकी प्राप्ति की।

३-ऋषि, मुनि, महात्माओंका सदा सत्कार करना चाहिये जैसा दशरथने विश्वामित्रके आनेपर किया।

४-परोपकारके लिये तन मन धन सभीको त्यागदेना जैसा दशरथने विश्वामित्रके उपकारके निमित्त प्राणप्रिय राम लक्ष्मणको भेजदिया।

५-प्राणियोंके दुःखदेनेवालेको अवश्य दंडदे जैसे रामचन्द्रने ताडकाको मारा. योग्यशिष्यको समस्त विद्यादेनी जैसे विश्वामित्रने रामचन्द्रको विद्या दी विनागुरुकी आज्ञाके कोई कार्य न करै जैसे रामचन्द्र गुरुकी आज्ञासे धनुषभंग करनेचले।

६-अपने मुखसे अपनी बडाई न करै जैसा लक्ष्मण कहते हैं " शूर समर करणी करहिं, कहि न जनावहिं आप "।

७-पंचोंकी सम्मतिसे कार्यकरना चाहिये जैसा महाराज दशरथ कहते हैं " जो पांचहिं मतलागै नीका। करहु हर्षि हिय रामहिं टीका। "

८-चाटुवादियोंकी और विकृताङ्गोंकी बातपर विश्वास न करै जैसा कैकेयीने मंथराकी बातपर किया।

९-स्त्रियोंकी अत्यन्त प्रीति और उनकी मायामें न पड़ै पड़नेसे दुःख होता है जैसे महाराज दशरथने कैकेयीसे दुःखपाया।

१०-वचनदेकर फिर न फिरै चाहै प्राणजांय जैसा दशरथने किया. मातापिताकी आज्ञा कैसीभीहो मानलेनी और सबमाताओंको समान जानै जैसा रामचन्द्रने मातापिताकी आज्ञासे वनवास लिया और सब माताओंको समान जाना।

११-सौतोंमें प्रीति कौशल्याके समान होनी चाहिये और सौतपुत्रोंकी प्रीति भी कौशल्याके समान होनी चाहिये जैसे कौशल्या कैकेयीकी आज्ञाको न मेटसकी और भरतको अपने पुत्रके समान जाना. सुमित्राने

लक्ष्मणको रामके साथ जातेमें कहा, "तात तुम्हारि मातु वैदेही। पिताराम सबभांति सनेही।"

१२–बहुओंको सासकी सेवाकरना परमधर्म है और सासको बहू अपनी त्रीके समान रखनी चाहिये परस्पर विरोध चुगली करना उचित नहीं है. सीता–"तब जानकी सासु पग लागी। सुनिय माय मैं परम अभागी॥ सेवासमय देव दुखदीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा।" कौशल्या–"नय- न पुतरि इव प्रीति बढाई। राखेउ प्राण जानकी लाई। जिवनमूरि जिमि जुगवत रहेऊं। दीपबाति नहिं टारन कहेऊं।"

१३–भाइयोंमें ऐसी प्रीतिहो जैसी राम लक्ष्मण और भरतकी यथ सबसुखछोड़ लक्ष्मण रामके साथगये और भरतजी नंगेपांव रामको मना नेगये और [illegible] तपस्वीरहे।

१४–स्त्रीको अपने पतिकेही अनुकूल रहना चाहिये वह चाहैं किसी दशामें हो जैसे जानकी सर्वस्व त्याग रामकेसाथ गई।

१५–कैकेयीके समान हठी स्त्रियोंको पीछे पछताना पड़ता है।

१६–स्वामीके कार्यमें स्त्रियोंको बाधादेनी न चाहिये जैसे कौशल्याने दशरथको वचनदेनेपर रामको बनजाने दिया रोका नहीं तथा ज्येष्ठभाईसे प्रतिकूल हठ न करे जैसे भरतजी रामके वनगमनकी उत्कट इच्छाजान लौट आये।

१७–अपराधी शरणागत हो तो उसकी प्राणरक्षा करै जैसे रामने जयन्तकी रक्षा की।

१८–स्त्रीकी रक्षाका पूर्ण उपाय करै और उसकी विपत्ति निवारण वा उद्धारमें पूर्ण पराक्रम करै जैसे रामचन्द्रने किया कि रावणका सर्वनाश करदिया।

१९–स्त्रीपुरुषोंका ऐसा स्नेह हो जैसे राम सीताके हरणमें दुःखी हुए। जानकी अशोकवनमें दुःखी रहीं।

२०–छोटेभाईकी स्त्री बहन पुत्रकी स्त्री इनको कन्याके समान जानै जैसा रामचन्द्र कहते हैं "अनुजवधू भगिनी सुतनारी। सुन शठ ये कन्या सम चारी"।

२१-मित्रोंकी मित्रता निष्कपट हो, जैसे वालि और रामकी, दुःखके समय सौगुणा नेहकरै, विपत्तिसे बचावै।

२२-दूत ऐसे होने चाहिये जो प्राणपनसे स्वामीका हितकरैं जैसे अंगद हनूमान, सेवकको स्वामीका हित ऐसा करना चाहिये जैसा मकरध्वजने किया कि पिता जानकरभी हनूमानजीको यथाबल भीतर न जाने दिया।

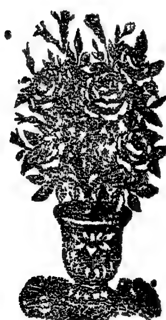
२३-घरके भेदीका तिरस्कार करनेसे दुःख होता है जैसे बिभीषणका तिरस्कारकर रावणका नाश हुआ।

२४-जिसका देश जीते वहांका राज्य पूर्व राजाके किसी सम्बन्धीही-को देना चाहिये जैसा रामचन्द्रने वालिके राज्यपर सुग्रीवको और राव-णके राज्यपर बिभीषणको अभिषिक्त किया।

२५-जिसकी जो वस्तु हो वह उसीके पास पहुँचा देनी चाहिये जैसे रामचन्द्रने पुष्पकविमान कुबेरपर भेजदिया यद्यपि अलौकिक था।

२६-राज्यहोनेपर मित्रादिसे समान वर्त्ताव रक्खे जैसे श्रीरामचन्द्र स-बमित्रोंसे वर्त्ते। देवरका भाभीके संग लक्ष्मणभरतके समान वर्त्ताव होना चाहिये।

इसके सिवाय और भी अनेक उपदेश हैं, सुलोचनाका पतिव्रतआदि सब लिखनेसे ग्रंथ बढ़जायगा।



लीलाविधान।



लीलाकरानेवालोंको उचित है कि, लीलाकरनेवाले जितने पात्र हैं वे सब चतुर और उच्चस्वरसे बोलनेवाले होने चाहिये, और वह अपने कार्यको उसी प्रकार करैं जिससे वह कार्य यथायोग्य होना विदितहो, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न यह सब कुमारअवस्थाके होने चाहिये और चतुर होने चाहिये रामका स्वरूप कुछ श्यामवर्ण हो तो और भी उत्तम है सीताभी कुमारी और कोमलप्रकृतिकी होनी चाहिये कौशल्या कैकेयी आदि बडी अवस्थाकी हों, दशरथ सुमन्त वशिष्ठ आदि सब बडी अवस्थाके पुरुष हों हनूमान् सुग्रीव जो बनैं वे बलवान् पुरुष हों, अंगदका देह छोटा पाँव मोटे हों राक्षस श्यामवर्ण हों, शूर्पणखा पतली लम्बे डौलकी चतुरहो कुबडी टेढी चलनेवाली हो कमरपर कूबड बनाना चाहिये, परशुराम तीक्ष्ण प्रकृतिहों इसग्रंथमें जिन चौपाइयोंके पहले कोई नाम लिखाहै वह चौपाई लीला करनेवालोंको कण्ठ हों तो बहुतही उत्तम है, वे स्वयं पढसकते हैं, और यदि पंडित उनको पढ़ तो लीला करनेवाले उनका अर्थ अपने आप कहसकैं तो बहुत उत्तम है इसकार्यकी निपुणता तभी होसकती है जब चार छः महीने पहलेसे उनको सिखाया जाय. लीलाका स्थान इतना बडा हो जहाँ सर्वसाधारण भलीप्रकार देख सकैं, लीलास्थानके बहुत निकट हाट न लगावैं इससे शब्द बहुत होता है तथा आनेवाले पुरुषोंको यथायोग्य स्थानमें बैठावैं, जिससे वे प्रसन्नरहैं, रंगभूमिमें नाटकपात्रोंको छोडकर कोई चलने फिरने और शब्द न करने पावै इससे रस बिगडता है जहाँ रामचन्द्रकी विजय हो उस समय बाजेका शब्द होना चाहिये।

प्रत्येकदिन जितनी लीला करनी हो उसकी सामग्री प्रथमसे उपस्थित करलेनी चाहिये, जिसका वृत्तान्त आगे हमने लिखा है और लीला इस प्रकार हो जिससे सब देखनेवाले देख सुनसकैं, यदि लीला नेपथ्यमें हो तो पहले सूत्रधार एकपुरुष आनकर इसबातकी सूचना करजाय कि

आज यह लीला होगी, और उसके आनेपर बाजा रोक दिया जाय,
नेपथ्य न बना हो तो वैसही लीला आरंभ की जाय, पात्र
चौपाई कहतेमें भूलैं तो सूत्रधारको चुपकेसे बता देना चाहिये, परस्परकी
ित सन् होकर रनी चाहिये, मा जैसा मुख, और
दुःखादिक समय उदासीन मुख क , यदि लीला मैद
वाडाबांध कर की जाय तो लीलाकरनेवाले चारों ओर घूमते हुए लीलाकरैं
और थोडी थोडी दूर चलकर खडेहो पढैं, और जब युद्ध हो तो दोनों
ओरके वीर बडे बडे टाटके गोले उछालते सबओर घूमते
यह है कि, जिसलीलाका जो भाव है उसमें न्यूनता न होनी चाहिये

ति शुभम्।



प्रस्तावना



बाल काण्ड ।

प्रथम दिन शिवपार्वतीका दर्शन कराय पार्वतीके प्रश्नोंका उल्लेख होना चाहिये पश्चात् ब्रह्मादिक देवता और गौरूप पृथ्वी यह सब क्षीरसागरके समीप खडेहो भगवान्की स्तुति करैं ब्रह्माजीके चारमुख, शिवजीके जटाजूट देवता सुन्दरवर्ण और एक गौ हो क्षीरसागरके स्थानमें एक श्वेतवस्त्र बिछाहो परदेके पीछेसे आकाशवाणी हो ।

रामजन्म ।

इस दिन चार छोटे २ सुन्दर बालक परदेकी ओट करके तीन स्त्रियोंके समीप बैठादिये जांय कौशल्याके निकट १ सुमित्राके निकट दो कैकेयीके निकट १ फिर जय बोलकर परदा हटादेना चाहिये पीछे बालकोंके संग खेलना आदि कृत्य करना चाहिये,इससे पहले दो ऋषियोंके संग महाराज दशरथका यज्ञ होना चाहिये एककुण्डमें आहुती देनी और अग्निका प्रसाद लेकर राजा तीनों रानियोंको खीर खवावै पुत्रोंके जन्म होनेपर गुरु वसिष्ठ आनकर बालकोंका नामकरण करैं, फिर राम बालकोंके वस्त्र पहरकर बाललीला करैं ।

विश्वामित्र यज्ञ ।

विश्वामित्र आनकर रामलक्ष्मणको लिवालेजांय, मार्गमें ताड़काको एकही बाणसे मार दें फिर विश्वामित्र यज्ञ करैं कई विद्वान् पंडित और ऋषि बैठैं मृगछालाबिछीहो पंडित स्वस्तिवाचन करैं रामके बाण छोडते ही गुब्बारेके समान शिरहाथवाले मारीचके पेटमें धुआंभरकर उडादेना चाहिये शेषसेनाको युद्धकर मारना चाहिये, फिर वहांसे चलकर मार्गमें एक कपड़ेसे ढकी स्त्रीको चरण छुआयकर राम उद्धारकरैं और वह स्तुतिकर चलीजाय. विश्वामित्रका जनकनगरमें जाना और उनसे जनकजीका मिलन यथायोग्य होना चाहिये, पीछे रामका नगरदेखने जाना और परस्परस्त्रियोंकी बातचीत दिखाईजाय अथवा यह प्रसंग छोडदिया जाय ।

फुलवाड़ी दर्शन ।

इसदिन एक कृत्रिम बगीचा बनाकर उसमें गौरी बैठाई जाय. रामलक्ष्मणं फुलवारीके फूल एक ओर तोडते फिरैं दूसरी ओर सखियोंके साथ जानकी दर्शन करैं फिर बातैंकर गौरीपूज घर जांय ।

चापभंजन ।

इस दिन बीचमें धनुष रखकर राजोंको सजाकर बैठाना चाहिये और उनके धनुष न उठनेपर जब रामचन्द्र धनुषको तोडैं तब गोले वा बन्दूकोंका शब्दहोना चाहिये, और उसीसमय परशुराम बडा क्रोधकर आवैं और राम लक्ष्मणसे सम्बाद होकर धनुषदे वनको चलेंजांय ।

रामविवाह ।

जनकके दूत पलट जानेपर दशरथ, वसिष्ठ, सुमन्त, भरत, शत्रुघ्न घोडे हाथियोंपर चढ बाजे बजाते हुए चलैं और चारोंभाइयोंका विवाह एकही मंडपमें यथायोग्य दिखाना चाहिये पीछे विदाहो घर आवें रामचन्द्रादि-चारों भाइयोंका दूलहका वेष होना चाहिये ।

अयोध्याकाण्ड (रामका वनोवास)

पहले रामके निकट नारदजी आवें पश्चात् राजा दशरथ गुरुसे पूछ रामके राज्यकी तयारी करैं मन्थरा देखकर कैकेयीसे कहै और कैकेयी आभूषण उतारकर कोपभवनमें चलीजांय, वहां दशरथसे बातचीत होकर वरदान मांगे, रामचन्द्र सबसे बिदाहो सीता लक्ष्मणके साथ वनके कपडे पहन रथपरचढ अयोध्यासे चले जांय, और गंगातटपर निषादसे बात-चीत हो, वहांसे सुमन्तको बिदाकर निषादके चरण धोनेके पीछे गंगापार होजांय और वाल्मीकादिमुनियोंसे मिलते हुए चित्रकूटपर निवास करैं ।

भरतमिलन ।

सुमन्तके लौटनेपर राजादशरथ प्राणत्यागदें (चाहै यह दृश्य छोडदे) फिर भरतजी नानाके यहांसे आकर बातचीतकर रामको मनाने जाय मार्गमें निषादका युद्धोद्योगदिखाकर पीछे भेट और रामके समीप गमन-करैं दोनों भाई प्रणाम करते चलैं रामसे भेंटकर उनके दिये खडाऊँ शिरपर धर लौट आवैं ।

जयन्त जब सब ओरसे घूमकर रामकी शरण आवै और राम उसको उत्तर देचुकें तब एक आदमी पीछे खड़ा होकर जयन्तकी आंख फोडदे और जयन्त फिर भागताहुआ चलाजाय, फिर रामचन्द्र अनेक ऋषियोंके आश्रमपर जांय शरभंगमुनिका खपच्चीका ढांचा बनाया जाय उसके पीछे एक मनुष्य बैठकर बातचीत करै पीछे उसमें अग्निदेनेसे वह आदमी उठजाय।

शूर्पणखाका मुख कृत्रिम रबडका बनाना चाहिये जिसमें नाक बहुत लम्बीहो और भीतर उसमें लालरंगभरा हो, जो नाक काटनेसे बहने लगे, वा चेहरेपर लालरंग लगादो. खर दूषण और राक्षसोंके हाथमें ढाल तलवार वा एक कृत्रिम बरछी हो, वे पैंतरे फेरते हुए रामकी ओर खड्ग ढाल दिखावें और घुमावैं, रामचन्द्रके चारों ओर घूमैं अन्तमें वे सब लेटजांय दो मनुष्य इनकी टांग घसीट २ लेजाँय अग्निमें जानकीका सौंपना यहीहै कि जानकी अग्निस्पर्श करलें। मारीचनामक मृग इसप्रकार खपच्चियोंका बनाया जाय कि उसके आगे पीछे दोनों ओर मुखहो और वह सुनहरी पन्नेसे मढा हुआ हो चारों पाँवोंमें पहिये लगे हों एकआदमी उसे लेकर चलै राम पीछे चलें रंगभूमिमें हो तो दो मनुष्य उसमें लगैं तारको इधर उधर खेंचैं जब वह गिरै तो एक आदमी.हा लक्ष्मण चिल्ला उठै, जब लक्ष्मण रामको देखने जाँय तब रावण संन्यासीके वेषमें आय जानकीको लेजाय और जटायु कागजका बना हुआ किसी मनुष्यके उठानेपर युद्धकरै, रंगभूमि नेपथ्यमें तारोंद्वारा जटायु युद्धकरै पीछे रावण पंख काटकर जानकीको लेजाय और राम लक्ष्मण जानकीका खोज करते आवें और जटायुसे बात करें उसकी क्रिया करनेपर उसके नीचेसे निकला पुरुष मुकुटादि पहरे विष्णुरूपसे चलाजाय। फिर मार्गमें रामचन्द्र कबन्धको मारैं. यह एक ऐसा कृत्रिम बनायाजाय जिसके पेटमें शिरहो पीछे शबरीके यहां जाय सत्कार पाय नारदजीसे बातकरैं।

किष्किंधाकाण्ड।

राम लक्ष्मणको महावीरजी कंधेपर चढाकर लावैं, श्वेतरंगकी नलकी अस्थिसमूह और ताडके कृत्रिम सातपेड बना उनमें एक तार बांधदे जो

रामके बाण मारतेही खैंचनेसे दूर जा पडैं पीछे वालि सुग्रीवसे युद्धहोनेपर राम वृक्षकी ओटसे वालिको मारैं और ताराको समझाय सुग्रीवको राज्यदें सुधके लिये चारों ओर भेजैं ।

सुन्दरकाण्ड ।

कृत्रिम समुद्र श्वेत कपडा बिछाकर इतना चौंड़ा बनायाजाय कि, हनुमान् उसको एक छलांगमें लांघजांय मार्गमें सुरसासे बातकर लंकनीको प्रहारकर लंकामें जो बड़ी विचित्र कागजसे मढी बनी हो जांय वहां बिभीषणसे बातकर अशोकवाटिकामें जाँय वृक्षपर छिपरहैं, और रावणके चले जानेपर मुद्रिका डालकर फिर जानकीसे बातैंकर बन उजाड़ राक्षसोंसे युद्धकर मेघनादसे पकडे जाकर फिर रावणके दरबारमें जाय समझाय फिर लंकापुरी जलावें लंकामें अग्निक्रीडाके गोले धरे हों, जलाते समय उनमेंसे बडा शब्दहो, पीछे महावीर सीतासे पूछकर रामचन्द्रको संदेशा सुनावैं ।

रामका सेनासहित सागरतट गमन करना, रावणकी सभा, बिभीषणका शरणमें आना, रामचन्द्रका उसको तिलक करना और फिर मार्ग मांगनेको समुद्र तटपर बैठना, पीछे क्रोध करनेपर सागरका श्वेत वस्त्र पहरे बाहर निकलना और आगे भेंटधरकर पुल बांधनेका उपाय बताना यह सब होना चाहिये ।

लंकाकाण्ड । (समुद्र तरण)

रामका कटक सहित समुद्रके पारजाना, कृत्रिम समुद्रपर काठ वा मोटे पत्रकी अनेक रंगकी पटली बिछाकर पुल बनवाना चाहिये । पीछे वहां शंकरका स्थापनकर सब पार जांय, रामचन्द्रकी ओरसे अंगद जांय और एक रावणके पुत्रको मार कथोपकथन कर पैरअड़ाय रामचन्द्रपर आवैं ।

कुंभकर्ण मेघनाद वध ।

वानर और राक्षस टाटसे मढे गूदडके गोलोंसे युद्ध करैं, मेघनाद लक्ष्मणका युद्ध सब ओरको हो और मेघनाद एक शक्ति लक्ष्मणके मारै

जिससे वह गिरपडैं (रातमें हो तौ शक्तिमें जलती फुलझड़ी लगाई जाँय) हनुमान् उनको उठाकर लावैं फिर सुषेणको घरसे उठालावैं. पीछे सजीवन लेने चलैं, सरोवर एक कपडेका हो उसके नीचे एक लडका अप्सराबना लेटाहो वह महावीरका पैर पकड़ै हनुमान उसको झटकादें, तब वह अप्सरा निकलकर वृत्तान्तकह चलीजाय, हनुमान कालनेमिको मारकर पर्वतपर जावें वह पर्वत बीस खपच्चीका बनाहो, रातमें लीला हो तौ उसपर ज्वलित बत्तियां लगीहों उसको उठाकर कूदते फांदते चलैं और मार्गमें भरतके बाण लगनेसे गिरकर फिर चैतन्य हो बिदाहो रामदलमें आवैं, और लक्ष्मणके जी उठनेपर फिर पर्वत जहांका तहां पहुँचादें।

तब कुंभकर्णको रावण जगावै और वह युद्धकर राम लक्ष्मणके हाथसे माराजाय। मेघनाद कुंभकर्ण कृत्रिम कागज बांसके बहुत बडे बनाने चाहिये, फिर मेघनाद युद्ध करै और नागफांससे सबको बांधले फिर गरुडजी आनकर उस नागको निगलजांय [यह कागजका बनाहो मैदानकी लीलामें आदमी उठाकर लावै और सर्प लपेट चलाजाय] पीछे मेघनाद यज्ञकरै और युद्धकर लक्ष्मणके हाथसे माराजाय उसका शिर लक्ष्मण रामके पास लावैं भुजा तारसे लंकामें फेंक दीजाय, सुलोचना एक चौकीपर बैठीहो उसके आगे गोल छेदहो उसके नीचे एक मनुष्यहो सुलोचना उस भुजाके मोरे सिरेको छेदपर धर हृदयसे लगाय रुदन करै तब चौकीके नीचेका मनुष्य छेदद्वारा अपना हाथ भुजामें डालकर उंगलीसे लिखै चौकीपर कपडा बिछाहो सुलोचना रावणपर जाय बातकर पीछे रामचन्द्रपर आय विनयकरै। रामके निवासस्थानमें शिर ऐसे स्थानपर धरा हो जिसके नीचे गढेमें एक आदमी बैठाहो उसका शिर मेघनादके कृत्रिम शिरमें समाजाय कपडा बिछाहो सुलोचनाके कहनेसे वही नीचेसे हँसै और फिर शिर लेजाय कृत्रिम सुलोचना सती होजाय।

अहिरावण वध ।

रावण मंत्रजपने बैठे अहिरावण आवै और बातकर रामचन्द्र और लक्ष्मणको वानरोंके सोतेमें उठालेजाय अपने लोकमें जाकर यज्ञकरै महावीरजी वानरोंसे बातकर रामलक्ष्मणको लेनेजांय और मकरध्वजसे

युद्धकर उसे बांध भीतरजांय. और देवीके मुखके आकारकी झूल पहर पूजाकी सब सामग्री खाजांय. जब अहिरावण रामलक्ष्मणको बलिदानके लिये खड़ा करै तब महावीर मंदिरसे निकल रामलक्ष्मणको उठाय अहिरावणसे खड्गछीन उसे मार मकरध्वजको राज्यदे अपनी सेनामें आवैं।

रावण वध।

एक दो बार पैदल पीछे विमानपरं बैठकर रावणसे राम युद्ध करैं, पीछे कृत्रिम रावण जिसमें अग्निक्रीडाके द्रव्यलगे हों फूंकदिया जाय, रामलक्ष्मण अपने निवेशमें आवैं।

पीछे मन्दोदरी विलापकरै बिभीषणादि रावणको जलांजलिदें फिर बिभीषणको लंकाराज्यकी प्राप्ति, पीछे जानकी रामचन्द्रके समीप लाई जांय, वह अग्निस्पर्शकराय शुद्ध कीजांय (यही वास्तविक सीताका प्रगट होनाहै) फिर दशरथ विमानपर आय प्रणामकर चले जांय; और सब देवता आय २ स्तुतिकरैं, इन्द्र रामकी आज्ञासे विमानमें बैठ पिचकारीसे जल बरसाय मृतवानरोंको जिवावै।

रामका अवधगमन।

विमानमें बैठकर सुग्रीवादिवानरोंके सहित राम लक्ष्मण अयोध्याको चलैं, और सब स्थान दिखातेहुए मुनियोंसे मिल निषादसे भेटकरैं और महावीरजीको भरतके पास समाचार लेने भेजैं।

उत्तरकाण्ड।

महावीरका भरतसे सम्वाद।

भरतजी कुशासनपर राम राम जपते हुए जटाबढ़ाये हो, उनसे महावीर सम्वाद करैं, रामका सन्देश पाकर भरत शत्रुघ्न वसिष्ठादि पुरुष सब माता यह रामके निकट चलैं; और परस्पर मिलैं भेटैं।

रामचन्द्रको राज्याभिषेक।

इस दिन बड़े बड़े झाड फानूस दीपक बालकर मण्डप वा सभागृह सजायाजाय महाराज रामचन्द्र, जानकी, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न उत्तम२ वस्त्र आभूषण धारणकर सिंहासनपर बैठैं और वसिष्ठ मुनि अपने हाथसे तिलक करैं; पीछे महाराजको भेंट दीजाय, और उनके सन्मुख नृत्य गान होता रहै। इति।

विशेषकृत्य ।

दशरथकी राजसभा–बीचमें एकसिंहासन वा सजीहुई चौकीके आगे पुष्पपात्र रक्खे हों दाहिने बांये चौकीहों ।

यज्ञ–इसमें मुनियोंके बैठनेकी मृगछाला बिछीहों, कुशादि सन्मुखधरेहों रामलक्ष्मणके बैठनेको चौकी बिछीहों ।

जनकसभा–बीचमें धनुष बडा लम्बा सजा धरा हो चारों ओर, रा बैठनेको कुरसी बिछीहों ।

कोपभवन–इसमें बिछौना बिछाहो एक डेरेसा घरहो ।

चित्रकूट–एक ऊंचा स्थान कृत्रिम वृक्षोंसे युक्तहो, बीचमें चौकीहो ।

पंचवटी–मार्गमें मुनियोंके आश्रम, कृत्रिम वृक्ष, एक चौकी बिछी हुई ।

खरदूषण गृह–दोनोंके बैठनेको दो चौकी बिछीहों ।

मारीचका घर–मारीचके बैठनेको चटाई और रावणको कुरसीहो ।

रावणसभा–बीचमें कुरसी इधर उधर तिपाई हों ।

शबरीकास्थान–चटाई बिछीहुई कुशाके आसन धरे हुए ।

ऋष्यमूक पर्वत–ऊंचेस्थानपर चौकी बिछी हुई ।

वालिकास्थान–दो चौकी बिछीहुई ।

बिभीषणकाघर–दो चौकी बिछीहुई ।

अशोकवाटिका–चारोंओर कृत्रिमवृक्ष अशोकके नीचे एक चौकी बिछीहुई ।

द्रोणाचल–एक कृत्रिम पर्वत कागज मढा हुआ ।

रामनिवेश–बीचमें दो कुरसी नीचे फरस हो ।

भरतआश्रम–बीचमें एकचौकी चारों ओर तुलसी आदिके बिरवे ।

लंका–एक बडा स्थान कागजका विचित्र मढाहुआ वा जैसा उचितहो जिसमें चारद्वारहों ऊपर बैठकाहो ।

पाताललोक–नेपथ्यमें हो तो जालीके भीतर लीलाहो ।

रामाभिषेक मण्डप–यह स्थान बहुत सजा हुआहो इसमें बहुतसी कुरसी हों सुन्दर बिछौनेहों, दीपावली हो ।

प्रगटहो कि रामलीला दो प्रकारसे होसकतीहै एक मैदानमें दूसरी नेपथ्यमें जो नेपथ्यमें लीला कीजाती है वह नाटकरीतिपर होती है उसमें पात्रोंके विशेष विज्ञहोनेकी आवश्यकता है उसके निमित्त वैसेही सामान किये जाते हैं तार आदि लगाये जाते हैं एक लीला बाडा बांधकर मैदानमें होती है उसमें सर्वसाधारणके देखनेयोग्य वैसेही कार्य किये जाते हैं हमने दोनों प्रकारके उपयोगी विषयोंका इसमें वर्णन किया है ।

नाम	व्याख्यान	वेष
विश्वामित्र	एक ऋषि कुशिक वंशमें उत्पन्न	शिरपर जटाजूटबांधे, गलेमें तुलसी की माला,जनेऊ पहरे, हाथमें कमण्डलु, पीताम्बर ओढे,धोती खडाऊं पहरे, माथेपर तिलक, लम्बी डाढी जिसमें काले सफेद बाल.
वशिष्ठ	राजादशरथके गुरु और पुरोहित	विश्वामित्रके समान वेष.
दशरथ	अयोध्याके राजा	राजाओंका सा वेष,शिरपर मुकुट, माथेपर तिलक,दुशाला ओढे हुए.
सुमन्त	राजादशरथके मंत्री	अंगरखा, घुटन्ना, पगडी, जूता, दुपट्टा, दुशाला,माला,कंठी पहरे हुए.
शृंगीऋषि	अंगराजके जामाता	वेष विश्वामित्रके समान.
राम	दशरथकेपुत्र कौशल्यासे जन्मे रघुनन्दन रघुवीर रघुनाथ आदि नामसे प्रसिद्ध भगवान्	राजकुमारोंकासा वेष विवाहतक सब भूषण किरीट आदि धारण किये बहुमूल्यवस्त्रपहरे वनजानेके समय जटामुकुट पीत वस्त्र पहरे हाथमें धनुष बाण.
लक्ष्मण	दशरथसे सुमित्रामें उत्पन्न अनन्त रामानुजनामादि	वेष रामके समान.
भरत	कैकेयी पुत्र	वेष रामके समान.
शत्रुघ्न	सुमित्रा पुत्र	वेष रामके समान.
ताडका	एक राक्षसी सुन्दकी स्त्री	काले रंगका वस्त्र पहरे बुरामुख लम्बे बाल.
सुबाहु मारीच	ताडकाके पुत्र	काले वस्त्रपहरे हाथमें बांसलिये.
अहल्या	गौतमकी स्त्री	पीलीसाडी पहरे, माथेमें टीका.
जनक	मिथिलापुरके राजा	दशरथके समानवेष, डाढीमें भेद.
शतानन्द	जनकके पुरोहित	समान वेष.

नाम	व्याख्यान	वेष
सीता	जनककी पुत्री वैदेही जानकी भूमिसे उत्पन्न	स्त्रियोंके सब भूषण वस्त्रपहरे, माथे पर चन्द्रिका.
परशुराम	जमदग्निसे रेणुकामें उत्पन्न	मुनियोंकासावेष, पीलावस्त्र पहरे, धनुष बाण हाथमें लिये, कंधेपर कुठार धारे, रुद्राक्षकी माला लिये.
रावण	लंकाका राजा दशकंधर शशीशविश्रवाका पुत्र	कृत्रिम दशशिर बीसभुजा राजवेष पर कालेवस्त्रधारे हाथमें ढाल तलवार लिये.
बाणासुर	बलिपुत्र दैत्य	खौर लगाये श्वेतवस्त्र धारे.
कैकेयी	दशरथकी रानी भरतकी माता	स्त्रियोंकेसे भूषण वस्त्र पहरे हुए.
मंथरा	कैकेयीकी दासी	स्त्रियोंके वस्त्र, पीठमें कूबड.
अरुन्धती	वशिष्ठकी स्त्री	पीलीसाडी, माथेपर तिलक.
कौशल्या	दशरथकी रानी रामकी माता	रानियोंकेसे भूषण वस्त्र राजाके परलोकगमन पश्चात् श्वेतसाडी.
सुमित्रा	लक्ष्मण शत्रुघ्नकी माता दशरथकी रानी	रानियोंकेसे भूषण वस्त्र.
निषाद	शृंगवेरपुरका राजा गुह	हरेरंगका अंगरखा, लालजांघिया पगडीमें गोटा लगा,हाथमें धनुषबाण.
जयन्त	इन्द्रका पुत्र	काकजैसी झूल पहरे हुए
इन्द्र	देवराज	श्वेतवस्त्र, शिरपर मुकुट, हाथमें सुनहरी दण्ड, रंगबिरंगा धनुष.
नारद	ब्रह्माके पुत्र	हाथमें वीण, पीतवस्त्र.
अत्रि	एकऋषि	पीतवस्त्रादि पहरे.
अनसूया	अत्रिकी पत्नी	पीलीसाडीजटाजूटबांधेमाथेमेंतिल.
शरभंग	एक मुनि	मुनिवस्त्र पहरे जटाजूट बांधे.
सुतीक्ष्ण	एक मुनि	मुनियोंका वेष गलेमें रुद्राक्ष.
अगस्त्य	मुनिश्रेष्ठ	

नाम	व्याख्यान	वेष
शूर्पणखा	रावणकी बहन	कालालहँगा, कालीछींटकाडुपट्टा गोटालगा, शिरकेबाल खुले हुए.
खरदूषण	रावणके सेनापति	कालाअंगरखा जांघिया कृत्रिममुख ढाल तलवार लिये.
जटायु	गिद्धोंका राजा	नीचे विष्णुरूप ऊपरसे गृध्रसमान झूल पहरे.
कबन्ध	राक्षस	पेटमें शिर कालावेष.
शबरी	भीलिनी	आधीटांगोंतक मूसीकालहँगा, आधे शिरपर डुपट्टा हाथ पांव गुदेहुए मोटी २
	वालिका भ्राता कपीश	कमरतकपीला अंगरखा, गोटालगा जांघिया, कटिमें लांगूल,हाथमें गदा कृत्रिममुख.
वालि	सुग्रीवका बडाभ्राता पम्पापुरका राजा	सुग्रीवके समान वेष.
हनूमान	सुग्रीवके सेनापति मारुतसुत पवनसुत	सुग्रीवकासा वेष लालवर्ण विप्ररूपमें धोती पहरे माथेपर तिलक.
तारा	वालिकी रानी	अच्छे भूषण वस्त्र पहरे.
अंगद	वालिकापुत्र युवराज वालिकुमार	सुग्रीवकासा वेष हरेरंगके वस्त्र पांव कमरमें घूँघरू गलेमें हँसली हाथमें कडे कानोमें बाली.
जाम्बवन्त	सुग्रीवका मंत्री भालुओं का सेनापति ऋक्षराज	रीछौंका राजा रीछौंकीझूलपहरे.
सम्पाती	जटायुका बड़ा भ्राता	गृध्ररूपी झूलपरे.
विभीषण	रावणकाछोटाभाई रामभक्त पश्चात् लंकापति	पीला अंगरखा पीलीधोतीतुलसीकीमालाकृत्रिममुखमाथेपरतिलक
त्रिजटा	एकराक्षसी अशोकवन की रखवालीकरनेवाली	कालालहँगाडुपट्टा शिरपर तीनजटा

नाम	व्याख्यान	वेष
अक्षकुमार	रावणका पुत्र	राक्षसी वेष.
मन्दोदरी	रावणकी रानी	रानियोंकेसेभूषणवस्त्रपहरे गोराशरीर
मालवन्त	रावणका मंत्री	शेरपर पगडी अंगरखा पीला.
समुद्रदेव	तनुधारी समुद्र	श्वेत अंगरखा श्वेतपगडी हाथमें थाल मोतीभरे.
प्रहस्त	रावणका पुत्र	राक्षसीसेनापतिकासा वेष.
शुकनाथ	रावणका दूत	कमरतक कालीमिरजई जांघिया कृत्रिममुख हाथमें कालीबरछीका डंड़ा
मेघनाद	रावणका पुत्र घननाद इन्द्रजित	युवराजजैसा वेष गोटा टँका हुआ काला अंगरखा धनुषबाण ढाल तलवार लिये.
सुषेण	लंकाका वैद्य	लम्बा अंगरखा धोती पगडी हाथमें औषधियोंका डिब्बा.
कालनेमि	मुनिरूप राक्षस	
मकरी	एक अप्सरा शापवश नाकेका रूप	सुन्दर स्त्री भूषण वस्त्र पहरे.
कुंभकर्ण	रावणका भ्राता	राक्षसीवेष बडाडील.
सुलोचना	मेघनादकी स्त्री	रानियोंकासा सुन्दरवेष बाल भूषण पहरे हुये.
अहिरावण	पाताललोकका राजा एक राक्षस	अंगरखाघुटन्नामुकुटमेंसांपोंकेफन बनेहुये हाथमें ढाल तलवार.
महादेव	शिवशंभु शंकर सृष्टिसंहारकारी	जटाजूटबांधे गलेमें रुद्राक्ष हाथमें त्रिशूल और डमरू सर्पलिपटे हुये पीली धोती माथेपर चन्दनकी खौर कानोंमें कुंडल.
ब्रह्माजी	सृष्टि उत्पन्न कर्त्ता	चारमुख खौर लगाये पुस्तक लिये अंगरखा पहरे.
विष्णु	नारायण पालनकर्त्ता.	चारभुजा मुकुट तिलक भूषण पहरे.

विशेष ।

राजा दशरथके सभासद, द्वारपाल, सेवक, विप्र, बराती, जनकके प्रधान, बन्दीजन, सखियां, दूत, पुरोहित, मंत्रिपुत्र, केवट, किरात, भरतका सेवक, खर दूषणका मंत्री इनका यथोचित वेष । राक्षसोंकी सेना काले-वर्णकी वानरीसेना लालवर्णकी होनी चाहिये। और यथायोग्य चाहिये ।

इति ।



श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस खेतवाडी—बंबई.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ रामलीला रामायण प्रारभ्यते ।



(नांन्दी)

यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवाः सुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः ॥
यत्पादः प्लवमेकमेव हि भवांभोधेस्तितीर्षावतां
वन्देहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ १ ॥



सुमिरत ; गणनायक करिवर वदन
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धिराशि शुभगुण सदन ॥ १ ॥
मूक होहिं वाचाल, पंगु चढैं गिरिवर गहन ॥
जासु कृपासुदयाल, द्रवहु सकल कलिमलदहन ॥ २ ॥
नीलसरोरुह श्याम, तरुण अरुण वारिज नयन ॥
करहु सो मम उर धाम, सदा क्षीरसागर शयन ॥ ३ ॥

टीका--जिनके स्मरण करतेही कार्य सिद्ध होते हैं वह गणेशजी हस्तीके समान सुन्दर मुखवाले बुद्धिके निधान अच्छे गुणोंके आलय मेरे ऊपर कृपा करो ॥१॥ जिनकी कृपासे गूंगे बोलते हैं, लँगडे दुरूह पर्वतोंपर चढ़ सकते हैं वह सब कलिमलनाशक दयालु मेरे ऊपर कृपा करो ॥ २ ॥ नीलकमलके समान शरीरवाले नये खिले कमलके समान नेत्रवाले सदा

राग भूपाली--गाइये गणपति जगवंदन । शंकरसुवन भवानी नंदन ॥ सिद्धिसदन गजवदन विनायक । कृपासिन्धु सुन्दर सब लायक ॥ मोदक प्रिय मुद मंगलदाता । विद्यावारिधि बुद्धि विधाता ॥ मांगत तुलसिदास करजोरे । वसै राम सिय मानस मोरे ॥ १ ॥

कुन्द इन्दुसम देह, उमारमण करुणा अयन॥
जाहि दीनपर नेह, करहु कृपा मर्दन मयन॥ ४ ॥
वंदौं गुरु पद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि॥
महामोहतम पुंज, जासु वचन रविकर निकर॥ ५ ॥
वंदौं पवनकुमार, खलवन पावक ज्ञान घन॥
जासु हृदय आगार, बसहिं राम शरचाप धर॥ ६ ॥
वंदौं चारौं वेद, भव वारिधि वोहितसरिस॥
जिनहिं न सपनेहु खेद, वणत रघुपति विशदयश॥ ७ ॥

क्षीरसागरमें शयन करनेवाले मेरे हृदयमें निवास करो॥ ३ ॥ कुन्द और चन्द्रके समान शरीरवाले पार्वतीपति करुणामय दीन हितकारी कामके मर्दन करनेवाले शंकर मुझपर कृपा करो॥ ४ ॥ गुरुके चरणकमलोंको प्रणामकरताहूँ जो दयासागर नररूप हरिहैं जिनके वचन महाअज्ञानके दूरकरनेको सूर्यकी किरणरूप हैं॥ ५ ॥ पवनपुत्र महावीरजीको प्रणाम करताहूं जो दुष्टरूपी वनके जलानेको अग्निहैं जिनके हृदयरूप घरमें धनुष बाण धारण किये श्रीराम निवास करते हैं॥ ६ ॥ चारों वेदोंको प्रणाम करता हूं जो भवसागर पार करनेको जहाजरूप हैं रघुनाथका विमलयश वर्णन करते जिन्हें स्वप्नमें भी खेद नहीं है॥ ७ ॥



पार्वती ममनाथपुरारा। ..

जो मोपर प्रसन्न सुखरासा। जानिय सत्य मोहिं निज दासा

तौ प्रभुहरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथकथा विधि नाना

शेष शारदा वेद पुराना। सकलकरहिं रघुपतिगुणगाना ॥ ४ ॥

तुमपुनिरामनामदिनराती। सादरजपहुअनंगअराती ॥ ५ ॥

अति आरत पूछहुँ सुरराया। रघुपतिकथा कहहु करिदाया६॥

प्रथम सो कारण कहहु विचारी। निर्गुण ब्रह्म सगुण वपुधारी ७

पुनि प्रभु कहहु रामअवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा८

कहहु यथा जानकी विवाहा। राजतजासो दूषण का

बनवास

टीका-पार्वती-हे विश्वनाथ हे मेरे स्वामी शिव! तुम्हारी महिमा त्रिलोकीमें विदित है ॥ १ ॥ हे सुखराशी! जो आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो मुझे अपनी दासी जानो ॥ २ ॥ और रामचन्द्रकी अनेक कथा कहकर मेरा अज्ञान हरो ॥ ३ ॥ शेष शारदा वेद पुराण सब रघुनाथके गुणोंका गान करते हैं ॥ ४ ॥ हे कामनाशन तुमभी दिनरात रामनाम जपते हो ॥ ५ ॥ हे सुरपति मैं बड़ी आरत होकर पूछती हूं आप दया करके रघुपतिके चरित्र वर्णन करो॥६॥पहले तो यह कारण कहो कि उस निर्गुण ब्रह्मने किस प्रकार सगुण अवतार धारण किया ॥ ७ ॥ फिर रामावतार कहो उनके बालचरित बड़े उदार हैं सो कहो ॥ ८ ॥ फिर जानकीका विवाह कहो, उन्होंने राज्य क्यों त्यागन किया ॥ ९ ॥ फिर वनमें निवासकर क्या क्या उदारचरित्र किये. रावणको किस प्रकार

राज्य बैठ कीन्हीं बहुलीला। सकल कहहु शंकर सुखशीला ११

दोहा--वंदौं पदधर धरणि शिर, विनय करहुँ कर जोर ॥
वर्णहु रघुवरविशदयश। श्रुति सिद्धान्त निचोर॥१॥

शिव--धन्यधन्यगिरिराजकुमारी।तुमसमाननहिंकोउउपकारी
पूछेहु रघुपतिकथाप्रसंगा।सकल लोक जिमि पावनि गंगा॥२॥
जिन हरिकथा सुनी नहिं काना।श्रवणरन्ध्र अहि भवन समाना ३
नयनन सन्त दरश नहिं देखा।लोचन मोर पंखकर लेखा॥४॥
ते शिर कटुतूमरसम तूला।जे न नमत हरि गुरुपद मूला ॥ ५ ॥
जिन हरिभक्ति हृदयनहिं आनी।जीवतशवसमान ते प्रानी॥६॥
जे नहिं करहिं रामगुण गाना। जीह सुदादुरजीह समाना ॥७॥
कुलिश कठोरनिठुर सो छाती।सुनि हरिचरित न जोहरषाती ८

मारा ॥ १० ॥ फिर राज्यपर बैठकर जो लीला कीं हे शंकर ! वह सुखदायक चरित कहो ॥ ११ ॥ (दोहार्थ) मैं पृथ्वीमें शिर धरकर तुम्हारे चरणोंको प्रणाम करतीहूं कि वेदका सिद्धान्त निचोड़कर रघुनाथका यश वर्णन करो ॥ १ ॥

शिव--हे गिरिराजकुमारी ! तुम धन्य हो तुम्हारे समान कोई उपकारी नहीं है ॥ १ ॥ तुमने रघुनाथकी कथाका प्रसंग पूंछा जो सर्व लोकोंमें गंगाके समान पवित्र है ॥ २ ॥ जिन्होंने कानोंसे हरिकथा नहीं सुनी उनके कर्णरन्ध्र सर्पोंके भवनके समान हैं ॥ ३ ॥ जिन्होंने नेत्रोंसे सन्तोंका दरशन नहीं किया वे नेत्र मोरपंखके समान हैं ॥ ४ ॥ जो शिर हरि तथा गुरुके पदकमलमें नहीं झुकते वे कडवी तूमडीके समान जानो ॥ ५ ॥ जिनके हृदयमें हरिकी भक्ति नहीं है वह प्राणी जीतेही मृतक हैं ॥ ६ ॥ जो रामके गुण नहीं गाते उनकी जीभ मेंड़कोंकी जीभके समान है ॥ ७ ॥ जो छाती हरिके चरित्र सुनकर प्रसन्न नहीं वह वज्रसे भी अधिक कठोरहै ॥ ८ ॥ जैसे रामके गुणगान अनन्त हैं

मति मोरी।क देखि प्रीति अति

नुजवि

सो०-हरिगुणनाम अपार, कथारूप अगणित अमित ॥
मैं निजमति अनुसार, कहौं उमा सादर सुनहु ॥ १ ॥

रम. भगवानक पार

है ह है।   (गये)

इति प्रस्तावना।

इसी प्रकार उनकी कथाकीर्ति अनेक गुण अनन्तहैं ॥ ९ ॥ तौ भी श्रुतिके अनुसार जैसी मेरी मति है तुम्हारी प्रीति देखकर वर्णन करूंगा ॥ १० ॥ हे पार्वती ! रामकी लीला सुनो जो देवताओंका हित करती और असुरोंको मोह करती है ॥ ११ ॥ (सोरठार्थ) हरिके गुण और नाम अपार हैं और कथारूप भी अनन्तहैं मैं अपनी मतिके अनुसार कहताहूं हे प्रिये ! प्रेमसे सुनो ॥ १ ॥

इति प्रस्तावना।



अथ प्रथमदर्शन

[स्थान क्षीरसागरतट]

(ब्रह्मादिक सम्पूर्णदेवता और धेनुरूपधारीपृथ्वी खड़ी है ब्रह्माजी स्तुति करतेहैं)

ब्रह्मावाक्य–छन्द ।

जयजय सुरनायक जनसुखदायक प्रणतपाल भगवन्ता ।
गोद्विज हितकारी जय असुरारी सिन्धुसुता प्रियकन्ता ॥
पालन सुरधरणी अद्भुतकरणी मर्म न जानै कोई ।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करो अनुग्रह सोई ॥ १ ॥
जयजय अविनाशी सब घटवासी व्यापक परमानन्दा ।
अविगतिगोतीता चरित पुनीता मायारहित मुकुन्दा ॥
जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगतमोह मुनिवृन्दा ।
निशिवासर ध्यावहिं हरिगुण गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥२॥
जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा ।
करहु अघारी चिन्त हमारी जानिय भक्ति न पूजा ॥

टीका–ब्रह्माजी–हे देवताओंके स्वामी जनोंके सुख देनेवाले दीनोंके पालक भगवान् ! तुम्हारी जय हो तुम गौ ब्राह्मणोंके हितकारी असुरोंके मारनेवाले लक्ष्मीके प्रियपति हो तुम्हारी जय हो तुम देवता और भूमिके पालक अद्भुतकर्म करनेवाले हो, तुम्हारा मर्म कोई नहीं जानता, जो स्वभावसे ही दयालु तथा दीनोंपर कृपा करते हैं सो हमारे ऊपर अनुग्रह करो ॥१॥ हे अविनाशी ! सब घट २ के सर्वत्र व्यापक परमानन्दस्वरूप ! आपकी जयहो तुम्हारी गति जानी नहीं जाती तुम इन्द्रियोंसे परे पवित्र चरित्र मायारहित मुकुन्द अर्थात् मोक्ष देनेवाले हो, जिसके निमित्त वैरागी अति प्रेमसे मोह त्यागकर दिनरात ध्यान करते हैं और गुण गाते हैं हे सच्चिदानंद ! उन आपकी जय हो ॥२॥ जिसने दूसरेकी सहायताके

जो भव भय भंजन जनमनरंजन गंजन विपति वरूथा।
मन वच क्रम वाणी छांडि सयानी शरणसकल सुरयूथा ३
शारद श्रुति शेषा ऋषय अशेषा जाकहँ कोइ न जाना।
जेहि दीन पियारे वेदपुकारे द्रवो सो श्रीभगवाना॥
भववारिधमन्दर सबविधिसुन्दर गुणमंदिरसुखपुंजा।
मुनिसिद्धसकल सुरपरमभयातुरनमतनाथपदकंजा॥४॥
दोहा-(जानि सभय सुर भूमि मुनि, वचन समेत सनेह।
गगन गिरा गंभीर भइ, हरण शोक सन्देह॥

आकाशवाणी। चौपाई-

जनि डरपहु सुरसिद्ध सुरेशा। तुमहिं लागि धरिहौं नरवेशा१॥
अंशनसहित मनुज अवतारा। लेहौं दिनकर वंश उदारा॥२॥

विना सृष्टि उपजाकर सत, रज, तम तीन गुणोंसे प्रगट की है, सो हे पापनाशक! हमारी सुधि लो हम तुम्हारी भक्ति और पूजा नहीं जानते हैं सो संसारके भयनाशक भक्तोंके मनमें आनन्द करनेवाले विपत्ति नाश करनेवाले भगवान् हम सब देवता मन वचन कर्मसे चतुरता छोड़कर आपकी शरण हैं॥ ३॥ सरस्वती शेष और सम्पूर्ण ऋषि जिनको कोई नहीं जानसकता जिनको दीन पियारे हैं ऐसा वेद पुकारता है सो भगवान् हमारे ऊपर कृपाकरो, संसारसागरके मथनेको मन्दराचल गुणोंके मन्दिर हे सुखके समूह! यह सब देवता सिद्ध मुनि परम व्याकुल होकर तुम्हारे चरणकमलोंको प्रणाम करते हैं॥ ४॥

(देवता मुनि भूमि आदिको व्याकुल देख और उनके प्रेमपूर्वक वचन सुन परदेके पीछे वाणी हुई)

आकाशवाणी-हे सुरसिद्ध इन्द्रादिक तुम कोई भय मतकरो मैं तुम्हारे निमित्त मनुष्यका वेश धारण करूंगा॥ १॥ मैं उदार सूर्यवंशमें अंशों-

कश्यप अदिति महातप कीन्हा। तिनकहँ मैं पूरव वर दीन्हा ३
ते दशरथ कौशल्यारूपा। कौशलपुरी प्रगट नरभूपा ॥ ४ ॥
तिनके गृह अवतरिहौं जाई। रघुकुलतिलक सो चारहु भाई५॥
नारदवचन सत्य सब करिहौं। परमशक्ति समेत अवतरिहौं ६
हरिहौं सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देवसमुदाई ॥ ७ ॥

(आकाशवाणी मौन हुई)

ब्रह्माजी—हे भूमि! तुमने भगवान्‌का वचन सुना अब. किसीप्रकारका भय मतकरो और अपने स्थानको जाओ तथा हे देवताओ! तुम भी अपने २ अंशसे रीछ वानरोंका शरीर धारणकर भगवान्‌की सेवाके निमित्त भूमिमें प्रगट होओ हम भी अपने लोकको जाते हैं.

देवता—जो आज्ञा ऐसांही करेंगे. (सब गये)

ति प्रथम दर्शन।

अथ द्वितीयदर्शन।

राजा दशरथका स्थान।

(राजा दशरथ कौशल्या कैकेयी सुमित्रादि स्थितहैं.)

चौ०—एकबार भूपति मनमाहीं। भइ गलानि मोरे सुतनाहीं १

सहित मनुष्यका अवतार लूंगा ॥ २ ॥ कश्यप अदितिने पहले बडा तप किया था मैंने उनको पूर्वमें वर दिया था कि मैं तुम्हारे घर प्रगट हूँगा ॥ ३ ॥ वही अयोध्यामें राजा दशरथ और कौशल्यारूपहैं ॥४॥ उनके घर चारों भाई रघुकुलतिलकरूपसे प्रगट होंगे ॥ ५ ॥ और नारदजीने जो कहा है तुमको नरदेह धारण करनी पडेगी सो उनका भी वचन सत्य करूंगा परम शक्तिसहित अवतार लूंगा ॥६॥ भूमिका सब भार हरूंगा हे देवताओ! तुम सब निर्भय हो और अपने २ स्थानोंको गमन करो ॥७॥

देवता—जो आज्ञा. (गये)

इति प्रथमदर्शन।

टीका—एक बार राजा दशरथके मनमें चिन्ता हुई कि मेरे पुत्र नहीं॥१॥

गुरुगृह गयउ तुरतमहिपाला, चरणलागि करि विनयविशाला २
निजदुखसुख नृप गुरुहिसुनायो, कह वशिष्ठ बहुविधिसमुझायो ३
वशिष्ठ--धरहुधीरहुइहैं सुतचारी, त्रिभुवनविदितभक्तभयहारी ४
(शृंगीऋषिहि वसिष्ठ बुलावा, पुत्रलागि शुभयज्ञ करावा) ५
(महाराज दशरथ यज्ञ करते हैं वसिष्ठ आहुति बोलते हैं अग्नि बलरही है)

ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये। ॐ इन्द्राय स्वाहा इदमिंद्राय। ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये। ॐ सोमाय स्वाहा इद सोमाय। ॐभूः स्वाहा। ॐ भुवः स्वाहा। ॐ स्वः स्वाहा। ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा। ॐइमं मे वरुण श्रुधीहव मद्याच मृड त्वामवस्युराचके स्वाहा।

भक्तिसहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चरूकर लीन्हे ६
अग्नि--जो वशिष्ठ कछुहृदयविचारा। सकलकाज भा सिद्ध तुम्हारा ७
यह हवि बांटदेहु नृपजाई। यथायोग्य जेहि भाग बनाई
गुरुपद वंदि भूप गृह आये। मंजुल मंगल मोद बधाये
तबहि राउ प्रियनारि बुलाईं। कौशल्यादि तहां चलिआईं १०
अर्द्धभाग कौशल्यहि दीन्हा। उभयभाग आधे कर कीन्हा ११

तुरत राजा गुरुके घर गये और चरण वंदनाकर बडी विनय की ॥ २ ॥ राजाने अपना दुःखसुख गुरुको सुनाया तब वशिष्ठ समझाते हुए बोले ॥ ३ ॥ हे राजन्! धीर धरो तुम्हारे त्रिलोकीमें विख्यात भक्तोंके भय हरनेवाले चार पुत्र होंगे ॥ ४ ॥ वशिष्ठजीने शृंगीऋषिको बुलाकर पुत्रके हेत सुन्दर यज्ञ कराया ॥ ५ ॥ मुनिके भक्तिसे आहुति देनेपर चरु हाथमें लिये अग्नि प्रगट हुए ॥ ६ ॥ हे वसिष्ठजी तुमने जो हृदयमें विचारा वह तुम्हारा सब कार्य सिद्ध हुआ ॥ ७ ॥ हे राजन्! यह हवि यथायोग्य विभागकर रानियोंको बांट दो ॥ ८ ॥ राजा गुरुके चरणोंको प्रणामकर घर आये और श्रेष्ठ बधाई और मंगलाचार हुए ॥ ९ ॥ तब राजाने अपनी प्रियस्त्री बुलाई वे कौशल्याआदि वहां आईं ॥ १० ॥ आधाभाग

कैकेयी कहँ नृपले दयऊ। रहेउ सो उभयभाग पुनभयऊ १२
कौशल्या कैकेयी हाथधर। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्नकर १३
इहि विधि गर्भसहित सब नारी। भयउ हृदय हर्षित सुखभारी ॥
सुखयुतकछुककालचलिगयऊ। जेहिप्रभुप्रगटसोअवसरभयऊ

दोहा-योग लग्न ग्रह वार तिथि, सकल भये अनुकूल ॥
चर अरु अचर हर्षयुत, रामजन्म सुखमूल ॥ १ ॥

नवमी तिथि मधुमास पुनीता। शुक्लपक्ष अभिजित हरिप्रीता १
मध्यदिवस अति शीत न घामा। पावनकाल लोक विश्रामा २

(दो०-सुरसमूह विनती करि, पहुँचे निजनिज धाम ॥
जगनिवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक विश्राम ॥२॥)

(शब्दके साथ परदा हटताहै भगवान् चतुर्भुज रूपसे प्रगट होतेहैं)

छन्द-भये प्रगट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी।
महतारी मुनि मनहारी अद्भुतरूप निहारी ॥

हविका कौशल्याको दिया फिर आधेके दो भाग कर ॥ ११ ॥ एक कैकेयी को दिया शेष हविके दो भाग किये ॥१२॥ वह कौशल्या कैकेयीके हाथपर धराय प्रसन्नमनसे सुमित्राको दिवाये ॥१३॥ इस प्रकार सब रानी गर्भवती हुई हृदयमें प्रसन्नता और बड़ा सुख हुआ ॥ १४ ॥ सुखपूर्वक कुछ समय बीत गया और प्रभुके प्रगट होनेका समय आया ॥ १५ ॥

दोहार्थ-योग, लग्न, ग्रह, वार, तिथि सब अनुकूल हुए, चराचरोंको सुखदायक सुखमूल रामका जन्म हुआ ॥ १ ॥

उस समय नवमी तिथि पवित्र चैत्रका महीना शुक्लपक्ष अभिजित उप-नक्षत्र हरिप्रीतियोग ॥ १ ॥ मध्य दिवस न शीत न घाम लोकका विश्राम दायक पवित्र समय था ॥२॥ (दोहार्थ) देवता विनय करके अपने२स्थान-को गये सब लोकके विश्राम देनेवाले जगन्निवास प्रभु प्रगट हुए ॥ २ ॥

छंदार्थ-जिससमय कृपासागर कौशल्याके हितकारी दीनदयालु प्रगट हुए उस समय मुनियोंके मनका हरनेवाला अद्भुतरूप देखकर माता प्रसन्न

लोचन अभिरामा तन घनश्यामा निज आयुध भुजचारी
भूषन वनमाला नयनविशाला शोभासिंधु खरारी ॥ १ ॥
छं०-कह दुहुँ करजोरी अस्तुतितोरी केहिविधि करौं अनन्ता ।
मायागुणज्ञानातीत अमाना वेद पुराण भनन्ता ॥
करुणा सुखसागर सबगुण आगर जेहि गावहिं श्रुतिसन्ता।
सो ममहित लागी जनअनुरागी प्रगट भये श्रीकन्ता॥२॥
ब्रह्माण्ड निकाया निर्मितमाया रोमरोम प्रतिवेद कहै ।
ममउरसोवासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ॥
(उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसकाना चरित बहुत विधि कीन्हचहै
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहिप्रकार सुतप्रेम लहै ॥ ३ ॥)
"माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा ।
कीजै शिशुलीला अति प्रियशीला यह सुख परम अनूपा ॥"

हुई मनोहर नेत्र घनश्याम शरीर चारोंभुजाओंमें निज आयुध शंख चक्र गदा पद्म वा धनुषबाण धारण किये गहनोंमें वनमाला धारे विशाललोचन शोभाके सागर असुरोंके शत्रु हैं ॥ १ ॥ हाथ जोड़कर कौशल्या बोली हे अनन्त! मैं तुम्हारी स्तुति किसप्रकार करूं तुम मायाके गुण और ज्ञानसे परे मनमें नहीं आते ऐसा वेद पुराण कहते हैं करुणा सुखके समुद्र सब गुणोंमें श्रेष्ठ जिनको श्रुति और सन्त गाते हैं सो मेरे निमित्त जनोंपर अनुरागकर लक्ष्मीपति प्रगट हुए हैं॥२॥यह मायाके निर्माण किये अनन्त ब्रह्माण्ड जिनके रोम २ में निवास करते हैं ऐसा वेद कहता है सो मेरे हृदयमें बसे यह बड़े उपहासकी बात है इसको सुनकर धीर पुरुषोंकी मति भी थिर नहीं रहसक्ती जब यह ज्ञान उपजा तब प्रभु मुसुकाये कारण कि महत् चरित करना चाहते हैं, अच्छी पूर्वजन्मकी कथा कह माताको समझाया जिससे पुत्रका प्रेम प्राप्त हो॥३॥ फिर माताकी यह मति डोली तब कहने लगी हे तात! यह रूप त्यागन करो अतिप्रिय बाललीला करो यह सुख

सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा ।
यह चरित जो गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भव ..

दोहा--विप्रधेनु सुरसन्तहित, लीन्ह मनुज अवतार
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुण गोपार ❀

चौ०--हर्षित जहँ तहँ धाई दासी। आनँद मगन सकलपुरवासी १
केकयसुता सुमित्रा दोऊ । सुन्दर सुत जन्मत भइँ सोऊ ॥२॥
दशरथ पुत्रजन्मसुनि काना । मानहु ब्रह्मानंद समाना ३॥
दश०--जाकर नाम सुनत शुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई ४

परम अनूप है यह वचन सुन चतुर पुरुष सुरपति बालक हो रोदन करने लगे, यह चरित्र जो गावेंगे वह हरिके पदको प्राप्तहोंगे और संसार कूपमें नहीं पडैंगे ॥ ४ ॥

दोहार्थ—ब्राह्मण धेनु देवता सन्तोंके निमित्त मनुष्य अवतार लियाहै अपनी इच्छासे शरीर निर्माण कियाहै मायाके गुण और इ

जहां तहां प्रसन्न हो दासी धायमान हुई सब पुरव हुए ॥ १ ॥ कैकेयी और सुमित्राके भी सुन्दर पुत्र हुए ॥२॥ दशरथ पुत्रका जन्म सुनकर मानो ब्रह्मानन्दमें समागये और बोले ॥ ३ ॥ जिसका नाम

❀ राग आसावरी--आज सुदिन शुभ घरी सुहाई । रूप शील गुण धाम राम नृप भवन प्रगट भये आई ॥ अति पुनीत मधु मास लगन ग्रह वार योग समुदाई । हर्षवन्त चर अचर भूमि सुर तनु रुह पुलक जनाई । वर्षहिं विबुध निकर कुसुमावलि नभ दुन्दुभी बजाई । कौशल्यादि मातसब हर्षित यह सुख वरणि न जाई । सुन दशरथसुत जन्म लिये सब गुरुजन विप्र बुलाई । वेदविहित कर क्रिया परम शुचि आनँद उर न समाई । सदन वेदधुनि करत मधुर मुनि बहुविधि बाज बधाई । पुरवासिन प्रियनाथ हेतु निजनिज सपदा लुटाई । मणि तोरन बहु केतु पताकन पुरी रुचिरकर छाई । मागध सूत द्वार बंदीजन जहँ तहँ करत बड़ाई । सहज शृंगार किये बनिता चलि मगल विपुल बनाई । गावहिं देहिं अशीश मुदित चिरजीयो तनय सुखदाई । वीथिन कुमकुम कीच अरगजा अगर अबीर उडाई । नाचहि पुर नर नारि प्रेमभरि देह दशा बिसराई । अमित धेनु गज तुरँग वसन मणि जातरूप अधिकाई । देत भूप अनुरूप जाहि होइ सकल सिद्धि गृह आई । सुखी भए सुर सत भूमिसुर खलगण मन मलिनाई । सबहिं सुमन विकसत रविनिकसत विपिन कुमुद विलखाई । जो सुख सिन्धु सुकृत सीकर ते शिव विरंचि प्रभुताई । जो सुख उमग अवध रह्यो दशदिशि कवन जतन कहों गाई । जे रघुवीर चरण चिंतक तिनकी गतिप्रगट दिखाई । अविरल अमल अनूपभक्ति दृढ तुलसीदास तब पाई ॥ १ ॥

"परमानंद पूर मन राजा। कहा बुलाय बजावहु बाजा ॥ ५ ॥
गुरुवशिष्ठ कहँगयउ हँकारा।आये द्विजन सहित नृपद्वारा ॥६॥
अनुपम बालक देखि न जाई।रूपराशिगुण कहि न सिराई॥७॥

दोहा--तब नान्दीमुख श्राद्धकरि, जातकर्म सब कीन्ह।
हाटक धेनु वसन मणि, नृप विप्रन्हकहँ दीन्ह ॥ ४ ॥

चौ०-ध्वजपताक तोरणपुर छावा।कहिनजाय जेहिभांति बनावा
मागधसूत.बंदि गुण गायक। पावन यश गावहिं रघुनायक॥२॥
सर्वसदान दीन्ह सब काहू । जेहि पावा राखा नहिं ताहू ॥३॥
मृगमद

दोहा--गृह गृह बाज वधाव शुभ, प्रगट भये सुखकन्द ।
हर्षवन्त सब जहँ तहँ, नगर नारि नर वृन्द ॥ ५ ॥

चौ०-कछुकदिवसबीतेइहिभांती।जातनजानहिंदिनअरुराती १
नामकरणकर अवसरजानी। भूपबोलिपठयेमुनिज्ञानी॥

सुननेसे शुभ होताहै वह प्रभु मेरे घर आये ॥ ४ ॥ राजाने परमानन्दमें पूर्ण होकर कहा बुलाकर बाजे बजवाओ ॥ ५ ॥ गुरुवशिष्ठको बुलावागया वह ब्राह्मणों सहित नृपके द्वारे आये ॥ ६ ॥ अनुपम बालकका दर्शन किया जो रूपकी राशि और जिनके गुण नहीं कहे जाते ॥ ७ ॥ (दोहार्थ) तब नान्दी-मुख श्राद्ध करके सब जातकर्म किये । राजाने सुवर्ण गौ वस्त्र मणि ब्राह्मणोंको दीं ॥४॥ ध्वजा पताका तोरनसे नगर छागया जैसा बनाया सो कहा नहीं जाता ॥१॥ गुण गानेवाले मागध सूत बंदीजन रघुनाथके पवित्र गुण गाने लगे॥२॥ सब किसीने सर्वसदान दिया जिसने पाया उसने भी नहीं रक्खा ॥३॥ कस्तूरी कुम २ चन्दनकी गली २ में कीच मचगई ॥ ४ ॥

दोहार्थ–घरघर सुन्दर वधाये बजे कि, सुखमूल प्रगट हुए जहां तहां नगर नारियोंके वृन्द प्रसन्न हुए ॥५॥ कुछ दिन इस प्रकारसे बीत गये दिन रात जाते नहीं जाने जाते ॥ १ ॥ नामकरणका अवसर जानकर राजाने

करिपूजाभूपतिअसभाषा । धरियनामजोमुनिगुनिराखा ॥३॥
वशिष्ठ—इनके नाम अनेक अनूपा। मैंनृप कहब स्वमति अनुरूपा
जो आनन्दसिंधु सुखराशी। सीकर तें त्रैलोक प्रकाशी ॥ ५ ॥
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिललोक दायक विश्रामा ६॥
विश्वभरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई ॥ ७ ॥
जाके सुमिरण ते रिपुनाशा । नामशत्रुहन वेद प्रकाशा ॥ ८ ॥
दोहा—"लक्षणधाम रामप्रिय, सकलजगत आधार ॥
गुरुवशिष्ठ तेहि राखा, लक्ष्मण नाम उदार ॥ ६ ॥
धरेनाम गुरुहृदयविचारी । वेदतत्त्वनृपतवसुतचारी ❀ ॥१॥"

(गये)

इति द्वितीय दर्शन ।

ज्ञानी मुनिको बुला भेजा ॥ २ ॥ पूजा करके राजा बोले हे मुनि ! आपने जो विचार रक्खाहै सो नाम कहिये ॥ ३ ॥ इनके अनेक सुन्दर नाम हैं. हे नृप ! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कहता हूं ॥ ४ ॥ जो आनन्दके सागर सुखकी राशि हैं जिनकी कृपाके कारणसे तीनलोकको आनन्द होता है ॥ ॥ ५ ॥ उन सुखधामका राम नाम है यह सब लोकको विश्राम देनेवाले हैं॥६॥ जो विश्वके भरण पोषण करनेवाले हैं उनका नाम भरत होगा ॥ ७ ॥ जिनके स्मरण करनेसे शत्रुका नाश होता है वह वेदप्रकाशित शत्रुघ्न नामवाले होंगे ॥८॥(दोहार्थ) जो लक्षणके धाम रामके प्यारे सब जगतके आधार हैं गुरु वशिष्ठने उनका नाम लक्ष्मण धरा ॥९॥ इस प्रकार गुरुने विचारकर नाम रक्खे हे राजन् ! तुम्हारे चारों पुत्र वेदके तत्त्व हैं ॥ १ ॥ अच्छा अब हमारी दक्षिणा दो तो घर जांय (विदाहो सब गये)

इति द्वितीय दर्शन ।

❀ राग कान्हरो—ठुमक चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियां । किलकत उठिचलत धाय परत भूमि लटपटाय, धाय मात गोद लेत दशरथकी रनियां । अंचर रज अंगझार विविधभांति सो दुलार, तनमनधनवार डारों कहत मृदु वचनियां । मोदक मेवा रसाल मन भावत लेउ लाल, और लेउ रुचिर पान कञ्चन रुनझुनियां । आनंदमज कंबुकंठ ग्रीवा अति रुचिर रेख, कांच कुटिल कमल—

अथ तृतीय दर्शन ।



(राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न बालसखा संगलिये विचरते हैं)

चौ०-"परममनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा
चूडाकरन कीन्ह गुरुआई । विप्रन बहुरि दक्षिणा पाई ॥ २ ॥
भोजन करत बोल जब राजा । नहिं आवैं तजि बाल समाजा३
कौशल्या जब बोलन जाई । ठुमकि २ प्रभु चलहिं पराई ४
दोहा-भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाय ॥
भाजिचलैं किलकात मुख, दधि ओदन लिपटाय ॥७॥
भय कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ॥१॥
गुरु गृह गये पढन रघुराई। अलपकाल विद्या सब पाई+ ॥ २ ॥

टीका-चारों कुमार परम मनोहर उदार चरित्र करते फिरते हैं ॥ १ ॥ गुरुने चूडाकरन किया और ब्राह्मणोंने फिर बहुत दक्षिणा पाई ॥२॥ राजा भोजन करनेको बुलाते हैं परन्तु अपने बाल समाजको छोड़कर नहीं आते ॥ ३ ॥ कौशल्या जब बुलाने जाती है तब ठुमक ठुमक भाग जाते हैं ॥ ४ ॥ (दोहार्थ) चपल चित्तसे भोजन करते हैं इधर उधर अवसर पाकर किलकारी मारते भाज जाते हैं मुखमें दही भात लिपट रहाहै ॥ ७ ॥

जब सब भाई कुमार हुए तब माता पिताने गुरुद्वारा यज्ञोपवीत दिवाया ॥ १ ॥ रघुनाथजी गुरुके घर पढनेगये और अलपकालमें सब

वदन मद सो हँसनिया । विद्रुम सो अधर ललित बोलत प्रिय मधुर वचन, नासा अतिसुभग बीच लटकत लटकनियां । अद्भुत छवि अतिअपार' को कवि नहि वरणे पार, कह न सके शेषजिहिं सहस्र तो रसनिया । तुलसीदास रूपरंग पटतरका दिये कहा, रघुवरकी छवि समान रघुवरछबि वनियां ॥ ३ ॥

× रागनट-खेलन चलिये आनंदकन्द । सखाप्रिय नृपद्वार ठाढे विपुल बालक वृन्द तृपित तुम्हरे दरश कारण चतुर चातक दास । वपुषवारिद वरसि छविजल हरहु लोचन प्यास । बंधु वचन विनीत सुनि उठे मनहु केहरिबाल । ललित लघुशर चापकर उर नयन बाहु विशाल । चलत पद प्रतिबिम्ब राजत अजिर सुखमा पुंज । प्रेम वश प्रतिचरण महिमनो देति आसन कंज । निरखिपरम विचित्र शोभा चकित चितवहिं मात । हर्ष विवश न जात कहि निज भवन विहरहु तात । देख तुलसीदास प्रभु छवि रहे सब पलरोकि । थकित निकर चकोर मानहु शरदइंदु विलोकि ॥ ४ ॥

विद्या विनय निपुण गुणशीला। खेलहिं खेल सकल नृप लीला ३
करतलबाल धनुष अति सोहा । देखत रूप चराचर मोहा ४
जिन वीथिन विहरैं सब भाई । थकितहोहिं लखि लोग लुगाई ५
बंधु सखा सब लेहिं बुलाई । वन मृगया नित खेलहिं जाई ६
जे मृग राम बाणके मारे । ते तनु तजि सुरलोक सिधारे ॥७॥
जेहि विधि सुखी होहि पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ सँयोगा
अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मात पिता आज्ञा अनुसरहीं ९
प्रातकाल उठिकै रघुनाथा । मात पिता गुरु नावहिं माथा १०
आयसुमाँगि करहिं पुरकाजा । देख चरित मन हर्षित राजा ११
दोहा—व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुण नाम न रूप ॥
भक्तहेतु नानाविधिहि, करत चरित्र अनूप ॥ ८ ॥

इति तृतीय दर्शन ।

विद्या पाई ॥ २ ॥ विद्या विनयमें निपुण गुण शीलवान बालकोंके संग नृपलीला खेलते हैं ॥ ३ ॥ हाथमें धनुषबाण शोभित है रूप देख चराचर मोहित होताहै ॥ ४ ॥ जिन गलियोंमें सब भाई विचरते हैं वहांके लोग लुगाई रूप देखकर थकित हो जाते हैं ॥ ५ ॥ बंधु सखा सब बुलाकर वनमें मृगया खेलने जाते हैं ॥ ६ ॥ जो मृग रामके बाणसे मरे वे शरीर छोड वैकुण्ठमें गये ॥ ७ ॥ जिस प्रकार पुरवासी प्रसन्न हों प्रभु वही संयोग करते हैं ॥ ८ ॥ छोटे भाई और सखाओंके साथ भोजन करते माता पिताकी आज्ञा मानते हैं ॥ ९ ॥ प्रभात ही उठके रघुनाथ माता पिता गुरुको माथा नवाते हैं ॥ १० ॥ आज्ञा मांगकर पुरका काज करते हैं चरित देखकर राजा मनमें प्रसन्न होते हैं ॥ ११ ॥ (दोहार्थ) जो व्यापक कलरहित अज निर्गुण नामरूप रहित हैं वह भक्तोंके निमित्त अनूप चरित्र करते हैं ॥ ८ ॥

इति तृतीय दर्शन ।

अथ चतुर्थ दर्शन ।



(विश्वामित्रागमनं)

'विश्वामित्र महामुनिज्ञानी। वसहिं विपिन शुभ आश्रम जानी १
तहँ जप यज्ञ योग मुनि करहीं । अतिमारीच सुबाहुहि डरहीं २
गाधितनय मन चिंता व्यापी। हरिविन मरहिं न निशिचरपापी ३
तब मुनिवर मनकीन्ह विचारा। प्रभु अवतरेउ हरण महिभारा ४'
वि०-इहि मिसदेखौं प्रभुपद आई। करिविनती आनौं दोउभाई ५
"दोहा—बहुविधि करत मनोरथ, जात न लागी बार ॥
करि मज्जन सरयूसलिल, गये भूप दरबार ॥ ९ ॥"
मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ ले विप्रसमाजा १

अथ चतुर्थ दर्शन ।

टीका—महाज्ञानी विश्वामित्र अच्छे आश्रमकिये वनमें निवास करते हैं ॥ १ ॥ वहां मुनि योग यज्ञ जप करते परन्तु मारीच सुबाहुसे डरते कारण कि वे विघ्न करते थे ॥ २ ॥ तब विश्वामित्रके मनमें चिन्ता हुई कि, यह पापी राक्षस बिना हरिके न मरेंगे ॥ ३ ॥ फिर मनमें विचार कर जाना कि, प्रभुने भूमिका महाभार दूर करनेको अवतार लिया है ॥ ॥४॥ इसीबहाने प्रभुके पद जाकर देखूं और विनतीकर दोनों भाइयोंको बुला लाऊं ॥ ५ ॥ (दोहार्थ) इस प्रकार बहुत मनोरथ करते चले जातेमें देर न लगी सरयूके जलमें स्नान कर राजाके दरबारमें गये ॥ ९ ॥
राजा मुनिका आगमन सुन ब्राह्मणोंके संग लेने गये ॥ १ ॥

---

१ राग प्रभाती—प्रातसमय रघुवीर जगावै कौशल्या महतारी । उठो लालजी भोर भयो है सर नर मुनि हितकारी । ब्रह्मादिक इन्द्रादिक नारद सनकादिक ऋषि चारी । वाणी वेद विमल यश गावैं रघुकुल यश विस्तारी । बदीजन गंधर्व गुण गावैं नाचत देदे तारी । उमासहित शिव द्वारे ठाढे होत कुलाहल भारी । कर स्नान दान प्रभु दीनो गो गज कंचन झारी । जय जयकार करत जन माधो तन मन धन बलिहारी ॥ ३ ॥

चरनपखारि कीन्ह अतिपूजा। मोसम धन्य आजु नहिं दूजा२
विविध भाँति भोजन करवावा।मुनिवर हृदय हर्ष अतिछावा ३
पुनि चरणन मेले सुतचारी। रामदेख मुनि विरति विसारी ४
तब मन हर्ष वचन कह राऊ।मुनि अस कृपाकीन्ह नहिं काऊ ५
रा०-केहि कारण आगमन तुम्हारा।कहहु सो करत न लाउब बारा ६
वि०-असुर समूह सतावहिं मोहीं। मैं याचन आयों नृप तोहीं७
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निश्चर वध मैं होब सनाथा ॥ ८

दो०-देहु भूप मन हर्षित, तजहु मोह अज्ञान ॥
धर्म सुयश नृप तुमकहँ, इनकहँ अतिकल्यान ॥ १० ॥

सुनि राजा अतिअप्रिय वानी।हृदयकंप मुख द्युति कुँभिलानी
द०-चौथेपन पायउँ सुतचारी।विप्रवचन नहिं कहेउ विचारी २
मांगहु भूमि धेन धनु कोषा। सर्वस देहुँ आज सह रोषा ॥ ३

चरण धोय बड़ा सन्मान किया कि, मेरे समान कोई दूसरा भाग्यवान नहीं है॥ २ ॥ फिर अनेक प्रकारसे भोजन कराया तब मुनीश्वरके हृदयमें त हर्ष हुआ ॥ ३ ॥ फिर चारों पुत्रोंको चरणोंमें डाला रामको देख मुनिराज वैराग्य भूल गये ॥ ४ ॥ तब राजा प्रसन्न हो बोले हे मुनिराज आपने ऐसी कृपा तो कभी नहीं की ॥ ५ ॥ आपके आनेका कारण क्या है ? कहो सो करतेमें बार न लगाऊं ॥ ६ ॥ विश्वामित्र बोले मुझे वनमें निशाचर दुःख देते हैं मैं तुमसे याचना करने आया हूं ॥ ७ ॥ लक्ष्मण सहित रामको दो राक्षसोंके वधसे मैं सनाथ होजाऊंगा ॥ ८ ॥

(दोहार्थ) हे राजन् प्रसन्न होकर दीजिये मोह अज्ञान त्यागन कीजिये तुमको धर्म सुयश और इनको कल्याण होगा ॥ १० ॥

यह अप्रिय वाणी सुनते ही राजाका हृदय कांप गया मुखकी कांति कुँभला गई और बोले ॥ १ ॥ चौथेपनमें चार पुत्र पाये हैं हे मुनि! आपने विचार कर वचन नहीं कहे ॥ २ ॥ भूमि धेनु धन कोष मांगो मैं

देह प्राण ते प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देहुँ निमिष इकमाहीं४
सब सुत प्रियमोहिं प्राणकि नाईं। रामदेत नहिं बनहिं गुसाईं ५
कहँ निशिचर अतिघोर कठोरा। कहँ सुन्दर सुत परम किशोरा
तब वशिष्ठ बहुविधि समुझावा। नृप सन्देह नाशकहँपावा ॥७॥

(वार्त्ता)

वसिष्ठ०:—हे राजन् आप विषाद न कीजिये राम लक्ष्मण विश्वामित्रको दीजिये इनकी अशीश लीजिये यह कुमारोंकी रक्षा करलेंगे.

"अतिआदर दोउतनय बुलाये।हृदय लाय बहुभाँतिं सिखाये८"
मेरे प्राणनाथ सुत दोऊ। तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥९॥
दोहा-"सौंपे भूपति ऋषिहि सुत, बहुविधि देइ अशीश ॥
जननी भवन गये प्रभु, चले नाइ पद शीश ॥ ११ ॥"

आज सब रोष सहकर देदूंगा ॥३॥ हे मुनि! देह और प्राणसे तो कुछ प्यारा नहीं वह भी एकपलमें देसकताहूं ॥ ४ ॥ मुझे सब पुत्र प्राणोंके समान प्यारे हैं परन्तु हे मुनिराज! रामको तो नहीं दिया जाता ॥ ५ ॥ कहां तो वह घोर कठोर राक्षस कहां, परमकिशोर मेरे बालक ॥ ६ ॥ तब वसिष्ठने बहुत भाँतिसें समझाया और राजाका सन्देह मिट गया ॥ ॥ ७ ॥ अति आदरसे दोनों बालक बुलाये और हृदय लगाकर बहुत भाँतिसे समझाये हे पुत्रो! मुनिराजकी आज्ञा मानियो जो कहैं सो करियो ॥८॥ हे मुनिराज! यह दोनों बालक मेरे प्राणनाथ हैं तुमहीं इनके पिता हो अन्य कोई नहीं ॥ ९ ॥ (दोहार्थ) ऐसे अनेक अशीश देकर बालक मुनिराजको सौंपदिये और रामलक्ष्मण माताके घर जाय, चरणोंमें शिरनवाय चले ॥ ११ ॥

---

१ राजन् राम लषण जो दीजै। यशरावरो लाभ ढोटनहू मुनि सनाथ सब कीजै। डरपत हो साचे हु सनेह वश सुत प्रभाव विनु जाने। बूझिय वामदेव अरु कुलगुरु तुम पुनि परम सयाने। रिपुरण दलि मखराखि कुशल अति अल्पदिननि घर ऐहै। तुलसिदास रघुवंश तिलककी कविकुल कीरति गै हैं ॥ ९ ॥

स्थानवन [वार्त्ता]

विश्वा०—हे कुमारो ! हमारे आगे २ हो जाओ इस वनमें दुष्ट ताडका आदि निवास करते हैं और सिंहादिभी विचरते हैं ।

राम—आपकी कृपासे एक क्षणमें सबको जय कर सकते हैं ।

विश्वा०—वह देखो वह चाण्डालिनी ताडका कलंमुंखी कैसी इधरही को आती है ।

ताडका—अरे बुड्ढे आज तू फिर इधर उधर होकर आया. अच्छा रह आज तुझे संहार करती हूं, और इन तेरे साथियोंको गटकती हूँ ।

विश्वा०—हे राम ! सावधान हो पहला विघ्न यही है ।

राम—जो आज्ञा हम इसे यमसदनका अतिथि करते हैं (बाण चढाया)

"चले जात मुनि दीन दिखाई । सुन ताडका क्रोधकर धाई १
एकहि बाण प्राण हर लीन्हा।दीन जानि तेहि निजपद दीन्हा २
तब ऋषि निजनाथहि जिय चीन्हा।विद्यानिधि कहँ विद्यादीन्हा
जाते लागि न क्षुधा पियासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकाशा४
दोहा—आयुधसकल समर्पिकै, प्रभु निज आश्रम आनि
कन्द मूल फल भोजन, दिये भक्तहित जानि ॥१२

इति चतुर्थ दर्शन ।

मार्गमें जाते हुए मुनिराजने दिखाया सुनतेही ताडका क्रोधसे आई ॥ १ ॥ रामने एक ही बाणसे उसका प्राण हरलिया और दीन जानकर उसे अपना पद दिया ॥२॥ तब ऋषिने अपने नाथको पहँचाना और उन विद्यानिधिको विद्या दी ॥ ३ ॥ जिससे भूँख प्यास न लगै और शरीरमें बड़ा बल तथा तेजका प्रकाश हो जाय ॥ ४ ॥ (दोहार्थ) सब आयुध सौंपकर प्रभुको अपने आश्रममें लाये और भक्तहितकारी जान कन्दमूलके भोजन दिये ॥ १२ ॥

इति चतुर्थ दर्शन ।

अथ पंचम दर्शन ।



(विश्वामित्रका यज्ञ)

"प्रात कहा मुनिसन रघुराई। निर्भय यज्ञ करहु तुम जाई ॥ १ ॥
होम करन लागे मुनि झारी । आप रहे मखकी रखवारी ॥ २ ॥

स्वस्तिवाचन ।

ॐ स्वस्तिन इन्द्रोवृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषाविश्ववेदाः । स्वस्तिनस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्तिनोबृहस्पतिर्दधातु । शान्तिः । ३ । आदित्याय नमः । सोमाय नमः । भौमाय नमः । बुधाय नमः । बृहस्पतये नमः । राहवे नमः । केतवे नमः । ईश्वराय नमः । विष्णवे नमः । ब्रह्मणे नमः । इन्द्राय नमः । अग्नये नमः । यमाय नमः । वरुणाय नमः । अनन्ताय नमः । होममन्त्राः । ॐ आकृष्णेनरजसावर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च । हिरण्येनसवितारथेनदेवोयातिभुवनानिपश्यन् । स्वाहा । इदं विष्णुर्विचक्रमेत्रेधानिदधेपदम् समूढमस्यपांसुरे स्वाहा । ॐ त्र्यम्बकंयजामहेसुगंधिम्पुष्टिवर्द्धनम् । उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् स्वाहा ।

चौपाई ।

"सुनि मारीच निशाचर कोही । ले सहाय धावा मुनि द्रोही ३"

[वार्त्ता]

सुबाहु—देखो इसबुड्ढेने फिर खटराग लगाया आजही इसे चट करतेहैं ।
मारीच—चलो अब देर क्यों करते हो नरमांसका आनंद उडावैं ।

पंचम दर्शन ।

टीका—प्रभातसमय रघुनाथजीने मुनिराजसे कहा तुम निर्भय यज्ञ करो ॥१॥ मुनिगण होम करने लगे आप यज्ञकी रखवारीमें रहे ॥ २ ॥ यह बात सुन मुनिद्रोही मारीच सहायता लेकर यज्ञ बिगाडनेको दौडा ॥ ३ ॥

"विनु फर रामबाणतेहि मारा । शतयोजन गा सागर पारा॥४॥
पावक शर सुबाहु पुनि मारा।अनुज निशाचर कटक सँहारा५॥
मारि असुर द्विजनिर्भयकारी।अस्तुति करहिं देव मुनिझारी६"

[वार्त्ता]

राम—मुनिराज अब दैत्य नष्ट हुए पूर्णाहुति कीजिये ।

विश्वा०—यही करते हैं ।

ॐ मूर्द्धानं दिवोअरतिंपृथिव्यावैश्वानरमृत आजातमग्निंकविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः स्वाहा । पूर्णादर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत वस्नेवविक्रीणावहा ईष मूर्जंठं० शतक्रतो स्वाहा ॥

(एक दूतका प्रवेश)

दूत—मुनिराज प्रणाम करताहूँ महाराज जनकने आपको यज्ञमें निमंत्रण दियाहै और सीताका विवाह भी धनुष प्रणपर होगा सो आप चलैं ।

विश्वा०—अच्छा तुम जाओ हम भी आते हैं ।

दूत—जो आज्ञा (गया)

"चौ०—तब मुनिसादर कहाबुझाई।चरित एक देखिय प्रभुजाई
ल नाथा । हरषि चले मुनिवरके साथा ८

(सबगये)

स्थानवन ।

आश्रम एक दीख मगमाहीं । खग मृग जीव जन्तु तहँ नाहीं९

विना फरके रामने मारीचके बाण मारा वह समुद्रके पार सौ योजन जा पड़ा ॥ ४ ॥ सुबाहुके अग्निबाण मारा लक्ष्मणने दैत्योंका कटक संहार किया ॥ ५ ॥ जब असुरोंको मारकर ब्राह्मणोंको निर्भय किया तब देवता मुनि स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥ तब मुनिने आदरसे समझाय कहा प्रभु एक चरित्र चलकर मिथिलापुरमें देखिये वहां धनुषयज्ञहै ॥७॥ यह सुनकर रघुनाथजी 'जो आज्ञा' ऐसा कह मुनिवरके साथ चले ॥ ८ ॥ मार्गमें जाते एक आश्रम देखा वहाँ खग मृग जीव जन्तु

पूछा मुनिहि शिला प्रभु देखी। सकल कथा ऋषि कहीं विशेखी
विश्वा०-दो०-गौतम नारी शापवश, उपल देह धरि धीर॥
चरण कमल रज. चाहती, कृपाकरहु रघुवीर॥ १३

(रामचन्द्र चरणसे छूते हैं)

"छन्द-परसतपदपावनशोकनशावनप्रगटभईतपपुंजसही
देखत रघुनायक जन सुखदायक सन्मुख होइ कर जोर रही॥
अतिप्रेम अधीरा पुलक शरीरा मुखनहि आवै वचन कही।
अतिशय बड़भागी चरणन लागी युगल नैन जलधार बही१॥
धीरज मन कीन्हा प्रभुकहँ चीन्हा रघुपति कृपा भक्ति पाई।
अति निर्मल वानी अस्तुति ठानी ज्ञान गम्य जय रघुराई"॥
अह०-मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावण रिपुजन सुखदाई
राजीवविलोचन भवभय मोचन पाहि पाहि शरणहि आई॥२॥

नहीं थे॥ ९॥ एक शिला देखकर प्रभुने पूँछा मुनिराज यह क्या है? ऋषिने विशेष रूपसे सब कथा कही॥ १०॥ (दोहार्थ) गौतमकी स्त्री पतिके शापके कारण पाषाण देह धारे धीरतासे स्थित है यह आपके चरणकमलोंकी रजकी इच्छा करती है इसपर कृपा करो॥ १३॥

छन्दार्थ-पवित्र चरण स्पर्श करते ही वह तपकी पुंज प्रगट हुई जन सुखदायक रघुनायकको देखकर हाथ जोड़ स्थित रही, अतिप्रेमसे अधीर होगई शरीर पुलकायमान होगया, मुखसे वचन नहीं कहाजाता अति बडभागी चरणोंमें पड़ी. दोनों नेत्रोंसे जलकी धार बही॥ १॥ फिर मनमें धीरज कर प्रभुको पहँचाना. रघुपतिकी कृपासे भक्तिपाई अतिनिर्मल वाणीसे स्तुति ठानी ज्ञानसे जानने योग्य हे राम! आपकी जय हो मैं स्त्री अपवित्र हूँ आप जगत्के पवित्र करनेवाले हैं रावणके शत्रु जनोंके सुखदाई हो कमललोचन संसारके भय दूरकरनेवाले मेरी

मुनि शाप जो दीन्हा अतिभल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना ।
देखेउ भरि लोचन भवभयमोचन यहै लाभ शंकर जाना ॥
विनती प्रभु मोरी म मति भोरी नाथ न वर मांगौं आना ।
पद कमल परागा रसअनुरागा मम मन मधुपकरै पाना ॥ ३ ॥
जेहि पद सुरसरिता परमपुनीता प्रगट भई शिव शीश धरी ।
सोइ पद पंकज जेहि पूजत अज मम शिरधरेउ कृपालु हरी ॥
"इहिभाँति सिधारी गौतम नारी बार २ हरि चरण परी ।
जो अतिमनभावा सो वर पावा गइ पतिलोक अनन्द भरी॥४"
"चौ०–चले राम लक्ष्मणमुनिसंगा।गये जहां जगपावनि गंगा१
पुनि सुरसरि उत्पति रघुराई । कौशिक सन पूछा शिरनाई २
गाधितनय सब कथा सुनाई । जेहिप्रकार सुरसरि महि आई ३
पुनि प्रभु ऋषिन समेत नहाये । विविध दान महि देवन पाये४
हरषि चले मुनिवृन्द सहाया । वेगि विदेह नगर नियराया॥५॥

रक्षाकरो २ मैं शरणमें आई हूँ ॥ २ ॥ मुनिने शाप दिया यह बहुत अच्छा किया मैंने परम अनुग्रह माना । भय दूर करनेवाले प्रभुको मैंने नेत्र भरकर देखा यही लाभ शंकरने मानाहै हे प्रभु ! मैं भोरी मतिकी क्या विनती करूँ हे नाथ ! मैं और वर नहीं मांगती तुम्हारे चरणकमलके परागको अनुरागसे भ्रमररूप मेरा मन पान करै ॥ ३ ॥ जिन चरणोंसे परम पवित्र गंगाजी प्रगट हुईं शिवजीने शिरपर धरी वह ब्रह्माजीसे पूजित चरणकमल कृपालु हरिने मेरे शिरपर धरे इसप्रकार बारबार हरिके चरणोंमें प्रणाम कर गौतमनारी मनभाये वरको पाय आनन्दमें मग्न हो पतिलोकको गई ॥४॥

राम लक्ष्मण मुनिके संग चले और जगत्की पवित्र करनेवाली गंगाके समीप गये ॥ १ ॥ रामचन्द्रने शिरनवाय गंगाजीकी उत्पत्ति मुनिराजसे पूछी ॥ २ ॥ मुनिराजने जैसे भगीरथ गंगाको लाये वह सब कथा कही ॥ ३ ॥ फिर प्रभु ऋषियोंके सहित नहाये ब्राह्मणोंने अनेक दान पाये ॥ ४ ॥ फिर मुनियोंके सहित चले और शीघ्र विदेह नगर

कौशिक कहेउ मोर मन माना । यहाँ रहिय रघुवीर सुजाना
भलेहि नाथ कहि कृपानिकेता । उतरे तहँ मुनिवृन्द समेता ७
विश्वामित्र महामुनि आये । समाचार मिथिलापति पाये॥८॥
दोहा—संग सचिव शुचि भूरि भट, भूसुर वर गुरु ज्ञाति ॥
चलेमिलन मुनिनायकहि, मुदित राउ इहि भाँति १४
कीन्ह प्रणाम धरणिधर माथा । दीन्ह अशीश मुदितमुनिनाथा
विप्रवृन्द सब सादर वन्दे । जानि भाग्य बड राउ अनन्दे ॥२॥
कुशल प्रश्न कहि बारहि बारा । विश्वामित्र नृपहि बैठारा ३॥
रा०-कहहुनाथ सुंदर दोउबालक।मुनिकुलतिलककि नृपकुलपालक
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा ।उभय वेष धर सोइ कि आवा

आया ॥ ५ ॥ विश्वामित्र बोले यहां हमारा मन रमता है हे रघुवीर ! सुजान यहां उतारिये ॥ ६ ॥ बहुत अच्छा कृपासागर यह कह मुनियों सहित वहां उतरे ॥ ७ ॥ महामुनि विश्वामित्र आये यह समाचार मिथिलापतिने पाये ॥ ८ ॥ (दोहार्थ) साथमें मंत्री योद्धा ब्राह्मण गुरुजाति के जनोंको ले इस प्रकार प्रसन्न हो राजा चले ॥ १४ ॥

पृथ्वीमें शिर धर प्रणाम किया मुनिराजने प्रसन्न हो अशीश दी ॥ १ ॥ सब ब्राह्मणोंको आदरसे प्रणाम किया अपना बडा भाग्य जान राजा प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ बारंबार कुशल प्रश्नकर विश्वामित्रने राजाको बैठाया ॥ ३ ॥ राजा बोले हे नाथ ! यह सुन्दर दोनों बालक मुनिकुलके तिलक हैं वा क्षत्रियकुल पालक हैं ॥ ४ ॥ वेदने जिस ब्रह्मको नेति २ कहकर गाया है क्या वह यही दो रूप धारण कर आया है ॥ ५ ॥

---

१ ऐ दोउ कौन कहांते आये । नील पीत पाथोज वरण मन हरण सुभाय सुभाये । मुनि सुत किधौ भूप बालक किधौ, ब्रह्म जीव जग जाये । रूप जैलधिकै रतन सुछवि तिय लोचन ललित ललाये ॥ किधौ रविसुवन मदन ऋतुपति किधौ हरि हर वेष बनाये । किधौं आपने सुकृत कल्पतरु सुफल रावरेहि पाये ॥ भये विदेह विदेह नेह वश देह दशा बिसराये । पुलक गात न समात हर्ष हिय सलिल सुलोचन छाये ॥ जनक वचन मृदुमंजु मधुमेरे भगति कौशिकहि भाये । तुलसी अति आनन्द उमगि उर राम लषण गुण गाये ॥

सहज विराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चन्द्र चकोरा६
तांते प्रभु पूछौं सतभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥ ७॥
इनहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहिं मन त्यागा
वि०-येप्रिय सबहि जहां लगिप्रानी। मन मुसुकाहिंरामसुनिवानी
रघुकुलमणि दशरथके जाये। मम हित लागि नरेश पठाये १०
दोहा-रामलषण दोउ बंधु वर, रूप शील गुणधाम॥
मखराखेउ सब साखिजग, जीति असुर संग्रामं॥१५॥
रा०-श्याम गौर सुन्दर दोउ भ्राता। आनँदहूके आनँददाता १
इनकी प्रीति परस्पर पावनि। कहि नजाय मनभाव सुहावनि२॥
"मुनिहि प्रशंसि नाय पदशीशा। चले लिवाय नगर अवनीशा३
सुन्दर सदन सुखद सब काला। तहां वासले दीन्ह भुआला
करि पूजा सबविधि सेवकाई। गये राउ गृह बिदा कराई॥ ५

जैसे चन्द्रमाको देख चकोर थकित हो जाती है इसी प्रकार इनको देख स्वाभाविक वैराग्य रूप मेरा मन थकित होता है॥ ६॥ इससे सतभावसे पूछता हूं हे नाथ! कहौ दुराव मतकरो॥ ७॥ इनको देखकर अनुरागसे मनने बरवश ब्रह्मसुखको त्याग दिया है॥ ८॥ विश्वामित्र बोले जहांलों प्राणी हैं यह सबके प्रिय हैं यह वाणी सुन राम मनमें मुसकाये॥ ९॥ यह रघुकुलमणि दशरथके पुत्र हैं मेरे हितके निमित्त राजाने भेज दिये हैं॥ १०॥ (दोहार्थ) यह राम लक्ष्मण दोनों भले भैया रूप शील गुणोंके धाम हैं मेरे यज्ञकी इन्होंने युद्धमें शत्रुओंको मारकर रक्षा की इसकी सब जगत् साक्षी है॥ १५॥

राजा बोले यह श्यामल गौर सुन्दर दोनों भाई आनन्दके भी आनन्द देनेवाले हैं॥१॥ परस्पर इनकी प्रीति पवित्रहै, कही नहीं जाती मनभावनी सुहावनी है॥२॥ मुनिकी प्रशंसाकर चरणोंमें शिरनवाय राजा नगरमें को लिवा लेचले॥ ३॥ एक सुन्दर सुख देनेवाले घरमें राजाने इनका निवास किया॥४॥ पूजा और सेवा सब प्रकारसे कर विदाकराय राजा घर गये॥५॥

दोहा—ऋषय संग रघुवंश मणि, करि भोजन विश्राम
बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवसरहा भरियाम ॥ १६ ॥"
राम—नाथलषणपुरदेखनचहहीं । प्रभुसंकोचडरप्रगटनकहहीं
जो राउर अनुशासन पाऊँ।नगरदिखाय तुरत ले आऊँ ॥ २ ॥
वि०—दो०—जाय देखि आवहु नगर, सुखनिधान दोउ भाय ॥
करहु सफल सबके नयन,सुन्दर बदन दिखाय ॥ १७ ॥

इति पंचम दर्शन ।

अथ षष्ठ दर्शन ।

(स्थान जनकपुरमें राम लक्ष्मण विचरते हैं ।)

"युवती,भवन झरोखन लागीं।निरखहिं रामरूप अनुरागीं ॥१॥
कहहिं परस्पर वचन सप्रीती।सखि इनकोटिकामछबिजीती२"
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं।शोभा असिकहुँ सुनियत नाहीं३

दोहार्थ—रघुवंशमणि ऋषिके संग भोजनके पीछे विश्राम करके बैठे उस समय एक पहर दिन था ॥ १६ ॥ रघुनाथजी बोले हे! नाथ लक्ष्मण पुर देखना चाहते हैं परन्तु प्रभुके संकोच और डरसे प्रगट नहीं कहते ॥१॥ जो आपकी आज्ञा हो तो नगर दिखाकर मैं तुरंत ले आऊं ॥ २ ॥ विश्वा०—(दोहार्थ) हे सुखनिधान! दोनों भाइयो जाकर नगर देखो और सुन्दर मुख दिखाकर सबके नेत्र सफल करो ॥ १७ ॥ :

पंचम दर्शन ।

स्त्री घरोंके झरोखोंमें लगकर प्रेमसे रामका रूप देखने लगीं ॥ १ ॥ प्रेमसे वचन कहने लगीं हे सखि ! इन्होंने कोटिकामकी छबि जीत ली है ॥ २ ॥ सुर नर असुर नाग मुनिजन ऐसी शोभा कहीं सुनाई नहीं

१ राग आसावरी--सखीरी मुनिसग बालक काके, रतनारे नयना जाके । रवि शशि कोटि वदनकी शोभा श्याम गौर तनु जाके । राम लषण कौशल्याके जाये दशरथ नाम पिताके । ऋषिको यज्ञ सम्पूर्ण करके अब आए राजाके । आपद सबकी हरी रामने कारज करन सियाके । क्रीट मुकुट मकराकृत कुंडल धनुष बाण कर जाके। गौतम ऋषिकी नारि अहल्या तारी है चरण छुआके ॥ सब सखियां मिल सियाके स्वयंवर पूजा करत उमाके। तुलसी सेवक रघुनन्दनजू लेख लिखे विधनाके ॥ ८ ॥

कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी४
कोउ सप्रेम बोली मृदुबानी। जो मैं सुना सो सुनहु सयानी॥५॥
ये दोउ नृप दशरथके ढोटा। बाल मरालनिके कल जोटा ॥६॥
[कौ]शिक मखके रखवारे। जिन रण अजिर निशाचर मारे ७
[कौ]शल्या सुत सो सुखखानी। नाम राम धनुशायक पानी ॥८॥
गौर किशोर वेशवरकाछे। कर शर चाप रामके पाछे ॥ ९ ॥
लक्ष्मण नाम राम लघुभ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता १०

दोहा–विप्रकाज करि बंधुदोउ, मग मुनिवधू उधारि ॥
आये देखन चापमख, सुनि हरषी सब नारि ॥ १८ ॥

देख राम छबि कोउ असकहई। योग्य जानकी यह बर अहई १
जो विधिवश अस बनै सँयोगू। तौ कृतकृत्यहोहिं सब लोगू २॥

आती ॥ ३ ॥ कहो सखी ऐसा कौन शरीरधारी है जो इसरूपको देखकर मोहित न होजाय ॥ ४ ॥ कोई प्रेमसे बोली हे सयानी! जो मैंने सुना है सो सुनो ॥ ५ ॥ यह दोनों राजा दशरथके कुमार बालहंसोंकी सुन्दर जोटहैं ॥६॥ विश्वामित्र मुनिके यज्ञके रखवारेहैं इन्होंने युद्धमें निशाचरोंको मारा है ॥ ७ ॥ सो सुखके खान कौशल्याकुमार हैं इनका रामनाम हाथमें धनुषबाण लिये हैं ॥ ८ ॥ और जो गोरे वर्ण किशोर अवस्था सुन्दर वेश किये हैं हाथमें धनुष बाण लिये रामके पीछे हैं ॥ ९ ॥ यह रामके लघु भ्राता लक्ष्मण हैं सुनो सखि इनकी सुमित्रा माता है ॥ १० ॥

दोहार्थ–दोनों भ्राता मुनिका कार्यकर मार्गमें गौतम नारिका उद्धारकर धनुषयज्ञ देखने आये हैं यह सुनकर सब स्त्री प्रसन्न हुई ॥ १८ ॥

रामकी छबिको देखकर कोई कहतीहै जानकीके योग्य यही वर हैं १॥ जो प्रारब्ध वश ऐसा संयोग बने तो सब लोग कृतकृत्य हो जायँ ॥ २ ॥

---

१ राग कान्हरा–ठुमक २ चलत चाल जनकनंदनी । मधुर वचन तोतरे त्रय ताप मोचनी । सोहत नव नील वसन मदहास रुचिर दशन झलकत उरमाल सकल देववंदनी । नूपुर पग बजत मानो सामवेद करत गान, क्षुद्र घट रुचिरनाद उर अनंदनी । जगतमात सखिन संग विहरत बहु करत रग अग्रदास निरखत छवि भव निकंदनी ॥

सखि हमरे अति आरति ताते । कबहुँक ये आवहिं यहि नाते ३

दोहा–नाहित हमकहँ सुनहु सखि, इन कर दर्शन दूरि ॥
यह संघट तब होय जब, पुण्य पुराकृत भूरि ॥ १९ ॥

कोउ कह शंकरचाप कठोरा।यह श्यामलमृदुगात किशोरा १॥
सब असमंजसअहै सयानी। यह सुनि अपरकहै मृदुबानी॥२॥
सखिइनकहँकोउकोउअसकहईं । बड़प्रभावदेखतलघुअहईं ३
परसि जासु पदपंकज धूरी । तरी अहल्या कृत अघभूरी ॥ ४ ॥
सो कि रहैं बिनु शिवधनु तोरे । अस प्रतीति परिहरिय न भोरे ५
जेहि विरंचि रचि सीयसँवारी।तेहि श्यामलवररचाविचारी॥६॥
"तासुवचनसुनिसबहरषानी । ऐसियहोउकहहिंमृदुबानी॥७॥"

दोहा–"हिय हरषहिं बरषहिं सुमन, सुमुखि सुलोचनि वृंद॥
जाहिं जहांजहँ बंधु दोउ, तहँतहँ परमानन्द ॥ २० ॥

हे सखि ! हमको इस कारण व्याकुलता है कि, यह कभी इस नातेसे आवैंगे ॥३॥ (दोहार्थ) नहीं तो हे सखि हमको इनका दर्शन दुर्लभहै यह संघट्ट तो जभी होगा जब पूर्वकालका पुण्य अधिक होगा ॥ १९ ॥

कोई बोली शिवजीका धनुष बड़ा कठोर है यह श्यामल मृदुगात किशोर हैं॥१॥हे सयानी सभी असमंजस (दुविधा) की बात है यह सुनकर और स्त्री बोलीं॥२॥सखि इनको कोई २ ऐसा कहतेहैं कि, यह देखनेके छोटे हैं इनका प्रभाव बडा है ॥३॥ जिनके चरणोंकी रज स्पर्शकर महापापिनी श्रीअहल्या भी तरगई ॥ ४ ॥ वह शिवका धनुष तोड़े बिना कैसे रह सकते हैं ऐसी प्रतीत भूलकर भी न त्यागिये ॥ ५ ॥ जिस विधाताने जानकीको रचकर सँवाराहै उसीने विचारकर यह सांवरावर विधान किया है ॥ ६ ॥ उसके वचन सुन सब प्रसन्न हुईं और ऐसाही हो यह मृदुवाणीसे कहने लगीं ॥७॥ (दोहार्थ)–हृदयमें प्रसन्न हो वे स्त्री फूल वरसाती हैं जहां जहां दोनों भाई जाते हैं वहां २ परमानन्द होता है ॥ २० ॥

पुरबालक कहि कहि मृदु वचना । सादर प्रभुहि दिखावहिं रचना
शिशु सब राम प्रेम वश जाने । प्रेम समेत निकेत बखाने ॥ २ ॥
निज२रुचि सब लेहिं बुलाई । सहित सनेह जाहिं दोउ भाई ३॥
रामदिखावहिं अनुजहि रचना।कहि मृदुमधुरमनोहर वचना४
कहिं बातें मृदुमधुर सुहाई । विदा किये बालक बरिआई ॥ ५ ॥
दोहा—सभय सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ॥
गुरु पदपंकज नाइशिर, बैठे आयसु पाइ ॥ २१ ॥

इति षष्ठ दर्शन ।

अथ सप्तम दर्शन ।

(जनकजीकी फूलवाटिका)

विश्वा०—हे राम ! पूजाका समय है बागसे फूल लेआओ.

राम—जो आज्ञा (जाते हैं)

"समय जान गुरु आयसु पाई । लेन प्रसून चले दोउ भाई
" दिशि चितै पूंछ मालीगन।लग लेन दल फूल मुदित मन २

टीका—पुरके बालकभी कोमल वचन कहकह कर प्रभुको रचना दिखाते हैं ॥ १ ॥ जब रामने सब बालकोंको प्रेमवश देखा तो प्रीतिसे उनके स्थान पूछे कि तुम्हारा घर कहां है ॥ २ ॥ अपनी २ रुचिसे सब बुला लेते हैं स्नेह सहित दोनों भाई जाते हैं ॥ ३ ॥ रामचन्द्र मृदुमनोहर वचन कहकर भाईको रचना दिखाते हैं ॥ ४ ॥ फिर मृदु मधुर बातें कहकर जबरदस्ती बालकोंको विदा किया ॥ ५ ॥ (दोहार्थ) कुछ भयसे नम्रतासे सकुचके सहित दोनों भाई चले और गुरुके चरणकमलोंमें शिरनवाय आज्ञा पाय बैठे और विश्राम किया फिर गुरुके चरणोंकी सेवा की ॥ २१ ॥

इति षष्ठ दर्शन ।

समय जान गुरुकी आज्ञा पाकर दोनों भाई फूल लेने चले ॥ १ ॥ सब ओर देख और मालियोंसे पूछ फूल लेने लगे ॥ २ ॥ उसी समय

१ राम—सवैया—एहो महीपति माली सुनो गुरु पूजनके हित फूल उतारन ।
आये इतै हम बन्धु समेत उतारैं प्रसून जो होइ न वारन ॥

तेहि अवसर सीता तहँ आइ । गिरिजापूजन जननि पठाई ॥ ३ ॥
संग सखी सब सुभग सयानी । गावहिं गीत मनोहर वानी ॥ ४ ॥
एक सखी सिय संग विहाई । गई रही देखन फुलवाई ॥ ५ ॥
तेहि दोउ बंधु विलोकेउ जाई । प्रेम विवश सीता पहँ आई ६
दोहा—तासुदशा देखी सखिन, पुलक गात जल नैन ॥
मृदुवैन
सखी—देखनबागकुँवर दोउ आये।वयकिशोर सबभांति सुहाये

वहां जानकी आई माताने पार्वती पूजनके निमित्त भेजा था ॥ ३ ॥ संगकी सब सखी सुन्दर सयानी थीं मनोहर वाणीसे गीत गाने लगीं ॥ ४ ॥ एक सखी जानकीका संग छोड़कर फुलवारी देखने गई ॥ ५ ॥ उसने दोनों भाइयोंको देखा वह प्रेममें मग्नहो सीतापर आई ॥६॥ (दोहार्थ) उसकी दशा सखियोंने देखी शरीर पुलकायमान नेत्रोंमें जल भर आया है सब कोमल वाणीसे कहने लगीं तुम अपने हर्षका कारण कहो ॥ २२ ॥ सखी बोली—दो बालक बाग देखने आये हैं ।

कैसे कहे बिन फूल चुनें मिथिलेश कि वाटिकाके मनहारन ।
वस्तु बिरांनीको पूछे बिना रघुराजजू लेत न वेद उचारन ॥ १ ॥
माली, दोहा—लेहु फूल फल दल विमल, सुंदर राजकिशोर ।
जो बरजै सो बावरो, विश्व विलोचन चोर ॥ १ ॥
पुष्प लेते समय एक मालिन बोली ।
मालिन, सवैया—तुम श्यामल गौर सुनो द्वउ लालन आये कहाँसे उरायनमें ।
मिथिलेशकि वाटिकामें बिहरौ हियरो हरो हेरि सुभायनमें ।
इत कौन पठायो दया नहिं आयो सुफूलन तोरो उपायनमें ॥
रघुराज कहूं गड़ि जैहैं लला पुहुपानिकी पांखुरी पांयनमे ॥ १ ॥

१ राग मल्हार—विहरत बागवामें देखे कुल भानवा । कीट मुकुट कंचनको झलकै, मकर मनोहर कुंडल अलकैं, भाल तिलक केशरको राजै, उर वैजंतीमाल विराजैं, मधुरवचन करलीने धनुबानवा ॥ १ ॥ पीतांबर कटिपर कस काछे, मन मुसकात फिरत घन आछे, काकपक्ष शिर सुन्दर सोहै, देखत राम लषण मन मोहैं, विधि शंकर इनहिको धरैं ध्यानवा ॥ २ ॥ कही सखी जब ऐसी वानी, अखिल लोकपति जीवन जानी, शोभा सकल लोककी जगमें, तारी शिला चरणकी रजमे, दरशन लीजो तजो गृह मानवा ॥ ३ ॥ कुसुमसमेत वामकर दोना, छोटो कुँवर सखी अतिलोना । याहि देख सब भई सुखारी, तुलसी मुदित विदेहकुमारी, बढ़ारि चली गिरिजाके भवनवा ॥ ४ ॥

श्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनैन नैन बिनुवानी २॥
'सुनि हरषीं सब सखीसयानी। सिय हिय अति उत्कंठा जानी ३'
एक कहहिं नृपसुत ते आली। सुने जे मुनिसँगआये काली ४॥
जिन निज रूप मोहिनी डारी। कीन्हें स्ववश नगर नरनारी ५॥
वर्णत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवशि देखिये देखन योगू॥६॥
"तासु वचन अतिसियहिसुहाने। दरशलागिलोचंन अकुलाने ७
चली अग्रकरि प्रियसखि सोई। प्रीति पुरातन लखै न कोई॥८॥

दोहा–सुमिरि सीय नारदवचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित विलोकति सकल दिशि, जनु शिशु मृगी सभीत॥२३॥

कंकणकिंकिणिनूपुरधुनिसुनि।कहतलषणसनरामहृदय गुनि"
राम–मानहुमदनदुंदुभीदीन्हीं।मनसाविश्वविजयकहकीन्हीं २

अवस्था सब ... शोभायमान हैं ॥ १ ॥ श्याम और ... शरीर किस प्रकारसे कहूं याद ... है ... नेत्रोंने देखा है तो वे बोल नहीं सकते ॥ २ ॥ सब सयानी सखी यह वचन सुन प्रसन्न हुईं और सीताके मनमें भी बड़ी उत्कंठा हुई ॥ ३ ॥ कोई बोली आली वे राजकुमार हैं जिनको सुना है कि, वे कल मुनिके साथ आये हैं ॥ ४ ॥ अपने रूपसे जिन्होंने मोहिनी डालकर नगरके नरनारियोंको अपने वश करलिया है ॥ ५ ॥ जहां तहां सब लोग छबि वर्णन करते हैं अवश्य देखिये देखनेके योग्य हैं ॥ ६ ॥ उसके वचन जानकीको बहुत अच्छे लगे दरशनके लिये नेत्र व्याकुल होने लगे ॥ ७ ॥ उस प्रिय सखीको आगे करके चली पुरातन प्रीतिको किसीने नहीं जाना ॥ ८ ॥ (दोहार्थ) नारदके वचन स्मरणकर बडी पवित्र प्रीति प्रगट होने लगी सब ओर चकित होकर डरी हुई छोटी मृगीके समान देखने लगी ॥ २३ ॥

कंकण किंकिणी और नूपुरकी धुनि सुनकर मनमें विचार कर रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ मानो कामदेवने दुंदुभी दी और विश्वको विजय

"असकहिफिरचितयेतेहिओरा।सियमुखशशिभयेनैनचकोरा
दो०-सियशोभा हिय वरणि प्रभु, आपनि दशा विचारि॥
बोले शुचिमन अनुजसन, वचन समय अनुहारि ॥२४"॥
राम-तांत जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारण होई१
पूजन गौरि सखी ले आई। करत प्रकाश फिरति फुलवाई ॥२॥
जासु विलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन क्षोभा
सो सब कारण जान विधाता।फरकहिं सुभग अंग सुन भ्राता४॥
रघुवंशिनकर सहज सुभाऊ।मन कुपंथ पग धरैं न काऊ॥ ५ ॥
मोहिं अतिशय प्रतीति जिय केरी।जेहि सपनेहु परनारिन हेरी६

करनेकी इच्छा की ॥ २ ॥ ऐसा कहकर उस ओर देखा और सीताके मुख रूप चन्द्रकी ओर रामचन्द्रके नयनचकोर होगये ॥ ३ ॥ (दोहार्थ) प्रभु सीताकी शोभा मनमें वर्णनकर और अपनी दशा विचारकर पवित्रमनसे समय अनुसार लक्ष्मणसे बोले ॥ २४ ॥

राम—हे तात ! यह जानकी वही है जिसके निमित्त धनुषयज्ञ होताहै॥१॥ गौरी पूजनको सखी ले आई हैं फुलवारीमें प्रकाश करती फिरती है ॥ २ ॥ जिसकी अलौकिक शोभा देखकर स्वभावसे पवित्र मेरे मनमें क्षोभ हुआ है ॥३॥सो सब कारण विधाताही जानते हैं हे भ्राता ! सुन्दर अंग फरकतेहैं॥४॥ रघुवंशियोंका स्वभावही ऐसाहै कि कुपंथमें कभी पांव नहीं रखते ॥ ५ ॥ मुझे यह मनमें प्रतीति है कि मैंने कभी स्वप्नमें पराई स्त्री नहीं देखी ॥ ६ ॥

---

१ राम, सवैया—जिहिहेत अनेकन भूप अनूप स्वरूप बनाइकै बागै गली।
जिहिहेत कियो मिथिलेश प्रणैजु महेशके चापको टोरै बली॥
लहै तीन स्वयंवरमें दुहिता विजयी तिहि कीरति विश्व चली।
सुकुमारि महा मनहारि गुणो यह सोइ विशेषि विदेह लली॥ १ ॥
लक्ष्मण लाल सुनो रघुराज बढ़ै उरलाज कढ़ै मुखबाता।
आकसमात अमात न आँनद मानँद होइगो कौन विख्याता॥
या क्षण दक्षिण बाहु विलोचन क्यों फरकै कछु जानि न जाता।
कीन्हो विचार मनै बहु बारन सो सब कारन जानै विधाता॥ २ ॥

जिनके लहहिं न रिपुरण पीठी। नहिं लावहिं परतियमन डीठी ७
मंगन लहहिं न जिनके नाहीं। ते नरवर थोरे जग माहीं ॥ ८ ॥

"दो०—करत बतकही अनुजसन, मन सिय रूप लुभान ॥
मुख सरोज मकरंद छबि

चितवति चकित चहूँ दिशि सीता। कहँगये नृपकिशोर मनचाता
लता ओट तब सखिन दिखाये। श्यामलगौर किशोर सुहाये २॥
थके नैन रघुपति छबि देखी। लोचनहू परिहरी निमेखी ॥ ३ ॥
लोचन मगु रामहिं उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी ४॥

जिनके शत्रुसे पीठ नहीं देते पराई स्त्रियोंकी ओर दृष्टि नहीं करते ॥७॥ मंगता जिनके यहांसे (नाहीं) नहीं लेते वे पुरुष जगत्में बहुत थोडे हैं ॥८॥

दोहार्थ—लक्ष्मणसे इस प्रकार बात करते हैं मन सीताके रूपमें लुभा रहा है सीताका मुख कमल है छवि मकरन्द है उसको भौंरके समान पान करते हैं ॥ २९ ॥

सीता चकित होकर चारों ओर देखती है मन इच्छित नृपकिशोर कहां गये ॥ १ ॥ तब लताकी ओटमें सखियोंने दिखाये जो सांवले गोरे किशोर अवस्थासे शोभायमान हैं ॥ २ ॥ रामचन्द्रकी छवि देखकर नेत्र थकगये नेत्रोंने भी पलक लगाना छोड़ दिया ॥ ३ ॥ नेत्रोंके मार्गसे रामको हृदयमें लाय सयानीने पलकरूपी कपाट बन्द करलिये ॥ ४ ॥

---

१ सवैया—जेबा न लायक लाल उतै परदारनके बिच धर्म विचारी।
आये इतै मुनि शासन कै नहिं जानी रही मर्याद हमारी ॥
रीति है धर्म धुरीननकी रघुवंशिनकी जग जाहिर भारी।
पीठि परै नहि सगरमे नहिं दीठि परै स्वपन्यो परनारी ॥ १ ॥

२ पद—आली लखौ वनमाली सलोना। जालिम जुल्फ विपुल व्याली सम मोहिं डसी किमि जाउँरी भौना। हरि लीन्ह्यों हिय राजकुँवर यह मंजुल हँसनि कुसुमकर दोना। ठाढो लता भवनके द्वारे जिमि कदर कढ़ि केहरि छोना ॥ नैन सैन हरि हरयो चैन सब मैन हैन सम कोउ अरुज़ोना। लागी लगन साँवली सूरति शपथि मोरि अब कोउ बरजोना ॥ श्री रघुराज राज ढोटापर तन मन वारि भई अब मौना। लोक लाज कुललाज बिसारिगो आजहि होनी होय सो होना ॥ १ ॥

...लताभवनते प्रगट भये,
निकसे जनु युग विमल विधु, जलजपटल विलगाय ॥२६॥

धरि धीरज इक सखी सयानी।सीतासन बोली मृदुवानी ॥१॥
सखी-बहुरि गौरिकर ध्यान करेहू। भूप किशोर देख किन लेहू
सकुचि सीय तब नैन उघारे।सन्मुख दोउ रघुवंश निहारे॥३॥
परवश सखिन लखी जब सीता।भई गहरु सब कहहिं सभीता ४
पुनि आउब इहि बिरियां काली।असकहि मनबिहँसीइकआली
गूढ़गिरा सुनि सिय सकुचानी।भयउ बिलम्ब मातु भयमानी ६
जानि कठिन शिवचाप बिसूरति।चली राखिउर श्यामल मूरति

दोहार्थ-इसी समय दोनों भाई लतारूपी भवनसे प्रगट हुए मानो मेघसमूहको निवारणकर दो चन्द्रमा प्रगट हुए हैं ॥ २६ ॥

तब एक चतुरसखी धीरज धरके जानकीसे कोमलवाणी बोली ॥ १ ॥ गौरीका फिर ध्यान करना इससमय भूपकिशोरको क्यों नहीं देखलेती ॥२॥ तब सकुचाकर सीताने नेत्र खोले तो सामने दोनों रघुवं... देखा ॥ ३ ॥ जब सखियोंने जानकीको परवश देखा तब सभीत हो कहने लगीं कि बहुत देर होगई ॥ ४ ॥ फिर कलको इसी समय आवैंगी ऐसा कहकर एक सखी हँसी ॥ ५ ॥ गूढवाणी सुनकर सीता सकुचाई देरहो-हुई हृदयमें साँवली मूर्त्ति रखकर चली ॥ ७ ॥

---

१ सवैया-देर भई गहि शाख तमालकी ठाढी अहै पग पीर न जोवे ।
ध्यान धरे गिरिजा वपुको मिथिलेशलली तू वृथा क्षण खोवे ॥
पूजन कीजै वहोरि उतै चलि मांगियो जो मनमे कछु होवे ।
देखिले साँवरो राजकुमार खरो रघुराज महामुद मोवे ॥ १ ॥

२ सवैया-ह्वैगे विलंब बैठी इतहीं अब अंब गये विन कोप करैगी ।
पूजनबाकी अहै जगदंबको लब भये रवि वेला टरैगी ॥
श्रीरघुराज निहारि लई मनकी उपजी नहिं फेरे फिरैगी ।
आउब काल्हि यही विरिया इत गौरिकृपा सब पूरी परैगी ॥ १ ॥

दो— मृग विहँगतरु, फिरति बहोरि बहोरि ॥
निरखि२ रघुवीर छबि, बाढी प्रीति न थोरि ॥ २७ ॥
गई भवानी भवन बहोरी । वंदि चरण बोली करजोरी ॥१॥".
सौ०-जयजयजयगिरिराजकिशोरी । जयमहेशमुखचन्दचकोरी
जय गजवदन षडाननमाता।जगतजननि दामिनि द्युतिगाता ३
नहिं तव आदिमध्यअवसाना।अमित प्रभाव वेद नहिं जाना
भव२विभवपराभवकारिणि । विश्वविमोहनि स्ववशविहारिणि
दोहा—पतिदेवतासुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख ॥
महिमा अमित न कहिसकहिं, सहस शारदा शेष ॥२८॥
सेवत तोहिं सुलभ फलचारी । वरदायिनि त्रिपुरारिपियारी॥१॥
पूजि सुखारे॥२॥
३

दोहार्थ—मृग विहंग के देखनेके बहानसे बारबार लौटकर है रघुनाथकी छबि बारंबार देखनेसे बहुत प्रीति बढी ॥ २७ ॥

फिर भवानीके मंदिरमें गई और चरणोंमें प्रणाम कर बोली ॥ १ ॥ हे गिरिराजकिशोरी ! तुम्हारी जय हो हे महेशमुखचन्द्रचकोरी तुम्हारी जयहो ॥ २ ॥ हे गणेश और कार्त्तिकेयकी माता तुम्हारी जयहो तुम जगतकी माता और दामिनिकी कान्तिसे शरीरवाली तुम्हारी जय हो ॥ ३ ॥ तुम्हारा आदि मध्य और अन्त नहीं है बड़ा प्रभावहै जिसको वेद नहीं जानता है ॥ ४ ॥ संसारकी उत्पत्ति पालना और पराभव करनेवाली हो संसारकी मोहनेवाली अपने वश विहार करती हो ॥ ५ ॥

दोहार्थ—हे माता ! पतिव्रताओंमें तुम्हारी पहली गिनती है सहस शारदा शेष भी तुम्हारी महिमा नहीं कहसकते ॥ २८ ॥

तुमको सेवन करनेमें चारों फल मिलतेहैं तुम वरकी दाता शंकरकी प्यारी हो॥१॥हे देवि तुम्हारे चरणकमल पूजनकर सुर नर मुनि सुखी होते हैं ॥२॥ तुम मेरा मनोरथ भलीप्रकार जानती हो कारण कि सबके हृदयमें विरा-

कीन्हेउँ प्रगट न कारण तेही। असकहि चरण गहे वैदेही ॥४॥
"विनय प्रेमवश भई भवानी। खसी माल मूरति मुसकानी॥५॥"
सादर सिय प्रसाद उर धरेऊ।बोली गौरिं हर्ष हिय भरेऊ॥६"
पां०-सुन सिय सत्य अशीश हमारी।पूजहिमनकामनातुम्हारी
नारद वचन सदा शुचि सांचा।सो वर मिलहि जाहि मनरांचा८
छंद-मन जाहि राचो मिलहि सो वर सहज सुन्दर साँवरो।
करुणानिधान सुजान शील सनेह जानन रावरो॥
"यहि भाँति गौरि अशीश सुनि सिय सहित हिय हर्षितअली"
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि २ मुदित मन मन्दिर चली॥ १॥
सो०-जानि गौरि अनुकूल, सियहिय हर्ष न जाय कहि॥
मंजुल मंगलमूल, वाम अंग फरकन लगे॥ १॥
हृदय सराहत सीय लुनाई। गुरुसमीप गवने दोउ भाई॥ १॥

जती हो॥ ३॥ इसीसे वह कारण प्रगट नहीं किया यह कहकर जानकीने चरण पकड़लिये॥ ४॥ भवानी विनय और प्रेमके वशीभूत होगई चढानेकी माला उनके हाथसे गिरी और मूर्त्ति मुसकाई॥ ५॥ आदरसे सीताका प्रसाद हृदयमें धारण किया और मनमें प्रसन्न हो पार्वती बोलीं॥ ६॥ हे सीता! हमारी सत्यआशीश सुनो तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी॥ ७॥ नारदका वचन सदा पवित्र और सच्चा है वही वर मिलैगा जिसमें मन रचाहै॥ ८॥ (छंदार्थ) जिसमें मन रचाहै वह सहज सुन्दर साँवरा वर तुमको मिलैगा वह करुणानिधान तुम्हारा शील सनेह जानते हैं। इस भाँतिसे गौरीकी आशीश सुनकर सीतासहित सखीजन प्रसन्न हुईं तुलसीदास कहते हैं बारंबार भवानीको पूज प्रसन्नहो मंदिरको चलीं॥ १॥
सोरठार्थ-गौरीकी अनुकूलता जान सीताके मनका हर्ष नहीं कहा-जाता मंगलके करनेवाले बायें अंग फड़कने लगे॥ १॥ जानकीकी शोभा

---

१ दोवैछन्द-रूप रंगीली गुण गर्वीली सुघर सलोनी बाला।
नवल नागरी अति उजागरी छाकी प्रेम पियाला॥

सुमन पाय मुनि पूजा कीन्हीं। पुनि अशीशदोउभाइन दीन्हीं २
सफल मनोरथ होंय तुम्हारे। रामलषण सुनि भये सुखारे॥३॥
करि भोजन मुनिवर विज्ञानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥४॥
विगत दिवस मुनि आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई५॥
प्राची दिशि शशि उगेउसुहावा। सियमुखसरिस देखि सुखपावा
हुबरि विचार कीन्ह मनमाहीं। सियावदनसम हिमकर नाहीं७
राम–दोहा–जन्मसिंधु पुनि बंधु विष, दिन मलीन संकलंक॥
सियमुखसमता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक[1]॥ २९॥

मनमें सराहते हुए दोनों भाई गुरुके समीप गये ॥ १ ॥ फूल पायकर मुनिने पूजा की फिर दोनों भाइयोंको आशीश दी ॥ २ ॥ कि तुम्हारे मनोरथ सफल हों यह सुनकर राम लक्ष्मण सुखी हुए॥ ३ ॥ फिर भोजन कर विज्ञानी मुनि पुरातन कथा कहनेलगे ॥ ४ ॥ दिन छिपनेसे मुनिकी आज्ञा पाय दोनों भाई सन्ध्याकरने चले॥ ५ ॥ पूर्वदिशामें शोभायमान चन्द्रमा उदय हुआ उसको सीताके मुखके समान देखकर सुखपाया ॥ ६ ॥ फिर मनमें विचार किया यह चन्द्र जानकीके मुखके समान नहीं है ॥ ७ ॥ (दोहार्थ) एक तो सागरसे जन्म फिर विष भ्राता दिनमें मलीन और कलंकी यह बापुरा रंक चन्द्र सीताके मुखकी उपमा कैसे पासकता है ॥ २९ ॥

नख शिख भूषण अमल अदूषण ज्यो शशि पूषण सोहै।
बसन सुरंगा शोभित अंगा निरखि शची रति मोहै॥ १ ॥
पकजनैनी है पिकबयनी गजगामिनी ललामा।
बैस किशोरी श्यामल गोरी मनहरनी सुखधामा॥
उरज उतंगा नवल अनंगा परम प्रवीन पियारी।
रंग रँगीली नेह प्रवीनी सुन्दर रूप उज्यारी ॥ २ ॥

१ कवित्त–जलते जनम तापै घटत बढ़त रोज बधु विष वारुणीको सहित कलक है।
वासर मलीन रोग यक्ष्मा ते दीन पुनि पाइ पूर्णमासी पर्व राहुते सशंक है।
मध्य श्यामताई विरहीजनको दुखदाई परि परिवेष नहि ठहरै निशंक है।
रघुराज सिय मुख सम किमि भाषौं मुख भाषत मयंक सम सोई मतिरंक है॥ १ ॥

घटै बढ़ै बिरहिन दुखदाई। ग्रसै राहु निज सन्धिहि पाई ॥ १ ॥
कोक शोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुण बहुत चन्द्रमा तोही॥२॥
वैदेही मुखपटतर दीन्हें । होइ दोष बड अनुचित कीन्हें ॥३॥
"सियमुखछबिविधुव्याजबखानी। गुरुपहँचले निशा बडिजानी
करि मुनिचरणसरोज प्रणामा।आयसुपायकीन्हविश्रामा॥५॥

इति सप्तमदर्शन ।

अष्टम दर्शन.



(राम लक्ष्मण मुनिमण्डलीमें बैठे हैं विश्वामित्र उपदेश करते हैं उसीसमय शतानन्दजी आते हैं)

[वार्ता]

शतानंद–विश्वामित्रजी महामुनिराजको नमस्कार है.

विश्वामित्र–नमस्कार नमस्कार कहिये क्या समाचार है.

शता०–राजा जनकके धनुषयज्ञका मंगलाचार है अब आप चलैं–

दोहा–"शतानन्दपद वंदि प्रभु, बैठे गुरुपहँ जाय ॥
चलहु तात मुनि कह्यो तब, पठवा जनक बुलाय ॥ ३० ॥"

फिर घटता बढता विरहीजनोंको दुःख देताहै अपनी सन्धि पाकर इसको राहु ग्रास करताहै ॥१॥ फिर चकवा चकवीको शोक देता और कमलोंका द्रोही है हे चन्द्र! तुममें बहुत दोष हैं ॥ २ ॥ जानकीके मुखकी उपमा देनेसे बडा दोष और अनुचित होता है॥ ३ ॥ हां सीताके मुखकी छबिका चन्द्रमा व्याज है यह कहते बडी रात गई जानकर गुरुपर चले ॥ ४ ॥ मुनिके चरणकमलोंको प्रणामकर आज्ञापाय विश्राम किया ॥ ५ ॥

दोहार्थ–शतानन्दके चरणोंको प्रणामकर प्रभु गुरुके पास जाकर बैठे तब मुनि बोले हे तात! चलो जनकने बुला भेजा है ॥ ३० ॥

१–सवैया–रे बिधु कोकन शोक प्रदायक तू जग जाहिर पंकज द्रोही ।
कामको मीत करै अतिशीत कियो गुरुको अपकार है कोही ।
भाषत श्रीरघुराज सुनै सियके मुखकी सरि तोहि न सोही ।
नीक न लागत मोहिं मयंक बडो बिरही जनको निरमोही ।

मुनि–सीय स्वयम्वर देखिय जाई। ईश काहि धौं देहि बड़ाई ॥ १ ॥
"लषण कहा यशभाजन सोई। नाथ कृपा तव जापर होई ॥२॥
हरषे सुनि सब मुनिवर वानी। दीन्ह अशीश सबहि सुखमानी.
पुनि मुनि वृन्द समेत कृपाला। देखन चले धनुष मखशाला ४
रंगभूमि आये दोउ भाई। असि सुधि सब पुरवासिन्ह पाई ५॥
चले सकल गृह काज बिसारी। बालक युवा वृद्ध नरनारी ॥६॥
देखी जनक भीर भई भारी। शुचि सेवक सब लिये हँकारी ॥७॥
जनक-तुरत सकल लोगन्ह पहँ जाहूँ। आसन उचित देहु सब काहू

दोहा–"कहि मृदु वचन विनीत तिन, बैठारे नरनारि ॥
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज स्थल अनुहारि ॥ ३१ ॥

राजकुमर तेहि अवसर आये। मनहु मनोहरता छबि छाये॥१॥
जिनके रही भावना जैसी। प्रभुमूरति देखी तिन तैसी ॥ २ ॥

सीताका स्वयम्वर जाकर देखो ईश जाने किसको बडाई देगा ॥ १ ॥ लक्ष्मण बोले हे नाथ ! यह यश उसीको मिलैगा जिसपर तुम्हारी कृपा होगी ॥ २ ॥ यह श्रेष्ठवाणी सुन सब मुनि प्रसन्न हुए और सुख मानकर सबने अशीश दी॥३॥फिर कृपासागर मुनिजनोंके संग धनुषयज्ञ स्थान देखने चले ॥४॥ रंगभूमिमें दोनों भाई आये यह समाचार पुरवासियोंने पाये ॥५॥ बालक, तरुण, बूढे, नर, नारी सब अपना २ कार्य छोडकर चले ॥ ६ ॥ अब जनकने देखा कि बडी भीड़ हुई है तब अपने उत्तम सेवक बुलाये ॥७॥ और बोले तुरत सब लोगोंपर जाकर सब किसीको उत्तम आसन दो ॥ ८॥

दोहार्थ–उन्होंने कोमलवचन नम्रतापूर्वक कहकर नरनारियोंको बैठाया उत्तम मध्यम नीच लघु इनको अपने २ स्थलके अनुसार बैठाया॥ ३१ ॥

उसी अवसरमें राजकुमार आये. मानो मनोहरता छबि छारही है ॥ १ ॥ जिनके मनमें जैसी भावना थी उन्होंने वैसी प्रभुकी मूर्त्ति देखी ॥ २ ॥

---

१ सवैया—जे नृप आये शरासन तोरन गर्व भरे रणधीर महाने ।
ऐसे विचार किये मनमें जितिहै कहु को हमरे समुहाने ।

हरषे जनक देखि दोउ भाई । मुनिपदकमल गहे तब जाई ॥ ३ ॥
करिविनती सब कथा सुनाई । रंगअवनिमुनिवरहिं दिखाई ॥ ४ ॥
भलि रचना नृपसनमुनि कहेऊ । राजामुदित महा सुख लहेऊ ५

दोहा–सब मचनत मचइक, सुन्दर विशदविशाल
मुनिसमेत दोउ बंधु तहँ, बैठारे महिपाल ॥ ३२ ॥

जनक दोनों भाइयोंको देखकर प्रसन्न हुए और जाकर मुनिके चरण वन्दन किये ॥ ३ ॥ विनयकरके अपनी सब कथा सुनाई रंगभूमि सब मुनिको दिखाई ॥ ४ ॥ राजासे मुनिने कहा कि भली रचना है राजाने सुनकर महासुख लिया ॥ ५ ॥ (दोहार्थ) सब मंचोंसे एक मञ्चान बड़ा सुन्दर शोभित

आखिनमे तिनके रघुराज सुवीर शिरोमणि वेष दिखाने ।
वीर रसैकी बनी मनो मूरति रोष विचारि लखै ललचाने ॥ १ ॥
क्षितिनाथ छली कुटिलै कितवै दगावाज समाज जे आये रहे ।
कपटी कलि मूरति कूर महा करि माया कुमारिको व्याह चहे ।
रघुराज लखे रघुनायक ते महाभीम भयावन दण्ड गहे ।
शिर काटन चाहत ज्यों अबहीं करवाल कराल लिहे उबहे ॥ २ ॥
नारि विलोकहि सावली सूरति मूरति माधुरिकी मनभाई ।
प्रीति भई रसरीति छई अनुराग कि आभ अनूप निकाई ।
श्री रघुराज मनौ जुलफैंकी जँजीरनकी कुलफै खुलवाई ।
जानि दृगचल चचल चोर अचंचल कैदिगे वेरी भराई ॥ ३ ॥

दोहा–कोटि मदन मद कदन वपु, शोभ सदन सुकुमार ।
कहै सखी किहि पटतरिय, निवछावरि शृंगार ॥ १ ॥

१ राग परज–सखी रगभीने दोउ राजकुमार । निरख सखी नयनन भर नीके शोभा अमित अपार । भुजदंडन वदन मडनपर चमक चांदनी चार । ललित कंठ रेखा विचित्र सखि उर कमलनके हार । रंगभूमि मणिजडित मचपर बैठे सभा मँझार । मानों रवि उदयाचल गिरिते निकस्यो तिमिर विदार । खंड २ ब्रह्माण्ड खंडके भूपति जुरे अपार । कैसे धनुष उठायो तोर्यो किनहुँ न पायो पार । कटि निषंग कर धनुषबाण लिये हरन चले महिभार । लाहा रामचंद्र छबि ऊपर जन कान्हर बलिहार ॥ १ ॥

(धनुषयज्ञ

(सब राजा अच्छे २ भूषण वस्त्र धारण किये सिंहासनोंपर बैठे हैं और रामचन्द्रको देख प्रणाम करते हैं.)

प्रभुहि देखि सब नृप हियहारे। जनु राकेश उदय भये तारे १॥
अस प्रतीति तिनके मनमाहीं। रामचाप तोरब शक नाहीं २॥"
भलेराजा-विनुभंजेउ भवधनुषविशाला। मेलिहि सीय राम उर माला

[illegible]

दू०राजा-तोरेहु धनुष व्याह अवगाहा। बिनतोरेकोकुँवरिविवाहा
एक बार कालहु किनहोई। सियहित समर जितब हम सोई॥७॥
"यह सुनि अपर भूप मुसकाने। धर्मशील हरिभक्त सयाने ८"
साधुराजा-सो०-सीय विवाहबराम, गर्व दूर सब नृपनकर।
रणबाँकुरे ॥ १ ॥
वृथामरहु जनि गाल बजाई। मनमोदक नहिं भूंख बुताई १॥

है मुनिसहित दोनों भाइयोंको राजाने वहां बैठाया॥ ३२॥ प्रभुको देखकर सब राजा मनमें हारगये जैसे चन्द्रमाके उदय होनेमें तारे ॥१॥ यह उनके मनमें प्रतीत हुई कि इसमें सन्देह नहीं कि राम चाप भंजन करैंगे ॥ २ ॥ परन्तु शंकरका धनुष विना तोड़भी सीता रामके गलेमें जयमाल डालेगी ॥ ३ ॥ हे भाई ऐसा विचाकर बल तेज गँवाय अपने २ घर जाओ ॥ ४ ॥ यह बात सुन दूसरे राजा हँसे जो अज्ञानसे अंधे अभिमानी थे ॥५॥ और बोले धनुष तोड़नेपर भी व्याह कठिन है विना तोड़े तौ कुँवरको कौन विवाह सकता है ॥ ६ ॥ एकबार काल भी क्यों न हो सीताजीके निमित्त हम उसको जय करैंगे ॥ ७ ॥ यह वचन सुन धर्मात्मा हरिभक्त सयाने राजा मुसकाते हुए बोले ॥ ८ ॥ (सोरठार्थ) सब राजाओंके गर्व दूरकर सीताको रघुनाथजी विवाहैंगे यह दशरथके रणबांकुरे हैं इनको संग्राममें कौन जीतसकता है ॥ १ ॥ गाल बजाकर वृथा मतमरो मनके मोदकोंसे

सिख हमारि सुनु परम पुनीता। जगदम्बा जानहु जिय सीता २
जगतपिता रघुपतिहि विचारी। भरि लोचन छवि लेहु निहारी ३
करहु जाय जाकहँ जोइ भावा। हमतौ आज जन्म फलपावा ४

(माथेपर तिलक रुद्राक्षकी माला धारण किये रावण और
बाणासुर आते हैं) क्षेपक.

रावण–कहां सिया सो देहु बताई। धनुष तोर ले जाउँ उठाई ५
बाणा०–गुरु धनु यहै विचारत नाहीं। मारत काहे गाल वृथाहीं ६
दशशिर किमि अभिमान जनावो। करि प्रणाम अपनेघरजावो ७

रावण–सवैया.

एकहि शीश कि कौन कहै सिगरो जग ज्यों सरसों समसोहै।
तो नहिं शेषके वेश शरीरमें सूक्षम कीन्ह अभूषन जो है॥
सो शिववास किये जेहि शैल सो कौर भयो कर एकहिकोहै॥
हौंनहिं गर्व करौं करै कौन प्रशंसत जाहि हरी रहतो है॥ १॥

भूख नहीं जाती॥ १॥ हमारी तौ यह परमपवित्र शिक्षा सुनो सीताको मनमें जगत्की माता जानो॥ २॥ रघुनाथको जगत्का पिता विचारकर नेत्रभरकर छबि देख लो॥ ३॥ जो जिसके मनमें हो सो जाकर करो हमने तो आज जन्मका फल पालिया॥ ४॥ रावण बोला जानकी कहाँ है बताओ धनुष तोरकर उठा लेजाऊं॥ ५॥ बाणासुर बोला देखते नहीं यह गुरुका धनुष है वृथा गाल क्यों मारते हो॥ ६॥ हे रावण अभिमान क्यों करते हो प्रणाम करके अपने घर जाओ॥ ७॥

सवैयार्थ–रावण बोला–एक शिरकी कौन कहै सारा जगत् जिनके शिरपर सरसोंके समान शोभायमान होरहा है उन शेषजीका जिन्होंने अपने शरीरमें सूक्ष्म आभूषण बनाया है वह शंकर जिस पर्वतपर निवास करते हैं वह मेरे एकही हाथका कौर हुआ सो मैं अभिमान न करूं तो कौन करैगा जिसकी शंकर प्रशंसा करते रहते हैं॥ १॥

विरच्योविधिलेकरवज्रकोसार

गँवार है।

२ हों विचार है।

जो ब है ॥ २

चौ०-जगदाता मोर घर आये। बलिको याच्या कर फैलाये १

तउमैं गर्व करत अस नाहीं। क्यों मद करत वृथा मन माहीं २

रावण-धनुष तोर तोरउ मद तोरौं। पुरीउठाय सिन्धुमें बोरौं ३

“ सकहि ॥ ३

बाणासुर-सवैया।

करमेंकैलाश कसकैअबनाक सकोरतहै ॥

दइ तालन बास भुजा झहराय झुक धनुकाझकझोरतहै ॥

तिल एक हलै न हलै वसुधारिस पीसकै दाँतन तोरत है।

मनमें यह ठीक भयो हमरे मद काको महेश न मोरत है

बाणासुर बोला यह पुराना शंकरका धनुष विधाताने वज्रका सार लेकर रचा है इसकी गुरुता तुम नहीं जानते सिखावन न माननेसे तुम पूरे गँवार विदित होते हो हे मूढ! तुमने अपना गर्व गमानेके लिये ही धनुष तोड़नेका विचार किया है जो अपने बलसे बढके बोलता है सो नाऊका बार है ॥२॥ देखो जगतके दाता वामनजी मेरे घर आये और हाथ फैलाकर बलिसेयाचना की ॥ १ ॥ तौ भी मैं ऐसा गर्व नहीं करता तुम क्यों वृथा मनमें घमण्ड करते हो ॥ २ ॥ रावण बोला धनुष तोडकर तुम्हारा मद भी तोडूंगा तुम्हारी पुरी उठाय सागरमें बोरूंगा ॥ ३ ॥ यह कह धनुष उठाने लगा जब न उठा तो बाणासुरने अभागेसे कहा ॥ ४ ॥

सवैयार्थ-जिसने हाथमें कैलासधनुष उठालिया वह अब कसके नाक सकोडताहै बीसों भुजा तालके समान झहरागईं झुकके धनुषको झकझोरता है पर धनुष एक तिल भी नहीं हिलता पृथ्वी हिलजाती है तब रिससे दांत पीसता है यह हमारे मनमें ठीक हुआ कि शंकर किसका मद चूर्ण नहीं करते सबकाही करते हैं ॥ ३ ॥

'यह कहधनुप्रदक्षिणा करके। बाणासुरनिकस्योमुद भरके १॥

(दोनों गये)

दोहा"–ज्ञानि सुअवसर सीय तब, पठवा जनक बुलाय॥
संग सखी सुन्दर सकल, सादर चलीं लिवाय ३३॥

चलीं संग ले सखी सयानी। गावत गीत मनोहर वानी॥ १॥
रंगभूमि जब सिय पगुधारी। देख रूप मोहे[1] नरनारी॥ २॥
पाणि सरोजसोह जयमाला। औचक चितै सकल महिपाला ३॥
सीय चकित चितरामहिं चाहा। भये मोहवश सबनरनाहा ४॥

यह कह धनुषकी प्रदक्षिणा कर प्रसन्न हो बाणासुर गया॥ १॥ मनमें लजाय रावण भी चलागया। तब सब कोई मनमें प्रसन्न हुए॥ २॥

दोहार्थ--तब सुसमय जानकर जनकने सीताजीको बुलाभेजा संगमें सब सुन्दरसखी उनको आदरसे बुलाले चलीं॥ ३३॥

सयानी सखी उनको साथ लेचलीं मनोहर बाणीसे गीतगाने लगीं॥ १॥ रंगभूमिमें जिस समय जानकी आई उस समय उनका रूप देखकर नरनारी मोहित होगये॥ २॥ करकमलमें जयमाला शोभित है औचक सब राजोंको देखती हैं॥ ३॥ सीताने चकितचित्त हो रामहीको चाहा,

[1] कवित्त–उभै पाणि अलक उठाय मिथिलेश लली हेरो चारि ओर कहाँ सावरो कुमार है।
जहां जहां भयो दृष्टिपात मैथिलीको मजु तहां तहां बैठो जो जो भूमि भर्त्तार है।
सो सो सब जोहि जोहि मोहि मोहि मंचनपै गिरिगो न नेकु रह्यो तनुको सँभार है।
रघुराज रामपद कंज लागे नैन जाय कीन्हें मनोराजन समाज खिलवार है॥ १॥
कोई भूमिपाल रहे दंतनसों दाबि ढाल कोई करवालनको छोड़े तिहिं काल है।
कोई मोह वारिधिमे बूडि उतरान लागे कोई गिरे मंचनते वपुष विहाल हैं।
दुर्मद भुवालनके हालको कहांलौ कहौं छूटी ढाल टूटी माल बद भये गाल हैं।
मानो मोहिनीको रूप धारयोहै विदेह बाल रघुराज मन मुसक्यात रघुलाल हैं॥ २॥
दास देखै स्वामिनीसी दुष्ट काल यामिनीसी सखी वर भामिनीसी देव जगदंबासी।
मात दुहितासी दासी कलपलतासी दैत्य भूप कालिकासी मुनि आनद कदबासी।
सज्जन कृपासी योगीजन अजपासी सुरनारि कमलासी शठ मूरति त्यो सम्बासी।
रहे जसआशी तिन्हें तीन विधि भासी लखे मातासी लषग रघुगज अवलबासी॥ ३॥

रामरूप अरु सिय छबि देखी । नरनारिन परिहरीनिमेषी ५॥
तब बन्दीजन जनक बुलाये।बिरदावली कहत चलिआये६॥"
जन०—कह नृपजायकहोप्रणमोरा, चलेभाटहिय हर्षनथोरा७॥

दो०—"बोले बन्दी वचनवर, सुनहु सकल महिपाल ॥
प्रण विदेह कर कहहिं हम, भुजाउठाय विशाल॥३४॥

बंदी—नृपभुजबल विधुशिवधनुराहू।गरुअकठोरविदितसबकाहू
रावण बाण महाभट भारे । देखि शरासन गवहिं सिधारे ॥२॥

सब राजा मोहवश होगये ॥ ४ ॥ रामका रूप और सीताकी छबि देखकर नरनारियोंके पलक लगने बंद हुए ॥ ५ ॥ तब जनकजीने बन्दीजनोंको बुलाया वे बिरदावली कहते आये ॥ ६ ॥ राजा बोले जाकर हमारा प्रण कहो तब भाट यह वचन सुन मनमें बड़े प्रसन्न हो चले ॥ ७ ॥

दोहार्थ—तब बन्दीजन बोले हे राजाओ! सुनो हम भुजा उठाकर राजाका विशाल प्रण सुनाते हैं ॥ ३४ ॥

राजाओंकी भुजाका बल चन्द्रमा उसके ग्रसनेको शिवका धनुष राहु है इसकी गुरुता और कठोरता सब किसीको विदित है ॥ १ ॥ रावण बाणासुर बडे बली असुर धनुषको देखकरही घर चले गये ॥ २ ॥

१ कवित्त—विदित पुरारिको पिनाक नवखंडनमे परम प्रचड त्यों अखड ओज पारावार ।
बड़े बड़े वीर बरिवड भुजदडनसों खंड महिमंड यश जान चाहै पैरि पार ।
आजलों न देखे तीर केत बली बूडे वीर गुरुता गभीर नीर पीर पाय माने हार ।
बाहुबऊ विरचि जहाज रघुराज आज पावै पार सोई शिरताज भूमिभरतार ॥ १ ॥
उदित उदंड जो हजार भुजदडन सो दिग्गजन जीत्यो शैल फोरयो बलिको कुमार ।
राजत अचल अर्धंग शिव समेत तौल्यो करमे कमलसो निशाचरको सरदार ।
दोऊ महामानी वीर शंभुके शरासनको नाय शिर आसनको गवने गमै लचार ।
कोटिन कुलिशसों पुरारिको पिनाक आज तोरि रघुराज सिय ब्याहै विनहीं विचार ॥ २ ॥
पुरब स्वयवर जो होन लाग्यो एकबार जुरे सबै इतै द्वीप द्वीपनके महिपाल ।
राजनको बाहुबल पूरणसो राकापति ग्रस्यो तिहि शंभुधनु विधुंतुद विकराल ।
रघुराज बहुरि विदेह सोइ सीता हेतु विरच्यो स्वयंवरमें कम्मर कसे भुवाल ।
तोड़ै जो पुरारिको पिनाक नाक नाके यश मेलिहै विदेह कन्या ताके कंठ जयमाल ॥ ३ ॥

सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा । राजसमाज आज जेहि तोरा ३
त्रिभुवन जयसमेत वैदेही । बिनहि बिचार वरै हठि तेही ॥४॥
सुनि भूपअभिलाखे
परिकर बांध उठे अकुलाई । चले इष्टदेवन शिरनाई ॥ ६ ॥

(एक २ राजा क्रमसे उठते हैं बन्दी जन विरदावली सुनाते हैं)

बंदी—पहले हमारे वचन सुनलो पीछे धनुषके ढिग जाना.

सवैया ।

ज्ञान न ध्यान न संयम जप तप जो नाहिं सन्त गुरुन शिरनावें
मात पिता गो बिप्र न मानत वेदरु शास्त्रमें तर्क उठावें ॥
जो हठठान गुमानकरें नित जो परनारिसों प्रेम बढावें ।
मानें हमारी कही महिपाल सो शंकर चापके पास न जावें॥१॥
वेदके अर्थ अनर्थ करैं अरु धम सनातन रीति मिटावें ।
ग्यारह नियोग करैं इकनारिके जो विधवानको व्याह रचावें ।
शूद्रनके उपवीत निकृष्ट जहां जन बैठके वेद सुनावें ।
पूजित देव न देशमें जासुके सो धनुके ढिग भूप न जावें॥२॥

वही यह शंकरका धनुष आज राजसमाजमें जिसने तोड़ा ॥ ३ ॥ उसको त्रिभुवनकी जयसमेत जानकी बिना विचारे वरैगी ॥४॥ यह प्रण सुन सब राजोंने अभिलाषा की और योद्धा मनमें बडे गर्वित हुए ॥ ५ ॥ अपने २ इष्ट देवताओंको शिरनवाय व्याकुलतासे कमर बांधकर चले ॥ ६ ॥

सवैयार्थ—जो ज्ञान, ध्यान, संयम, जप, तप नहीं करते तथा स... शिर नहीं नवाते माता पिता गौ ब्राह्मणको नहीं मानते वेद शास्त्रमें तर्क उठाते हैं जो हठी गुमानी हैं तथा जो परनारीमें आसक्त हैं वे राजा हमारी कही मान शिवके धनुषके समीप न जायँ ॥ १ ॥ जहां वेदोंके अर्थका अनर्थ किया जाता है सनातनधर्मकी जो रीति मिटातेहैं एकनारिके ग्यारह नियोग करते विधवाका व्याह करते शूद्रोंको यज्ञोपवीत करते जहां नीच

---

१ सोरठा—यहि विधि बाहु उठाय, सुमति विमति बदी उभय ।
प्रण मिथिलेश सुनाय, सब राजनको जातभे ॥

जाके रहो नित पूजन देव को मानत जो गुरु ब्राह्मण गाई।
शील सनेह उछाह भरो मन संयम दान करै अधिकाई।
मानत जो हर विष्णु अभेद रहै शरणागतको सुखदाई।
इष्ट रु पूर्त करै सबही विधि सो धनुके ढिग चावसों जाई॥३॥

पहलेके उठनेपर।

सवैया.

बंदी जाकोप्रचण्डप्रताप चहूँदिशि छायरह्यो जेहिंमानंतशेषहै
और कहा उपमा यहि दीजिये देवनमें जेहि नाम विशेष है
अस्त्र रु शस्त्रनमाहिं विचक्षण देखो लसतकस अनुपम वेष
सुन्दर यह सुरसेनपदेशको आवत वीर सुखेन नरेश है

दूसरेके उठनेपर।

वेष विचित्र पवित्र किये अति जागत है जेहिको जगशाके
चन्द्रसमान दिपै मुखमंडल और नहीं नृप कोउ उपमाको
देश अनेक किये वशमें बलवीर कुलीन धुरीन धराको
सो यह मल्लिकापीडनरेश है आवत जो धनुके ढिग बांको॥२॥

जन वेद उच्चारण करते हैं तथा जिसके देशमें देवताओंका पूजन नहीं होता वह राजा धनुषके समीप न जाय॥ २ ॥ जिसके यहां नित्य देवता पूजेजाते जो गुरु ब्राह्मण गायको मानते हैं, तथा जो हर विष्णुमें भेद नहीं मानते शरणमें आये हुएको सुख देते हैं जिनका मन शील सनेह के उछाहसे भरा है जो देवमंदिरको निर्माणकर प्रतिष्ठा करते बावडी कूप सरोवर बनाते हैं वह धनुषके समीप आनंदसे जायँ॥ ३ ॥

सवैयार्थ–जिसका चारों ओर प्रचण्डप्रताप छा रहाहै जिसको शेष मानता है और उपमा इसकी क्यादें इसका देवताओंमें नाम है यह अस्त्र शस्त्रमें बड़ा चतुरहै देखो कैसा सुन्दर वेषहै यह शूरसेन देशका वीर राजा सुखेनहै ॥ १ ॥ विचित्र पवित्र वेष किये जिसका शाका जगत्में जागता है मुख-मंडल चन्द्रके समान दीपता है जिसकी उपमाको और राजा नहीं हैं अनेक

तीसरेके उठनेपर ।

जाहिर जोति रही जगमें जेहिके यशसे रवि चन्द हू मन्द है ।
आनन दिव्य सरोज लजावत पूररह्यो छविको मकरन्द है ।
हांक सुने दिगपाल परावत चाल चलै जिमि मत्तगयन्द है ।
मूछचढाय गरूरसों आवत ये धनुके ढिग कारुषनन्द है ॥३॥

चौथेके उठनेपर ।

कामछटा जेहिको लखलाजत होत उदै जिमि शशिधर प्राची ।
दानदया अरु नीति विचारमें कीरति जासु सकल जगमाँची ।
जाकी समान न और भयो कोउ बातसभामें उचारत सांची ।
वीर बली नृप आवत शैल सो विलसत है पावनपुर कांची ॥४॥

पाचवेंके उठनेपर

रूप अनूप महाछविखान विभूषणसों सब अंग सँवारे ।
राजनमाहिं विराजरह्यो जिमि चन्द्र सुहावत है मध तारे ।

देश इसने वशमें किये हैं यह बड़ा बली कुलीन पृथ्वीकी धुर धारण करनेवाला बड़ा बांका मल्लिकापीड राजा धनुषके समीप आता है ॥ २ ॥ जिसका प्रकाश जगतमें फैलरहा है जिसके यशसे सूर्य चन्द्र फीके पडगये हैं दिव्य मुख कमलको लज्जित करता है यह छबिके परागसे मानो पूर्ण है जिसकी हांक सुननेसे दिग्पाल पलायमान होते मत्तगयन्द (हाथी) की समान चालवाला मूंछें चढाये गरूरकिये यह करूषनन्दन धनुषके समीप आता है ॥ ३ ॥ जिसको देखकर कामकी शोभा लजाती है जैसे पूर्वमें चन्द्रोदय हो इसप्रकार इसका उदय है दान दया और नीतिके विचारमें जिसकी कीर्ति सब जगतमें मचरही है जिसके समान कोई और नहीं हुआ जो सभामें सत्यबात उच्चारण करता है यह वीर बली राजा शैलके समान आता है यह कांचीदेशका नरेश है ॥ ४ ॥ जिसका मनोहर उपमारहित छबि निधान रूप है सब अंगोंमें भूषण धारण किये तारोंमें चन्द्रसमान जिसकी राजामें शोभा है चौड़ा

हार सुअंगद दोउ भुजदण्डन धारे
अंगनरेश ये आवत है धनुढिग बलभारे ॥५

छठेके उठनेपर ।

विराजत हैं जेहि ठौर लिये
शशिकिचन्द्र प्रभासों जहा सबकालमें ज्ये....
पूजतहै हरको दिनरैन विवेक दयायुत वीर वि
आवत है धनुके ढिगमें यह वीर महीप उजैन निवासी ॥ ६ ॥

सातवेंके उठनेपर ।

वीर बली कोदण्ड गहे कर दीखत है जनु काल भयंकर ।
मानभरो भट शैलसी देह निहारत जाहि महीप रहे डर ।
नागर जाहर देश अनेकन पालत भूमि प्रजा नारीनर ।
आवत भूप अवन्तिकादेशको हाथलिये अजहूँ अपने शर ॥७॥

आठवेंके उठनेपर ।

युद्ध विचार प्रवीण महामति जो दृढकाय महाबलधारी ।
नरनारा

मस्तक हृदयमें हार दोनों भुजाओंमें बाजूबंद पहरे बडा बली यह अंग देशका अंगद राजा आता है ॥ ५ ॥ जहां अपने परिवारसहित सब सुखनिधान शंकर विराजमान रहते हैं जिनके शिरमें स्थित चन्द्रमाकी किरणोंसे उसके नगरमें सदा उजाला रहता है, यह वीर विवेक और दयायुक्त हो निरन्तर शंकरका पूजन करता है यह वीर महीप उज्जैनका राजा है ॥ ६ ॥ जो यह बड़ा वीर हाथमें धनुष लिये कालके समान दीखता है मानमें भरा बडायोद्धा शैलसा शरीर जिसको देखकर राजा डररहे हैं यह चतुर अनेकदेशोंमें विख्यात प्रजाके नारी नरोंका न्यायसे पालन करनेवाला हाथमें बाणलिये अवन्तिकापुरीका राजा आता है ॥७॥ यह युद्ध विचारमें बड़ा प्रवीण बुद्धिमान दृढशरीर बड़ाबली धर्मधुरधारी शत्रुनाशकारी प्रजाके नरनारी पालनेमें तत्पर जिसका यश जगत्में सब

है जगमें सबही यश रूप लसै मनसिज अनुहारी।
यह पंजाब नरेश महाभुज आवतहै.तनमें बलभारी ॥ ८ ॥

नौमेंके उठनेपर।

अतितियसंगमें मानत है सुख भामिनि याहि करत सिंगार है।
भौंमटकायदिखावत भावको कोककलामें बढ्यो अधिकारहै ॥
वीरता धीरता चित्त न राखत भूषण वस्त्र भरो भंडार है।
नैन नचांयकै भाषत वैन ये राज जनाननको सरदार है॥ ९ ॥

दशमेंके उठनेपर।

जाके सुलच्छन अंगमें दीखत बातनमाहिं विचक्षण नीको।
वीरनमें अतिवीर महाबल यश प्रसिद्ध तलवार धनीको ॥
तस्कर चोर न राखत राज्यमें सन्मुख जासु न होत अनीको
यह महाराष्ट्रसुदेशकोवीर है नावत जगशिर भूप मनीको १०

रामलक्ष्मणकी ओर देखकर।

छायरही सुखमा सब अंगमें जो सबजीवके प्राण अधार हैं
बाहु विशाल अनेक भरे गुण अस्त्र निधान सिंगार सिंगार हैं

कोई गाते हैं जो कामदेवके समान स्वरूपवान है यह बड़ा बली पंजाब देशका राजा है ॥८॥ यह स्त्रियोंके संगमें सुखमानते हैं, जिसका स्त्रियें नित्त शृंगार करती हैं जो भौं मटकाकर भावको दिखाता है, जिसका कोककलामें अधिकार बढा है जिसके चित्तमें वीरता धीरता कुछ नहीं है, स्त्रियोंके भूषणवस्त्रोंसे इनका भंडार भरा है जो नयन नचाकर बातें करते हैं यह राजा जनानोंके सरदार हैं ॥ ९ ॥ जिसके अंगमें सब सुलक्षण दीखते हैं, जो बातोंमें बडे चतुर हैं वीरोंमें वीर महाबली यश उजागर तलवारके धनी जिसके राज्यमें ठग और चोर नहीं हैं कोई सेना जिसके सन्मुख नहीं ठहरती, इसको सब शिर नवाते हैं यह महाराष्ट्र देशके राजा हैं ॥ १० ॥ जिनके सब अंगोंमें सुखमा छारही है जो सब जीवोंके

काम वसन्त समान मनोहर ज्ञाननिधान मनहु करतार हैं।
वयस किशोर धनुष करपंकज ये अवधेशके राजकुमार हैं'

लघुगजोंके उठनपर।

बंदी-दोहा-तुमसे यह नहिं चढैगो, भारी शंकर चाप
अपनी ओर निहारकै, बैठजाहु चुपचाप ॥ १ ॥
राजा-वृथा बकत क्यों बंदि तू, जानत सब ससार।
मेरे बलके सामने, कहा धनुष त्रिपुरार ॥ २ ॥

जब न उठा तब बंदी बोला।

तब नहिं मानी बात मम, अब समझे महाराज।
बैठजाव मुखढाँपकर, लखे लगत है लाज ॥ ३ ॥

औरके उठनेपर।

बंदी-जानबूझकर मतकरो, साहस नृपति सुजान।
यह शंकरको चाप है, गिरिते गरुअ महान ॥ ४ ॥
राजा-अरे भाट क्यों बकिरह्यो, लखत न मो भुजदण्ड।
एकपलकमें करहुँ लख, शिवधनुके सौ खण्ड॥५॥

प्राणआधार हैं बड़ी भुजा अनेक गुणोंकी खान अस्त्रविद्यामें अद्वितीय शृंगारके शृंगार काम और वसन्तदेवताके समान मनोहर ज्ञानके निधान मानो दूसरे विधाता किशोर अवस्था धनुषबाण हाथमें लिये यह महाराज दशरथके दोनों कुमार हैं ॥ ११ ॥ बंदी-(दोहार्थ) हे राजा यह भारी शिवका धनुष तुमसे नहीं चढैगा अपनी ओर देखकर चुपचाप बैठजाओ ॥ १ ॥ राजा बोला-अरे बन्दी तू वृथा क्यों बकता है सब संसार जानता है मेरे बलके सामने शिवका धनुष क्या है ॥ २ ॥ बंदी-हे राजन्! तब मेरी बात नहीं मानी अब समझे अब मुख छिपाकर बैठ जाओ तुम्हैं देखेसे लाज लगती है ॥ ३ ॥ हे राजन्! आप चतुरहो जानबूझकर साहस मतकरो यह शिवधनुष पर्वतसे भी महाभारीहै ॥ ४ ॥ राजा-अरे भाट! तू क्यौं बकता है मेरे भुजदण्ड नहीं देखता एक

जब न उठा तब।

[illegible] गये, बडे वीर बन आप ।

जाहु अब, बैठ रहा मुखढाँप ॥ ६ ॥

औरके उठनेपर

शिवधनुष ढिग, सुनो वचन भूपाल ।

इहिंधनुके नहिं योग तुम, जगत विदित विकराल ७॥

--वृथा न बकरहुचुपअरे, निपट अजान गँवार ।

देख धनुषके खण्ड मैं, अबहीं करहुं हजार ॥ ८ ॥

जब न उठा तब ।

बंदी–देखलियो बल लखी रजाई।बैठजाहु अब चुप ह्वै

इति क्षेपक ।

तमकि ताकि तकि शिवधनु धरहीं । उठइ न कोटि भांति बल करहीं ॥२

दोहा–तमकि धरहिं धनु मूढ नृप, उठै न चलहिं लजाय ।

मनहु पाय भट बाहुबल, अधिक अधिक गरुआय ॥३५॥

पलकमें शिव धनुके सौ खण्ड कर दूंगा ॥ ५ ॥ बंदी--आप तो बडे वीर बनकर धनुष उठाने गये थे सो बहुत चढाया जाओ अब मुख ढककर बैठ जाओ ॥ ६ ॥ हे राजन् ! तुम शिव धनुषके समीप मतजाओ वचन मानो यह धनुष जगत् विदित विकराल है तुम इसके योग्य नहीं हो॥७॥ राजा--अरे निपट मूर्ख गँवार भाट वृथा मत बकै देख मैं धनुषके अबहीं हजार खण्ड करता हूं ॥ ८ ॥

बंदी--बल और वीरता राजापनदेखलिया अब जाओ तुम चुपहो बैठजाओ ।

इति क्षेपक ।

तमककर ताककर तकके शिवका धनुष धारण करते हैं उठता ही नहीं अनेक भांतिसे बल करते हैं ॥२ ॥ (दोहार्थ) जिस समय मूढ़ राजा तमककर धनुष धारण करते हैं जब वह नहीं उठता तो लजाकर चलते हैं मानो भटोंकी भुजाओंका बल पाकर अधिक अधिक भारी होता जाताहै॥३५॥

भूप सहसदश एकहि बारा। लगे उठावन टरै न टारा ॥ १ ॥
श्रीहतभये हारि हिय राजा। बैठे निज २ जाय समाजा ॥ २ ॥
नृपन विलोकि जनक अकुलाने। बोले वचन रोष जनुसाने ३"
जनक-द्वीप दीपके भूपति नाना।आये सुनि हम जो प्रणठाना ४
देव दनुजधरि मनुज शरीरा। विपुलवीर आये रणधीरा ॥ ५ ॥
दोहा—कुँवरि मनोहरि विजय बडि, कीरति अतिकमनीय ॥
पावनहार विरंचि जनु, रचेउ न धनुदमनीय ॥ ३६ ।

दशसहस्र राजा एकही बार उठाने लगे वह टारेसे नहीं टरता ॥ १ ॥ राजा हारकर श्रीहत होगये अपनी २ समाजोंमें जा बैठे ॥ २ ॥ राजोंको देखकर जनक अकुलाये और क्रोधके साने वचन बोले ॥ ३ ॥ कि अनेक द्वीपोंके राजा हमारे प्रणको सुनकर आये ॥ ४ ॥ देव दैत्य मनुष्योंका शरीर धारण करके आये तथा और भी रणमें धीर धरनेवाले अनेक वीर आये ॥ ५ ॥ (दोहार्थ) कुमारीकी मनोहारिणी बड़ी विजय है और कीर्त्ति भी बडी कमनीय है इसका पानेवाला वा चापभंजन करनेवाला मानो विधाताने दूसरा रचाही नहीं है ॥ ३६ ॥

---

१ छप्पय—बुधि बल विक्रम विजय बडापन सकल बिहाई ।
हारिगये हिय भूप बैठि शीशन औधाई ॥
हँसहि सबै पुरलोग बलगि यश आपन खोयो ।
पंजा प्रथम डबोरि नीच शिर करि अब रोयो ॥
जे तजि विचार पहिले मनुज करत काज अतुरायकै ।
ते इन मतिमद महीप सम सरबस जात गँवायकै ॥ १ ॥

२ कवित्त—दिग्गजन काननलौं कीरति करनहार राजन समाजमें न कोई वीर साचा है ।
जाहुजाहु सबै भूप भौनको भलेहीं चले मोदित मजेमें मौज कीजै पौढि माचा है ।
रघुराज आज वसुधामें कोई वीर होतो पूरत हमारो प्रण धर्मको न काचा है ।
ताते असलागै भैया धनुष तोरैया वीर कुँवरि बरैया ना विरंचि विश्वराचाहै ॥ १ ॥

सवैया—पूरव जो जनत्यों जगतीमे नहीं है कहूं वर वीर प्रतापी ।
क्षत्रिनकी करि क्षय भृगुनाथ नहीं पुनि क्षत्रिनको क्षिति थापी ।
श्री रघुराज सुनो सबराज प्रणै करतो नहिं सत्य अलापी ।
क्यों धरतो उपहास शिरैकरि पूरण पुण्य कहौत्यों न पापी ॥ १ ॥

कहहु काहि यह लाभ न भावा । काहुन शंकर चाप चढावा १
रहेउ चढाउब तोरब भाई । तिलभर भूमि न सकेउ छुड़ाई २
अबजनि कोउ माखै भट मानी । वीर विहीन मही मैं जानी३
सुकृत जाय जो प्रण परिहरऊं।कुमरि कुमारि रहो का करऊं४
जो जनत्यउँ विनु भट भुइँ भाई।तौ प्रणकरि करत्यों न हँसाई
तजहु आश निज २ घर जाहू । लिखा न विधि वैदेहि विवाहू ६
"सुनतहि लषण कुटिल भइ भौंहैं। रदपुटफरकत नैन रिसौंहैं ७

दोहा–कहिनसकत रघुवीर डर, लगे वचन जनु बाण ॥
नाय रामपद कमल शिर, बोले गिरा प्रमाण ॥३७॥"

लक्ष्म०-रघुवंशिनमहँ जहँ कोउ होई।तेहि समाज अस कहइ न कोई१

भा०-कहो क्या इस कीर्त्तिका लाभ किसीको अच्छा नहीं लगा जो किसीने शंकरका धनुष नहीं चढ़ाया ॥ १ ॥ हे भाई ! चढाना तोडना तो एक ओर रहा तिलभर भी भूमिको न छुडासका ॥२॥ अब कोई अपनेको योद्धा मत कहना मैंने जाना कि पृथ्वीपर कोई वीर नहीं रहा ॥ ३ ॥ जो प्रण छोडूं तो सुकृत जाताहै कुमारी क्वांरी रहै तो मैं क्या करूं ॥ ४ ॥ जो जानता कि भूमिपर कोई वीर नहीं रहा तो प्रण करके हँसी न कराता ॥ ५ ॥ अब आश छोडकर अपने २ घर जाओ विधाताने जानकीका विवाह नहीं लिखा है ॥ ६ ॥ यह सुनते ही लक्ष्मणकी भौंहैं टेढ़ी हुई होठ फडकने लगे नेत्रोंमें रिस छागया ॥ ७ ॥ (दोहार्थ) रघुवीरके डरसे कुछ कह नहीं सके पर वचन बाणोंके समान लगे रामपदकमलमें शिर नवाकर प्रमाणवाणी बोले ॥ ३७ ॥

रघुवंशियोंमें जहां कोई होताहै उस समाजमें ऐसा कोई नहीं कहता ॥१॥

---

१ सवैया–ह्वैठो दुजानु मनो मृगनायक श्रीरघुनायकके दृग देखे ।
कपत गात न आवत बात अघात अमर्ष उठ्यो उर शेखै ।
श्री रघुराज कमानसी भौंह लखै तिरछोह विदेह विशेखै ।
रामकी भीति सों भाषि सकै नहिं राखि सकै नहिं रोष अलेखै ॥ १ ॥

कही जनक जस अनुचितवानी। विद्यमान रघुकुलमणि जानी २
सुनहु भानुकुलपंकज भानू। कहौं स्वभाव न कछु अभिमानू ३
जो राउर अनुशासन पाऊं। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊं ॥४॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी ॥५॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना ॥६॥
नाथजानि अस आयसु होऊ। कौतुककरौं विलोकिय सोऊ ७॥
कमलनाल इमि चाप चढावौं। शतयोजन प्रमाण ले धांवौं ॥८॥

दोहा—तोरौं छत्रकदण्ड जिमि, तव प्रताप बलनाथ ।
जो न करौं प्रभुपद शपथ, पुनि न धरौं धनुहाथ॥३८॥

"लषणंसकोप वचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले१

जैसी अनुचितवाणी जनकजीने रघुकुलमणिके विद्यमानहोतेकही ॥ २ ॥ हे भानुकुलकमलदिवाकर ! मैं स्वभावसे कहताहूं अभिमानसे नहीं ॥३॥ जो आपकी आज्ञा पाऊँ तो गेंदके समान ब्रह्माण्डको उठालूं ॥ ४ ॥ कच्चेघड़ेके समान इसको तोड़कर मेरुको भी मूलीके समान खण्ड २ करदूं ॥ ५ ॥ तुम्हारे प्रताप और महिमासे हे भगवन् ! यह पुराना धनुष क्या वस्तु है ॥ ६ ॥ हे नाथ ! ऐसा जानके आज्ञाहो तौ जो मैं कौतुक करूं सो देखिये ॥ ७ ॥ कमलनालके समान चापको चढ़ाकर सौ योजनपर्यन्त लेजाऊं ॥ ८ ॥ (दोहार्थ) हे नाथ ! तुम्हारे प्रताप और बलसे इसे छत्रदण्डके समान तोड़सकता हूं जो ऐसा न करूं तो प्रभुके पदकी सौगन्ध है फिर धनुष हाथमें न लूं ॥ ३८ ॥

लक्ष्मणने जब क्रोधसे वचनकहे पृथ्वी डगमगाई दिग्गज डोलगये॥१॥

---

१ कवित्त—अरुण नयन जब लषण बखाने वैन सिय हिय प्राची मुख मूर प्रकटाने हैं ।
लोकपाल माने मोद सुकवि बखाने यश मिथिला नगरवासी वीरवर जाने हैं ।
रघुराज मदमंद मृदुमुसक्याने मन विश्वामित्र पाणि पीठि फेरे सुखसाने हैं ।
मिथिलाधिराज सकुचाने त्यों डराने भूप बहरी ससाने जल खगसे सकाने हैं ॥ १ ॥

दोहा—लषण वचनकी धाकसों, परयो समाज सनाक ।
जिमि सिंधुरगण बाकमें, परै सिंहकी हाक ॥ १ ॥

सैनहि रघुपति लषण निवारे । प्रेमसमेत निकट बैठारे ॥ २ ॥
विश्वामित्र समय शुभजानी।बोले अतिसनेह मृदु वानी ॥ ३ ॥
वि०-उठहु राम भंजहु भवचापू । मेटहु तात जनक परितापू ४
"सुनि गरु वचन चरण शिरनावा।हर्षविषाद नकछु उर आवा५
ठाढभये उठि सहजसुभाये।ठवनि युवा मृगराज लजाये ॥ ६ ॥

(रामचन्द्रको देखकर जानकीकी माता बोली)

रानी-सखिं सबकौतुक देखनहारे। जेउ कहावत हितू हमारे ७

सैनसे ही रामने लक्ष्मणको निवारणकर प्रेमसे निकट बैठांया ॥ २ ॥ विश्वामित्र अच्छा समय जानकर सनेहसे कोमल वाणी बोले ॥ ३ ॥ हे राम ! उठकर शिवका चाप भंजनकरो और पिता जनकका दुःख मेटो ॥ ४ ॥ रघुनाथने गुरुके चरणोंमें शिरनवाया मनमें हर्षविषाद कुछ नहीं आया ॥ ५ ॥ सहज स्वभावसे उठ खडे हुए, उस युवाचालसे सिं लज्जित होते थे ॥ ६ ॥ हे सखि ! जो हमारे हितू कहाते हैं वह

---

१ सवैया–भूपति वेन विचारि मुनीश मनैमन श्री जगदीश सम्हारी ।
मजुल मदहि मदहि वेन कह्यो रघुनदहि नैन निहारी ।
श्रीरघुराज सुराज समाजमें लाज भई सब गे हिय हारी ।
लाल उठौ यहि काल तुम्हीं मिथिलेश कलेशको देहु निवारी ॥ १ ॥
२ कवित्त–ठाढे मच सहज सुभाय अगिराय नेक रघुकुल कमल दिवाकर उदै भये ।
अभिमानी भूपति उलूकहींसे मूकमुख वीरवर तारागण झलमल ह्वै गये ।
ह्वै गई व्यतीत त्यों बिदेह दुचिताई निशा कोक कोकनद पुरवासी सुख सों छंये ।
रघुराज परम प्रताप ताप पाय देव दीह दुख तोम तम तुरत बिदा भये ॥ १ ॥
उतरि चलो है मदमद उच्च मच हीते मंदरते मानो कढि आयो मृगराजहै ।
मानौ महामत्त मद चलत मतग मग मूर्त्तिमान मडयो मानो वीर रसराजहै ।
भूमि भरतारनको तारनसो तेज हरि आवत उदैगिरिते मानो दिनराजहै ।
काज करिबेको मन लाज भरी नयननमे राजन समाजमध्य राजै रघुराजहै ॥ २ ॥
३ सवैया–एहो सखी अवधेश कुमार बड़ो सुकुमार लगै सुठिलोना ।
कौशिलावारो तथैव हमारो बिलोकि कै कोई करै नहिं टोना ।
तू चलिकै रघुलालके भाल विशालमें दैदे सुनील डिठोना ।
काजकियो मुनिको रघुराजपै मोहि तो लागै मरालसो छोना ॥ १ ॥
कौन समाजमें श्रीरघुराज हि ल्यायो शरासन भंग करावन ।

काउ न बुझाइ कहै

रावणबाण छुवा नहिं चापा। ... भूप करिदापा॥९

धनु राजकुँवरकर देहीं। बालमरालकि मंदरलेहीं॥ १०॥

विधि

"... ... १२"

सखि-रविमण्डलदेखतलघुलागा। उदयतासुत्रिभुवनतमभागा

कौतुकही देखनेवाले हैं ॥ ७ ॥ कोई राजासे यह बात समझाकर नहीं कहता यह बालक है इनसे हठकरनी भली नहीं ॥ ८॥ रावण बाणासुरने चाप न छुआ और सब राजा अभिमानकर हारगये ॥ ९ ॥ वही धनुष राजकुमारके हाथोंमें देते हैं भला छोटे हंसके बच्चोंसे मन्दरपर्वत उठता है क्या ? ॥ १० ॥ राजाकी चतुराई सब जाती रही, हे सखि! विधाताकी गति जानी नहीं जाती ॥ ११ ॥ तब चतुरसखी कोमल वाणी बोली हे रानी! तेजवन्तको लघु मतगिनो ॥१२॥ देखो सूर्यका मण्डल देखनेमें लघु लगता है उसके उदयहोतेही त्रिभुवनका अन्धकार नष्ट होजाता है ॥१३॥

चूमन लायक है यह आनन मो मन होत कलेऊ करावन।
काहे दया मुनिके उपजै मिथिलेशै कोऊ नहि जात बुझावन।
सो धनु तोरन जात ललाजु छुयो नहि बाण बली अरु रावन ॥ २ ॥
कोई कहै नहि कंत बुझाय भली हठि रावरी है यह नाही।
जानकी योग्य मिल्योवर भाग्यन छोड प्रणै वहि देहि विवाही।
जे न करै लहि औसर कारज ते जन पाछे परे पछिताहीं।
श्रीरघुराज कहो तुमही सति बाल मराल कि मेरु उठाही॥ ३ ॥
तीरथ जाय सुपात्रको पाय न दानको देइ भरो अभिमाने।
सगर शत्रुको पाय न मारत आरत पाय करै नहिं त्राने।
श्री रघुराज सुतावर योग जे पाय न व्याहत वेद विधाने।
तू समुझाय कहै पियको जन चारि कहावत औनि अयाने॥ ४ ॥

१ कवित्त-मानो सत्यवानी महारानी बडि ज्ञानी तुम कामले कुसुम धनु विश्व वश कीन्ह्योहै।
लगै लघु मडल दिवाकर उदोत काल परम प्रकाश जग तम हरिलीन्ह्योहै।
मन्त्रलघु होत वश होत सुर सर्वताके अंबुनिधि कुभज अचैकै पुनि दीन्ह्यो है।
जन्हुकारि गगपान प्रकट किय काननते रघुराज रामै बलहीन कस चीन्ह्यो हैं॥ १ ॥

कहँ कुंभज कहँ सिन्धु अपारा। सोखेउ सुयश सकल संसारा
दोहा--मंत्रपरम लघु जासुवश, विधि हरि हर सुरसर्व ।
महामत्तगजराजकहँ, वशकंर अंकुश खर्व ॥ ३९ ॥
देवि तजिय संशय असजानी। भंजव धनुष राम सुनरानी॥१॥
"तबरामहिं बिलोकि वैदेही।सभयहृदय विनवति जेहि तेही २॥
सीता-मनही मन मनाय अकुलानी। होहुप्रसन्नमहेश भवानी३
करहु सफल आपनि सिवकाई। करि हित हरहु चाप गरु आई४
गणनायक वरदायक देवा। आजु लगे कीन्हीं तवसेवा ॥५॥

कहां अगस्त्यजी और कहां अपार समुद्र उसको सोखलिया यह सुयश संसारमें विदित है ॥ १४ ॥ (दोहार्थ)—मंत्रोंमें भी परमलघु मंत्र (ॐ) है इसके वशमें विधि हरि हर सब देवता हैं महामतवाले हाथीको छोटासा अंकुश वश करलेताहै ॥ ३९ ॥

हे देवि ! ऐसा विचारकर सन्देह दूरकरो हे रानी। राम अवश्य धनुषभंग करैंगे ॥१॥तब रामको देखकर जानकी सभय हृदयसे जिस तिसकी वन्दना करतीहै ॥ २ ॥ मनहीमनमें मनाकर व्याकुलहुई हे महेशभवानी ! मेरे ऊपर प्रसन्नहो ॥३॥ अपनी सेवकाई सफलकरो हितकरके चापकी गुरुता हरणकरो ॥४॥हेगणनायक वरदायक देवता आजहीके निमित्त तुम्हारी सेवाकीथी५॥

१ सवैया—हे करुणाकर शम्भु सुजान करी तुम्हरी अबलों सेवकाई ।
आय पर्यो अब काम सुई परे पूरण कीजिये मोरी सहाई ।
श्रीरघुराजके पंकज पाणि तिहारे शरासनकी गुरुताई ।
मूलहुते पुनि फूलहुते तिमि तूलहु ते न लहै अधिकाई ॥ १ ॥

२ सवैया—योग प्रदायिनि भोग प्रदायिनि रोगहु शोगनशायिनि जानी ।
तू करुणा कृपा छोहकी मूरति मोहि दई जयमाल निशानी ।
ताकी करी सुधि आयो समै अब श्रीरघुराज मनोरथ दानी ।
साँवरेकी परै भाँवरीहै अवलंब तुही जगदंब भवानी ॥ १ ॥

३ सवैया—जय शिवनंदन दोष निकंदन वदन योग हमेशी उदारे ।
जय गणनायक जय वरदायक शुद्ध सतोगुणके अवतारे ।
आपके बापको चंडकोदंड करी लघु दंडसो मोहिं निहारे ।
श्रीरघुराजको राज समाजमें देखै पिता धनुखंडको डारे ॥ १ ॥

बार २ विनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी॥६॥
कहँ धनु कुलिशहुचाहिकठोरा।कहँ[1] श्यामलमृदुगात किशोरा।
विधि केहि भाँति धरौं मनधीरा।सिरस सुमन किमि बेधहिंहीरा
अहह तात दारुण हठठानी।समुझत नहिं कछु लाभनहानी ९॥
सकलसभा[3]की मति भइ बोरी। अबमोहिं शंभुचापगतितोरी१०
निजजडता लोगनपरडारी।होउहरुअ रघुपतिहि निहारी॥११॥
तन मन वचन मोर प्रण साँचा। रघुपति पद सरोज मनराँचा
तौ भगवान सकल उरवासी।करहिं मोहिं रघुपतिकी दासी१३

बारंबार मेरी विनय सुनकर चापकी गुरुता अत्यन्त लघु करो॥६॥ कहाँ तो धनुष वज्रसे भी कठोर और कहाँ श्यामल मृदुगात किशोर अवस्थावाले॥७॥ हे विधाता! किस प्रकारसे धीरज धारण करूं हीरा कहीं सिरसके फूलसे बींधाजाता है॥८॥ हे तात! तुमने बडी कठिन हठठानी है अपनी हानि लाभ नहीं समझते हो॥९॥ सब सभाकी मति भोरी हुई है शिव चाप अब मुझे तुम्हारी गति है॥१०॥ अपनी जडता लोगोंपर डालकर रामको निहार हलके होजाओ॥११॥ जो तन मन वचनसे मेरा प्रण सत्य है रामके चरणकमलमें मन रच रहा है॥१२॥ तो सबके हृदयकी जाननेवाले भगवान् मुझे रघुपतिकी

१ रागदेश–मैया मोको वैरन धनुष भयोरी। जन्मजन्मको परो शरासन सडघुन क्यों न गयोरी। देशदेशके भूपति आए तिलभर कछु न टरयोरी। कहा कहौं मै माईबापको होतेइ विष न दियोरी। उठे राम गुरु आज्ञा पाई सुमन समान लियोरी। तुलसी दास प्रभुके करपरशे खण्डो खण्ड भयोरी॥ १॥

२ कवित्त–कहां किशलै ते अति कोमल कमल कर कहा कोटि कुलिश कोदंड या कठोरहै।
गडन चहति पाय पाखुरी पुहुपहूंकी ऐसे सुकुमार कोन योग ऐसो जोरहै।
रघुराज पकजकी जीर नहिं बेधै, हीर धरौं किमि धीर पावै पीर मन मोरहै।
अवध किशोर पग सेवनके पाइवेमें शम्भुधनु सत्य अब तोरई निहोरहै॥ १॥

३ कवित्त–सकल सभाकी भई भोरी मति मोरी बार शंभु धनु लागी अब आश एक तोरी है।
जडता जननपै पवारेना निहारे मुख हरू होइ हेरि रामै कारि तिन थोरी है।
देखत सकल सुरमुनि रघुराज आज जनके निवारै नाहिं कारि वर जोरी है।
पाऊ दुखद्वन्द्वकी अनद छलछद छोंडि हौ तो भई भानुकुल चन्दकी चकोरी है॥ १॥

जेहिके जेहिपर सत्यसनेहू। सोतेहि मिलत न कछु सन्देहू १४
प्रभुतन चितै प्रेमप्रण ठाना। कृपानिधान राम सबजाना १५॥
सियहि विलोकि तकेउ धनु कैसे। चितवंगरुड लघुव्यालहिजैसे

दो०-लषण लखेउ रघुवंश मणि, ताकेउ हरकोदण्ड॥
पुलकगात बोले वचन, चरणचाप ब्रह्मण्ड॥ ४०॥

लक्ष्म०-दिशिकुंजरहुकमठअहिकोला। धरहुधरणिधरिधीरनडोला
रामचहहिं शंकर धनु तोरा। होहु सजग सुनि आयसु मोरा २॥

दासी करेंगे॥ १३॥ जिसका जिसपर सत्य सनेह होता है निःसन्देह वह उसको मिलता है॥ १४॥ प्रभुकी ओर देखकर यह प्रेमका प्रणठाना कृपानिधान रामने सब जाना॥ १५॥ सीताको देखकर धनुषको ऐसे ताका कि जैसे लघुसर्पको गरुड ताकताहो॥ १६॥ (दोहार्थ) जब लक्ष्मणने देखा कि, रामचन्द्रने शिवजीका धनुष ताका तब पुलकित शरीरहो चरणसे ब्रह्माण्डको दबाय यह वचन बोले॥ ४०॥

हे दिकपाल, कूर्म, शेष, वाराह तुम सब पृथ्वीको धारण किये रहो धीर धरना डोलना नहीं॥ १॥ राम शिव धनुष भंगकरना चाहते हैं मेरी सुनकर सब सावधान हो जाओ॥ २॥

---

१ कवित्त—गुरुजन लाज रँजनीको पाय कंज मुख मुकुलित रुकिगै मलिंदी सिय वानी है।
श्रीण नैन कोनहीलों आँसुको निवास होत जैसे सोन भौन कोन राखत अदानी है।
अति अकुलानी उर पूरण प्रतीति आनी पूरवकी प्रीति जानी पुनि सकुचानी है।
रघुराज ठानी प्रण सुमिरि भवानी मन जानिकी सी जानकीसैं जानकीहौं जानी है॥ १॥

२ सवैया—गुरुलोग कि लाज गड़े गड़े गौनत जात अडे अडे जैननसों।
मनमोद मढ़े मढ़े वीररसै नहिं बोलै बढ़े बढ़े बैननसो।
रघुराज खुशीसो यथा खगराज विलोकत व्यालहि सैननसो।
चितयो तिमिचाप चढे चढ़े लाल बडे बडे वारिज नैननसों॥ १॥

३ छन्द—भाषिअस लषण सकलपको सुरन सब्र बैठि तहँ आपहू सावधानै।
चरणतें चापि ब्रह्मांड मडल सबल प्रबल अहिपति कमंडल प्रमानै।
गगन मग थम्हिरहे सूर तारा शशी सिद्धभागे भभरि चपल जानै।
परयो खरभर भुवन भगे भर भर अमर चरिन रघुराजको कोउ नजानै॥ २॥

कवित्त–कच्छप बाराह शेष भूमिके धरनहार,
आज वसुधाको सबभाँति मानगहियो ।
सागर और शैलदेव देवी सब भूचर जो,
शंभुके चापको अखण्डवेग सहियो ॥
खेचर सुरसिद्धमुनि राजयज्ञ राजआदि,
जेते बलवान वीर हिये धीर लहियो ।
तोरत हैं राम शंभु चापको पलकमाहिं,
अरे दशौ दिग्पाल सावधान रहियो ॥१॥

"चापसमीप राम जब आये। नर नारिन सुर सुकृत मनाये ३
गुरुहिप्रणाम मनहिं मन कीन्हा। अतिलाघवउठाय धनुलीन्हा४
लेत चढावत खैंचत गाढे। काहु न लखा देख सबठाढे ॥ ५ ॥
तेहि मध्यराम धनुतोरा। भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा ६॥

जब श्रीराम धनुषके समीप आये तब नर नारियोंने अपने देवता और सुकृतोंको मनाया ॥ ३ ॥ गुरुको मनहीं मनमें प्रणामकर बडी लघुतासे धनुष उठालिया ॥ ४ ॥ लेकर उसको बडे वेगसे खैंचा, किसीने न रहे ॥ ५ ॥ उसी क्षणमें रामने धनुष तोडदिया और सब

१ कवित्त घनाक्षरी–आयो चाप भंग समै सबहि जनायो ढंग मानी नृप हिय तबै धरकि धरके उठे ।
रसिक बिहारी नेहवारी पुरनारिनके फचुकी सुबद आप तरकि तरकि उठे ।
उर उमँगे है भूप कौशिक लषण आदि राम भुजदण्ड दोऊ थरकि थरकि उठे ।
जनककिशोरीजूके सखिन समेत दोऊ लोचन सफल चारु फरकि २ उठे ॥ १ ॥

२ कवित्त–सहज सुभाय कर कमल लगाय मनजूषाको उघारि दीन्ह्यो झमकि झडाक दै ।
ताते ऐंचि शंभुको शरासन प्रयास नहिं साजत प्रत्यंचा कौन कडके कडाक दै ।
रघुराज कौतुकसों ऐंचो चाप काननलौं चंचलासी चौंध परी चखन चडाक दै ।
अवध किशोर बाहु जोरको न थोरो सह्यो टूटिगो त्रिनेत्र धनु तडकि तडाक दै ॥ १ ॥

छंद–उठत २ महि खूब लट पटत सब सिंधु संघत जल मेल थल छूटिगो ।
शेष फण फटत तल वासहा रटत बाराह बल घटत युग डाढ सो टूटिगो ॥
दंत चट चटन महि शैल युत छटत दिग्दन्त गण हटत मल कुम्भथल फूटिगो ।
दैत्य लुटि लुटत अभिमानते छुटत कोदण्डके टुटत ब्रह्माण्ड सों फूटि गो ॥ १ ॥

छन्द–भरि भुवन घोर कठोर रव रवि वाजि तज मारग चले
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले
सुर असुर मुनि कर कान्ह दीन्हें सकल विकल विचारहीं।
कोदण्ड भंजेउ राम तुलसी जयति वचन विचारहीं॥ १॥"

(धनुष टूटनेके समय बडाशब्द होता है सब चौंकते हैं)

"प्रभु दोउखण्ड चाप महि डारे। देख लोग सब भये सुखारे॥ १॥
शतानन्द तब आयसु दीन्हा। सीतागमन रामपहँ कीन्हा॥ २॥

भुवनमें कठोर ध्वनि छागई॥ ६॥ (छन्दार्थ)–भुवनमें घोर कठोर शब्द भरगया सूर्यके अश्व मार्ग छोडकर चलने लगे वा धनुस्थानके टूटनेसे सूर्यके अश्वोंकी गतिमें भेदपडा कारण कि, बारह राशियोंमें सूर्यकी गति है दिग्गज चिक्कारनेलगे भूमि डोलगई शेष, वाराह, कूर्म डोलगये सुर, असुर, मुनियोंने कानोंमें अँगुली दी और विकल होकर विचारने लगे, तुलसीदास कहते हैं रामने धनुष तोडा ऐसा सब जय जयकारका वचन उच्चारण करने लगे॥ १॥

जब प्रभुने चापके दोखंड भूमिमें डालदिये तब सब लोग देखकर प्रसन्न हुए॥ १॥ तब शतानन्दने आज्ञा दी और सीताने रामके निकट

---

१ कवित्त सिंहावलोकन–कारा मेहरग व्योम भानुके तुरंग भाजे भाजे भये भीतिके अरूझे जाय तारामे।
तारा टूटि टूटि परे अवनि अपारा पारा बिंदसे विराजैं राजैं पारिंगे खभारामें।
भारा भरे लाजहींके हीमें सबै मानिहारा हारा गये हरिनके काचके अकारामें।
कारागार द्वाराके किवारा खुले जाने देव देवपति माने रघुराजे रक्षकारामे॥ १॥
चौंकि उठ्यो चारिमुख चितवत चारों ओर चन्द्रचूड चेत्यो चित चखन उचायकै।
गगनते गिरे गीरबाण जे विमाननमें क्षोणिको छुवत अस उचै अकुलायकै।
रंगभूमि भूपति समाज नर नारि जेते एकै बार गिरिंगे प्रचड शोर पायकै।
रघुराज लषण विदेह मुनि ठाढे रहे राम जब तोरयो शंभु चापको चढायकै॥ २॥
चिक्करत दिग्गज पराने पुहुमीको छोडि गिरिंगे पतगसे विहंग आसमानके।
टूटि टूटि गिरगे उतग शृंग शैलनके गैलन बटोही भाग वासी भे मकानके।
बंदी करि तरल तुरग तुग तोयनिधि ह्वैगये तडागसे न वेग मारुतानके।
रघुराज बाहुबल वारिधिमें बूडे वीर शंकर जहाज चाप चढे जे अज्ञानके॥ ३॥

करसराज जयमाल सुहाई। विश्वविजय शोभा जनुछाई॥३॥
चतुरसखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई४॥
सुनत युगल करमाल उठाई। प्रेमविवश पहिराइ न जाई॥५॥
——³ छबि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल रामउर मेली६

गमन किया ॥ २ ॥ कमलरूप हाथोंमें जयमाला शोभायमान है मानो विश्वके विजयकी शोभा छारही है ॥ ३ ॥ तब चतुर सखीने समझाकर कहा सुन्दर जयमाला पहराओ ॥ ४ ॥ सुनतेही दोनों हाथोंसे जयमाला उठाई परन्तु प्रेमके मारे पहराई नहीं जाती ॥ ५ ॥ तब यह छबि देखकर सखी गानेलगीं सीताने रामके गलेमें जयमाला डालदी ॥ ६ ॥

---

१ कवित्त घनाक्षरी—आई रघुचंद ढिग जनक किशोरी गोरी देखो खड खंड तहँ शंभुधनु बंकको।
रसिकबिहारी ऐसो आनंद सियाके चित्त जैसे वर वित्त पाय होवे सुख रंकको॥
दोऊकर उमँगि उठाय जयमाल लीने कवि हुलसाये हेरि उपमा उतकको।
क्षीरसिंधु गहिकै सनाल युग कंजनते मुक्तमाल देत मानो पूरन मयकको ॥ १ ॥
सोहैं सिय सहित उमग सखि साजे अग भूषण सुरग रग वसन विशाल भो।
कारि कर ऊंचे दोऊ ठाढीहै विदेहसुता कैसे कठ डारै माल छोटी रघुलाल सों।
रसिकबिहारी तिहि औसर निहारी छबि उपमा बिचारी सो उचारी है उतालसो।
कनक लताकी नववल्ली द्वै अनूप कढि ऊरध उठी हैं मानो मिलन तमालसो ॥ २ ॥
२ राग केदारो—लेहुरी लोचनन को लाहु। कुँवर सुदर सावरो साखि सुमुखि सुंदर बाहु। खड हरको दंड ठाढे जानुलंबित बाहु। रुचिर उर जयमाल राजत देत सुख सबकाहु। चितै चिताहित सहित नखशिख अंग अग निबाहु। सुकृत निज सियाराम रूप विराचि मतिहि सराहु। मुदितमन वरवदन शोभा उदित अधिक उछाहु। मनोदूर कलंक रवि शशि समर सूध्यो राहु। नयन सुखमा अयन हाथ सरोज सुंदर ताहु। बसत तुलसीदास उर पुर जानकीको नाहु ॥ १ ॥
कवित्त—परिपरिपांय जाय गिरिजा निहोरि नित्य शंकरमनाये पूजे गणपति भावसे।
दीने दान विविध विधान जप कीने बहु नेम व्रत लीने सिय सहित उछावसे।
रसिकबिहारी मिथिलेशकी दुलारी दृढ प्रीति उरधारी अवधेशसुत चावसे।
जनककिशोरीके प्रतापसे पिनाकटूटो टूट्यो है न जानो रामबलके प्रभावसे ॥ २ ॥
३ कवित्त घनाक्षरी—अतिहि उतालह्वै निहाल रघुलाल कंठ मेली जयमाल भयो आनँद अपारोहै।
रसिकबिहारी श्याम गोरी नव जोरी हेरि सब नर नारि निजप्राण धन वारो है।
माल पहिराई दुहुँ छाई सो अपार शोभा ताछिन अनूप रूप रुचिर निहारोहै।
धारि तिय वेष मंजु मुदित वसंत मानो आज ऋतुराजपै प्रसून जाल डारोहै ॥ १ ॥

सखी कहहिं प्रभुपदगहु सीता । करति न चरण परस अतिभीता
दो०–गौतम तिय गति सुरति करि, नहिं परसति पदपानि।
मनविहँसे रघुवंशमणि, प्रीति अलौकिक जानि ॥४१"॥

नवम दर्शन ।

(परशुराम आगमन)

"तब सियदेखि भूप अभिलाषे । कूर कुपूत मूढ़ मन माषे॥१॥
लेहु छुडाय सीय कहकोऊ । 'धरिबाँधहु नृपबालक दोऊ॥२॥
तेहि अवसर सुनि शिवधनुभंगा । आये भृगुकुलकमलपतंगा३॥
देखिमहीप सकल सकुचाने । बाजझपट जनु लवालुकाने ॥४॥
गौरशरीर भूति भलिभ्राजा।भालविशाल त्रिपुण्ड्र विराजा ॥५॥
शीशजटा शशिवदन सुहावा।रिसवश कछुक अरुण हुइ आवा
वृषभकंध उरबाहु विशाला । चारु जनेउ माल मृगछाला ॥७॥

सखी कहती हैं हे सीता प्रभुके चरणोंको प्रणामकरो जानकी भयसे उनके चरणोंको नहीं छूती॥७॥(दोहार्थ) इन चरणोंको छूकर गौतमकी स्त्री उड़गईथी ऐसा जानकर चरण नहीं छूती, यह अलौकिक प्रीति देखकर प्रभु मनमें हँसे ॥ ४१ ॥

इति अष्टमदर्शन ।

नवम दर्शन ।

तब सीताको देखकर राजा अभिलाषी हुए और कूर कुपूतोंने मनमें बडा अभिमान किया ॥ १ ॥ कोई बोले जानकीको छुड़ालो और कोई बोले राजाके दोनों बालकोंको धरिबांधो॥ २ ॥ राजोंके इसप्रकार विवाद होरहेथे कि उसी समय शिवधनु भंग हुआ सुन भृगुकुलकमलदिवाकर परशुरामजी आये ॥ ३ ॥ सब राजा देखतेही सकुचागये जैसे बाजकी झपटसे चिरैया भागती हैं॥४॥ गोरा शरीर भली विभूति विराजमान होरहीहै बड़ा मस्तक त्रिपुण्ड्र विराज रहा है ॥ ५ ॥ शिरपर जटा चन्द्रमासा मुख विराज़मान है रिसके कारण कुछ लाल होगया है ॥ ६ ॥ वृषभके

कटि मुनिवसन तूण दुइ बांधे । धनुशरकर कुठार कलकांधे ॥ ८ ॥

दो०—सन्तवेष करणी कठिन, वरणि न जाय स्वरूप ॥
धरिमुनितनु जनु वीररस, आये जहँ सब भूप ॥ ४२ ॥

देखत भृगुपति वेषकराला । उठे सकल भै विकल भुआला ॥ १ ॥
पितुसमेत कहि २ निज नामा । लगेकरन सब दण्ड प्रणामा २ ॥
जनक बहोरि आय शिरनावा । सीयबुलाय प्रणाम करावा ३
आशिष दीन्ह सखी हरषानी । निज समाज लेगई सयानी ॥ ४
विश्वामि [illegible] पुनि आई । पदसरोज मेले दोउ भाई ॥ ५
रामलषण दशरथके ढोटा । दीन्ह अशीश जानि भलि जोटा ६

समान कंधे हृदय और भुजा विशाल हैं सुन्दर जनेऊ माला और मृगछाला धारण किये हैं ॥ ७ ॥ कमरमें मुनिवसन और दो तरकस बँधे हुए धनुषबाण हाथमें अच्छा कुठार कंधेपर है ॥ ८ ॥ (दोहार्थ) सन्तकासा वेष कठिन करणी है स्वरूप नहीं वरणाजाता मानो सब राजोंके मध्यमें वीररस मुनिका रूप धारणकर आगया है ॥ ४२ ॥

परशुरामका करालवेष देख सब राजा भयसे व्याकुलहो उठे ॥ १ ॥ पिताके सहित अपना २ नाम लेकर सब दण्डप्रणाम करने लगे ॥ २ ॥ फिर जनकजीने आनकर शिरनवाया सीताको बुलाकर प्रणाम कराया ॥ ३ ॥ आशीर्वाद दिया सखी प्रसन्न हुई और सयानी सखी अपने स्थानको लिवा लेगई ॥ ४ ॥ फिर विश्वामित्र आये और दोनों भाइयोंको चरण सरोजमें प्रणाम कराया ॥ ५ ॥ यह राम लक्ष्मण दशरथके कुमार हैं

१ कवित्त—दुराधर्ष समर सहर्ष उतकर्ष ओज अतिही अमर्ष भरो कंधमे कुठारहै ।
विक्रम विदित त्यों त्रिविक्रमको अंश विप्र क्षत्रीकुल छेद्यो क्षिति इकइस बार है ॥
रघुराज राज राज सहित समाज देखे शंकरको शिष्य हिमाचलके अकारहै ।
कर्त्ता शत्रुभीर भग्न पेखि भागै भीरु नग्न अग्निसों उदग्र जमदग्निको कुमारहै ॥ १ ॥
हैहैराज वाहनकी समिध सरोषकारि कीन्ह्यो रणयज्ञ श्रुव विरचि कुठारहै ।
जाकी चाप भीति निजरीति छोड्यो क्षत्रीकुल क्षितिमें क्षमाकी छपा भयो भिनुसारहै ॥
रघुराज कोशलेश साहनीके आगे खड़ो भृगुकुलकमल दिवाकर अकार है ।
कोपित अपार मानो नयनन सों करै क्षार वीर विक्रार बोलै बैन बार बार है ॥ २ ॥

दो०-बहुरि विलोकि विदेहसन, कहहु कहा अतिभीर
पूछत जान अजान जिमि, व्यापेउ कोपशरीर
चौ०-समाचार कहि जनक सुनाये।जेहिकारण महीप सब आये
सुनतवचन फिर अनत निहारे। देखे चाप खण्ड महिडारे॥२॥
अतिरिसबोले वचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष किनतोरा३
पर०-वेग दिखाउ मूढ नतु आजू। उलटौंमहि जहँलगि तवराजू
"अतिडर उतर देत नृपनाहीं। कुटिलभूप हरषे मनमाहीं॥५॥"
दो०-"सभयविलोके लोगसब, जानजानकिहि भीर॥
हृदय न हर्ष विषादकछु, बोले श्रीरघुवीर ॥ ४४ ॥"
राम०-नाथ शंभुधनु भंजनहारा।हुइहै कोउ इकदास तुम्हारा१
आयसुकहा कहिय किन मोही। सुनिरिसाय बोले मुनिकोही२
पर०-सेवक सो जो करैसिवकाई।अरि करिनीकर करिय लराई३

भली जोट जानकर अशीश दी ॥ ६ ॥ (दोहार्थ) फिर देखकर विदेहसे बोले कहिये यह क्या भीड है जानकरभी जैसे अजान होकर पूछता हो शरीरमें क्रोध छारहा है ॥ ४३ ॥

जनकने समाचार कहकर सुनाया जिसके निमित्त सब राजा आये हैं ॥१॥ वचन सुनकर फिर अन्तमें निहारा देखा तौ धनु के दोखण्ड भूमिमें पडे हैं॥ २॥ तब बडे रिसमे कठोरवचन बोले कहोरे जनक यह धनुष किसने तोडा है॥ ३॥ हे मूर्ख उसे शीघ्रदिखाओ नहीं तो जहाँलों तुम्हारा राज्यहै मैं भूमि लौटदूंगा॥४॥बडे भयसे राजाको उत्तरदेते न बना कुटिल राजा मनमें बडे प्रसन्न हुए ॥५॥ (दोहार्थ) तब सब लोगोंको सभय और जानकीपर भीर देखकर हृदयमें हर्ष विषाद न करके श्रीरघुवीर बोले ॥ ४४ ॥

हे नाथ! शिवजीका धनुषभंगकरनेवाला कोई एक तुम्हारा दास होगा॥१॥ क्या आज्ञा है मुझसे कहिये यह सुनकर क्रोधी मुनि बोले ॥ २ ॥ सेवक

जेहि

सबराजा

"सुनि मुनि वचन लषण मुसुकाने। बोले परशुधरहिं अपमाने६"
लक्ष्म०-बहुधनुहीं तोरेउँ लरिकाईं। कबहुँ न असरिस कीन्ह गुसाईं
इहिधनुपर ममता केहिहेतू। सुनिरिसायकह भृगुकुलकेतू॥८॥

वह जो सेवकाई करै और शत्रुकी करणी करनेवालेसे लड़ाई करनी उचित है ॥ ३ ॥ सुनो राम जिसने शिवका धनुष तोड़ा है वह सहस्रबाहुके समान मेरा शत्रु है॥ ४॥ सो समाज छोड़कर अलग होजाओ नहीं तो सब राजा मारे जायँगे ॥५॥ मुनिके वचन सुनकर लक्ष्मण हँसे और परशुरामका तिरस्कार करते हुए बोले ॥६॥ हे भगवन्! लरिकाईमें हमने बहुतसी धनुहीं तोडीथीं पर कभी ऐसी रिस आपने न किया ॥ ७ ॥ इस धनुषपर ममता कैसे है यह सुनकर परशुराम क्रोधकर बोले ॥ ८ ॥

१–कवित्त–बोल्यो घोर घनसों घमड भरि वैन राम मेरो नाम धारि कौन राम कहवावतो।
साचो गुरुद्रोही मोर कोही नहि जान्यो मोहि तोरिकै पिनाक अब वदन छिपावतो॥
कहा रघुराज आज राज राज जेठो सुत मोको आज अर्जुनसो पूरो शत्रु भावतो।
होइ भुजदंड बल धारिके कोदड शर तजिकै समाज अब क्यों न कढि आवतो॥ १॥

२–कवित्त–हौं तो तप तपत महेन्द्र शैल बैठो हुतो आपुईते कै लियो ते कोपको सहार है।
कानमें प्रचंड परी वज्रपातही सी आय गुरुके कोदड खंडिबेकी झनकार है॥
चौंकि उठ्यो चारो ओर चितै चलिदीन्ह्यों चट उपज्यो नवीन गुरुद्रोही को हमार है।
कीन्ह्यो जो अकाज छांडि देइ सो समाज आज कौन रघुराज कोशलेशको कुमार है॥ १॥

३–कवित्त–छोटे छोटे छोहरा छबीले रघुवंशिनके करत कलोलै यूथ निज निज जोरि जोरि।
एहो भृगुनाथ चलौ अवध हमारे साथ देखो तहँ कैसे चहुँ खेलत है कोरि कोरि।
रसिकविहारी ऐसी अमित कमानै सदा आनै गहि तानै एक येकन ते छोरि छोरि॥
कोऊ झकझोरै कोऊ पकरि मरोरै योंही खोरि खोरि नितहि बहावै बाल तोरि तोरि॥ १॥

४–कवित्त–तूलकी रही कै काहू फूलकी रही कै मृदु मूलकी रही कै धूल सानकै सजाई ती।
सांटीकी रही कै कहो सांची स्वच्छ माटी लाय कांची काहू कुशल कुलाल ते कराई ती॥
रसिकविहारी भृगुनाथ भाषिये तौ नेक शंकर समीप या कहाँते किमि आई ती।
हौं तो यह जानौ अनुमान ते जु कोऊ बाल ख्याल हेतु धनुही मृणालकी बनाई ती॥ १॥
ऐसीहि कमान बालकेलिकी रुचै तौ बहु होवेंगी विदेह गेह अबहीं मँगाऊं मैं।
रसिकविहारी जो तिहारी प्रीति याहि माहिं तोपै दुहुँखण्ड खैंचि वेगही चढाऊं मैं॥

परशु०—दो०-रे नृपबालक कालवश, बोलत तोहिं न सँभार
धनुहीं सम त्रिपुरारि धनु, विदित सकल संसार ॥ ४५
ल०-लषणकहा हँसि हमरे जाना । सुनहु देव सब धनुष समाना
का क्षति लाभ जीर्णधनु तोरे । देखा राम नयेके भोरे ॥ २ ॥
छुवत टूट रघुपतिहि न दोषू । मुनि विनुकाज करिय कतरोषू३॥
पर०-बोले चितै परशुकी ओरा । रे शठ सुनेसि स्वभाव न मोरा
बालकजानि बधौं नहिं तोहीं । केवल मुनि जड जानेसि मोहीं५
दोहा—मातुपितहि जनि शोच वश, करसि महीप किशोर ॥
गर्भनके अर्भकदलन, परशुमोर अतिघोर ॥ ४६ ॥

दोहार्थ—रे नृप बालक कालवश तुझे बोलनेकी संभार नहीं है और धनुहीके समान क्या यह जगत् विख्यात शंकरका भी धनुष है ॥ ४५ ॥ लक्ष्मण बोले हे देव! हमारे जान तो सब धनुष समान ही हैं ॥ १ ॥ इस पुराने धनुषके तोड़नेसे क्या हानि लाभ है रामने तो इसको नया समझकर देखा था ॥ २ ॥ छूतेही टूटगया इसमें रघुनाथजीका दोष नहीं है हे मुनि ! विना प्रयोजन क्यों रिस करते हो ॥ ३ ॥ परशुराम परशेकी ओर देखकर बोले रे शठ तू मेरा स्वभाव नहीं जानता ॥ ४ ॥ मैं बालक जानकर तुझको नहीं मारता हे मूढ ! केवल मुझे मुनिही जानता है ॥५॥ (दोहार्थ)—हे महीपकिशोर ! तुम अपने माता पिताओंको शोचके वशीभूत मतकरो यह मेरा घोर परशा गर्भोंके बालकोंको मारनेवालाहै॥ ४६ ॥

नीकी जियभावै भृगुनाथतौ निदेशदीजै हमकौ रचाय माणिक मढाऊं मै ।
जोपै तुम्हे चाहिये कहोतौ द्विजराज अबै याहूते अनोखी चोखी अमितगढाऊ मैं ॥ २ ॥

१ कवित्त—जैसो कोप कीजै तैसो दोष नहि मेरे जान हानि लाभ का भयो पुरान धनु तोरे ते ।
छूवतही टूट्यो नहिं जोर पर्यो रामै नेकु अबै न नशान कछु जुरि जई जोरे ते ।
केते तोरि डारे धनु खेलत शिकारनमें कबहूं न कीन ऐसो कोप और छोरे ते ।
रघुराज राजनकी रीति नहि जानो विप्र करौ कहुँ जाय तप जानौ कहे थोरे ते ॥ १ ॥

२ कवित्त—बालक विचारि तेरे वधको बचाय देहुँ ऐसो विप्र हौं न जस जानै जड़ मोहिरे ।
सुनै रघुराज सुत क्षत्रिन निछत्र कर परम कठोर मोर परशुले जोहिरे ॥
शोच वश करै काहे मातु पितुहूंको आज जाय यमपुरमें वसेरो करै मोहिरे ।
नातो कहे देत हौं कुठार कंठ देत विना हेत सेत मेत काहे काल कौर होहिरे ॥ १ ॥

ल०-विहँसिलषण बोले मृदुवानी। अहो मुनीशमहाभटमानी १
पुनिःपुनि मोहिं दिखाव कुठारा । चहत उडावन फूँकिपहारा२॥
यहां कुम्हड बतिया कोउ नाहीं । जो तर्जनि देखत मरिजाहीं३
कोटिकुलिशसमवचन तुम्हारा । वृथाधरहु धनुबाण कुठारा४॥
परशु०-कौशिकसुनहुमन्दयहबालक। कुटिलकालवशनिजकुलघालक
भानुवंश राकेश कलंकू । निपट निरंकुश अबुध अशंकू ॥६॥
कालकवरहोइहिं क्षणमाहीं। कहौं पुकारि खोरि मोहिनाहीं ॥७॥
ल०-लषणकलेउ मुनि सुयशतुम्हारा। तुमहिंअछतकोवरणैपारा
अपने मुख तुम आपनि करणी। बार अनेकभाँति बहुवरणी९॥
नहिं सन्तोष तो पुनि कछुकहहू । जनिरिसरोंक दुसह दुखसहहू

लक्ष्मण हँसकर बोले हे मुनिराज ! तुम महायोद्धाओंमें अभिमान करते हो ॥ १ ॥ बारंबार मुझे कुल्हाडा दिखाकर फूंकसे पहाड़ उड़ाना चाहते हो ॥ २ ॥ सो यहां कोई पेठेकी जैया नहीं जो तर्जनी अंगुली देखकरही मर जातीहै ॥ ३ ॥ कोटि वज्रके समान तो तुम्हारा वचन है धनुषबाण कुठार धारणकरना वृथा है ॥ ४ ॥ परशुराम बोले विश्वामित्रजी सुनो यह बालक बडा मंद कालवश अपने कुलका घालक है ॥ ५ ॥ सूर्यवंशमें चन्द्रमाके समान कलंकी अति स्वच्छन्द मूढ़ और निःशंक है ॥ ६ ॥ अब यह क्षणमें कालके गालमें होजायगा पुकारकर कहताहूं फिर मुझे दोष नहीं ॥ ७ ॥ लक्ष्मण बोले हे मुनिराज ! तुम्हारे होते तुम्हारा सुयश वर्णनकर कौन पार पासकता है ॥ ८ ॥ अपने मुखसे तुमने अपनी करणी अनेकबार वर्णन की ॥ ९ ॥ सन्तोष यदि नहीं है तो फिर कुछ कहो

---

१ कवित्त—वेदपढिजानै जप यज्ञ बड़ि जानै पापपुण्य मढिजानै बहु बातैं गढ़िजानैं हैं ।
शापवेमें जानैं वरथापवेमे जानै दोषठायमें जानैं तपतापवेमें जानैं हैं ॥
खायजानै खूब औ अजूबजाचिलाय जानै रसिक बिहारी बालहू पढ़ाय जानै है ।
एती पुनि औरहू अनेकरीति जानै एक युद्धवरबीरताई विप्र नहिं जानै हैं ॥ १ ॥

२ कवित्त—बहुरि लषण बोल्यो सुयश तिहारो विप्र तुमसे अधिक नहीं दूसरो कहैया है ।
कहत अघाने जो न होउ पुनि भाषौ खूब रसना तिहारी कहौ कौन रोकवैयाहै ॥
भाटहीसों भाषो यश गारी जनि दीजै हमै नातो नाहिं रै है फेरि कीरति गवैयाहै ।
रघुराज आज रघुवंशी कहवाय कोऊ तिलभरि भूमिते न भभरि भगैयाहै ॥ १ ॥

वीरवृत्ति तुम धीर अछोभा । गारीदेत न पावहु शोभा ॥११॥
दो०-शूरसमर करणी करहिं, कहि न जनावहिं आप ॥
विद्यमान रणपाय रिपु, कायर कथहिं प्रलाप ॥ ४७ ॥
तुमतौ काल हाँकि जनुलावा । बार बार मोहिं लागिबुलावा ॥१॥
"सुनत लषण के वचनकठोरा । परशुसुधार धरेउ करघोरा२॥"
पर०-अब जनिदेहि दोष मोहिं लोगू । कटुवादीबालक वधयोगू
बालविलोकि बहुत मैं बांचा ।अब यह मरनहार भा सांचा ॥४॥
"कौशिककहा क्षमियेअपराधू।बालदोषगुण गनहिं न साध ५"
पर०-करकुठार मैं अकरन कोही । आगे अपराधी गुरुद्रोही६॥
उतरदेत छाँडौं विनुमारे।केवल कौशिक शील तुम्हारे ॥ ७ ॥

क्रोधरोककर महादुःख मतसहो॥ १० ॥ वीर वृत्तिवाले धीरवान् छोभ-रहित तुम गाली देते शोभा नहीं पाते ॥ ११ ॥ (दोहार्थ) जो शूर युद्धमें करणी करते हैं उसे जनाकर नहीं कहते शत्रुको सन्मुख देखकर प्रलाप करना कायरपन है ॥ ४७ ॥

तुमतो मानो कालही हांकलाये और बारंबार मेरे निमित्त उसे बुलाते हो ॥ १ ॥ यह लक्ष्मणके कठोर वचन सुन सुधारकर घोर परशा कंधेपर धार॥२॥अब कोई लोग मुझे दोष नदें यह कटुवादी बालक मारनेके योग्य है॥३॥बालकजानकर मैं बहुतबचा पर अब यह सत्यही मरनहार हुआ॥४॥ विश्वामित्र बोले अपराध क्षमाकरो साधू बालकके दोष गुण नहीं गिनते ॥ ॥ ५ ॥ परशुराम बोले एकतो मेरे हाथमें कुठार दूसरे मैं विनाकारणही क्रोधी तीसरे गुरुद्रोही अपराधी सन्मुख है॥ ६ ॥ तो उत्तरदेतेही विनामारे नहीं छोडता विश्वामित्र केवल तुम्हारे शीलसे छोडा है ॥ ७ ॥

---

१ सवैया—कह विश्वामित्र सुनो भृगुनायक आपतो दीह दया उर छाइये ।
जो लरिका लरिकाई करै तो क्षमा करके मनते विसराइये ॥
श्रीरघुराज खड़े शरणागत आसु अभै करिकै अपनाइये ।
आप क्षमासे क्षमाधरहे नहिं बालक बातनमें चित ल्याइये ॥ १ ॥

नतु इहिकाटि कुठार कठोरे। गुरुहि उऋण होतेउँ श्रमथोरे ८॥
ल०-कहेउलषणमुनिशील तुम्हारा। कोनहिंजानविदित संसारा
मातुहि पितहि उऋण भैनीके। गुरुऋणरहा शोचबडजीके १०
सोजनु हमरे माथे काढ़ा। दिनचलिगये व्याजबहुबाढा ॥ ११ ॥
अब आनिय व्यवहरियाबोली। तुरतदेवँ मैं थैली खोली ॥ १२॥
"सुनि कटुवचनकुठार सुधारा। हाहाकहिसबलोग पुकारा १३"
ल०-मुनिवर परशु दिखावहु मोहीं। विप्रविचारि बचौं नृपद्रोही ॥
मिले न कबहुँ सुभटरन गाढ़े। द्विजदेवता घरहिके बाढे ॥१५॥

नहीं तो इसको कठोर कुल्हाड़ेसे काटकर गुरुके ऋणसे उऋण होजाता ॥ ८ ॥ लक्ष्मण बोले मुनिराज तुम्हारा शील संसारमें कौन नहीं जानता ॥ ९ ॥ माता पितासे तो तुम भले उऋण हुए हो गुरुका ऋण रहा इसका बड़ा शोच है ॥ १० ॥ सो जानो हमारे माथे काढ़ाहै इसमें दिन अधिक बीते हैं व्याजभी बढ़गया होगा ॥ ११ ॥ अच्छा अब किसी व्यवहार वालेको बुलालाओ मैं तुरत थैली खोलकर देदूंगा ॥ १२ ॥ यह कटु वचन सुन कुठार सुधारा, सब लोग हाहाकार करने लगे ॥ १३ ॥ लक्ष्मण बोले हे मुनिराज ! मुझे परशा क्या दिखाते हो हे नृपद्रोही ! ब्राह्मण जानकर तुमसे बचता हूं ॥ १४ ॥ कभी रणके बांके सुभट तुमको नहीं मिले ब्राह्मण और देवता घरकेही बडे होते हैं ॥ १५ ॥

१ सवैया—लक्ष्मण बोल्यो ततक्षणही पितुको उऋणै भये अर्जुन मारी।
फेरिकै हाथे हमोरई माथे लियो ऋण कासों कहौ तो उचारी ॥
लेहु अबै हम खोले खजाने विलंब करो कत जो बल भारी।
हैं करजीके नहीं गरजी रघुराज यही अरजी है हमारी ॥ १ ॥

२ विजय—बोरों सबै रघुवंश कुठारकी धारमें वारन वाजि सरत्थहि।
बाणकी वायु उडाइकै लक्षन लक्षि करौं अरिहासमरत्थहि।
रामहिं वाम समेत पठै वन कोपके भारमें भूजों भरत्थहि।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तो आज अनाथ करौ दशरत्थहि ॥ १ ॥

दो०-"लषण उतर आहुतिसरिस, भृगुवर कोपकृशानु ॥
बढ़तदेख जलसम वचन, बोले रघुकुल भानु ॥ ४८ ॥
राम०-नाथकरहु बालकपर छोहू।शुद्ध दूधमुखकरिय नकोहू
जोपै प्रभुप्रभाव कछुजाना। तौकि बराबरिकरत अयाना ॥२॥
जो लरिका कछु अनुचित करहीं।गुरु पितु मातु मोदमन भरहीं
करियकृपा शिशुसेवक जानी। तुम समशील धीर मुनि ज्ञानी४
तिननाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥ ५ ॥
कृपाकोप वध बन्ध गुसाईं। मोपर करिय दासकी नाईं ॥ ६ ॥
कहिय वेग जेहि विधि रिसजाई। मुनिनायक सोइ करिय उपाई

दोहार्थ-लक्ष्मणके उत्तर आहुतिके समान परशुरामका क्रोध अग्निके समान हुआ उसको बढ़ता हुआ देखकर श्रीरामचन्द्र जलके समान वचन बोले ॥ ४८ ॥

हे नाथ! बालकपर कृपाकरो यह शुद्ध दूधका मुख है क्रोध न करो ॥ १ ॥ जो यह तुम्हारा कुछ प्रभाव जानता तो अजानतासे बराबरी नहीं करता ॥ २ ॥ जो लड़के कुछ अनुचित करते हैं तो गुरु पिता माता मनमें प्रसन्न होते हैं ॥ ३ ॥ इसको शिशुसेवक जानकर कृपाकरो तुम समान शीलवाले धीर मुनि ज्ञानीहो ॥ ४ ॥ और हे नाथ ! इसने आपका कुछ कार्य नहीं बिगाडा तुम्हारा अपराधी तो मैं हूं ॥ ५ ॥ हे गोसाईं ! कृपा कोप वध बन्ध मुझपर दासके समान करो ॥ ६ ॥ सो जिसप्रकार आपका रिसजाय सो शीघ्र कहिये मुनिनायक जिससे

१ सवैया-रावरेके अपराधी ह्वैं नाहिं बधु कियो धनुभग तिहारो ।
दीजे यथोचित दंड उदडन होत जो ठढ है कोप अपारो ॥
है रघुराज न जानत हैं छल और कछू नहि कीजे विचारो ।
आप तौ पाणि कुठार लिये प्रभु आगे धरो यह शीश हमारो ॥ १ ॥
मै तुव सेवक हौं मुनिनायक कोपको काम कछू नहिं जाने ।
क्रोध हरै मति क्रोध हरै तप क्रोधही पापको मूल बखाने ॥
ये सिगरे शिशु जानै नहीं कछु रावरी देव बराबरी माने ।
बैठो इतै करसों चहौं मींजन ठाढे रहे बहु पाउँ पिराने ॥ २ ॥

पर०-कह मुनि राम जाय रिस कैसे। अजहुँ बन्धु तव चितव[1] अनैसे
इहिंके कण्ठ कुठार[2] न दीन्हा। तौमैं कहा कोप करि कीन्हा ॥९॥
दोहा--गर्भश्रवहिं अवनिपरवनि, सुनिकुठार गतिघोर ॥
परशु[3] अछत देखौं जियत, वैरी भूपकिशोर ॥ ४९ ॥
बहै न हाथ दहै रिसछाती। भा कुठार कुंठित नृपघाती ॥ १ ॥
आजुदैव दुखदुसह सहावा। सुनि सौमित्रि विहँसि शिरनावा
ल०-जोपै कृपा जरै मुनिगाता। क्रोधभये तनु राखु विधाता ॥३॥
पर०-देखुजनक हठबालक एहू। कीन्हचहतजड जमपुर गेहू ४

उसका उपाय करैं ॥ ७ ॥ मुनि बोले हे राम! क्रोध कैसे जाय अबभी तुम्हारा भाई कुटिलतासे देखता है ॥ ८ ॥ जो मैंने इसके कंठमें कुठार न दिया तो क्रोधकरके क्या किया ॥ ९ ॥ (दोहार्थ) कुठारकी घोरगति सुनकर राजोंकी स्त्रियोंके गर्भ भूमिपर गिरजाते हैं तब इस परशेके होते वैरी राजकुमारको जीता कैसे देखसकता हूं ॥ ४९ ॥

मेरा हाथ नहीं चलता क्रोधसे छाती जलती है राजोंको मारते २ कुठारभी कुंठित हुआ है ॥ १ ॥ आज दैवने बडादुःख सहाया है सुनकर लक्ष्मणने हँसते हुए शिरनवाया ॥ २ ॥ हे मुनिराज! जो कृपासे आपका शरीर जलता है तो क्रोध होनेपर विधाताही शरीर रखसकता है ॥ ३ ॥ परशुधर बोले जनक इस बालककी हठ देखो यह मूढ यमपुरमें अपना घर

१ कवित्त-देखिये कुशिक यह राजको कुमार खोटो मेरे ओर देखत अनैसे नैन करिकारि ।
कबहूं सुनी न प्रभुताई मोरि काननमें शठ लरिकाई वश रीसै धनु धारिधारि ॥
मोहिं उपजावै कोप लोप निज चाहै होन बेगही बुझावो रघुराज छोह भरि भरि ।
नातो कहौं आजु मैं समाजमें पुकारि मेरे कोपकी कृशानु ह्वै है कीटही सौं जारि जारि ॥१॥

२ सवैया-राम कह्यो रघुराजहि देखिकै आगे खडो गुरुद्रोही हमारो ।
भाइनके बल दर्प भरो यह भीतर बाहरहूं अतिकारो ॥
कै पितुको बछिया सम आगे अहै घतमें चह घात हमारो ।
तौलौं नही उऋणै गुरुको जबलौ नाहि देत हौं कंठ कुठारो ॥ १ ॥

३ अरे जनक-स०-गर्भके अर्भक काटनको पटुधार कुठार करालहै जाको । सोईहौं बूझत राजसभा धनुके दलि है दलिहै बलताको । लघुआनन उत्तर देतबडो लरिहै मरिहै करिहै कछुशाको । गोरो गरूर गुमानभर्‍यो कहो कौशिक छोटोसो ढोटो है काको ॥

वेगिकरहु किन आँखिन ओटा । देखत छोट खोट नृपढोटा५॥
ल०-"विहँसेलषणकहामुनिपाहीं"।मूँदियआँखकतहुँकोउनाहीं

दोहा-" परशुराम तब रामप्रति, बोले वचन सक्रोध ॥
शंभुशरासन तोरिशठ, करसि हमार प्रबोध ॥ ५० ॥"

पर०--बंधुकहै कटु सम्मत तोरे। तू छलविनय करसि करजोरे १
मोर संग्रामा । नाहित छांडि कहाउव रामा ॥ २ ॥
"भृगुपति तमकि कुठार उठाये।मनमुसुकाहिं राम शिर नाये ३
रा०"रामकहा रिसतजिय मुनीशा" । करकुठार आगेयहशीशा
रिसजाय करियसोइस्वामी।मोहि जानिआपन अनुगामी

दोहा -प्रभुसेवकहिं समर कस, तजहु विप्रवर रोष ॥
वेष विलोकि कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोष ॥५१॥

क्षमहु चूक अनजानत केरी । चहिय विप्रउर कृपाघनेरी ॥१॥

करना चाहता है ॥ ४ ॥ इसे शीघ्रही आँखोंकी ओटमें करो यह देखनेमें छोटा पर बडाही खोटा है ॥ ५ ॥ लक्ष्मणने हँसकर मुनिराजसे कहा आप आंख मींचलें तब कहीं भी कोई नहीं है ॥ ६ ॥ (दोहार्थ) तब परशुराम श्रीरामसे क्रोधकर वचन बोले हे शठ ! शिवधनुष तोडकर अब हमारा प्रबोधकरता है ॥ ५० ॥

तेरी सम्मतिसेही तेरा बंधु कटु कहता है तु हाथ जोड छलसे विनय करता है ॥ १ ॥ संग्राम करके मुझे सन्तुष्टकर नहीं तो रामनाम कहाना छोडदे ॥ २ ॥ परशुरामने तमककर कुठार उठाया मनमें मुसकाय रामने शिरनवाया ॥ ३ ॥ रामचन्द्रने कहा हे मुनिराज ! रिस त्यागनकरो यह कुठारके आगे शिर है ॥४॥ हे स्वामी ! जिसप्रकार रिसजाय सोकरो मुझे अपना अनुगामी जानो ॥५॥ (दोहार्थ) हे विप्रवर ! स्वामी और सेवकका संग्राम कैसा आप क्रोध त्यागन करो वेष विलोककरही कुछ कहा बालकका दोषनहीं है ॥ ५१ ॥

सो विनाजानेकी चूक क्षमा करो ब्राह्मणके मनमें बडी कृपा चाहिये ॥१॥

सबप्रकार हम तुमसनहार। क्षमहु विप्र अपराध हमार
पर०-निपटहि द्विज करिजानेसिमोही।मैंजसबिप्रसुनावहुँतोही
चापश्रुवा शरआहुति जानू। कोप मोर अतिघोर कृशानू ॥४॥
समिध सेन चतुरंग सुहाई। महामहीप भये पशुआई ॥ ५
मैं इहि परशु काटि बलिदीन्हा। समरयज्ञजगकोटिनकीन्हा६॥
मोरप्रभावविदितनहिंतोरे। बोलेसि निदरि विप्रके भोरे ॥ ७ ॥
रा०-रामकहामुनिकहहुविचारी।रिसअतिबडिलघुचूकहमारी८

दोहा-जो हम निदरहिं विप्रवदि, सत्यसुनहु भृगुनाथ॥
तौ असको जग सुभट जेहि, भयवश नावहिं माथ ॥ ५२ ॥

सबप्रकार हम तुमसे हारगये हैं हे विप्र ! हमारे अपराध क्षमा करो॥ २॥ परशुराम बोले मुझे निराब्राह्मणही मतजानो मैं जैसा ब्राह्मणहूँ तुमसे कहताहूँ ॥ ३ ॥ मेरा धनुष श्रुवा, बाण आहुती हैं मेरा क्रोध घोरअग्नि है ॥ ४ ॥ चतुरंगिनीसेना समिधा है बड़े बड़े राजा इसमें पशु हुए हैं ॥ ५ ॥ मैंने इस परशेसे काटकर उनकी बलि दी है समर-यज्ञतो जगत्में अनेकवार किया है ॥ ६ ॥ मेरे प्रभावको तुम नहीं जानते ब्राह्मण जानकर भूलसे निरादरकर बोलते हो ॥ ७ ॥ रामचन्द्र बोले मुनिराज विचारकर कहो रिसतौ बहुत बड़ी है और चूक थोड़ी है ॥ ८ ॥

दोहार्थ-हे भृगुदेव ! आप सत्यही जानो जो हम ब्राह्मण जानकर आपका तिरस्कार करते हैं तौ जगतमें ऐसा योद्धा कौन है ? जिसको भय वश शिरनवावें ॥ ५२ ॥

---

१ कवित्त-विप्रजानि जोपै रावरेकी नहि भीति मानैं तो तो विश्ववीर कौन जाको जोहि डरिहै।
क्षत्री कुल जन्म पाय चापकर ल्याय रघुवंशी कहवाय कालहूँसो धाय लरिहै ॥
तुमहिं न सूझै कछु रघुराज बूझो हमैं समर डरानो ताहि शूर न उचरिहै ।
भूधर टरैंगे ध्रुव धामते टरैंगे धरणीहू टरिजाय भले हम नाहि टरिहै ॥ १ ॥
विप्र मानि अबलों मनायो शिरनायों तोहि क्षमा कीन्ह्यो जौन भयो अपकारोहै ॥
लषण भरत शत्रुशालको निवारयो हम नातो देखिलेते बलदर्प जो तिहारो है ।
हम रघुराज है न देव द्विजराज जानो सुनो जो नहोई सत्यकाज सो हमारोहै ।
राजन समाज गर्व गारि त्रिपुरारि जूको चाप तूरि डारो हम चाप तूरि डारोहै ॥ २ ॥

देवदनुज भूपति भटनाना।समबल अधिक होउ बलवाना॥१॥
जोरण हमहिं प्रचारै कोऊ। लरैं सुखेन कालकिन होऊ॥२॥
कहौं स्वभाव न कुलहि प्रशंसी। कालहु डरैं न रण रघुवंशी॥३
विप्रवंशकी असि प्रभुताई। अभय होय जो तुमहिं डराई॥४
"सुनिमृदुगूढ वचन रघुपतिके"। उघरे पटल परशुधरमतिके
प०—रामरमापति करधनुलेहू। खैंचहु मोर मिटै सन्देहू॥६॥
"देतचाप आपुहि चढिगयऊ। परशुराम मन विस्मय भयऊ
दो०—जाना राम प्रभाव तब, पुलकि प्रफुल्लितगात॥
जोरिपाणि बोले वचन, प्रेम न हृदय समात॥५३॥"

देवता, दैत्य, राजा, वीर, समान बलका वा अधिक बलवान् हो॥ १ ॥ जो कोई युद्धमें हमको प्रचारकर बुलावे तो हम सुखी होकर युद्धकरैं कालही क्यों न हो॥ २ ॥ मैं स्वभावसे कहताहूँ कुलकी प्रशंसासे नहीं रघुवंशी युद्धमें कालसे भी नहीं डरते॥ ३ ॥ ब्राह्मणवंशकी ऐसी प्रभुताई है जो तुमसे डरता है वह अभय होजाता है॥ ४ ॥ रघुराजके यह मृदु और गूढ वचन सुनकर हृदयके कपाट खुलगये॥५॥ और बोले हे राम! हे रमापति! हाथमें धनुष लेकर इसे खैंचो मेरा सन्देह मिटजाय॥ ६॥ चापदेतेही स्वयं चढ़गया तब परशुरामके मनमें बड़ा विस्मय हुआ॥ ७॥(दोहार्थ) तब रामका प्रभाव जानकर शरीर पुलकायमान् हुआ हाथ जोडकर वचन बोले मनमें प्रेम नहीं समाता॥ ५३ ॥

---

१ सवैया—देखि राम रूप साजे सायक प्रचंड धनु भयो भृगुराम विना विषके भुजंगहै।
ह्वैगो तेजहीन अतिदीन त्यो मलीन मुख छीनि ज्यों क्षितीश क्षिति दर्प भयो भगहै॥
मान्यो अतिशंक दुति वासर मयक कैसो कपत शरीर करै कौन अब जगहै।
देखि दिनराज रघुराजको बढत तेज दीपसी बुझानी रणरंगकी उमंग है॥ १॥
छूटि परयो करते कठोर सो कुठार तहां शीरी भई अनख सुपीरी मुख छायगै।
मंदमंद हेरै नैन बोलि नाहिं आवै वैन हिय हहरानो हठि डुब्बहू हिरायगै॥
रघुराज बाँकुरो समर रघुवीर बल भानुके उभत सान सूरसी सुखायगै।
क्षितिकी निक्षत्रताई कीरति कमाई जौन राम बीरताई बारिबुल्लासी विलायगै॥ २॥

पर०-जयरघुवंशवनजवनभानू । गहनदनुज कुल दहनकृशानू
जयसुरविप्र धेनु हितकारी।जयमदमोह कोह भ्रमहारी ॥ २ ॥
करौं कहा मुख एकप्रशंसा। जयमहेश मनमानसहंसा ॥ ३ ॥
अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता।क्षमहु क्षमा मंदिर दोउ भ्राता४
"कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गये बनहिंतपहेतू५

दोहा-देवन दीन्हीं दुन्दुभी, प्रभुपर वर्षहिं फूल ॥
हरषे पुरनर नारि सब, मिटा मोह भय शूल ॥ ५४ ॥

जनककीन्ह कौशिकहि प्रणामा।प्रभुप्रसाद धनुभंजेउ रामा१"
जन०-मोहिंकृतकृत्यकीन्हदोउ भाई। अबजोउचितसोकहियगुसांई
वि०-"कह मुनिसुनुनरनाह प्रवीना। रहा विवाह चाप आधीना

रघुवंशरूप कमलके खिलानेको सूर्यरूप आपकी जयहो। दैत्यकुलरूप गहन वनके जलानेको आप अग्निहो ॥ १ ॥ देवता, ब्राह्मण, गौके हितकारी आपकी जयहो। मद, मोह, क्रोध, भ्रम हरनेवाले आपकी जयहो ॥ २ ॥ एकमुखसे क्या बडाई करूं आप शिवके मनमानसेक हंसहो तुम्हारी जयहो ॥ ३ ॥ विनाजाने मैंने बहुत अनुचित कहा आप क्षमासागर दोनों भाई क्षमाकरो ॥ ४ ॥ हे राम ! तुम रघुकुलकी ध्वजाहो तुंम्हारी वारंवार जयहो। यह कह भृगुपति वनमें तपको गये ॥ ५ ॥

दोहार्थ-तब देवताओंने बाजे बजाये प्रभुपर फूलवरषे पुरके नरनारी प्रसन्नहुए मोह भय शूल मिटगये ॥ ५४ ॥

जनकने विश्वामित्रको प्रणामकर कहा कि, आपकी कृपासेही रघुराजने धनुष तोडा है ॥ १ ॥ मुझे दोनों भाइयोंने कृतकृत्य करदिया हे गोसाईं ! अब जो उचितहो सो करो ॥२॥ मुनि बोले हे प्रवीणराजन् !

---

१ छन्द दण्डक-सर्वपर सर्वहत सर्वगत सर्वरत सर्वमत पूज्य आनंदकारी ।
अखिलनायक अमल अखिल दायक सुयश अखिल भायक वपुष मोहहारी ॥
जयति रघुराज दिनराज कुल कमल रवि विप्रकृत काज धनु बाण धारी ।
भूप दशरथ सुअन सकल भुवनाभरन करन अशरन शरन दुअनदारी ॥

टूटतहा धनुभयउ विवाहू । सुर नर नाग विदित सब काहू
दो०-तदपि जाय तुम करहु अब, यथा वंश व्यवहार
बूझि विप्रकुल वृद्धगुरु, वेदविदित आचार ॥५५॥
दूत अवधपुर पठवहुजाई । आनैं नृप दशरथहि लिवाई
"मुदितराउ कहभलेहि कृपाला। पठये दूत अवध तेहि काला"

राजा-हे सेवको तुम सब जाकर मण्डपादिकी सब रचना करो विवाह की सामग्री एकत्रित करो ।

सेवक-जो आज्ञा हम अभी जाते हैं (सबगये)

इति नवम दर्शन ।

दशम दर्शन ।

(स्थान अयोध्या)

(राजा दशरथकी सभा लगरही है दूत आताहै)

दूत-हे द्वारपाल ! महाराजसे कहो जनकपुरका दूत आया है और मिथिलेशका पत्र लाया है ।

द्वा०-अभी जाता हूँ (गया और फिर आया) हे दूत चलो तुमको महाराज बुलाते हैं ।

दूत-जो आज्ञा भीतरगया और प्रणामकर पत्रीदी ।

"करिप्रणाम तिन्ह पाती दीन्हीं।मुदितमहीप आपु उठिलीन्हीं

सुनो व्याहतो धनुषके आधीनथा ॥ ३ ॥ धनुष टूटतेही विवाह होगया यह बात सुर नर नाग सबको विदितहै॥४॥(दोहार्थ) तौभी अब तुम जाकर जो वंशमें व्यवहार हो सो करो ब्राह्मण कुलवृद्ध गुरु सबसे बूझकर वेदविदित आचार करो ॥ ५५ ॥

अयोध्यामें दूत भेजदो वह महाराज दशरथको बुलालावैं ॥१॥ राजाने प्रसन्नहोकर कहा जो आज्ञा, और उसीसमय अवधपुरीको दूत भेजदिये २

नवम दर्शन ।

दशम दर्शन ।

अयोध्यामें दूतने जाय प्रणामकर पत्री दी राजाने प्रसन्न होकर आपही

वारिविलोचन बाँचत पाती। पुलकिगात आई भरिछाती ॥२॥
पुनि धरिधीर पत्रिकाबाँची।हरषी सभा बात सुनिसाँची ॥३॥"
दश०–जादिनते मुनिगये लिवाई। तबते आजु साँचिसुधिपाई
भैया कहहु कुशल दोउबारे। तुम नीके निज नैन निहारे॥५॥
दूत-दो०-सुनहु महीपति मुकुटमणि, तुमसम धन्य न कोय।
रामलषण जिनके तनय,विश्वविभूषण दोय ॥ ५६ ॥
जिनके यश प्रतापके आगे। शशि मलीन रवि शीतल लागे१॥
सीय स्वयम्बर भूप अनेका। सिमिटे सुभट एकते एका॥२॥
शम्भुशरासन काहु न टारा। हारे सकल भूप बरियारा ॥३॥
सकै उठाय सुरासुर मेरू। सोउ हिय हारि गयउ करफेरू॥४॥
दोहा–तहाँ रामरघुवंशमणि, सुनिय महामहिपाल।
भंजेउ चाप प्रयासबिनु, जिमि गज पंकज नाल ॥५७॥

उठकर ली ॥ १ ॥ पाती बाँचते नेत्रोंमें जलभर शरीर पुलकितहो छाती भरिआई ॥ २ ॥ फिर धीरज धरके पत्रीबांची सत्यबात सुनकर सब सभा प्रसन्न हुई ॥ ३ ॥ कि, जबसे मुनि लिवागये हैं तबसे आज सत्य समाचार पाये हैं ॥ ४ ॥ राजा बोले भैया तुम दोनों बालकोंकी कुशल कहोअपनी आँखोंसे तुमने दोनोंको देखा है ॥ ५ ॥ (दोहार्थ) हे नृप मुकुटमणि ! तुम्हारे समान कोई धन्य नहीं जिनके राम लक्ष्मण दोनों पुत्र विश्वके हैं ॥ ५६ ॥

जिनके यश प्रतापके आगे चन्द्रमा मलीन और सूर्य शीतल लगते हैं ॥ १ ॥ सीताके स्वयम्बरमें अनेकराजा इकट्ठे हुए जो एकसे एक बलीथे ॥ २ ॥ पर शिवका धनुष किसीसे नहीं टला सब राजा बलकर हारगये ॥ ३ ॥ जो सुर असुर सहित मेरुको उठासकता है वह भी हृदयमें हारकर फेरा करगया ॥ ४ ॥ (दोहार्थ) हे महाराज ! वहाँ रामचन्द्रने विना प्रयास ऐसे धनुषको तोडा जैसे हाथी कमलनालको तोड देता है ।

सुनि सरोष भृगुनायक आये । बहुतभाँति तिन आँख दिखाये
देखिरामबल निजधनु दीन्हा । करि बहु विनय गवन वन कीन्ह
देवदेखि तव बालकदोऊ । अवनि आँखतर आव न कोऊ ॥३॥
"सभासमेत राउ अनुरागे । दूतहि देन निछावरि लागे ॥ ४ ॥

दोहा—तब उठि भूप वशिष्ठकहँ, दीन्ह पत्रिका जाय ।
कथासुनाई गुरुहिसब, सादर दूत बुलाय ॥ ५८ ॥

सुनि बोले मुनि अतिसुख पाई।पुण्यपुरुष कहँ महिसुखछाई१"
वशि०--तुमकहँ सर्वकाल कल्याना।सजहु बरातबजाय निशाना।

दोहा—"चलेहु वेगि सुनि गुरुवचन, भलेहि नाथ शिरनाय।
भूपति गमने भवन तब, दूतहि वास दिवाय॥ ५९ ॥

राजा सब रनिवास बुलाई । जनकपत्रिका बाँचि सुनाई ॥ १ ॥
भूप भरत पुनि लिये बुलाई।हय गज स्यन्दन साजहु जाई ॥२॥

[illegible] बहुतभाँतिसे आँख दिखाई ॥ १ ॥ परन्तु रामका बल देखकर अपना धनुषदिया और बहुत विनयकर वनको गमन किया ॥२॥ हे देव ! तुम्हारे दोनों बालकोंको देखकर इस भूमण्डलमें कोई आंखतले नहीं आता ॥ ३ ॥ यह सुन राजा सभासमेत प्रसन्नहो दूतको न्यौछावर देने लगे ॥४॥(दोहार्थ)—तब राजाने उठकर वह पत्री वशिष्ठजीको दी और आदरसे दूतको बुलाय सब कथा गुरुको सुनाई ॥ ५८ ॥

तब मुनि बडा सुख पाकर बोले पवित्रपुरुषको पृथ्वीमें सुख छारहाहै॥१॥ तुमको सब समय कल्याण है बाजे बजाय बरात सजाओ॥ २ ॥

दोहार्थ—शीघ्र चलो यह गुरुके वचन सुन राजाने शिरनवाय कहा यही होगा और दूतको निवासदे राजा रनिवासको गये ॥ ५९ ॥

राजाने सब रनिवासको बुलाय जनककी पत्री बाँचकर सुनाई ॥ १ ॥ फिर राजाने भरतको बुलाकर कहा जाकर हाथी घोडे सजाओ ॥ २ ॥

चलहुवेगि रघुवीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता ॥ ३ ॥
दोहा–चढ़ि चढ़ि रथ बाहर नगर, लागी जुरन बरात।
होतशकुन सुन्दर सबहि, जो जेहिकारज जात ॥६०॥
सुमिरि राम गुरु आयसु पाई। चले महीपति शंख बजाई॥१॥"

बडी धूमसे बरात चलती है कौतुक होते हैं.

(स्थान जनकपुरी)

वार्त्ता।

दूत–महाराज ! बरात बहुत निकटहै।

जनक–तो अगौनीकेलिये लोगजाँय और आदरसे जनवासेमें टिकावैं और बडी भेंट दी जाय।

दूत–जो आज्ञा (यही सब होजायगा)

(सबलोग परस्पर मिलते हैं बरात टिकती है रामलक्ष्मण पिताके समीप आकर मिलते हैं)

दूत–महाराज ! लग्नका समय निकट है सब चलैं।

राजा–हम अभी आते हैं।

(सब चलते हैं श्रीराम घोडेपर चढकर द्वारपर जाते हैं स्त्रीजन आरती उतारती हैं)

"छंद–कोजान केहि आनन्दवश सब ब्रह्मवर परिछन चलीं।
कलगान मधुर निशान वर्षहिं सुमन सुर शोभा भली ॥

शीघ्र रघुवरकी बरातको चलो सुनकर दोनों भाई प्रसन्नहुए ॥ ३ ॥

दोहार्थ–रथोंके ऊपर चढ़कर नगरके बाहर बरात जुडनेलगी और जो जिस कार्यको जाय उसे सुन्दर शकुन होने लगे ॥ ६० ॥

रामका स्मरणकर गुरुकी अज्ञापाय राजा शंखबजाय चले ॥ १ ॥

(बरात चली)

छन्दार्थ–कौनजानै सब आनन्दमें मग्न होकर उस ब्रह्मवरकी आरती करने चलीं मधुर मनोहर गान होरहे बाजे बजरहे देवता फूल बरसारहे

आनन्दकन्द विलोकि दूलह सकलहिय हरषित भईं।
अंभोज अम्बक अंब उमँगि सुअंग पुलकावलि छईं॥ १ ॥

नैन नीर हठि मंगल जानी। परिछन करहिं मुदित मनरानी१॥
करिआरती अर्घ तिन्ह दीन्हा। रामगवन मण्डपमहँ कीन्हा २
दशरथसहित समाज विराजे। विभव विलोकि लोकपति लाजे
समय विलोकि वशिष्ठ बुलाये। सादर शतानन्दमुनि आये४॥
वेगि कुँवरि अब आनहु जाई। चले मुदित मन आयसु पाई५
सीय सँवारि समाज बनाई। मुदित मण्डपहि चलीं लिवाई॥६॥
इहिविधि सीय मण्डपहि आई।प्रमुदित शान्ति पढ़हिं मुनिराई

शान्तिपाठः।

ऋषि–ॐ स्वस्ति न इन्द्रोवृद्धश्रवाः स्वति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु १॥

बडी शोभाहोरही आनन्दके कन्द दूलहको देख मनमें सब प्रसन्न हुईं उनके कमलसे नेत्रोंमें जल भरिआया अंगमें पुलकावलि छागई ॥ १ ॥

नेत्रोंमें जलभरा तब मंगलका समय जानकर रानी प्रसन्नहो परछन करनेलगीं ॥ १ ॥ फिर आरती करके उन्होंने अर्घ्य दिया रामने मण्डपमें गमन किया ॥ २ ॥ सब समाजसहित दशरथजी विराजे उनका ऐश्वर्य देख लोकपति लज्जित हुए ॥ ३ ॥ समय जानकर वशिष्ठजीने आदरसे शतानन्दको बुलाया और शतानन्दमुनि आये ॥ ४ ॥ वशिष्ठजी बोले अब बहुत शीघ्र जाकर कुमारीको लाओ तब मुनि आज्ञापाय प्रसन्नहो चले ॥ ५ ॥ सखी सीताजीको सँभारकर समाज बनाय प्रसन्नहो मण्डपको लिवा लेचलीं ॥ ६ ॥ इस प्रकार सीता मण्डपमें आईं मुनिजन प्रसन्नहो शान्ति पढने लगे ॥ ७ ॥

---

१ मनमें मञ्जु मनोरथ होरी। सो हर गौरि प्रसाद एकते कौशिक कृपा चौगुनी भोरी। प्रण परिताप चाप चिंता निशि शोच सँकोच तिमिर नहि थोरी। रविकुल रवि अवलोकि सभासरहित चितवारिज वनविकस्योरी। कुंवर कुँवारि सब मंगल मूरति नृप दोउ धरम धुरंधर धोरी। राज समाज भूर भागी निजलोचन लाहु लह्यो इक ठोरी। व्याह उछाह रामसीताको सुकृत सकेल विरंचि रच्योरी। तुलसिदास जानै सोइ यह सुख जा उर बसत मनोहर जोरी॥

ॐ पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ २ ॥

ॐ विष्णोरराटमसि विष्णोः श्नप्त्रेस्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ ३ ॥

ॐ अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतोदेवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥ ४ ॥

ॐद्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि ॥ ५ ॥

गणपतिपूजनम्।

ॐ गणानान्त्वा गणपतिꣳहवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपतिꣳहवामहे वसो मम आहमजानि गर्ब्भधमात्वमजासि गर्ब्भधम्। गणेशाय नमः।

गौरीपूजनम्।

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
स्वाहा मातरो लोकमातरः। धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिस्तथात्मकुल देवता। षोडशमातृभ्यो नमः।

नवग्रहपूजनम्।

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु।

कलशपूजनम्।

ॐवरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनीस्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद। वरुणाय नमः।

"छन्द–आचार करि गुरु गौरि गणपति मुदित विप्र पुजावहीं
सुर प्रगट पूजा लेहिं देहिं अशीश अतिसुख पावहीं ॥
मधुपर्क मंगलद्रव्य जो जेहि समय मुनि मनमें चहैं ।
भरे कनक कोपर कलश सब्र करलिये परिचारक रहैं ॥ १ ॥
वर कुँवर करतल जोर शाखोच्चार दोउ कुलगुरु करैं ।
भयोपाणि ग्रहण विलोकि विधि सुर मनुज मुनि आनँद भरैं
सुखमूल
करि लोक वेद विधान कन्यादान नृप भूषण दिये ॥२॥"

छन्दार्थ–आचार करिके ब्राह्मण गौरी और गणपतिको प्रसन्न होकर पुजवाते हैं। देवता प्रकट होकर पूजालेते और आशीश देते जिससे अतिसुख पाते हैं, मधुपर्क मंगलद्रव्य जो जिससमय मुनि मनमें चाहते हैं सुवर्णके पात्र और कलशोंमें भरे सब परिचारक लिये रहते हैं ॥ १ ॥ वर और कुमारीका हाथ पकड़ाकर दोनों कुलगुरु शाखोच्चार करते हैं, पाणिग्रहण हुआ देख विधि सुर नर मुनि अत्यानन्द हुए दोनों स्त्री पुरुष सुखमूल दूलहको देख मनमें प्रसन्न और पुलकित होते हैं लोक वेदका विधानकर कन्यादान देकर राजाने भूषण दिये ॥ २ ॥

---

१ भूपाली–बन्यो सिय प्यारीको बनरा । कि बरवस मोहिलेत मनरा । मौरशिर सोनेको भारी । विविधमणि चित्र चमत्कारी । करन छबि महँदीकी भारी ॥ महावर पगन चित्रकारी ।

दोहा–कंकणकी कमनीयता, कही कौनपै जाय । अलख झलख लख खलक अलि, पलक परत न सुहाय । गले गजमोतियनको गजरा । चलन चितवन गति चितचोरी । वचनकी रचन लाजतोरी ॥ गरबतजि विवस भई गोरी । धामके काम दाम छोरी । दोहा–हँसन असी मुख म्यानते, सुधामुखी असितधार । काढ कामिनी कतल करी, दशरथ राजकुमार । रँगीली आँखियनमें कजरा ॥ १ ॥

राग परज–बन्यो सखी दूलह अजब रँगीलो । दशरथ कुँवर साँवरो अद्भुत सोहत परम छबीलो ॥ अनव्याही व्याही सब व्याही देखत रूप ठगीलो । राम सखे अब लगत प्राणसम पियरो अवध नबीलो ॥२॥

शाखोच्चारः।

शतानन्द०—श्रीमत्पंकजविष्टरौ हरिहरौ वायुर्महेन्द्रोनल-
श्चन्द्रो भास्करवित्तपालवरुणाः क्षेत्राधिपाद्या ग्रहाः ॥
प्रद्युम्नो नलकूबरौ सुरगजश्चिन्तामणिः कौस्तुभः
स्वामी शक्तिधरश्च लाङ्गलधरः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥ १ ॥

किं गोत्रस्य किं प्रवरस्य किं शाखिनः किं वेदाध्यायिनः। किं वर्म्मणः प्रपौत्राय किं गोत्रस्य किं प्रवरस्य किं शाखिनः किं वेदाध्यायिनः किं वर्मणः पौत्राय किं गोत्रस्य किं प्रवरस्य किं शाखिनः किं वेदाध्यायिनः किं वर्मणः पुत्राय आयुष्मते कन्यार्थिने विष्णुस्वरूपिणे किं नाम्ने वराय।

वशि०— आशीर्वादः।

गौरी श्रीकुलदेवता च सुभगा भूमिः प्रपूर्णा शुभा
सावित्री च सरस्वती च सुरभिः सत्यव्रतारुन्धती ॥
स्वाहा श्रीविधिरूपिणी च सुखदा दुःस्वप्नविध्वंसिनी
वेला चाम्बुनिधेः समीनमकरा कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥

शाखोच्चारः।

काश्यपगोत्रस्यकाश्यपावत्सनैध्रुवेतित्रिप्रवरस्य यजुर्वेदस्य माध्यन्दिनीयशाखाध्यायिनः श्रीनाभागवर्मणः प्रपौत्राय। काश्यपगोत्रस्यकाश्यपावत्सनैध्रुवेति त्रिप्रवरस्य यजुर्वेदस्य माध्यन्दिनीयशाखाध्यायिनः श्रीराजाजवर्मणः पौत्राय काश्यपगोत्रस्यकाश्यपावत्स० श्रीमद्राजदशरथवर्मणःपुत्राय श्रीमते रामचन्द्रनाम्ने विष्णुस्वरूपिणे कन्यार्थिने वराय।

प्रश्न।

किं गोत्रस्य किं प्रवरस्य किं शाखिनः किं वेदाध्यायिनः किं वर्मणः प्रपौत्रीम्। किं गोत्रस्य० किं वर्मणः पौत्रीम्। किं गोत्र०

किं वर्मणः पुत्रीं श्रीरूपिणीं वरार्थिनीं किं नाम्नीं कन्याम् ।

शता०— उत्तर ।

आत्रेयगोत्रस्य आत्रेयशातातपसांख्येति त्रिप्रवरस्य माध्यन्दिनीयशाखिनःयजुर्वेदाध्यायिनःश्रीमद्राजनिमिवर्मणः प्रपौत्रीम् ।

आत्रेयगोत्रस्य०श्रीमद्राजमिथिवर्मणः पौत्रीम् । आत्रेयगोत्रस्य०-श्रीमद्राजजनकवर्मणः पुत्रीं आयुष्मतीं श्रीरूपिणीं वरार्थिनीं सीतानाम्नीं कन्याम् ।

संकल्पः ।

जन०-ॐविष्णुः३नमःपरमात्मने श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय ॐतत्सत् श्रीहंसस्य सच्चिदानन्दरूपिणो ब्रह्मणोऽनिर्वाच्यमायाशक्तिविजृम्भिताविद्यायोगात्कालकर्मस्वभावाविर्भूतमहत्तत्त्वोदिताहंकारतृतीयोद्भूतवियदादिपंचकेंद्रियदेवतानिर्मिताण्डकटाहेचतुर्दशलोकात्मके लोके लीलया तन्मध्यवर्तिभगवतःश्रीनारायणस्याङ्गनाभिकमलोद्भूतेन सकललोकपितामहेन ब्रह्म... कुर्वता तदुद्धरणाय प्रजापतिप्रार्थितेन महापुरुषरूपिणा सितवाराहावतारेण ध्रियमाणायामस्यां भूर्लोकसंज्ञितायां धरित्र्यां सप्तद्वीपमण्डितायां क्षीराद्यब्धिद्विगुणद्वीपवलयीकृतलक्षयोजनविस्तीर्णे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे स्वर्गस्थिताद्याशासितावतारे ...दिसरिद्धि पुण्यक्षेत्रे श्रीभगवन्मार्तण्डकृपापात्रज्योतिषाचार्यगणितायां पराद्धादिसंख्यायां श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धस्य द्वितीये यामे तृतीये मुहूर्ते श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे त्रेतायुगे हेमन्ततौ मार्गशीर्षमासे शुक्ले पक्षे पंचम्यां तिथौ उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रे अत्रिगोत्रोत्पन्नो जनकवर्मा समहिषीकोहं राजराजेश्वर-

श्रीनाभागवर्मणः प्रपौत्राय, श्रीराजाजवर्मणः पौत्राय महाराजदशरथवर्मणः पुत्राय आयुष्मते विष्णुस्वरूपिणे कन्यार्थिने श्रीरामचन्द्रनाम्ने वराय। श्रीमद्राजस्वर्णरोमवर्मणः प्रपौत्रीं ह्रस्वरोमवमर्णः पौत्रीं जनकवर्मणः पुत्रीमायुष्मतीं श्रीरूपिणीं वरार्थिनीं सीतानाम्नीं कन्यां यथाशक्त्यलंकृतां बहुयौतुकान्वितां समस्तफलप्राप्तिकामः पितॄन् पवित्रीकर्तुमात्मनश्च श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतये देवाग्निगुरुब्राह्मणसान्निधौ—अग्निसाक्षिकतया सहधर्मचरणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे ॥

श्लोक--सीतां कन्यामिमां राजन् यथाशक्त्युपलंकृताम्।
तुभ्यं काश्यपगोत्राय दत्तां राम समाश्रय ॥

छन्द--हिमवन्त जिमि गिरिजा महेशहि हरिहि श्रीसागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समर्पीं विश्व कल कीरति नई ॥
किमि करै विनय विदेह कीन्ह विदेहमूरति साँवरी।
करि होम विधिवत गाँठि जोरी होन लागीं भाँवरी ॥ ३ ॥"

"कुँवरि कुँवर कलभामरि देहीं। नैनलाभ सब सादर लेहीं[1] ॥
रामसीय सुन्दर परिछाहीं। जगमगाहिं मणिखंभनमाहीं ॥२॥

छन्दार्थ—हिमालयने जैसे शिवजीको पार्वती, सागरने जैसे भगवान्को लक्ष्मी दी थी इसीप्रकारसे जनकने रघुनाथजीको सीता समर्पण की। विश्वमें नई कीर्त्ति छागई, विदेह किसप्रकारसे बिनती करै साँवरी मूर्तिने विदेह करडाला, विधिपूर्वक होम कर गाँठि जोडी और भाँवरी होने लगीं ३

कुमर और कुमारियोंकी भाँवरि दीजाती हैं सब आदरसे नेत्रोंका लाभ लेते हैं॥१॥राम और सीताकी सुन्दर परिछाहीं मणिखंभोंमें जगमगाती हैं२

---

१ राग कान्हरा—देखोरी छबि राम वदनकी । कोटि कोटि दामिनि दर्पण द्युति निंदति कांति कपोल रदनकी । नासा मृदु मुसकान माधुरी मंदकरी अतिघमंड मदनकी । फवरह्यो क्रीट मुकुट अलकनपर मनोफाँस दृग मीन फसनकी । चोरत चित्त भ्रुकुटि दृग शोभा कुंडल झलक खौर चंदनकी । राम सखे छबि कहि न जात जब सुधन रहत लख बदन वसनकी ॥ १ ॥

बहुरि वसिष्ठ दीन्ह अनुशासन । वर दुलहिन बैठे इक आसन ३
छन्द-तब जनक पाय वसिष्ठ आयसु व्याह साज सँभारिकै ।
माण्डवी श्रुतिकीर्त्ति उर्मिला कुँवारि लई हँकारिकै ॥
कुशकेतुकन्या प्रथम जो गुण शील सुखशोभामई ।
सबरीति प्रीतिसमेत करि सो व्याह नृप भरतहि दई १॥
जानकी लघुभगिनि सब सुन्दर शिरोमणि जानिकै ।
सो दीन्ह तनया व्याहिलषणहिं सकलविधि सन्मानिकै
जेहि नाम श्रुतिकीरतिसुलोचनिसुमुखिसबगुण आगरी
सो दीन्ह रिपुसूदनहिं भूपति रूपशील उजागरी ॥२॥
कर जोरि जनक बहोरि बंधु समेत कौशलरायसों ।
बोले मनोहर वैन सानि सनेह शील सुभायसों " ॥
जनक-सम्बन्ध राजन रावरे हम बडे अब सब विधि भये ।

फिर वसिष्ठने आज्ञा दी तब वर और दुलहिन एके आसनपर बैठे ॥ ३ ॥ (छन्दार्थ)-तब जनकजी वसिष्ठकी आज्ञा पाय व्याहका साजसँभार माण्डवी, श्रुतिकीर्त्ति, उर्मिला इन तीनों कुमारियोंको बुलालाये । इनमें कुशकेतुकी कन्या माण्डवी, जो गुण शील सुख और शोभाकी खान है, सो सब रीति प्रीति समेत भरतजीको व्याह दी १ जानकीकी छोटि बहन उर्मिला सबकी सुंदरतामें शिरोमणि जानकर सबप्रकारके सन्मानसहित लक्ष्मणजीको व्याह दी, जिसका नाम श्रुतिकीर्त्ति सुलोचनी जो सुन्दरमुखवाली और सब गुणोंमें आगरी थी राजाने उस रूपशील उजागरीको रिपुसूदनसे व्याह करदिया ॥ २ ॥ फिर जनकजी हाथ जोड़कर बंधुसमेत कौशलराजासे मनोहर वचन शीलसनेहके सने स्वभावसे बोले हे राजन्! आपके सम्बन्धसे अब हम सबभाँतिसे बडे

—रागजंगला—लेहु री भर लोचन लाहू । पुष्पन वर्षत मुनिजन हर्षत सियारामको अजब विवाहू । मिथिला पुरकी सखी सयानी समझ समझ सिख दे सबकाहू । फिर कब राम जनकपुर ऐहैं हम नाहिं नगर अयोध्या जाहू । तुलसिदास दोउ मिले परस्पर नृप दशरथ मिथिलापुर राऊ ॥

इह राजसाजसमेत सेवक जानिये विनु गथलये ॥ ३ ॥
यह दारिका परिचारिका करपालवी करुणामई ।
अपराध क्षमियो बोलि पठये बहुत हौं ढीठीदई ॥
"मिलेजनकदशरथअतिप्रीती। करिलौकिकवैदिकसबरीती१"
शता०—श्लोक—वासो यस्य समस्तजीवननिधौ रत्नाकरो भूषणं
यस्यास्ते हृदि कौस्तुभं सुविमलं यस्यास्ति लक्ष्मीर्वशे ॥
वाणी यस्य मुखारविन्दविदितानन्दः सदा नन्दते
तस्मै लोकविभूषणाय भवते किं देयमस्मद्विधैः ॥ १ ॥
वसिष्ठ—धन्यो मेरुगिरिर्यदेकशिखरे ब्रह्मेन्द्ररुद्रादयः
स्वच्छन्दं निवसन्ति स क्षितितले क्वास्तीति नज्ञायते ॥
तां धत्ते भुजगाधिपः स च करे शम्भोरभूत्कंकणं
देवोऽसौ वसति त्वदीयहृदये त्वत्तो महान्कः परः ॥ २ ॥

हुए यह राजसाज समेत सब विना दामके सेवक जानो ॥ ३ ॥ यह कन्या अपनी दासी समझकर करुणाकरके पालन करनी, मेरा अपराध क्षमा करना कि, मैंने तुमको बुलाकर बड़ी ढीठता की है ।

जनक और दशरथ बड़े प्रेमसे लोक वेदकी सब रीति करके मिले ॥१॥

श्लोकार्थ—सम्पूर्ण जीवनके निधिमें जिनका निवास है और जिनके हृदयमें निर्मल कौस्तुभमणि भूषण है तथा जिनके वशमें लक्ष्मीहैं प्रसिद्ध है कि जिनके मुखारविन्दमें वाणी विदित है जिनका खड्ग निरन्तर आनंद करता है उन लोकके भूषण आप सरीखोंके लिये हम क्या देसकते हैं ॥१॥ वसिष्ठजी बोले मेरुगिरि धन्य है जिसके एक शिखरमें ब्रह्मा, रुद्र आदिक निवास करते हैं, भूमिपर वह कहां है सो भी नहीं जाना जाता उस भूमिको शेषजी धारण करते हैं और वह शेष शंकरके हाथका कंकणरूप भूषण हुए हैं वह देवादि देव तुम्हारे हृदयमें निवास करते हैं तुमसे अधिक कौन है ॥ २ ॥

दोहा-"सहित वधूटिन कुमर सब, तब आये पितुपास ।
शोभा मंगलमोदभरि, उमगेउ जनु रनिवास ॥ ६१ ॥
पुनि जिवनार भई बहुभाँती। पठये जनक बुलाय बराती ॥ १ ॥
भाँति अनेक परे पकवाने । सुधासरिस नहिं जाहिं बखाने ॥ २ ॥
इहि विधि सबही भोजन कीन्हा। आदरसहित आचमनलीन्हा ३
दोहा-देइ पान पूजे जनक, दशरथसहित समाज ।
जनवासे गमने मुदित, सकल लोक शिरताज ॥६२॥"

ग्यारहवाँ दर्शन ।

(रामचंद्रका सासुसे विदा होना)

राम-राउ अवधपुरचहतसिधाये। विदा होन हम यहाँ पठाये १
मातु मुदितमन आयसु देहू । बालक जानि करब नितनेहू ॥२॥
"सुनत वचन बिलखेउ रनिवासू।बोलि न सकहिं प्रेमवश सासू ३
हृदय लगाय कुँवरि सबलीन्हीं। पतिन सौंप विनती अतिकीन्हीं

दोहार्थ-फिर सब बहुओं सहित कुमर पिताके पास आये शोभा मंगलमोदमें भरकर मानो रनिवास उमँग उठा ॥ ६१ ॥

फिर अनेक प्रकारसे ज्यौनार हुई जनकने बरातियोंको बुला-भेजा ॥ १ ॥ अनेक भाँतिके पकवान अमृतके समान बखाने नहीं जाते जिमाये ॥२॥ इसप्रकारसे सबने भोजन किया आदरसे आचमन लिया॥३॥

दोहार्थ-फिर जनकजीने पान देकर समाजसहित दशरथका पूजन किया और फिर सब लोकके शिरताज प्रसन्न हो जनवासेको गये ॥ ६२ ॥

इति दशमदर्शन ।

रामचन्द्र बोले महाराजा अवधपुर चलना चाहते हैं हमको बिदा होनेको यहां भेजा है ॥ १ ॥ हे माता! मनमें प्रसन्न होकर आज्ञा दो और बालक जानकर सदा प्रेम करो ॥ २ ॥ वचन सुनकर रनिवास व्याकुल होगया सास प्रेमके कारण बोल नहीं सकतीं ॥ ३ ॥ सब कुमा-रियोंको माताने हृदयसे लगाय पतियोंको सौंप विनती की ॥ ४ ॥

सुनयना, छन्द–

करि विनय सिय रामहिं समर्पी जोरि कर पुनि पुनि कहै
बलिजाउँ राम सुजान तुमकहँ विदित गति सबकी अहै ॥
परिवार पुरजन मोहिं राजहिं प्राणप्रिय सिय जानवी ।
तुलसी सुसहज सनेह लखि निज किंकरी करि मानवी ॥ १ ॥
"राम विदा माँगत करजोरी। कीन्ह प्रणाम बहोरि बहोरी१॥
पुनि धीरज धरि कुँवरि हँकारी। बारबार भेंटहिं महतारी ॥ २ ॥
बंधुसमेत जनक तब आये। सीय विलोकि नैनजल छाये ॥३॥
लीन्ह राय उर लाय जानकी। मिटी महामर्याद ज्ञानकी ॥ ४ ॥
बारहिं बार सुता उरलाई। साजि सुन्दर पालकी मँगाई ॥ ५ ॥

दोहा–प्रेम विवश परिवार सब, ज़ान सुलग्न नरेश ।
कुँवरि चढाई पालकी, सुमिरे सिद्धगणेश ॥ ६३ ॥

छन्दार्थ–विनय करके रामको सीता समर्पण की और हाथ जोडकर माता बारंबार कहने लगी हे राम सुजान ! मैं बलिजाऊं तुमको सबकी गति विदित है कुटुम्बी पुरवासी मुझे और राजाको जानकी प्राणोंके समान जाननी, तुलसीदास कहते हैं सहज सनेह देखकर अपनी दासी करके जाननी ॥ १ ॥

राम बारंबार विदा माँगते हैं बारंबार प्रणाम किया ॥ १ ॥ धीरज धर माताने कुमारी बुलाई और बारंबार मिलीं ॥ २ ॥ उसी अवसरमें बंधुओं समेत जनकजी आये और सीताको देख नेत्रोंमें जल छागया ॥ ३ ॥ राजाने जानकीको हृदयसे लगाया ज्ञानकी महामर्याद मिटी ॥ ४ ॥ बारबार पुत्रीको हृदयसे लगाय सुन्दर पालकी मँगाय सजाय ॥५॥ (दोहार्थ)–सब परिवारको प्रेमवश जानकर और सुन्दर लग्न जानकर सिद्धगणेशको ध्यानधर जानकीको पालकीपर चढाया ॥ ६३ ॥

कौशलपति समधी जनक, सन्माने सब भांति ।
मिले परस्पर विनय अति, प्रीति न हृदय समाति ॥ ६४ ॥
सुर प्रसून वर्षहिं हरषि, करहिं अप्सरा गान ।
चले अवधपति अवधपुर, मुदित बजाय निशान ॥ ६५ ॥
बीच बीच वरवास करि, मग लोगन सुखदेत ।
अवधसमीप पुनीत दिन, पहुँची आयं जनेत ॥ ६६ ॥
कौशल्यादि राम महतारी । प्रेमविवश तनु दशा बिसारी ॥ १
दोहा—इहि विधि सबही देतसुख, आये राजदुआर ।
मुदित मातु परिछन करहिं, वधुनसमेत कुमार ॥ ६७ ॥
निगमरीति कुलरीति कर, अर्घ्य पांवडे देत ।
वधुनसहित सुत पराछि सब, चलीं लिवाय निकेत ॥ ६८ ॥

महाराज दशरथजीने अपने समधीका सब भाँतिसे सत्कार किया और परस्पर बड़ी विनयसे मिले प्रीति हृदयमें नहीं समाती ॥ ६४ ॥ देवता प्रसन्न हो फूल बरसाते हैं अप्सरा गान करती हैं महाराज दशरथ बाजे बजवाय प्रसन्न हो अयोध्याको चले ॥ ६५ ॥ बीच २ में सुन्दर निवास कर मार्गके लोगोंको सुख देते हुए पवित्र दिनमें अवधके समीप बरात आपहुँची ॥ ६६ ॥

कौशल्यादि रामकी महतारी यह समाचार सुन प्रेमवशः शरीरकी दशा भूलगई ॥ १ ॥ (दोहार्थ)—इसप्रकार सबको सुखदेते भगवान् राजद्वारपर आये माता प्रसन्नहो वधुओंसमेत कुमारोंकी आरती करने लगीं ॥ ६७ ॥ लोक वेदकी रीति कर अर्घ्य पांवडे देती हुई देवताओंको मनाय कुमार और बहुओंकी आरती कर भवनमें लिवाचलीं ॥ ६८ ॥

---

१ राग कान्हरा—भुजनपर जननि वारि फेरि डारी । क्यो तोरो कोमल कर कमलन शंभु शरासन भारी । क्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताडका मारी । मुनि प्रसाद मेरे राम लषणकी बिधि सब करवर टारी । चरण रेणुले नयनन लावति क्यों मुनिवधू उधारी । कहो धों तात क्यों जीत सकल नृप वरी विदेह कुमारी । दुसह रोष मूरत

इन सुखते शतकोटि गुण, पावहिं मातु अनन्द ।
भाइनसहित विवाह घर, आये रघुकुलचन्द ॥ ६९
सोरठा–सियरघुवीर विवाह, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं
तिनकहँ सदा उछाह, मंगलायतन रामयश ॥ ७० " ॥

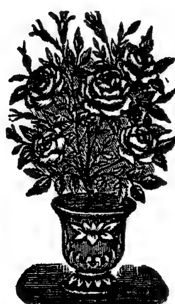
इति बालकाण्ड सम्पूर्णम् ।

इन सुखोंसे भी कोटिगुणा सुख और आनन्द माता पाती हैं भाइयों सहित व्याह कर रामचंन्द्र घर आये ॥ ६९ ॥ (सोरठार्थ)–सीता और रामका विवाह जो प्रेमसे गावैंगे और सुनैंगे उनको सदा उछाह रहैगा रामका यश मंगल करनेवाला है ॥ ७० ॥

इति बालकाण्डं सम्पूर्णम् ।

भृगुपति अति नृपति निकर छैकारी । क्यों सौंप्यो सारग हारि हिय करत बहुत अनुहारी । उमग उमग आनंद विलोकति वधुन सहित सुत चारी । तुलसिदास आरती उतारति प्रेम मगन महतारी ॥

राग कालिंगडा–निरखत रूप सिया रघुवरको छवि नाहिं जात बखानी । आरती करत कौशल्यारानी । कनक थार गज माणिक मुक्ता भरयो वेद विधआनी । मारयो मान सकल भूपनको महिमा वेद बखानी । तोरन धनुष जनक गुण पूरण तीन लोकमे जानी । जनकरायकी लज्या राखो परशुरामहित मानी । सुरपुरनारि अवधपुरवासी करत विमल यश गानी । नचत नवल अपसरा मुदितमन. वरष सुमन हर्षानी । रत्नमंदिरमें रत्नसिंहासन बैठे सारंगपानी । मात कौशल्या करत आरती हर्षनिरख मुसकानी । दशरथसहित अवधपुरवासी उचरत जैजैवानी। तुलसिदास यह अविचल जोरी भक्त अभयपद दानी ॥



इति

बालकाण्डम्

समाप्तम् ।

श्रीगणेशाय नमः।

अथ

रामलीलारामायणे अयोध्याकाण्डं प्रारभ्यते

प्रथम दर्शन।

(रामचंद्र सिंहासनपर बैठे हैं नारदजी आते हैं)

"एक बार जानकी समेता। बैठे प्रभु निज रुचिर निकेता ॥१
त्यहि अवसर मुनि नारद आये। सुरहित लागि विरंचि पठाये २
सादर निज आसन बैठारे। जनकसुता तब चरण पखारे ॥३॥"
कहमुनि तव महि   जानौं कछुतुम्हरी दाया ४
ब्रह्मभवन में रह्यों कृपाला। गावत तव गुण दीनदयाला ॥ ५
अवध चलत विरंचिमोहिं जाना।कीन्हीं विनय लागि मम काना

"रामरूप उर धरि मुनि नारद।चले करत गुणगान विशारद ९"

प्रथम दर्शन।

टीका—एक समय जानकीके सहित प्रभु अपने आसनपर विराजमान् थे ॥ १ ॥ उसी अवसरमें नारदजी आये और ब्रह्माजीने उनको देवताओंके निमित्त भेजा था ॥ २ ॥ आदरसे नारदजीको अपने आसनपर बैठाया तब जानकीने चरण धोये ॥ ३ ॥ मुनि बोले हे राम! तुम्हारी दयासे मैं कुछ तुम्हारी महिमा जानता हूं ॥४॥ हे भगवन्! मैं ब्रह्मलोकमें तुम्हारे गुण गाते हुए स्थित था ॥ ५ ॥ जब ब्रह्माजीने मुझको अयोध्या चलते जाना तो मेरे कानोंमें लगकर विनय की ॥ ६ ॥ हे नाथ! जिस निमित्त मनुष्य अवतार लिया है अब उसपर विचार करो ॥ ७ ॥ राम बोले हे तात! ब्रह्माजीसे समझाकर कहो कुछ दिन गये हम आनकर देखैंगे॥८॥मुनि नारद रामका रूप हृदयमें धारणकर गुण गानकरते चले९॥

(राजा दशरथकी सभा)

"एक समय सब सहित समाजा। राजसभा रघुराजविराजा १०
राउ स्वभाव मुकुर करलीन्हा। बदन विलोकि मुकुट सम कीन्हा
श्रवण समीप भये सित केशा। मनहुँ चौथपन अस उपदेशा १२
नृप युवराज रामकहँ देहू। जीवन जन्म सफल करि लेहू ॥१३॥
दोहा—अस विचारि उर आनि नृप, सुदिन सुअवसर पाइ ।
तनु पुलकित मन मुदित अति, गुरुहिं सुनायउ जाइ१"
दश०-कहेउभुआलसुनियमुनिनायक। भयेराम सर्वविधिसबलायक
अब अभिलाष एक मन मोरे । पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे॥२॥
नाथ राम कीजिय युवराजू। कहिय कृपा करि करिय समाजू ३
मोहिं अछत अस होउ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू ४
पुनि न शोच तनु रहै कि जाऊ। ज्यहि न होइ पाछे पछिताऊ ५

एक समय सब समाज सहित राजसभामें महाराज दशरथ विराजमान थे ॥ १० ॥ राजाने स्वभावसेही हाथमें मुकुर (दर्पण) लिया और मुख देखकर मुकुट समान किया ॥ ११ ॥ कानोंके समीप श्वेत केश होगया मानो चौथेपनने यह उपदेश दिया ॥ १२ ॥ हे राजन् ! तुम रामको युवराज देकर अपना जन्म सफल करलो ॥ १३ ॥

दोहार्थ—ऐसा विचारकर राजाने भला दिन और भला अवसर पाकर शरीरसे पुलकित हो प्रसन्नतासे गुरुसे सुनाया ॥ १ ॥

दशरथजी बोले हे मुनिराज ! अब राम सबविधिसे सबलायक हुए॥१॥ अब जो मेरे मनमें अभिलाषा है सो आपके अनुग्रहसे पूरी होगी ॥ २ ॥ हे नाथ ! रामको युवराज करो और कृपाकर समाज करनेकी आज्ञा दो॥३॥ मेरे होते ऐसा उछाह हो और सब लोग आनन्दको देख नेत्र सफल करैं ॥ ४ ॥ फिर शोच नहीं कि, शरीर रहै अथवा जाय जिससे फिर पीछे पछताना न पड़ै ॥ ५ ॥

वशि०-दोहा-वेगि विलम्ब न करिय नृप, साजिय सबै समाज।
सुदिन सुमंगल तबहिं जब, राम होहिं युवराज ॥ २ ॥
"मुदित महीपति मन्दिर आये। सेवक सचिव सुमन्त बुलाये"
दश०-प्रमुदित मोहिं कहेउ गुरु आजू। रामहिं राज देहु युवराजू।
दोहा-कहेउ भूप मुनिराजकर, जो जो आयसु होइ।
राम राज्य अभिषेकहित, वेगि करहु सोइ सोइ ॥ ३ ॥
"तब नरनाह वशिष्ठ बुलाये। रामधाम सिख देन पठाये ॥ १ ॥
गुरु आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आय नायउ पद माथा २॥
गहे चरण सिय सहित बहोरी। बोले राम कमल कर जोरी॥३॥
रा०-सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगलमूल अमंगलदमनू ४॥
यदपि उचितअस बोलि सप्रीती। पठइयनाथ काज अस नीती५
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आज मम गेहू ॥६॥
आयसु होय सो करिय गुसांई। सेवक लहै स्वामि सेवकाई॥७॥

दोहार्थ-वशिष्ठजी बोले राजन्! अब देर न करो सब साज सजाओ। सुदिन सुमंगल तबहीं है जब राम युवराज होंय ॥ २ ॥

प्रसन्न हो राजा मन्दिरमें आये सेवक मंत्री और सुमन्तको बुलाया॥१॥ राजाने कहा प्रसन्न होकर मुझसे गुरुजीने कहा है कि, रामको युवराज दो ॥ २ ॥ (दोहार्थ)-मुनिराजकी जो जो आज्ञा हो वह २ रामराज्यके अभिषेकके लिये शीघ्रतासे करो ॥ ३ ॥

तब राजाने वशिष्ठजीको बुलाया, वह रामके स्थानमें शिक्षादेने गये॥१॥ गुरुका आगमन सुनते ही रामचन्द्रने द्वारे आनकर शिर नवाया ॥ २ ॥ जानकी सहित चरण पकड़े और हाथजोड़के रामचन्द्र बोले ॥ ३ ॥ सेवकके घर स्वामीका आना मंगलकी मूल और अमंगलका दूर करनेवाला है ॥४॥ हे नाथ! उचित तो ऐसा है कि, काम हो तो बुला भेजो ऐसी नीति है ॥ ५ ॥ प्रभुता छोड़कर प्रभुने कृपा की आज मेरा घर पवित्रहुआ ॥ ६ ॥ जो आज्ञा होय सो हे प्रभु! मैं करूं सेवक स्वामीकी सेवकाई पावै ॥ ७ ॥

दोहा-"सुनि सनेह साने वचन, मुनि रघुवरहि प्रशंस ।"
राम कस न तुम कहहु अस, हंस वंश अवतंस ॥ ४ ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुमहिं युवराजू ॥१॥
राम करहु सब संयम आजू।जो विधि कुशल निबाहै काजू ॥२॥
"गुरु सिख देइ राउ पहँ गयऊ।रामहृदय अस विस्मय भयऊ

(मंथरा फिरती है)

देखि मन्थरा नगर बनावा। मंगल मंजुल बाजु वधावा ॥ ४ ॥
पूँछेसि लोगन्ह काह उछाहू।राम तिलक सुनि भा उरदाहू ५॥
भरत मातु पहँ गइ बिलखानी।का अनमनि हँसि हँसि कह रानी
दोहा-सभय रानि कह कहसि किन, कुशल राम महिपाल ।
भरत लषण रिपुदमन सुनि,भा कुबरी उरशाल ॥ ५ ॥"

डि कु

हि विधि अतिदाहिन।देखत गर्व रहत उर नाहिन २

दोहार्थ-यह सनेहके सने वचन सुन मुनिने रघुनाथकी प्रशंसा की हे राम ! तुम सूर्यकुलमें उत्पन्न होकर ऐसा क्यों न कहो ॥ ४ ॥

राजाने अभिषेकका समाज सजाया है तुम्हें युवराज देना चाहते हैं १॥ हे राम ! आज सब संयम करो जो विधि कुशलसे सब कार्य निवा है ॥२॥ गुरु शिक्षा देकर राजापर गये रामके हृदयमें बड़ा विस्मय हुआ कि, विना भरतके यह बात उचित नहीं ॥ ३ ॥ इधर मन्थराने देखा कि नगर बना है, अच्छे बाजे बज रहे हैं ॥ ४ ॥ लोगोंसे पूँछा कि, "यह क्या उछाह है" लोग बोले रामराज्यका उछाह है रामका तिलक सुनकर मनमें दाह हुआ ॥ ५ ॥ और व्याकुल हो भरतकी मातापै गई रानी हँसकर बोली कैसे अनमनी हो रही है ॥ ६ ॥ (दोहार्थ)-जब न बोली तब कैकेयी भयभीत हो बोली कहती नहीं कि, राम और राजा प्रसन्न हैं भरत लक्ष्मण शत्रुहन प्रसन्न हैं यह सुन कुबरीके मनमें दुःख हुआ ॥ ५ ॥

बोली आज रामको छोड़ किसके कुशल है जिनको राजा युवराज देते हैं १॥ कौशल्याको विधाता बड़ा दाहिना हुआ देखकर गर्व मनमें नहीं रहता ॥२॥

देखहु कस न जाइ सब शोभा।जो अवलोकि मोर मन क्षोभा३॥
पूत विदेश न शोच तुम्हारे। जानति हौ वश नाह हमारे ॥ ४॥
"सुनिप्रियवचनकुटिलमनजानी।झुकी रानि अवरहु अरगानी"
[illegible] भगि [illegible] हिं [illegible]
[illegible]०-पुनि [illegible]

दोहा-काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
"तिय विशेष पुनि चेरि कहि,भरत मातु मुसकानि६॥"

प्रिय वादिनि शिष दी [illegible]न्यउँ तोहीं।स्वप्नेहु तोपर कोप न मोहीं१
सुदिन [illegible] दायक सोई तोर कहा फुर जा दिन होई ॥ २ ॥
जेठस्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकरकुलरीति सुहाई ॥३॥
रामतिलक जो सांचेहु काली। मांगु देउँ मनभावत आली ॥४॥
"कौशल्या सम सब महतारी। रामहिं सहज स्वभाव पियारी ५
[illegible] विशेषी [illegible]ीति परीक्षा देखी ॥ ६ ॥

वह सब शोभा तुम क्यों न जाकर देखो जो देखकर मेरे मनमें क्षोभ हुआ है ॥ ३ ॥ पूत विदेशमें है तुमको शोच नहीं है जानतीहो कि, राजा हमारे वशमें हैं ॥ ४ ॥ यह वचन सुन कुबरीका मन कुटिल जानकर रानी क्रोधकर बोली चुपहो ॥ ५ ॥ हे घरफोरी! जो फिर ऐसा कहेगी तौ तेरी जीभ कढ़ा लूंगी ॥ ६ ॥ (दोहार्थ)-काने खोरे कुबड़े कुटिल कुचाली होते हैं उनमें स्त्री हो तो विशेषकर कुटिल होगी और चेरी हो तो कहनाही क्या यह कह भरतकी माता मुसकाई ॥ ६ ॥

हे प्रियवादिनि! यह मैंने तुझको शिक्षा दीहै पर स्वप्नमें भी मेरा तुझपर कोप नहीं है ॥ १ ॥ मंगलदायक वही सुदिन होगा तेरा कहना जिसदिन पूरा हो ॥ २ ॥ जेठे भाई स्वामी और छोटे भाई सेवक यह सूर्यकुलकी सदाकी रीति है ॥३ ॥ हे आली। जो सत्यही रामको कल तिलक है तो मांग मैं तुझको मन इच्छित दूंगी ॥ ४ ॥ रामको सब महतारी कौशल्याके समान स्वभावसे प्यारी हैं ॥ ५ ॥ और मुझपर बड़ा प्रेम करते हैं मैंने प्रीति परीक्षाकर देखा है ॥ ६ ॥

ये जन्म दइ करि छोहू। होहि राम सिय पूत पतोहू ॥७॥
प्राणते अधिक राम सिय मोरे। तिनके तिलक क्षोभ कस तोरे८
दोहा-भरत शपथ तोहिं सत्य कहु, परिहरि कपट दुराव।
हर्ष समय विस्मय करसि, कारण मोहिं सुनाव ॥ ७ ॥
मंथरा-एकहि बार आश सब पूजी। अबकछु कहब जीहकरिदूजी
फोरै योग कपार अभागा। भलौ कहत दुख रौरेहु लागा ॥ २ ॥
कहइँ झूँठ फुर बात बनाई। सो प्रिय तुमहिं करुइ मैं माई ॥३॥
हमहुँ कहब अब ठकुर सुहाती। नाहिं तो मौन रहब दिन राती४
करि कुरूप विधि परवश कीन्हा। वाचाशाल हमैं तिन्ह दीन्हा५॥
कोउनृप होउ हमैं का हानी। चेरि छाँडि अब होब कि रानी६॥
जारै योग स्वभाव हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥७॥
कछुक बात अनुसारी। क्षमव देवि बड़ चूक हमारी ॥ ८ ॥
पूँछहु मैं कहत डराऊँ। धरेउ मोर घरफोरी नाऊँ ॥ ९ ॥

जो विधाता कृपाकर फिर जन्म दे तो रामसीतासे पूत पतोहू मिलैं ॥७॥ राम प्राणसे अधिक प्यारे हैं उनके तिलकमें तुझको कैसे क्षोभ हुआ ॥ ८ ॥ (दोहार्थ)-तुझे भरतकी सौगन्धहै सत्य कह कपट दुराव छोड़दे हर्षके समय विस्मय करती है इसका कारण मुझे सुना ॥ ७ ॥

मन्थरा बोली एकही बारमें सब आशा पूजगई अब तो दूसरी जीभ धरके कुछ कहा जायगा ॥ १ ॥ हमारा कपार फोड़ने योग्य है जो भला कहतेमें तुमको दुःख लगा ॥ २ ॥ जो झूंठी सच्ची बात बनाकर कहै वही तुमको प्यारा है मैं तौ कडवीहूं ॥ ३ ॥ हम भी अब ठकुरसुहाती कहैंगी नहीं तो दिनरात मौन रहैंगी ॥ ४ ॥ विधाताने कुरूप कर परवश कर दिया और हमको वाचाशालादि किया ॥ ५ ॥ कोई राजा हो हमारी क्या हानिहै चेरी छोड़कर मैं रानी थोरेई हूंगी ॥ ६ ॥ हमारा स्वभाव जराने योग्य है तुम्हारा अनभल देखा नहीं जाता ॥ ७ ॥ इससे कुछ बात निकालीथी हे देवि ! हमारी चूक क्षमा करो ॥ ८ ॥ तुम पूछती हो मैं

प्रिय सिय राम कहा तुम रानी।रामहिं तुम प्रिय सोफुरवानी१०
रहे प्रथम अब सो दिन बीते। समय पाइ रिपुहोहिं पिरीते ११॥
जर तुम्हारि चह सवतिउपारी। रूँधहु करि उपाइ वरवारी१२॥

दोहा–तुमहिं न शोच सुहाग बल, निज वश जानहु राव।
मनमलीन मुँह मीठ नृप, राउर सरल स्वभाव॥८॥

चतुर गँभीर राम महतारी। बीच पाइ निजबात सँभारी॥१॥
पठये भरत भूप ननिऔरे। राम मातु मत जानव रौरे॥ २॥
सेवहिं सकल सवति मोहिं नीके। गर्वित भरत मातु बल पीके३
शाल तुम्हार कौशिलहि माई।चतुर कपट नहिं परत लखाई४
राजहिं तुमपर प्रीति विशेषी।सवतिस्वभाव सके नहिं देखी॥५
रचि प्रपंच भूपहि अपनाई। रामतिलक हित लग्न धराई॥६

कहतेमें डरती हूं कि, मेरा नाम घरफोरी धरा है॥ ९॥ हे रानी! तुमने सीतारामको प्यारा कहा तुम रामको प्रिय हो सो सब सत्य है॥ १०॥ सो यह पहली बात थी अब वे दिन बीतगये समयपर शत्रुभी प्यार करते हैं॥ ११॥ पर सौत तुम्हारी जड़ उखाड़ना चाहती है तुम उपाय कर भली प्रकार जल सींचकर इसे रोको॥ १२॥ (दोहार्थ)–तुम्हें सुहागके बलले शोच नहीं है राजाको अपने वश जानतीहो राजा मनके मलीन मुखके मीठे हैं तुम्हारा स्वभाव सरल है॥ ८॥

रामकी महतारी चतुर और गंभीर है समय पाकर उसने अपना काम सँभारा है॥ १॥ राजाने भरतको नानाके घर भेजाहै इसमें भी तुम रामकी माताका मत जानना॥ २॥ कि सब सौत मेरी भलीभाँति सेवाकरैं भरतकी माता पियाके बलसे गर्वित है॥३॥ हे माई! कौशल्याको तुम्हारा बड़ा शाल है पर उसकी चतुराईसे कपट नहीं दीखता॥ ४॥ राजाकी तुमपर बड़ी प्रीति है, सो सौतके स्वभावसे नहीं देखसकती॥ ५॥ प्रपंच रचकर राजाको अपनाय रामके तिलकके निमित्त लग्न धराई॥ ६॥

दिन [illegible] म सुधि प[illegible]

खाइय पहिरिय राज तुम्हारे । सत्य कहे नाहिं दोष हमारे ॥८॥
रामहिं तिलककालिजो भयऊ।तुम कहँ विपतिबीजविधिबयऊ
रेखा खैंचि कहौं बल भाषी। भामिनि भइउ दूधकी मांखी १०॥
जो सुत सहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई१

दोहा–कद्रू विनताहि दीन दुख, तुमहिं कौशला देव ॥
भरत बंदिगृह सेइहैं, रामलषण कर नेव ॥ ९ ॥

कै०-सुन मंथरा बात फुर तोरी।दहिन आँख नित फरकत मोरी
दिनप्रति देखौं राति कुसपना। कहौं न तोहिं मोह वश अपना२
कहा कहौं सखि शुद्ध स्वभाऊ।दहिन वाम नाहिं जानौं काऊ ३॥
नैहर जन्म भरव वरुजाई । जियत न करब सवति सेवकाई॥४॥
अरि वश दैव जिआवे जाहीं।मरण नीक त्यहि जियबन चाही५

इस समाजको सजते एकपखवारा होगया तुमने मुझसे आज समाचार पाये हैं ॥७॥ तुम्हारे राज्यमें हमने खाया पहरा है, सत्य कहनेसे दोष नहीं है ॥८॥ जो कल रामको तिलक होगया तो तुमको विधाताने विपत्तिका बीज बोदिया ॥ ९ ॥ मैं रेखाखैंच बलसे कहतीहूं कि तुम दूधकी मक्खीहुई हो॥१०॥जो पुत्रसहित सेवा करोगी तो घर रहसकोगी अन्यथा नहीं॥११॥

दोहार्थ–कद्रूने जैसे विनताको दुःखदिया वैसे तुमको कौशल्या देगी भरत बन्दिघरमें पड़ेंगे रामके लक्ष्मण अधिकारी होंगे ॥ ९ ॥

कैकेयी बोली मंथरा तेरी बात सत्य है मेरी दाहिनी आँख नित्य फरकती है ॥ १ ॥ प्रतिदिन रातको कुस्वप्न देखती हूं पर अपने मोहके कारण तुझसे नहीं कहती ॥ २ ॥ क्या कहूं सखी मेरा तो सूधा स्वभाव है मैं तो दाहिना वाम कुछ नहीं जानती ॥ ३ ॥ चाहे मायके जाकर अपना जन्म गँवादूं पर जीते जी सौतकी सेवा न करूंगी ॥ ४ ॥ विधाता जिसे शत्रुके वश जियावे तो उसका मरना ही अच्छा है जीना भला नहीं है ॥ ५ ॥

।न करहु तौ कहौं उपाऊ।हैं तुम्हरे सेवावश राऊ ६
कैकेयी-दोहा-परौं कूप तव वचन पर, सकौं पूत पति त्याग।
कहसि मोर दुख देखबड़, कस न करब हित लाग१०॥
मंथरा-दुइबरदान भूप सन थाती।माँगहु आज जुड़ावहुछाती १
सुतहिं राज रामहिं वनवासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू ॥ २ ॥
भूपति राम शपथ जब करई।तब माँग्यहु जेहि वचन न टरई३॥
होइ अकाज आज निशि बीते।वचन मोर प्रिय मानहु जीते४॥
दोहा-"बड़ कुघात करि पातकिनि, कहेसि कोपगृह जाहु।
काज सँवारहु सजग सब, सहसा जनि पतियाहु ॥११"

द्वितीय दर्शन।

कोपभवन।

(कैकेयी भूषण वसन उतारे भूमिपर पड़ी है राजा आते है)

दोहा-"साँझसमय सानन्दनृप, गये कैकयी गेह ॥
गमन निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह ॥१२॥

मंथरा बोली भामिनि करो तो एक उपाय कहूं राजा तुम्हारी सेवाके वशमें हैं ॥६॥ (दोहार्थ)-कैकेयी बोली मैं तेरे वचनसे कूपमें गिरपडूंगी पूत पति त्याग दूंगी जब तू मेरा दुःख देख ऐसा कहती है तो क्यों न हितके निमित्त करूंगी ॥ १० ॥

मंथरा बोली थाती रक्खे हुए दोनों वरदान राजासे माँगकर छाती ठंढी करो॥१॥ एकसे पुत्रको राज्य दूसरेसे रामको वनवास मांगकर सब सौतोंका हुलास छीनलो ॥२॥ जब राजा रामकी सौगन्ध खायँ तब मांगियो जिससे वचनोंसे न टरजायँ ॥ ३ ॥ आज रातके बीततेही अकाज हो जायगा मेरा वचन सत्य मानो ॥ ४ ॥ (दोहार्थ)-इस प्रकार पातकिनने बड़ी कुघात करके कहा कोपभवनमें जाओ और सावधानीसे काम सँभारकर सहसा किसीसे मत पतियाना ॥ ११ ॥

द्वितीय दर्शन (कोपभवन)

दोहार्थ-साँझसमय आनन्दसे राजा कैकेयीके घर गये मानो स्नेहने देह धारण कर निठुरताके घर गमन किया ॥ १२ ॥

कोप भवन सुनि सकुचे राऊ। भयवश आगे परै न पाऊ॥ १ ”
राजा–जाइ निकटनृपकहमृदुवानी।प्राणप्रिया केहि हेतुरिसानी
छन्द–“केहि हेतु रानि रिसानि परसत पाणि पतिहि निवारई ।
मानहुँ सरोष भुअंगभामिनि विषम भाँति निहारई ॥
दोउ बासना रसना दशन बर मर्म ठाहर देखई ।
तुलसी नृपति भावितव्यता वश काम कौतुक लेखई १”
राजा-अनहिततोरप्रियाकेहिकीन्हा। केहिदुइशिरकेहियमचहलीन्हा
कहु क्यहि रंकहि करौं नरेशू। कहु क्यहि नृपहि निकारौंदेशू२
सकौं तोर अरि अमरहु मारी । कहा कीट बपुरे नर नारी॥ ३॥
जो कछु कहौं कपट करि तोहीं। भामिनि राम शपथ शत मोहीं
विहँसि मांगु मनभावति बाता । भूषण साजु मनोहर गाता॥५॥
भामिनि भयउ तोर मनभावा।घरघर बजत अनन्द बधावा ६
रामहिं देउँ कान्हि युवराजू।सजहु सुलोचनि मंगल साजू

रानीको कोपभवनछें सुन राजा सकुचाये, डरके मारे आगे पाँव न पड़ा ॥१॥ निकट जाकर राजा बोले हे प्राणप्रिया ! क्यों रिसाई हो॥२॥

छंदार्थ–हे रानी ! क्यों रिसानी हो हाथ छूतेही निवारण करने लगी मानो क्रोधकरके सर्पिणी विषमतासे निहारती है दोनों वासनाही दोनों जीभ हैं दोनों वर दांत हैं मर्मस्थान देखरही हैं, राजा होनहारके वश काम कौतुक देखते हैं ॥ १ ॥

हे प्यारी ! तुम्हारा अनहित किसने किया है किसके दोशिरहुए और यमराज किसको लेना चाहते हैं ॥ १ ॥ कहो किस कंगालको राजा करदूं किस राजाको देश निकाला दूं ॥ २ ॥ अमर भी तुम्हारा शत्रु मार सकता हूं कीट समान अन्य बापुरे नरनारियोंकी तो बात क्या है ॥ ३ ॥ हे भामिनि ! जो इसमें कपट कर कहूं तो मुझे रामकी सौ शपथ हैं ॥ ४ ॥ हँसकर मनभावती बात माँग मनोहर शरीरपर भूषण सजा ॥ ५ ॥ हे भामिनि ! तेरा मनभावा हुआ घर २ आनन्द बधाये बजते हैं ॥ ६ ॥ रामको कल युवराज दूंगा हे सुलोचनि ! मंगल साज सजाओ ॥ ७ ॥

कैकेयी—दोहा—मांगु २ पै कहहु पिय, कबहूँ देहु न लहु।
देन कह्यउ वरदान दुइ, त्यउपावत संदेहु ॥ १२ ॥
राजा—झूँठहि दोष हमहिं जनि देहू।दुइके चार माँगि किन लेहू१
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाइँ बरु वचन न जाई२।
कैकेयी—सुनहु प्राणपति भावतिजीका।देहुएक वर भरतहिटीक
दूसर वर मांगौं कर जोरी। नाथ मनोरथ पुरवहु मोरी ॥ ४।
तापस वेष विशेष उदासी। चौदह वर्ष राम वनवासी ॥ ५ ॥
"सुनि तियवचनभूपउरशोकू।शशिकर छुवतविकलजिमिकोकू
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन। तनु धरि शोच लागु जनु शोचन७
कैकेयी-भरतकि राउरपूत न होहीं॥आनेहु मोल बिसाहिकिमोहीं
जो सुनि शर सम लाग तुम्हारे।काहे न बोलहु वचन सँभारे ॥९॥
उतर अस कहहु कि नाहीं। सत्य सिन्धु तुम रघुकुलमाहीं

दोहार्थ—कैकेयी बोली प्रीतम माँग २ तो कहते हो पर कभी लेते देते नहीं दो वरदान देने कहे उनके पानेमेंभी सन्देह है ॥ १२ ॥

राजा बोले हमको झूँठ दोष मत दो दोके चार क्यों न माँग लो ॥१॥ रघुकुलकी रीति सदा चली आई है प्राण जायँ पर वचन नहीं जाते ॥२॥ कैकेयी बोली हे प्राणपति ! मेरे जीकी भावती सुनो एक वर तो यह कि, भरतको टीका दो ॥ ३ ॥ दूसरा वर हाथ जोड़ माँगती हूँ नाथ मेरे मनोरथ पूरे करो ॥ ४ ॥ तपस्वियोंका वेषधार विशेष उदासी रूपसे राम चौदह वर्ष वनवासी हों ॥ ५ ॥ स्त्रीके वचन सुन राजाके मनमें शोक हुआ जैसे चन्द्रकिरण छूकर चकवाचकई व्याकुल होते हैं ॥ ६ ॥ माथे-पर हाथधर दोनोंनेत्र मूंद मानो शोचही तनुधरकर शोचनेलगा ॥७॥ रानी बोली क्या भरत तुम्हारे पूत नहीं हैं क्या मुझे मोलबिसाहिकर लाये हो॥८॥ जो सुनकर तुमको बाणोंके समान लगा फिर सँभारकर वचन क्यों नहीं बोले॥९॥ या उत्तर दो वा नाहीं करो तुम रघुकुलमें सत्यसंघहो ॥१०॥

सत्य सराहि कह्यउ वर देना। जान्यहु लइहि माँगि चबेना॥१२॥
शिव दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु धन तजेउ वचनपन राखा
बोले राउ कठिन करि छाती। वाणी विनय न ताहि सुहाती १४॥
राजा-मोरे भरत राम दोउ आँखी। सत्य कहौं करि शंकर साखी
प्रिया वचन कस कहसि कुभाँती। प्रीतिप्रतीतिरीतिकरिघाती १६
अवशि दूत पठउब मैं प्राता। ऐहैं वेगि सुनत दोउ भ्राता॥१७॥
सुदिन साधि सब साज सजाई। देहौं भरतहिं राज्य बजाई १८॥
दोहा-लोभ न रामहिं राज्यकर, बहुत भरत पर प्रीति॥
मैं बड़छोट विचार करि, करत रहेउँ नृप नीति॥१३॥
राम शपथ शत कहौं स्वभाऊ। राम मातु मोहिं कहा न काऊ१
मैं सब कीन्ह तोहिं बिनु पूंछे। ताते परेउ मनोरथ छूंछे ॥ २ ॥

वर जो देने कहा अब मत दो, सत्य त्यागकर जगत्में अपयश लो ॥ ११ ॥ सत्य सराहकर वर देनेको कही सो जाना कि, यह चबेनाही माँगलेगी ॥ १२ ॥ राजा शिबि, दधीचि और बलिने जो कुछ कहा तन धन प्राण त्यागकरकेभी अपना प्रण रक्खा ॥ १३ ॥ राजा कठिन छाती करके बोले परन्तु विनयकी वाणी उसको नहीं सुहाती ॥ १४ ॥ कि, मेरे भरत और राम दोनों नेत्र हैं शंकरको साखीकर सत्य कहता हूं ॥ १५ ॥ हे प्रिये! कुभाँतिके वचन क्यों कहती हो जो प्रीतिकी प्रतीतिमें घात करनेवाले हैं ॥ १६ ॥ अवश्यही मैं प्रभात समय दूत भेजूंगा सुनतेही दोनों भाई शीघ्र आवैंगे ॥१७॥ सुदिन साध साज और समाज बनाकर भरतको राज्य मंगलपूर्वक दूंगा ॥ १८॥

दोहार्थ-रामको राज्यका लोभ नहीं भरतपर बहुत प्रीति है मैं तो बड़े छोटेका विचारकर राजनीति करता रहा ॥ १३ ॥

मैं रामकी सौ शपथ कर स्वभावसे कहता हूं रामकी माताने मुझे कुछ नहीं कहा है ॥ १ ॥ पर मैंने यह सब तुझसे बिना पूछे किया इससे

रिसि परिहारि अब मंगलसाजू।कछुदिन गये भरतयुवराजू॥३॥
एकहि बात मोहिं दुख लागा। वर दूसर असमंजस माँगा ॥४॥
अजहूं हृदयदहत त्यहिआँचा।रिसि परिहास कि सांचहु सांचा
कहु तजिरोष राम अपराधू।सब कोउ कहत रामसुठि साधू ६॥
दोहा-प्रिया हास रिसि परिहरहु, मांगु विचारि विवेक ।
ज्यहि देखौं अब नयन भरि, रामराज्य अभिषेक ॥१४॥
जियैमीन वरुवारि विहीना।मणि विनुफणिक जियै दुखदीना१॥
कहौंस्वभाव न छल मन मा
मुझि खु तैं प्रिया प्रवीना
०-कहहुकरहुकिनकोटिउपाया।इहाँ न लागिहि राउरिमाया
केलेहु अयश करि नाहीं।मोहिं न बहु परपंचसुहाहीं॥५

मेरे मनोरथ छूछे पड़गये ॥ २ ॥ क्रोधको छोड़कर अब मंगल साजो कुछ दिन बीतनेपरही भरतको युवराज होगा ॥ ३ ॥ पर एक बातका ही मुझे दुःख लगाहै दूसरा वर असमंजस मांगाहै ॥ ४ ॥ अबतक उसकी आंचसे मन जलता है वह रिसमें हँसीमें वा सत्य कहा है ॥ ५ ॥ क्रोध त्यागकर रामका अपराध कह सब कोई कहते हैं कि, राम बड़े साधु हैं॥६॥

दोहार्थ-हे प्रिया! हास और रिस छोड़कर विवेकसे विचारकर मांगो जिससे जीते जी भरतके राज्यका अभिषेक देख लूं ॥ १४ ॥

चाहै जलके विना मछली जीजाय पर मेरा जीवन रामके आधीन है ॥ १ ॥ स्वभावसे कहताहूं मेरे मनमें छल नहीं है रामके विना मेरा जीवन नहीं है ॥ २ ॥ हे प्रवीण प्रिया! तू यह समझ देख कि मेरा जीवन रामके दर्शनके आधीन है ॥ ३ ॥ कैकेयी बोली चाहै कोटि उपाय कहो करो पर यहाँ आपकी माया न लगैगी ॥ ४ ॥ या दो या नहीं करके अपयश लो मुझे बहुत प्रपंच अच्छे नहीं लगते ॥ ५ ॥

रामसाधु तुमसाधु सुजाना।राम मातु तुम भलि पहिंचाना ६
जस कौशलामोर भल ताका।तस फल देउँ उन्है करि शाका
दोहा-होतप्रात मुनिवेषधारि, जो न राम वन जाहिं।
मोरमरण राउर अयश, नृप समुझहु मन माहिं ॥१५॥
जो अन्तहु अस करतबरहेऊ।माँगुमाँगु केहिके बलकहेऊ॥१॥
छाँडहुवचन कि धीरज धरहू।जनिअबलाइवकरुणा करहू ॥२॥
दोहा-मर्म वचन सुनि राउ कह, कछुक दोष नहिं तोर।
लाग्यउ तोहिं पिशाच जनु, काल कहावत मोर ॥१६॥
रा०-चहत न भरत भूपपद भोरे।विधिवश कुमति बसी उरतोरे॥
सो सब मोर पाप परिणामू।कछु न बसाइ भयो विधि वामू
सुवस वसहि पुनि अवध सुहाई। सब गुणधाम राम प्रभुताई ३॥
करिहैं भाइसकल सेवकाई। होई है तिहुँ पुर राम बड़ाई ॥ ४ ॥

रामभी साधु तुमभी सुजान भलेहो रामकी माताभी भली है तुमने उन्हे भलीभाँति पहँचानाहै ॥६॥ जैसा कौशल्याने मेरा भला ताका है वैसा फल शाका करके उनको दूंगी ॥ ७ ॥) दोहार्थ)-प्रभात होतेही मुनिका वेष धारण कर जो राम वनको न गये तो मेरा मरण और आपका अपयश होगा. यह मनमें जान लो ॥ १५ ॥

जो अन्तमें तुम्हारा यही कर्तव्य था तो माँग माँग किसके बलसे कहा ॥ १ ॥ या वचन छोड़ो या धीरजधरो स्त्रीके समान रुदन मतकरो ॥ २ ॥

दोहार्थ-यह मर्म वचन सुन राजा बोले इसमें तेरा कुछ दोष नहीं है तुझे एक पिशाच लिपटा है जो मेरा काल कहाता है ॥ १६ ॥

भरत तो भूल करभी राजपद नहीं चाहते प्रारब्धके वशसे तेरे मनमें कुबुद्धि बसी है ॥ १ ॥ सो सब मेरे पापका परिणाम है कुछ बसाता नहीं विधाता वाम होगया है ॥ २ ॥ फिर अयोध्या सुवस बसैगी सब गुणोंके धाम रामकी प्रभुताई होगी ॥ ३ ॥ सब भाई सेवा करैंगे तीनों पुरमें रामकी प्रभुताई बड़ाई होगी ॥ ४ ॥

तोर कलंक मोर पछिताऊ। मुयहु मेटि नहिं जाइहि काऊ ५॥
अब तोहिं नीक लागु कर सोई। लोचन ओट बैठ मुख गोई ६॥
जौलौं जियौं कहौं कर जोरी। तौलौं जनि कछु कहसि बहोरी७॥
फिर पछितैहसि अन्त अभागी। मारसि गाय नाहरू लागी८॥

(मूर्च्छित होतेहैं)

दोहा--द्वारभीर सेवक सचिव, कहहिं उदय रवि देखि।
जागे अजहुँ न अवधपति, कारण कवन विशेषि॥१७॥

मंत्री आदि--जाहुसुमन्त जगावहु जाई।कीजियकाजरजायसुपाई
"गे सुमन्त नृप मंदिर माहीं। देखि भयानक जात डराहीं ॥२॥
कहि जयजीव बैठि शिरनाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई ३॥
सचिव सभीत सकहि नहिं पूछी।बोली अशुभ भरी शुभ छूछी"

कैकेयी-दोहा--परी न राजहिं नींद निशि, मर्म्म जानु जगदीश।
रामर रटि भोर किय, हेतु न कहेउ महीश॥१८॥

तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरेसेभी न मिटैगा न जायगा ॥५॥ अब तुझे जो अच्छा लगे सो कर नेत्रोंकी ओटमें मुखछिपा बैठ ॥ ६ ॥ अब मैं हाथ जोड़कर कहता हूं कि जबलौं जियौं तबलौं फिर कुछ मतकह ॥ ७ ॥ हे अभागी! फिर अन्तमें पछतायगी नाहरूके निमित्त गाय मारती है॥ ८॥:(यह कह राजा मूर्च्छित हुए) (दोहार्थ)--द्वारेपर सेवक सचिवोंकी भीर है सूर्यका उदय देख कहते हैं क्या कारणहै जो अभीतक राजा नहीं जागे ॥ १७ ॥

जाओ सुमन्त जगाओ आज्ञा पाय काज करो ॥ १ ॥ सुमन्त राजमंदिरमें गये भयानक देख जानेमें डरते हैं॥ २॥ जयजीव कह शिरनवाय बैठगये राजाकी गति देखकर सूखगये ॥ ३ ॥ भयसे मंत्री पूछ नहीं सकता वह अशुभकी भरी शुभहीन स्वयं बोली ॥ ४ ॥ (दोहार्थ)--रात राजाको नींद नहीं परी जगदीश्वरही इसका हेतु जानता है राम राम रटकर सबेरा किया पर मर्म नहीं कहा है ॥ १८॥

आनहु रामहिं वेगि बुलाई । समाचार तब पूछहु आई ॥ १ ॥
"चल्यउ सुमन्त राउरुख जानी। लखी कुचालकीन्ह कछु रानी
समाधान मनकर सबहीका । गये जहाँ दिनकरकुलटीका ॥३॥
राम सुमंतहि आवत देखा । आदर कीन्ह पिता सम लेखा ॥४॥
निरख वदन कहि भूप रजाई । रघुकुल दीपहि चलेउ लिवाई५"

(रामचन्द्र पिताके समीप जाते हैं)

राम-कहुमोहिंमातुतातदुखकारण। करिययतनज्यहिहोइनिवारण६
कैकेयी-सुनहु राम सब कारण एहू।राजहिंतुमपर बहुत सनेहू७
देन कह्यउ मोहिं दुइ वरदाना।मांगेउँ जो कछु मोहिं सुहाना ८॥
सो सुनि भयउ भूप उर शोचू। छांडिन सकहिं तुम्हार सँकोचू९

दोहा--सुतसनेह इत वचन उत, संकट परयउ नरेश ।
सकहु तो आयसु शीश धरि, मेटहु कठिन कलेश ॥१९

"सब प्रसंगरघुपतिहि सुनाई।बैठी जनु तनु ठुराई १॥"

तुम रामको शीघ्र बुलाकर लाओ तब ससाचार पूछना ॥ १॥ राजाका रुख जानकर सुमन्त चले और जाना कि रानीने कुछ कुचाल की है ॥२॥ सबका मन सावधानकर सुमन्त रामके निकट गये ॥३॥ रामने सुमन्तको आता देख पिताके समान जान आदर किया ॥४॥ मुख देख राजाकी आज्ञा सुनाय रामको लिवा लेचला ॥५॥ राम जाकर बोले हे माता ! मुझे पिताके दुःखका कारण कहो वह यत्न करें जिससे निवारण हो॥६॥ कैकेयी बोली सुनो राम! सबकारण यहहै कि, राजाका तुमपर बहुत प्रेम है ॥७॥ मुझे दो वरदान देने कहेथे जो मुझे अच्छे लगे सो मैंने मांगे ॥ ८॥ सो सुनकर राजाके मनमें शोच हुआ तुम्हारा संकोच छोड नहीं सकते हैं॥ ९ ॥ (दोहार्थ)-इधर पुत्रका स्नेह उधर वचन राजाको संकट पड़ा है यदि करसको तो शिरपर आज्ञाधर राजाके कठिन क्लेश मेटो ॥ १९ ॥ सब प्रसंग रामको सुनाकर मानो निठुराईही अपना शरीर धर बैठी है॥१॥

राम-सुनु जननी सोइ सुत बडभागी। जो पितु मातुवचनअनुरागी
तनय मातु पितु पोषणहारा। दुर्लभ जननी यह संसारा ॥ ३ ॥
दोहा–मुनिगण मिलन विशेष वन, सबहि भाँति भल मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, सम्मत जननी तोर॥२०॥
भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू। विधि सबविधि मोहिं सन्मुखआजू
जो न जाहुँ वन ऐसेहु काजा। प्रथम गणिय मोहिंमूढसमाजा२
अम्ब एक दुख मोहिं विशेषी। निपट विकल नरनायक देखी३
थोरिहि बात पितहि दुख भारी। होत प्रतीति न मोहिं महतारी ४
कैकेयी-शपथतुम्हारि भरतकै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना।
तुम अपराध योग नहिं ताता। जननी जनक बन्धु सुखदाता ६
पितहि बुझाइ कहौं बलि सोई। चौथेपन अघ अयश होई

रामचन्द्र बोले सुनो माता वही पुत्र बडभागी है जो पिता माताके चरणोंमें प्रेम करता है ॥ २ ॥ हे माता ! मातापिताका पोषण करनेवाला पुत्र इस संसारमें बडा दुर्लभ है ॥ ३ ॥ (दोहार्थ)–विशेषकर वनमें मुनियोंके समूह मिलैंगे, मेरा सबही भाँतिसे भला होगा उसमें पिताकी आज्ञा और फिर माता तुम्हारी सम्मति है ॥ २० ॥

प्राणप्रिय भरतको राज्य मिले मुझे तो आज सब प्रकार विधाता दाहिना है ॥ १ ॥ जो ऐसे कामको भी वनमें न जाऊं तो प्रथम मुझे मूढ समाज़में गिनो ॥ २ ॥ पर माता मुझे एक यही विशेष दुःख है कि, राजा बहुत व्याकुल हैं ॥३॥ थोरी बात और पिताको भारी दुःख है. हे माता ! मुझे प्रतीति नहीं होती ॥ ४ ॥ कैकेयी बोली तुम्हारी सौगन्ध भरतकी आन है मैंने दूसरा हेतु कुछ नहीं जाना है ॥ ५ ॥ हे तात ! तुम अपराधके योग्य नहीं हो माता पिता बन्धुजनोंको सुख देते हो ॥ ६ ॥ मैं बलि जाऊं तुम पिताको बुझाकर वही करो जिससे चौथेपनमें उनका अपयश न हो पाप न लगै ॥ ७ ॥

दोहा-"गै मूर्च्छा रामहिं सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम आगमन कहि,विनय समय सम कीन्ह २१॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरण परत नृप राम निहारे ॥ १ ॥
लिये सनेह विकल उरलाई।गै मणि फणिक बहुरि जिमि पाई
रामहिं चितै रहे नरनाहू। चला विलोचन वारिप्रवाहू॥ ३ ॥"
राम-तात कहौं कछु करौं ढिठाई।अनुचित क्षमव जानिलरिकाई
अति लघु बात लागि दुख पावा।काहे न मोहिं कहि प्रथमजनावा
दोहा--मंगल समय सनेह वश, शोच परिहरिय तात।
आयसु देइय हर्षि

धन्य जन्म जगतीतल तासू।पितहि प्रमोद चरित सुन जासू १
चारि पदारथ करतल ताके।प्रिय पितु मातु प्राणसम जाके २
आयसु पालि जन्मफल पाई। ऐहौं वेगहि होहु रजाई ॥ ३ ॥

दोहार्थ-इसी समय मूर्च्छा जानेसे रामको स्मरण कर राजाने करवट ली और मंत्रीने रामका आगमन कह समयानुसार विनय की ॥ २१ ॥

मंत्रीने संभारकर राजाको बैठाया और राजाने रामको चरणोंमें पड़ता देखा॥ १॥ स्नेहसे व्याकुल हो हृदयसे लगाया मानो सर्पने गईहुई मणि फिर पाई॥२॥राजा रामचन्द्रको देखते रहे नेत्रोंसे जलका प्रवाह वह चला ॥३॥ राम बोले हे पिताजी ! कुछ ढिठाई कर कहता हूं, लरिकाई जानकर अनुचित क्षमा करना ॥ ४ ॥ अतिछोटी बातके निमित्त दुःख पाया है मुझे पहले ही क्यों न कहदिया ॥ ५ ॥ (दोहार्थ)-हे पिता ! यह मंगलका समय है स्नेहके वश शोच त्याग करो मनमें प्रसन्न हो आज्ञा दो यह कह प्रभुका शरीर पुलकित हुआ ॥ २२ ॥

पृथ्वीमें उसका धन्य जन्म है जिसका चरित्र सुनकर पिताको आनंद हो॥ १॥ उसके हाथमें चारों पदार्थ हैं जिसको माता पिता प्राणोंके समान प्रिय हैं ॥२॥ आज्ञापाल जन्मका फल पाय शीघ्र आऊंगा आज्ञाहो ॥३॥

विदा मातु सन आवौं मांगी। चलिहौं वनहि बहुरि पगलागी ४॥
"अस कहि रामगमन तब कीन्हा॥भूप शोकवश उतर नदीन्हा"

तृतीय दर्शन।

रामका माता और जानकीसे सम्वाद.

(कौशल्या बैठी है रामचंद्र आनकर प्रणाम करते हैं)

"रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा॥मुदित मातुपदनायउमाथा १
दीन्ह अशीश लाइ उर लीन्हें। भूषण वसन निछावर कीन्हें २"
कौ०-कहहु तात जननीबलिहारी। कबहिंलग्नमुदमंगलकारी ३
दोहा-ज्यहि चाहत नर नारि सब, अति आरत इहि भाँति।
जिमि चातकि चातक तृषित, वृष्टि शरदऋतु स्वाति२३॥
तात जाउँ बलि बेगि अन्हाहू। जो मनभाव मधुर कछु खाहू १॥
[illegible] ायहु भैया॥भइ ब[illegible]

मातासे विदा मांग[illegible]
यह कह रामचन्द्र गये राजाने शोकके मारे उत्तर न दिया॥ ८॥

तृतीय दर्शन।

रामका मातासे विदा होना।

(कौसल्या बैठी है रामचंद्र माताके समीप आते हैं)

रघुनाथजीने दोनों हाथ जोड़ प्रसन्न हो माताके चरणोंमें शिर नवाया ॥ १॥ माताने अशीश दे हृदय लगाया भूषण वस्त्र निछावर किये ॥२॥ और बोली कहो पुत्र मैं बलिजाऊं वह तुम्हारी मंगलकारी लग्न कब है॥३॥

दोहार्थ-जिसको सब नरनारी इसप्रकार चाहते हैं जैसे शरद्ऋतुमें चातक स्वातिबूंद चाहता है॥ २३॥

हे तात! बलिजाऊं स्नान करलो मन भावित कुछ मधुर खाओ॥ १॥ तब पिताके समीप दोनों भैया जैयो बड़ी देर होगई माता बलिहारी जाती है॥ २॥

राम-पिता दीन्ह मोहिं काननराजू।जहँ सबभाँति मोर बड़काजू
दोहा-वर्ष चारिदश विपिन बसि, करि पितु वचन प्रमान।
आय पाँय पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान॥२४॥
"धरि धीरज सुतवदन निहारी। गदगद वचन कहति महतारी१
कौश०-तात पितहि तुम प्राणपियारे।देखि मुदित नित चरित तुम्हारे
राज्य देन कह शुभ दिन साधा।कह्यउ जान वन केहि अपराधा
तात सुनावहु मोहिं निदानू। को दिनकरकुल भयउ कृशानू ४॥
दोहा-"निरखि राम रुख सचिवसुत, कारण कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंग रहि मूक गति, दशा वरणि नहिं जाइ॥२५॥"
तात जाउँबलि कीन्हेउ नीका।पितु आयसु सब धर्मक टीका१
दोहा-राज्य देनकह दीन्ह वन, मोहिं न दुख लवलेश।
तुम विन भरतहि भूपतिहि, प्रजहिं प्रचण्ड कलेश॥२६॥

रामचंद्र बोले पिताने मुझे वनका राज्य दियाहै, जहां सब भाँतिसे मेरा बड़ा काज होगा॥ ३॥ (दोहार्थ)-चौदह वर्ष वनमें बस पिताके वचन मान फिर आकर तुम्हारे पगदर्शन करूंगा मनमें दुःखी न होना॥ २४॥
कौशल्या धीरजधर पुत्रका मुख देख गद्गद वचन बोली ॥ १ ॥ हे पुत्र ! तुम पिताको प्राणपियारे हो तुम्हारे चरित्र देख वे सदा प्रसन्न रहे ॥ ॥ २॥ राज्य देनेको अच्छा दिन साधा अब किस अपराधसे वन जानेको कहते हैं॥ ३ ॥ हे तात ! मुझे तो इसका कारण सुनाओ सूर्यवंशमें कौन अग्नि हुआ॥ ४॥ (दोहार्थ)-रामका रुखदेखकर मंत्रीसुतने सब कारण कहा यह प्रसंग सुनकर मौन हुई दशा नहीं कही ॥ २५ ॥
और बोली पुत्र बलिजाऊं अच्छा किया पिताकी आज्ञा सब धर्मसे अधिक है ॥ १ ॥ (दोहार्थ)-राज्य देनेको कहकर बन दिया इसका मुझे तनक दुःख नहीं परंतु तुम्हारे विना भरत, राजा और प्रजाको बड़ा क्लेश होगा ॥ २६ ॥

जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बडि माता
जो पितु मातु कहें वन जाना। तौ कानन शतअवध समान
पितु वनदेव मातु वनदेवी। खग मृग चरण सरोरुहसेवी॥ ३
अन्तहु उचित नृपहि वनवासू। वय विलोकि हिय होत हरासू ४
बड़भागी वन अवध अभागी। जो रघुवंशतिलक तुमत्यागी ५
जो सुत कहौं संग मोहिं लेहू। तुम्हरे हृदय होइ संदेहू ॥ ६
पुत्र परमप्रिय तुम सबहींके। प्राण प्राणके जीवन जीके
ते तुम कहहु मात वन जाऊँ। मैं सुनि वचन बैठि पछिताऊँ८

दोहा–यह विचारी नहिं करउँ हठ, झूठ सनेह बढाइ।
मानि मातुके नात बलि, सुरति बिसरि जनिजाइ॥२७॥

हे तात! जो केवल पिताकी आज्ञा है तो माताको बड़ा जान मत जाओ॥१॥ और जो पिता माता दोनोंने वनजाना कहा है तो वन सौ अवधके समान है॥ २ ॥ पिता वनदेव और माता वनदेवी हैं खग मृग चरणकमलोंके सेवी हैं॥३॥ अन्तमें भी राजाको वनवास उचित है पर अवस्था देखकर मन हिरासा होता है ॥ ४ ॥ वन बड़भागी अवध बड़ा अभागी है हे रघुवंश तिलक! जो तुमने उसको त्यागन किया ॥ ५ ॥ हे पुत्र! जो मैं कहूं कि, मुझे भी संग ले चलो तो तुम्हारे मनमें सन्देह होगा ॥ ६ ॥ हे पुत्र! तुम सबके परमप्रिय प्राणके प्राण और जीवनके जीवन हो ॥ ७ ॥ वे तुम कहते हो हे मातः! मैं वन जाता हूं और मैं यह वचन सुन बैठकर पछिताऊं ॥८॥

दोहार्थ–यह विचार झूंठा स्नेह बढ़ाकर हठ नहीं करती मैं बलिजाऊं कहीं माताके नातेकी सुरत मत भुलादेना ॥ २७ ॥

---

१ राग सोरठ–राम हौं कौन जतन घररहि हौं ॥टेक॥ बारबार भारि अंक गोदले ललन कौन सों कहिहौं। इहि आंगन विहरत मेरे बारे तुम जो संग शिशु लीन्हें। कैसे प्राण रहत अब तुम विन बडविनोद सुत कीन्हें। ॥ रामहौं०॥ जिन श्रवणनि कल वचन तिहारे सुनति रहौं अनुरागी। तिन श्रवणन वनगमन सुनति हौं मोंत कवन अभागी ॥ रामहौं० ॥ युगसम निमिष जाहिं रघुनन्दन वदनकमल विनु देखे। जो तनुरहै अवधिबीते बलि कहा प्रीति इहिलेखे ॥ रामहौं० ॥ तुलसीदास प्रेमवश श्रीहरि देखि विकल महतारी । गद्गद कंठ नैन जल भर फिरि आवन कह्यो मुरारी ॥ रामहौं० ॥

देव पितर सब तुमहिं गुसाईं। राखहिं पलक नयनकी नाईं॥१॥
अस विचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जियत जेहि भेंटहु आई
जाहुसुखेन वनहिं बलिजाऊं करि अनाथ जन परिजन गाऊं ३
"यहिविधि विलपिचरणलपटानी॥परमअभागिनिआपुहिजानी
राम उठाय मातु उर लावा। कहि मृदुवचन बहुत समुझावा५॥

दोहा--समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाय।
जाइ सासु पगकमल युग, वन्दि बैठि शिर नाय ॥२८॥

मंजु विलोचन मोचति वारी। बोली देखि राम महतारी॥ १ ॥
कौश०-तातसुनहुसियअतिसुकुमारी। सासुश्वशुरपरिजनहिंपियारी
... नक भूपालमणि,
.... रविकुल कैरव विपिन, विधु गुणरूप निधान
मैं पुनि पुत्रवधू प्रियपाई। रूप राशि गुणशील सुहाई॥ १ ॥

हे पुत्र! सब देवता पितर तुमको पलक जैसे नेत्रोंको रखते हैं ऐसे रक्खैं॥ १॥ ऐसा विचारकर वह उपाय करो कि, सबके जीते जिससे आनकर मिलो॥ २॥ सुखसे वनको जाओ बलिजाऊं यहांके कुटुम्बी जन परिजन गांवको अनाथ करो॥ ३॥ इस प्रकार विलापकर चरणोंमें लिपटगई अपनेको परम अभागिनी जाना॥४॥ रामने माताको उठाय हृदयसे लगाया कोमल वचन कह बहुत समझाया॥ ५॥

दोहार्थ—उसी समय समाचार सुन जानकी व्याकुल हो उठी और जाकर सासके दोनों पदकमलोंमें शिर नवाय बैठी॥ २८॥

उज्वल नेत्रोंसे जल त्यागने लगी सो देखकर रामकी महतारी बोली ॥१॥ हे तात! सुनो जानकी बड़ी सुकुमारी है, सास श्वशुर कुटुम्बियोंको प्यारी है॥२॥ (दोहार्थ)—राजाओंमें शिरोमणि जनक पिता हैं भानुकुल भानुश्वशुरहैं सूर्यकुलके कुमुद वनके खिलानेवाले पतिरूप गुणनिधान तुम हो॥ २९॥

मैंने प्रिय पुत्रवधू पाई है जो रूपकी राशि गुण शीलमें सुहाई है॥ १॥

नयन पुतरि इव प्रीति बढाई । राखेउँ प्राण जानकिहि लाई २
पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा।सिय न दीन पगु अवनि कठोरा३
जिवनमूरि जिमि जुगवति रहेऊं।दीपबाति नहिं टारन कहेऊं४
सो सिय चलनचहत वन साथा। आयसु काह होय रघुनाथा५
सिय वनवसिहि तात केहिभाँती । चित्रलिखितकपिदेखिडराती
अस विचारि जस आयसु होई।मैं सिख देउँ जानकिहिं सोई७
जो सिय भवन रहै कह अम्बा।मोकहँ होय प्राण अवलम्बा८

दोहा-"कहि प्रिय वचन विवेकमय, कीन्ह मातु परितोष ।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगट विपिन गुण दोष३०"

राम-राजकुमारिसिखावनसुनहू।आनभाँतिजियजनिकछुधरहू
आपन मोर नीक जो चहहू । वचन हमार मान घर रहहू ॥२॥
आयसु मोर सासु सेवकाई । सबविधि भामिनि भवन भलाई३

समान प्रीति बढाइ
समझी ॥ २ ॥ पलँग चौकी गोदी हिंडोरा छोड़कर जानकीने कभी कठोर भूमिपर पग नहीं दिया ॥ ३ ॥ जीवनमूरिके समान देखती रही, कभी दीवेकी बत्ती उसकानेकोभी न कहा ॥ ४ ॥ वह जानकी वनको तुम्हारे संग चलना चाहती है, हे राम ! क्या आज्ञा है ॥५॥ हे तात! जानकी वनमें किस प्रकार बस सकती है, वह तो तस्वीरमें लिखे कपियोंको देखकर डरती है ॥ ६ ॥ ऐसा विचारकर जो आज्ञा हो मैं जानकीको वही शिक्षा दूं ॥ ७ ॥ जो सीता घरमें रहैगी तो मुझे प्राणोंका अवलम्ब होगा ॥ ८ ॥ (दोहार्थ)-रामचन्द्रने विवेक भरे वचन कहकर माताको समझाया और वनके गुण दोष कहते जानकीको समझाने लगे ॥ ३० ॥

हे राजकुमारि ! सिखावन सुनो, अन्यभाँतिसे मनमें मतमानना ॥१॥ जो मेरा और अपना भला चाहो तो हमारे वचन मानकर घर रहो ॥ २ ॥ मेरी आज्ञा है सासकी सेवा करो हे भामिनि ! सब विधिसे घरमें रहना भला है ॥ ३ ॥

यहिते अधिक धर्म्म नहिं दूजा । सादर सासु श्वशुर पद पूजा४
जब जब मातु करिहिं सुधि मोरी ।होइहि प्रेमविकलमति भोरी५
तब तब तुम कहि कथा पुरानी । सुन्दरि समुझायहु मृदुवानी६
कहौं स्वभाव शपथ शत मोहीं।सुमुखि मातु हित राखौं तोहीं७
दोहा-गुरु श्रुति सम्मत धर्मफल, पाइय विनहिं कलेश ।
हठ वश सब संकट सहे, गालव नहुष नरेश ॥ ३१ ॥
मैंपुनिकरिप्रमाण पितु वानी।वेगिफिरव सुनु सुमुखि सयानी १
दिवस जात नहिं लागहि बारा।सुन्दरि सिखवनि सुनहु हमारा२
जो हठ करहु प्रेमवश वामा। तौ तुम दुख पाउव परिणामा ॥३॥
कानन कठिन भयंकर भारी । घोर घाम हिमवारि वयारी४॥
कुश कंटक मग कंकर नाना । चलब पयादेहि विनु पदत्राना५॥
चरण कमल मृदु मंजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर भारे६॥

इससे अधिक दूसरा धर्म नहीं कि आदर पूर्वक सास श्वशुरके पदकी पूजा करो ॥ ४ ॥ जब माता मेरी सुधिकरैं और प्रेमसे उनकी मति व्याकुल होजाय ॥ ५ ॥ हे सुन्दरि ! तब तब तुम पुरानी कथा कह कोमल वाणीसे उनको समझाना ॥ ६ ॥ मैं सौ शपथ कर स्वभावसे कहताहूं हे सुमुखि ! मैं तुमको माताके ही निमित्त रखता हूं ॥ ७ ॥

दोहार्थ-गुरुसेवा वेद और धर्मका फल इससे बिना क्लेश मिलता है हठ करनेसे गालव और नहुष राजाने बड़े संकट सहे हैं ॥ ३१ ॥

हे सुमुखि सयानी ! मैं भी पिताकी आज्ञा मान शीघ्र लौटूंगा ॥ १ ॥ दिन जाते देर नहीं लगती हे सुन्दरि ! हमारी सीख मानो ॥ २ ॥ हे प्रिये ! जो प्रेमवश तुम हठ करोगी तो परिणाममें दुःख पाओगी ॥ ३ ॥ वन बड़ा कठिन और भयंकर है कडी धूप बडा जाडा और बडी हवा चलती है ॥ ४ ॥ मार्गमें कुश, कांटे और कंकर होते हैं, पादत्रानके विना पयादे चलना होगा ॥ ५ ॥ तुम्हारे चरणकमल बड़े कोमल उज्ज्वल हैं, मार्ग बड़े अगम पर्वतोंसे व्याप्त हैं ॥ ६ ॥

कन्दर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥७॥
भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरज भागा॥८॥
दोहा—भूमि शयन वलकल वसन, अशन कंद फल मूल।
तेकि सदा सब दिन मिलहिं, समय २ अनुकूल॥३२॥
नर अहार रजनीचर करहीं। कपटवेष विधि कोटिक धरहीं॥१॥
लागै अति पहारकर पानी। विपिनविपति नहिं जात बखानी॥२॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृगलोचनि तुम भीरु सुभाये३
रहहु भवन अस हृदय विचारी। चन्द्रवदनि दुख कानन भारी ४
"वरवस रोकि विलोचन वारी। धरि धीरज उर अवनिकुमारी ५
लागि सासुपद कह करजोरी। क्षमब मातु बड़ अविनय मोरी ६॥
सीता—दीन प्राणपति मोहिं सिखसोई। जेहिविधिमोर परमहित होई

कन्दर, खोह, नदी, नद, नारे बड़े अगम अगाधहैं निहारे नहीं जाते७ रीछ सिंह भेड़िये हाथी बड़ा शब्द करते हैं जिसे सुन धीरज भागता है८॥

दोहार्थ--पृथ्वीपर सोना, वल्कल वस्त्र पहरना, खानेको कन्द मूल फल और वह भी क्या सबदिन मिलैंगे समय २ पर मिलैंगे॥ ३२॥

राक्षस मनुष्योंका आहार करते हैं कोटिभाँतिसे कपटवेष धरते हैं॥ १॥ पहाड़का पानी बहुत लगता है, वनकी विपत्ति बखानी नहीं जाती॥ २॥ इस गहन वनकी सुधि आनेसे धीर भी डरजाते हैं, हे मृगलोचनी! तुम स्वभावसेही डरनेवाली हो॥३॥ ऐसा मनमें विचार घर रहो हे चन्द्रवदनि! वनमें बड़ा दुःख है॥ ४॥ यह वचन सुन वरवस नेत्रोंका जल रोंक जानकी मनमें धीरज धर॥ ५॥ सासके चरणोंको प्रणामकर हाथ जोड़ बोलीं हे देवि! मेरी बड़ी अविनय क्षमा करनी॥ ६॥ प्राणपतिने मुझे वह शिक्षा दी जिससे मेरा परमहित हो॥ ७॥

१—रहहु भवन हमरे कहे कामिनि। सादर सासुचरण सेवहु नित जो तुम्हरे अतिहित गृहस्वामिनि। राजकुमारि कठिन कंटक मग क्यों चलिहो मृदुपद गजगामिनि। दुसहबात वर्षा हिम आतप किमि सहिहौ अगणित दिन यामिनि। हौं पुनि पितु आज्ञा प्रमाणकरि ऐहौं वेग सुनहु द्युतिदामिनि। तुलसिदास प्रभु विरह वचन सुनि सह न सकी मुरछित भइ भामिनि॥

मैं पुनि समुझि दीख मनमाहीं। पियवियोग सम दुख जगनाहीं ८

तुम विनु रघुकुल कुमुदविधु, सुरपुर नरक समान॥३३॥

जहँ लगि नाथ नेह [illegible] तियहि त[illegible]

तन धन धाम धरणि पुर राजू। पतिविहीन सब शोकसमाजू॥२॥

प्राणनाथ तुम विनु जगमाहीं। मोकहँ सुखद कतहुँ कोउ नाहीं ३

दोहा-खग मृग परिजन नगर वन, वलकल वसन दुकूल।

नाथसाथ सुरसदनसम, पर्णशाल सुख मूल॥ ३४ ॥

वनदेवी वनदेव उदारा। करिहैं सास श्वशुर सम सारा ॥ १ ॥

[illegible] हाई। प्रभुसँग मंजु मनोज तुराई ॥२॥

[illegible]

क्षणक्षण प्रभुपदकमलविलोकी। रहिहौंमुदितदिवसजिमिकोकी

मैंनेभी मनमें यह समझ देखाहै कि, जगत्में पियवियोगके समान और दुःख नहीं हैं॥८॥(दोहार्थ)-हे प्राणनाथ हे सुन्दर हे सुखद हे चतुर हे रघुकुल कैरवको खिलानेवाले चंद्र ! तुम्हारे विना सुरपुर नरकके समान है ॥३३॥

हे नाथ ! जहांतक नेह और नाते जगत्में हैं, पियाके विना स्त्रीको सूर्यसे अधिकतत्ते हैं॥१॥तन, धन, धाम, धरणी, पुर राज्य प्रीतमके विना सब शोकसमाज है ॥ २ ॥ हे प्राणनाथ ! तुम्हारे बिना जगत्में मुझे कोई सुखदाई नहीं है ॥ ३ ॥ (दोहार्थ)-खग मृग कुटुम्बीजन होंगे वन मुझे नगर होगा वल्कलही रेशमीवस्त्र होंगे तुम्हारे साथमें पर्णशाला इन्द्रभव-नके समान सुखमूल होगी ॥ ३४ ॥

वनके देवी देवता सास श्वशुरके समान प्यार करेंगे ॥ १ ॥ कुश और कोमलपत्तोंकी सेज आपके संग उज्ज्वल तोसकहोगी । २ ॥ कन्द मूल फल अमृतके समान भोजन होगा, पहाडमें सहस्र अवधके समान सुख होगा ॥ ३ ॥ क्षण २ में प्रभुके चरणकमलोंको देखकर दिनमें चकवीके समान प्रसन्न रहूंगी ॥ ४ ॥

दो०-राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिये प्रान।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, शील सनेह निधान ॥ ३५ ॥

मोहिं मग चलत न होइहि हारी।क्षणक्षण चरणसरोज निहारी१
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारगजनित सकल श्रम हरिहौं
पाँव पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहौं वायु मुदित मनमाहीं ॥३॥
श्रमकण सहित श्याम तनु देखे।का दुख समय प्राणपति पेखे४
सम महि तृण तरु पल्लव डासी।पाँयपलोटिहि सब निशि दासी५
मूरति ६
को प्रभुसँगमोहिं चितवनहारा। सिंहवधुहि जिमिशशकसियारा
मैं सुकुमारि नाथ वनयोगू। तुमहिं उचित तप मोकहँ भोगू॥८॥

दोहार्थ-और जो चौदहवर्षतक आप मेरे प्राण रहते जानैं तो अवधमें रहने दो हे दीनबन्धु ! सुन्दर सुख देनेवाले शील स्नेहके घ ३५

क्षण २ आपके पदकमल निहार मुझे मार्ग चलतेमें हार न
हे प्रीतम ! मैं, सबप्रकार तुम्हारी सेवा करूंगी और
श्रमको दूर करूंगी ॥ २॥ पाँव धोय वृक्षकी छायामें बैठ प्रसन्न हो तुम्हारी पवन करूंगी ॥ ३ ॥ पसीनेकी बूंदों सहित तुम्हारा श्याम शरीर देखकर प्राणपतिके होते मुझे क्या दुःख होगा ॥४॥ समानभूमिमें तृण और वृक्षके पत्ते बिछाय दासी सब रात पाँव दाबैगी ॥ ५ ॥ बार २ कोमल मूर्त्ति देखते हुए मुझे ताप और पवन बाधा न देगी ॥ ६ ॥ प्रभुके संग मुझे कौन देखनेवाला है सिंहकी वधूको खरगोश वा गीदड़ क्या देख सकता है ॥ ७ ॥ मैं सुकुमारी हूं.और आप क्या वनके योग्य हैं तुमको तप और मुझको क्या भोग उचित है ॥ ८ ॥

---

१ कृपानिधान सुजान प्राणपति संग विपिन हो आवोंगी ॥ गृहते कोटिगुणित सुख मारग चलत साथ सचुपावोंगी ॥ १ ॥ थाके चरणकमल चापोगी श्रमभये वायु डोलावोंगी ॥ नयन चकोरनि मुख-मयंक छवि सादर पान करावोगी ॥ २ ॥ जो हठि नाथ न रखिही मोकहँ तो सँग प्राण पठावोंगी ॥ तुलसिदास प्रभु विनु जीवतरहि क्यों फिरि वदन देखावोंगी ॥ ३ ॥

दोहा-ऐसेहु वचन कठोर सुनि, जो न हृदय विलगान ।
तो प्रभु विषम वियोग दुख, सहिहैं पामर प्रान ॥ ३६ ॥
राम-कहेउकृपालुभानुकुलनाथा। परिहरि शोच चलहुवनसाथा
नहिं विषादकर अवसर आजू। वेगि करहु वन गमनसमाजू २॥
कहि प्रिय वचन प्रियहि समुझाई। लगे मातुपद आशिष पाई३
कौश०-वेगिप्रजा दुख मेटवआई।जननीनिठुर विसरिजनिजाई
फिरिहि दशा विधि बहुरिकि मोरी। देखिहौंनयनमनोहरजोरी५
सुदिन सुघरी तात कब होई। जननी जियत वदन विधु जोई ६॥
दोहा--बहुरि वच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुवर तात ।
कबहिं बुलाय लगाय उर, हर्षि निरखिहौं गात ॥ ३७ ॥
'सी०-तब जानकीसासुपग लागी'।सुनिय माय मैं परम अभागी
सेवा समय दैव वन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा ॥२॥

दोहार्थ-ऐसे कठोर वचनं सुनकर भी जो हृदय नहीं विलगाता तो प्रभुके कठोर दुःखको पामर प्राण सहैंगे ॥ ३६ ॥

तब रघुनाथजीने कहा जो ऐसी इच्छा है तो शोचको त्याग वनको चलो ॥ १ ॥ अब विषादका समय नहीं है शीघ्र वन गमनका समाज करो ॥ २ ॥ प्रिय वचन कह जानकीको समझाया फिर माताके पद लगे आशीर्वाद पाया ॥ ३ ॥ शीघ्रही आनकर प्रजाका दुःख मेटना निठुर जननीको मत भूल जाना ॥ ४ ॥ हे विधाता ! क्या कभी फिर मेरी दशा फिरैगी जो मनोहर जोरी नेत्रोंसे देखूंगी ॥ ५ ॥ हे तात ! सुदिन सुघरी कब होगी जो माता जीतेजी फिर तुम्हारा मुखचन्द्र देखैगी ॥ ६ ॥

दोहार्थ--फिर बच्छ लाल रघुपति रघुवर ऐसा कहकर कब बुलाय हृदयसे लगाय प्रसन्न हो मुख देखूंगी ॥ ३७ ॥

तब जानकी सासके चरणोंमें लगी और बोली सुनो माता ! मैं परम-अभागी हूं ॥ १ ॥ सेवासमय दैवने वन दिया मेरा मनोरथ सफल न किया ॥ २ ॥

'सुनिसियवचन सासुअकुलानी।दशा कौन विधि कहौं बखानी
दोहा–सीतहि सासु अशीष सिख, दीन्ह अनेक प्रकार ।
चली नाइ पद पद्म शिर, अति हित बारहिं बार ॥३८॥
समाचार जब लक्ष्मणपाये।व्याकुल विलखि वदन उठिधाये १
कम्प पुलक तनु नयन सनीरा । गहे चरण अति प्रेम अधीरा"
राम–तातप्रेमवशजनिकदराहू ।समुझि हृदयपरिणामउछाहू ३
दोहा–मातु पिता गुरु स्वामि सिख, शिर धरि करहि सुभाय ।
लहेउ लाभ तिन जन्मके, नतरु जन्म जग जाय ॥३९॥
अस जिय जानि सुनहु सिख भाई।करो मातु पितुपद सेवकाई॥
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं।राव वृद्ध मम दुख मनमाहीं ॥ २ ॥
मैं वन जाउँ तुमहिं लै साथा। होइहि सबविधि अवध अनाथा ३
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परै दुसह दुख भारू४॥

यह जानकीके वचन सुन सास अकुलाई वह दशा किस प्रकार बखानकर कहूं ॥ ३ ॥ (दोहार्थ)–सीताको सासने अशीश और सीख अनेक प्रकारसे दी फिर चरणकमलमें बारम्बार हितसे शिर नवाय जानकी चली ॥ ३८ ॥

जब लक्ष्मणने समाचार पाये तब व्याकुल हो दुःख करते शीघ्र आये ॥ १ ॥ शरीर कम्पित रुवें खड़े हुए प्रेमसे अधीर हो चरण पकड़े ॥ २ ॥ रामचन्द्र बोले हे तात ! प्रेमसे मत घबराओ मनमें समझो परिणाम भला होगा॥३॥ (दोहार्थ)माता पिता गुरु स्वामीकी सीख जो स्वभावसे शिरपर धारण करते हैं उन्होंनेही जन्मका लाभ लिया नहीं तो जन्म वृथा गया ॥ ३९ ॥

हे भाई ! ऐसा जीमें जानकर सीख सुनो माता पिताके चरणोंकी सेवा करो ॥ १ ॥ घरमें भरत शत्रुहन नहीं हैं राजा वृद्ध हैं और मनमें मेरा दुःख है ॥२॥ जो मैं तुम्हैं साथ ले वनमें जाऊं तो सबप्रकार अवध अनाथ होगी ॥ ३ ॥ गुरु पिता माता प्रजा परिवार सबपर बड़ा दुख पड़ैगा ॥ ४ ॥

होइहि
सो नृप अवशि नरक अधिकारी६
रहहु तात अस नीति विचारी।सुनत लषण भये व्याकुल भारी७
दोहा-"उतर न आवत प्रेम वश, गहे चरण अकुलाय।"
नाथ दास मैं स्वा मे तुम, तजहु तो कहा बसाय ४०॥
कहौं स्वभाव नाथ पतियाहू ॥१॥
मोरे सबै एक तुम स्वामी। दीनबन्धु उर अन्तर्यामी ॥ २ ॥
मन क्रम वचन चरण रति होई।कृपासिन्धु परिहरिय कि सोई ३
दोहा-"करुणासिन्धु सुबन्धुके, सुनि मृदुवचन विनीत।
समुझाये उर लाय प्रभु, जानि सनेह सभीत ॥४१"॥

" पित ह

पूछेउ मातु मलिन मन देखी।लषण कहेउ सब कथा विशेखी ३

...से यहां रहकर सबका परितोष करो-हे तात! नहीं तो बडा दोष ... ॥ ५ ॥ जिसके राज्यमें प्रियप्रजा दुखारी है वह राजा अवश्यही नरकका अधिकारी होताहै ॥६॥ हे तात! ऐसी नीति विचार कर रहजाओ यह सुनकर लक्ष्मण बड़े व्याकुल होगये ॥ ७ ॥ (दोहार्थ)-उत्तर नहीं आया प्रेमवश आकुल होकर चरण पकड़कर बोले. हे नाथ! मैं दास और तुम स्वामी हो छोड़ दोगे तो मेरा क्या वश है ॥ ४० ॥

हे नाथ!स्वभावसे कहताहूं विश्वास करिये मैं गुरु पिता माता किसीको नहीं जानता हूं॥१॥हे स्वामि! मेरे तो सब कुछ एक तुमही हो दीनबन्धु और अन्तरकी जानते हो॥२॥मन वचन कर्मसे जो चरणोंमें प्रीती करै हे कृपासिन्धु! क्या वह त्यागा जाता है॥ ३ ॥ (दोहार्थ)-कृपासागरने भाईके यह नम्र वचन सुन स्नेहसे भीत देख हृदय लाय समझाया ॥ ४१ ॥

जाओ मातासे विदा मांग आओ और शीघ्र वनको चलो ॥ १ ॥ तब लक्ष्मण प्रसन्न हो मातापर आये मानो अंधेने फिर नेत्र पाये ॥२॥ मलीन मन देख माताने पूँछा लक्ष्मणने सब कथा विशेषरूपसे कही ॥ ३ ॥

दोहा–समुझि सुमित्रा राम सिय, रूप सुशील सुभाव।
नृपसनेह लखि धुनेउ शिर, पापिन कीन्ह कुदाव॥४२॥
धीरज धरयउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदुबानी"
सुमि०–तात तुम्हार मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही२
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहाँ दिवस जहँ भानु प्रकाशू३॥
जोपै राम सीय वन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ४॥
जाउँ।
जो तुम्हरे मन छाँड़ि छल, कीन्ह रामपद ठाउँ॥४३॥
सोई। रघुवर भक्त जासु सुत होई ॥ १ ॥
नतरु बाँझि भलि वादि बियानी। रामविमुख सुतते हितहानी२
तुम्हरे भाग्य राम वन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥३ ॥
सकल सुकृत कर फल सुत येहू। रामसीयपद सहज सनेहू४॥

दोहार्थ–सुमित्राने राम और सीताको स्मरणकर रूप शील स्वभावको स्मरणकर और राजाका स्नेह देख शिर धुना कि पापिनीने कुदाँवकिया४२

कुअवसर जानकर धीरज धरा सहज सौहार्दसे कोमलवाणी बोली ॥ ॥ १ ॥ हे तात जानकी तुम्हारी माता और सब भाँतिसे स्नेही रामभद्र तुम्हारे पिता हैं ॥ २ ॥ जहाँ रामका निवास है वहीं अवध है, दिन वहीं है जहाँ सूर्यका प्रकाश है ॥ ३ ॥ जो राम और सीता वनमें जाते हैं तो अवधमें तुम्हारा कुछ काम नहीं है ॥ ४ ॥ (दोहार्थ)–तुम मुझ समेत बडे भाग्यवान हुए, बलिहारी जाऊं हूं जो तुम्हारे मनमें छल छोडकर रामके चरणोंमें निवास किया है ॥ ४३ ॥

जगत्में वही स्त्री पुत्रवती है कि जिसका पुत्र रामचन्द्रका भक्त हो ॥ ॥ १ ॥ न तौ बाँझ स्त्रीही भली है वृथा बियाई रामसे विमुख पुत्रसे हितकी हानि है ॥ २ ॥ तुम्हारेही भाग्यसे राम वनको जाते हैं हे तात ! दूसरा कारण कुछ नहीं है ॥ ३ ॥ हे पुत्र ! सब पुण्योंका फल यह है कि सीतारामके चरणोंमें स्नेह हो ॥ ४ ॥

राग रोग ईर्षा मद मोहू। जनि स्वप्नेहु इनके वश होहू ॥ ५ ॥
सकल प्रकार विकार विहाई। मन क्रम वचन करहु सेवकाई ६
तुम कहँ वन सब भाँति सुपासू।सँग पितु मातु राम सिय जासू ७
जेहि न राम वन लहहिं कलेशू।सुत सोइ करहु मोर उपदेशू ८
छंद--उपदेश यहि जेहि तात तुम ते राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति वन बिसरावहीं ॥
"तुलसी सुतहि सिख देइ आयसु देइ पुनि आशिष दई",
रति होउ अविरल अमल सिय रघुवीर पद नित २ नई १
"चले लषण जहँ जानकिनाथा। भे मनमुदित पाइ प्रिय साथा १
वन्दि रामसिय चरण सुहाये। चले संग नृपमन्दिर आये॥२॥
सचिव उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय वचन राम पगु धारे॥३॥
दोहा--सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि २ अकुलाइ।
बारहिं बार सनेहवश, राउ लिये उर लाइ ॥४४॥

राग, रोग, ईर्षा, मद, मोह, स्वप्नमें भी इनके वशीभूत मतहो ॥ ५ ॥ सब प्रकारके विकारको छोड़ मन वचन कर्मसे सेवा करो ॥ ६ ॥ तुमको वनमें सब भाँति आनन्द है जिसके संग पिता माता रामसीता हैं ॥ ७ ॥ जिस प्रकार वनमें रामको क्लेश न हो हे पुत्र ! वही करना यह उपदेश है ॥८॥

छंदार्थ—वही उपदेश देना जिससे तुम्हारे रामसीता सुख पावैं पिता माता प्यारे परिवारकी सुरत वनमें बिसरावें इसप्रकार पुत्रको सीखदे अशीश दी कि सीतारामके चरणोंमें तुम्हारी नित्य नई प्रीति हो ॥ १ ॥

जहाँ रामचन्द्र थे वहाँ लक्ष्मण गये और प्रिय साथ पाकर प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ राम सीताके सुन्दर चरणोंको प्रणामकर चले और राजमन्दिरमें आये ॥२॥ मंत्रीने उठाकर राजाको बैठाया और यह प्रियवचन कहे कि रामने पग धारण किया है ॥ ३ ॥ (दोहार्थ)—सीतासहित दोनों पुत्रोंको देखकर राजा व्याकुल हो उठे और बारंबार स्नेहके वशसे राजाने हृदयसे लगा लिया ॥ ४४ ॥

नाइ शीश पद अति अनुरागा।उठि रघुनाथ विदा तब मांगा

पितु ... दीजै हर्षसमयविस्मय कतकीजै

नि सनेह वश ... घुपति

राजा--सुनहु तात तुम कहँ मुनि कहहीं। राम चराचरनायक अहहीं

दोहा--और करै अपराध कोउ, और पाव फलभोग।

... भगवन्त गति, को जग जानेयोग ॥४५॥

"राउ, राम राखन हितलागी।बहुत उपाय कीन्हछलत्यागी १

तब नृप सीय लाइ उर लीन्हीं।अतिहित बहुत भाँतिसिखदीन्हीं

सीय सकुच वश उतर न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेयी ३॥

मुनिपट भूषण भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदुवानी॥४॥"

कैकेयी--नृपहि प्राणप्रिय तुम रघुवीरा। शीलसनेह न छांडहिभीरा

...त सुयश परलोकनशाऊ। तुमहिं जान वन कहहिं न राऊ६

चरणोंमें शिर नवाय बडे प्रेमसे उठकर रघुनाथजीने बिदा मांगी ॥१॥ हे पिता! मुझे अशीश और आज्ञा दो हर्षके समय विस्मय क्यों करते हो ॥ २ ॥ सुनकर राजाने प्रेमवश हो बाँह पकड रामभद्रको बैठाया और बोले ॥ ३ ॥ सुनो तात! तुमको मुनि कहते हैं कि राम चरअचरके नायक हैं ॥ ४ ॥ (दोहार्थ)—और कोई अपराध करै और कोई फल पावै विधाताकी गति बडी विचित्र है कौन जान सकता है ॥ ४५ ॥

राजाने रामके रखनेके निमित्त छल त्याग अनेक उपाय किये ॥१॥ तब राजाने जानकीको हृदय लगाय अति हितसे बहुत भाँति शिक्षा दी ॥ ॥२॥ सीता सकुचके मारे उत्तर नहीं देती सो सुनकर कैकेयी तमक उठी ॥ ३ ॥ मुनियोंके पट भूषण और पात्र लाय आगे धर कोमलवाणी बोली ॥४॥ हे रघुवीर! तुम राजाको प्राणोंसे प्यारे हो तुम्हारा शील स्नेह नहीं छोड सकते ॥ ५ ॥ चाहै सुकृत सुयश और परलोक नाश होजाय राजा तुम्हैं जानेको न कहैंगे ॥ ६ ॥

अस विचारि सोइ करौ जो भावा।राम जननिसिख सुनिसुखपावा

(राजा मूर्च्छित होते हैं)

दोहा–"सजि वनसाज समाजसब, वनिता बन्धु समेत ।
वन्दि विप्र गुरु चरण प्रभु, चले करि सबहि अचेत ४६"

राम–सोइ सब भाँति मोर हितकारी।जेहिते रहैं भुआल सुखारी

दोहा–मातु सकल मोरे विरह, जेहि न होहिं दुखदीन ।
सो उपाय तुम करव सब, पुरजन परम प्रवीन ॥ ४७ ॥

"गणपति गौरि गिरीश मनाई । चले अशीश पाइ रघुराई ॥१॥"

(चैतन्य होकर)

राजा–रामचलेवन प्राणनजाहीं।केहिसुखलागिरहेतनुमाहीं२॥
पुनि धरि धीर कहहिंनरनाहू । लै रथ संग सखा तुम जाहू ॥३॥

दोहा–सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि ।
रथ चढ़ाय दिखराय वन, फिरहु गये दिन चारि ॥४८॥

ऐसा विचार जो भला लगै सो करो रामने माताकी सीख सुन सुख पाया ॥ ७ ॥ (दोहार्थ)–वनका सब साज समाज सजाय प्रभु वनिता और बंधुसमेत विप्र गुरुके चरणोंको प्रणाम कर सबको अचेतकर चले और बोले ॥ ४६ ॥

वही सब भांति मेरा हितकारी है जिससे राजा प्रसन्न रहैं ॥ १ ॥

दोहार्थ–सब माता मेरे विरहमें जैसे दुःखसे दीन न हों हे परम प्रवीण पुरवासियो ! तुम वही उपाय करना ॥ ४७ ॥

इस प्रकार गणपति, गौरी, गिरीशको मनाय रामचन्द्र अशीश पाय चले ॥ १ ॥ राजा बोले राम वनको चले और हमारे प्राण नहीं जाते किस सुखके लिये शरीरमें स्थित होरहे हैं ॥ २ ॥ फिर राजा धीर धरकर बोले हे सखा ! तुम रथको लेकर जाओ ॥ ३ ॥ (दोहार्थ)-दोनों कुमार कोमल हैं और जनकसुता बडी कोमल है इन्हैं रथपर चढाय वन दिखाय चौथे दिन लौट आओ ॥ ४८ ॥

जो नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसिन्धुदृढव्रत रघुराई १॥
विनयकरहु कर जोरी।फेरिय प्रभुमिथिलेशकिशोरी२॥
जब सिय कानन दे डराई कहेउ मोरिसिख अवसरपाई३॥
श्वसुर अस कहेउसँदेशू।पुत्रि फिरिय वन बहुत कलेशू४॥
पितुगृहकबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेउ जहाँ रुचि होइ तुम्हारी ५
"असकहिमूर्च्छिपरेमहिराऊ।रामलषणसिय आनिदिखाऊ ६
दोहा-पाय रजायसु नाइ शिर, रथ अति रुचिर बनाय।
गयउ जहाँ बाहर नगर, सीय सहित दोउ भाय ॥ ४९ ॥
तब सुमंत नृप बचन सुनाये। करि विनती रथ राम चढ़ाये ॥१॥
चढ़ि रथ सीयसहित दोउभाई।चले हर्षि अवधहिं शिरनाई॥२॥
हा-बालक वृद्ध विहाइ गृह, लगे लोग सब साथ ।

जो दोनों भाई शीघ्र न फिरैं जो सत्यके सागर दृढव्रत रघुराई हैं ॥ १ ॥ तो तुम हाथ जोड़कर विनय करना हे प्रभु! जानकीको तो लौटा दो ॥२॥ जब सीता वनको देखकर डरै तब अवसर पाय मेरी सीख कहना कि ॥ ३ ॥ सास श्वशुरने ऐसा संदेशा कहा है हे पुत्रि ! फिरो वनमें बडा क्लेश है ॥ ४ ॥ पिताके घर कभी २ सुसरालमें जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ रहो ॥ ५ ॥ यह कह राजा मूर्छित होगये और भूमिपर गिरे कि राम लक्ष्मण जानकीको लाकर दिखाओ ॥ ६ ॥ (दोहार्थ)-आज्ञा पाय शिरनवाय रुचिर रथ बनाय नगरके बाहर जहाँ दोनों भाई सीता समेत थे तहाँ गये ॥ ४९ ॥

तब सुमन्तने राजाके वचन सुनाये और विनती करके रथपर रामको चढ़ाया ॥ १ ॥ रथपर चढ़ सीता सहित दोनों भाई प्रसन्न हो अवधको शिर नवाय चले ॥ २ ॥ (दोहार्थ)-बालक और वृद्ध जनोंको घर छोड़कर शेष सब लोग साथ चले पहले दिन रामने तमसानदीके किनारे निवास किया ॥ ५० ॥

रघुपति प्रजा प्रेमवश देखी। सदय हृदय दुख भयउ विशेषी १॥
[illegible]
किये धर्म्म उपदेश घनेरे । लोग प्रेमवश फिरहिं न फेरे ॥ ३ ॥

(लोग सोते हैं)

दोहा-"राम लषण सिय यान चढ़ि, शंभु चरण शिर नाय
सचिव चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराय॥५१

चतुर्थ दर्शन ।

(रामचंद्रका निषादसे मिलना)

"सीता सचिव सहित दोउ भाई। श्रृंगवेरपुर पहुँचे जाई॥ १ ॥
यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिये प्रियबंधु बुलाई २॥
लै फल फूल भेंट भरि भारा। मिलन चल्यो हिय हर्ष अपारा३॥
करि दण्डवत भेंट धरि आगे। प्रभुहि विलोकत अति अनुरागे४

रघुपतिने जब प्रेमवश प्रजा देखी तो उनके दयावाले हृदयमें बड़ा दुःख हुआ ॥ १ ॥ प्रेमसे कोमल सुहाये वचन कहकर बहुत प्रकारसे रामने लोगोंको समझाया ॥ २ ॥ और बड़े धर्मके उपदेश किये लोग प्रेमके वश हो फेरेसे नहीं फिरते हैं ॥ ३ ॥ (दोहार्थ)-तब लोगोंको सोया देख शिवके चरणोंमें शिर नवाय मंत्रीने इधर उधर खोज दुराकर अपना रथ चलाया ॥ ५१ ॥

चतुर्थ दर्शन ।

(रामचंद्र और निषाद मिलन)

सीता और सुमन्तके सहित दोनों भाई श्रृंगवेरपुरमें जाकर पहुँचे ॥१॥ जब निषादने यह समाचार पाये तब प्रसन्न हो अपने बन्धुजनोंको बुलाया ॥ २ ॥ फल फूल और भेंट लेकर मनमें प्रसन्न हो चला ॥ ३ ॥ दंडवतकर आगे भेंट धरकर बड़े प्रेमसे प्रभुको देखने लगा ॥ ४ ॥

सहज सनेह विवस रघुराई। पूछेउ कुशल निकट बैठाई"॥ ५॥
नि०-कृपाकरिय पुरधारिय पाऊ। थापियजन सबलोग सिहाऊ

सु

दोहा—वर्ष चारि दश वास वन, मुनिव्रत वेष अहार।
ग्रामवास नहिं उचित सुनि, गुहहि भयो दुख भार॥५२॥
"गुह सँवारि साथरी बनाई। कुश किसलय मृदु परम सुहाई १"
शुचि फल मूल मृदुल मधु जानी। दोना भरिभरि राखेसिआ
दोहा--सिय सुमंत भ्रातासहित, कन्द मूल फल खाइ।
शयन कीन्ह रघुवंशमणि, पाँय पलोटत भाइ ॥ ५३
उठे लषण प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहिं सोवन मृदुबानी १..
कछुक दूरि सजि बाण शरासन। जागन लगेबैठि वीरासन ॥२॥
गुह बुलाइ पाहरू प्रतीती। ठाँव ठाँव राखे अतिप्रीती ॥ ३ ॥

रघुनाथने सहज प्रेमके वश हो निकट बैठाय कुशल पूछी ॥ ५ ॥ तब निषाद बोला कृपाकर पुरमें चलकर जनको सनाथ करो लोग प्रसन्न हों ॥६॥ रामचन्द्र बोले हे सुजान सखा! तुमने सत्य कहा परन्तु पिताने मुझे औरही आज्ञा दीहै कि ॥७॥ (दोहार्थ)—चौदह वर्ष वनमें निवासकर मुनियोंकेसे व्रत वेष आहार करूंगा मुझे ग्रामका वास उचित नहीं यह सुनकर निषादको बड़ा दुःख हुआ ॥ ५२ ॥

निषादने सँवारकर साथरी बनाई जो कुश कोमल पत्तोंकी परम सुहाई थी ॥ १ ॥ अच्छे फल मूल कोमल और मधुर जानकर दोना भर २ कर आगे लाकर धरे ॥ २ ॥ (दोहार्थ)—सीता सुमन्त भ्राता सहित कन्द मूल फल खाकर रघुनाथजीने शयन किया भाई पाँव पलो-टने लगे ॥ ५३ ॥

प्रभुको सोता जान लक्ष्मण उठे और कोमल वाणीसे मंत्रीको सोनेके निमित्त कहा ॥१॥ और आप कुछ दूरपर धनुषबाण सजाय वीरासनपर बैठ जागने लगे॥२॥निषादने विश्वासी पहरुए बुलाकर स्थानस्थानपर रक्खे३॥

आप लषण पहँ बैठेउ जाई। कटि भाथा शर चाप चढाई ॥४।
सोवत प्रभुहि निहारि निषादा।भयउ प्रेमवश हृदय विषादा ५।
तनु पुलकित लोचन जल बहई।वचनसप्रेम लषणसन कहई६"।
निषाद–भूपति भवन सुसहज सुहावा।सुरपतिसदननपटतरआवा७॥
मणिमयरच्चित चारु चौवारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे८॥

दोहा–शुचि सुविचित्र सुभोगमय, सुमन सुगन्ध सुवास।
पलँग मंजु मणि दीप जहँ,सब विधि सकल सुपास॥५४॥

तहँ सिय राम शयन नित करहीं।निज छवि रति मनोज मदहरहीं
ते सिय राम साथरी सोये।श्रमित वसन बिन जाहिं न जोये॥२॥
"बोले लषण मधुर मृदुबानी। ज्ञान विराग भक्ति रस सानी ३"।
ल०-को न काहुदुखसुखकरदाता।निजकृतकर्मभोगसबभ्राता४

आपभी कमरमें तरकस लगाय धनुषपर बाण चढाय लक्ष्मणके पास जा बैठा ॥ ४ ॥ निषाद प्रभुको सोता देख प्रेमवश हृदयमें विषाद युक्त हुआ ॥ ५ ॥ शरीर पुलकायमान नेत्रोंसे जल बहने लगा प्रेमपूर्वक लक्ष्मणसे कहने लगा ॥ ६ ॥ जो राजभवन स्वाभाविकही शोभायमान् है जिसके समान इन्द्रभवन भी नहीं है ॥ ७ ॥ जिसके सुन्दर चौवारे मणियोंसे रचित हैं जानो कामदेवने अपने हाथसे सँवारे हैं ॥ ८ ॥ (दोहार्थ)–जो पवित्र विचित्र भोगमय है जो फूलोंकी गन्धसे सुवासित है [ऐसे उज्वल] पलंग मणियोंके दीपक जहां सब प्रकारसे विश्राम है ॥ ५४ ॥

वहां सीताराम रात्रिको शयन करते हैं अपनी छबिसे रति और कामका मद हरते हैं ॥ १ ॥ वे सीता और राम साथरीपर सोये हैं और श्रमित वस्त्रके विना देखे नहीं जाते ॥ २ ॥ लक्ष्मणजी मधुर मृदुवाणी बोले जो ज्ञान वैराग्य भक्ति रसमें सनी थी ॥ ३ ॥ कोई किसीको सुख दुःख देनेवाला नहीं है हे भाई ! सब अपना किया सुख दुःख भोगते हैं ॥ ४ ॥

अस विचार नहिं कीजियरोषू। काहुइ वादि न देइय दोषू।
"कहत राम गुण भा भिनुसारा।जागे जगमंगल दातारा
सकल शौच करि राम अन्हाये।शुचि सुजान वटक्षीर मँगाये७
अनुजसहित शिरजटा बनाये।देखि सुमंत्र नयन जल छाये ८"
सुम०-नाथ कहेउ अस कोशलनाथा।लै रथ जाहुरामकेसाथा ९
वन दिखाइ सुरसरि अन्हवाई।आनहु वेगि फेरि दोउ भाई १०
लषण रामसिय आनेहु फेरी।संशय सकल सकोच निबारी११॥
दो०-नृप अस कह्यउ गुसाँइ जस, कहिय करौं बलि सोइ।
करि विनती पाँयन परयउ, दीन बाल जिमि रोइ ॥९९॥
तात कृपाकर कीजिय सोई। जाते अवध अनाथ न होई ॥१॥
राम-"मंत्रिहिराम उठाहु प्रबोधा"।तात धर्ममग तुम सब शोधा
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धर्म धरेउ सहि संकट नाना ॥३॥
धर्म न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुराण बखाना ४

ऐसा विचार रोष मतकरो वृथा किसीको दोष मत दो ॥५॥ रामके गुण कहते सुनते सबेरा होगया तब जगत्में मंगल करनेवाले जागे ॥६॥ सब शौचकर स्नान किया और फिर रामचन्द्रने वटका क्षीर मँगाया ॥७॥अनुज सहित शिरपर जटा बनाये देखकर सुमन्तके नेत्रोंमें जल भरि आया॥८॥ हे नाथ ! कौशलराजने कहा है कि रथ लेकर रामके साथ जाओ ॥ ९ ॥ वन दिखाय गंगा न्हवाय फिर दोनों भाइयोंको फेरलाओ ॥ १० ॥ वन दिखाय लक्ष्मण रामको फेर लाओ सब सन्देह और संकोच दूरकरो ॥११॥

दोहार्थ-हे प्रभो ! राजाने तो ऐसा कहा है अब जो कहो सो करूं विनती करके पाँवोंमें पड़गया बालकके समान रोदिया ॥ ९९ ॥

हे तात ! कृपाकर सोई करो जिससे अवध अनाथ न हो॥ १॥रामने मंत्रीको उठाकर समझाया हे तात ! तुमने धर्ममार्ग सब शोधा है ॥ २ ॥ रन्तिदेव बलिराजाने जो कुछ कहा सो करा और धर्मके निमित्त अनेक संकटसहे ॥३॥ सत्यके समान दूसरा धर्म नहीं यह आगम निगम पुराणोंमें बखाना है॥४॥

दो०–पितुपद गहि कहि कोटि विधि, विनय करब कर जोरि।
चिन्ता कवनिहुँ बातकी, तात करिय जनि मोरि ॥५६॥

व्य तुम्हारे। दुख न

न्त पुनि भूप संदेशू।

पितुसंदेश सुनिकृपानिधाना। सियहि दीन्ह शिष कोटिविधाना
सुनि पतिवचन कहति वैदेही। सुनहु प्राणपति परम सनेही ४"
सो०-प्रभु करुणामय परम विवेकी। तनु तजि छाँह रहत किमि छेकी ५
प्रभा जाय कहँ भानु विहाई। कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई ६॥
विनु रघुपतिपद पद्मपरागा। मोहिं कोउ सपनेहु सुखद नलागा ७
"मेटि जाय नहिं राम रजाई। कठिन कर्म्मगति कछु न बसाई ८

दोहा–रथ हाँके हय राम तन, हेरि २ हिहनाहिं।
खि निषाद विषादवश, शिर धुनि २ पछिताहिं ॥५७॥

दोहार्थ–पिताके चरणगह कोटिविधिसे हाथ जोड़कर विनय करना हे तात! किसी बातकी मेरी चिन्ता मतकरो ॥ ५६ ॥

तुमको सबप्रकारसे सोई कर्तव्य है कि राजा मेरे शोचसे दुःख न पावैं १ फिर सुमन्तने राजाका सन्देशा कहा कि जानकी वनका क्लेश न सहस-कैंगी इन्हें भेजदो ॥ २ ॥ पिताका सन्देशा सुनकर कृपानिधाननें सीता-को अनेक शिक्षा दीं ॥३॥ पतिके वचन सुन जानकी बोली, हे परमस! नेही प्राणपति! सुनो ॥ ४ ॥ प्रभु करुणामय परमविवेकी हो शरीर छोड़ कर छाँह कैसे रहसकती है ॥ ५ ॥ सूर्यको छोड़कर प्रभा कहां जाय और चन्द्रमाको छोड़कर चांदनी कहां जाय ? ॥ ६ ॥ विना रघुपतिके चरणकमलके मुझे कोई स्वप्नमेंभी सुखदाई नहीं लगा ॥ ७ ॥ रामकी आज्ञा नहीं मेटी जाती कर्मगतिपर कुछ नहीं बसाती ॥ ८ ॥

दोहार्थ–सुमन्तने रथ हांका घोडे रामकी ओर देख देखकर हिन-हिनाते हैं देखकर निषाद विषादवशसे शिर धुन २ पछताते हैं ॥ ५७ ॥

वरवस राम सुमन्त पठाये। सुरसरि तीर आपु चलि आये१"
केवट-"माँगी नाव न केवट आना। कहै तुम्हार मर्म मैं जाना२॥
रज कहँ सबकहहीं। मानुष करणि मूरि कछु अहहीं
छुवत शिला भ सुहाई। पाहनते न काठ कठिनाई ॥ ४
तरणिउ
यहि प्रतिपालों सब परिवारू। नाहिं जानो कछु और कबारू ६॥
जो प्रभु अवशि पारगा चहहू। तो पदपद्म पखारन कहहू ॥ ७॥
छंद--पदपद्म धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहों॥
मोहिं राम राउरि आन दशरथ शपथ सब साँचीकहों॥
वरु तीर मारहिं लषणपै जब लगि न पाँव पखारिहौं॥
तबलगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहों॥१॥
सो०-"सुनि केवटके वयन, प्रेम लपेटे अटपटे।
विहँसे करुणा अयन, चितै जानकी लषणतन"॥१॥

रामने सुमन्तको वरवश भेजा और आप गंगाके किनारे आये॥ १॥ नाव माँगनेपर केवट नहीं लाया कि मैंने तुम्हारा मर्म जाना है॥२॥चरण कमलकी रजको सब कहते हैं कि मनुष्य करनेकी कुछ जड़ी है॥३॥ छूतेही शिला स्त्री होगई कुछ पत्थरसे तो काठ अधिक कठिन नहीं है॥ ४॥ जो यह नाव भी स्त्री होजाय तो मेरी नाव भी उड़जाय वाट पड़जाय ५ इसीसे सब कुटुम्ब पालता हूं कुछ और कवार नहीं जानता हूं ॥ ६॥ हे प्रभु! जो शीघ्र पार जाना चाहो तो चरणकमल धोनेदो॥ ७॥

छन्दार्थ-चरणकमल धोकर नावपर चढ़ाकर हे नाथ! उतराई नहीं चाहता हे राम! मुझे आपकी आन और दशरथकी शपथ है मैं सत्य कहता हूं चाहै लक्ष्मण तीर मारैं पर जबतक पाव न धोलूंगा तबतक हे कृपानाथ! मैं पार नहीं उतारूंगा॥ १॥

सोरठार्थ-यह प्रेमके लपेटे अटपटे वचन केवटके सुन लक्ष्मण जानकीकी ओर देख रामचन्द्र हँसे॥ १॥

राम--कृपासिन्धु बोले मुसुकाई । सोइ करहु जेहि नाव न जाई १
बेगि आनि जल पाँव पखारू। होत विलम्ब उतारहु पारू २
"केवट राम रजायसु पावा । पानि कठवता भरिले आवा ॥३॥
अतिआनन्द उमँगि अनुरागा॥चरणसरोज पखारन लागा॥४॥
दो०--पद पखारि जल पान करि, आपसहित परिवार ।
पितर पार करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ लै पार॥५८॥
उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता॥सीय राम गुह लषणसमेता ॥१॥
केवटउतरि दण्डवतकीन्हा॥प्रभुसकुचे कछु यहिनहिंदीन्हा २॥
पिय हियकी सिय जाननहारी ।मणिमुँदरीमनमुदितउतारी३॥
कहेहु कृपालु लेहु उतराई ।केवट चरण गहेहु अकुलाई॥४॥"
केवट--नाथआजुहमकाहनपावा॥मिटेदोषदुखदारिददावा ॥५॥
अमित काल मैं कीन्हमजूरी॥आजु दीन्ह विधि सब भरिपूरी६॥
फिरति बार जो कछु मोहिं देवा।सो प्रसादमैं शिरधरि लेवा७॥

हँसकर कृपासिन्धु बोले सोईकरो जो तुम्हें सुहावै नाव जिससे न जाय ॥१॥ जल्दी जल लाकर पाँव धोओ देर होती है पार उतारो ॥२॥ केवट रामकी आज्ञा पाय कठौता पानीसे भरलाया ॥ ३ ॥ बड़े आनन्दसे अनुरागमें उमंगकर चरणकमलको धोने लगा ॥ ४ ॥ (दोहार्थ)—चरण धोकर और परिवारसहित जल पानकर पितर पारकर फिर: प्रसन्नतासे प्रभुको पार लेगया ॥ ५८ ॥

उतरकर गंगाकी रेतीमें खड़े हुए सीताराम निषाद और लक्ष्मण समेत उतरे ॥ १ ॥ केवटने उतरकर दंडवत की प्रभु सकुचाये कि इसको कुछ नहीं दिया ॥ २ ॥ अपने प्रीतमके हृदयकी सीताने जानकर प्रसन्नहो मणिमुँदरी उतारी॥३॥रघुनाथजी बोले उतराई लो केवटने प्रसन्नहो चरण पकडे॥ ४ ॥ हे नाथ ! आज हमने क्या नहीं पाया दोष, दुःख, दारिद्र मिटगये॥ ५ ॥ बहुत कालतक मैंने मजूरी की आज विधाताने भरपूर देदी ॥६॥ फिरती बार जो कुछ मुझे दोगे सो प्रसाद मैं शिरधरकर लूंगा ७

दो०–"बहुत कीन्ह हठ लषण प्रभु, नहिं कछु केवट लेय।
विदा कीन्ह करुणायतन, भक्ति विमल वर देय"॥५९॥

पंचम दर्शन।



(स्थान वन)

"प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराज दीख प्रभु जाई॥ १॥
तब प्रभु भरद्वाज पहँ आये। करत दण्डवत मुनि उरलाये॥२॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानन्दराशि जनु पाई ३॥

दोहार्थ--बहुतही रामचन्द्र और लक्ष्मणने हठ की केवटने कुछ नहीं लिया तब भगवान्ने उज्ज्वल भक्तिका वर देकर विदा किया निषादने कहा एकसे रुजगारवाले परस्पर कामकी मजूरी नहीं लेते मेरा आपका एकही काम है मेरे घाटपर आप आये मैंने पार करदिया जब मैं आपके घाटपर जाऊं तुम मुझे पार कर देना भगवान्ने यह सुन परमभक्तिका वरदिया॥ ५९॥

पंचम दर्शन।

प्रातःकालही प्रातःकृत्य करके रामचन्द्रने तीर्थराजका दर्शन किया॥ १॥ तब प्रभु भरद्वाजपै आये दण्डवत करते देख मुनिने हृदयसे लगाये॥ २॥ मुनिके मनमें जो आनन्द हुआ सो कहा नहीं जाता मानो ब्रह्मानन्दकी राशि पाई है॥ ३॥

१ राग विलावल—नृपति कुँवर राजत मग जात। सुन्दर वदन सरोरुह लोचन मर्कत कनक वर्ण मृदुगात। अंसन चाप तूण कटि मुनिपट जटामुकुट बिच नूतन पात। फेरत पाणि सरोजन सायक चोरत चितहिं सहज मुसकात। सग नारि सुकुमारि सुभग सुठि राजत विन भूषण नवसात। सुखमा निरखि ग्राम बनितनके नलिन नयन विकसत मानो प्रात। अग अंग अगणित अनग छवि उपमा कहत सुकवि सकुचात। सियासमेत नित तुलसिदासचित वसत किशोर पथिक दोउ भ्रात॥ १॥

राग कल्याण—पूँछत ग्रामबधू मृदुवानी। गौर श्याम सुभगतनु सुदर यह तुम्हरे को लगत सयानी। शील स्वभाव लषण लघु देवर करशर धनुष सुमंजुल पानी। पिय तन चितहि दृष्टि नीचे करी सखिन विलोकि सिया मुसकानी। को तुम कौन देशके आये जिहिं पुर बसो सो मंगलखानी। चलत पियादे पांवत्रान विन राजकुँवारि किमि करौ बखानी। यह दोउ कुँवर अवधपतिके सुत मैं विदेहतनया जगजानी। ठान कुमति उरबसी सजोती राजसमय वन दीनो रानी। सिया वचन सुन सबी दुखित

दो०-दीन्ह अशीश मुनीश उर, अति अनन्द अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ किये विधि आनि ॥६०॥
कन्द मूल फल अंकुर नीके। दिये आनि मुनि मनहुँ अमीके १॥
सिया लषण जन सहित सुहाये। अतिरुचि राम मूल फल खाये
दो०-राम कीन्ह विश्राम निशि, प्रात प्रयाग अन्हाइ।
चले सहित सिय लषण जन, मुदित मुनिहि शिरनाइ ६१
देखत वन सर शैल सुहाये। वाल्मीकि आश्रम प्रभु आये ॥१॥
दो०-शुचि सुन्दर आश्रम निरखि, हर्षे राजिवनैन।
सुनि रघुवर आगमन मुनि, आगे आये लैन ॥ ६२ ॥

दोहार्थ--मुनिने अशीश दी हृदयमें अतिआनन्द हुआ मानो विधाताने नेत्रोंके सन्मुख पुण्योंका फल प्राप्त करदिया ॥ ६० ॥

कन्द मूल फल नीके अंकुर अमृतके समान जानकर दिये ॥ १ ॥ सीता लक्ष्मणसहित रामचन्द्रने कन्द मूल फल खाये ॥ २ ॥

दोहार्थ--राम रात्रिमें विश्रामकर प्रातःकाल प्रयागमें स्नानकर मुनिको प्रेम सहित शिर नवाय सीता लक्ष्मणसहित चले ॥ ६१ ॥

वन सरोवर शैलसुहावन देखते हुए वाल्मीकिके आश्रममें प्रभु आये ॥ १ ॥ (दोहार्थ)--सुन्दर आश्रम देखकर भगवान् प्रसन्न हुए और रामका आगमन सुनकर मुनि आगे लेने आये ॥ ६२ ॥

भई पल छिन मानो विरह गलानी। एक कहै भल भूप न कीनो वन नहि दीनो कीनो हानी। राम लषण सिया पंथ कथा सुन जाके हृदय बसी छिन आनी। सो भवसिन्धु तरै गोपद जिमि जन तुलसी यह करत बखानी ॥ २ ॥

१ राग विलावल--कहौ सो विपिन है धौ केतिक दूरि ॥ टेक ॥ जहाँ गमन कियो कुँवर अवधपति बूझत सिय पिय पतिहि बिसूरि। प्राणनाथ परदेश पयादेहि चले सुख सकल तजे तृणतूरि। करौं बयारि विलम्ब विटपतारि झरिहौं चरण सरोरुह धूरि। तुलसिदास प्रभु प्रियावचन सुनि नीरज नयन नीर आये पूरि। कानन कहाँ अबहिं सुनु सुन्दरि रघुपति फिर चितये हितभूरि ॥

कन्द मूल फल मधुर मंगाय।

तब कर कमल जोरि रघुराई। बोले वचन श्रवण सुखदाई ॥२॥"

राम--देखि पाँय मुनिराय तुम्हारे। भये सुकृतसबसफलहमारे ३

अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उद्वेग न पावहिं कोई ॥ ४ ॥

अस जियजानि कहियसो ठाऊँ। सियसौमित्रि सहित तहँजाऊँ

तहँ रचि रुचिर पर्णतृणशाला। वास करौं कछु काल कृपाला ६॥

"सहज सरल सुनि रघुवर वानी। साधु२ बोले मुनि ज्ञानी ॥७॥

कहमुनिसुनहुभानुकुलनायक। आश्रमकहौंसमयसुखदायक"

वाल्मी०-चित्रकूटगिरिकरहुनिवासू। तहँतुम्हारसबभाँतिसुपासू

कन्द मूल फल मीठे २ मँगाये सीता लक्ष्मण रामचन्द्रने मीठे फल खाये ॥१॥ तब श्रीराम हाथ जोड़कर कानोंको सुखदाई वचन बोले ॥२॥ हे मुनिराय! तुम्हारे चरण देख हमारे सुकृत सब सफल हुए ॥ ३ ॥ अब जहां आपकी आज्ञा हो और कोई मुनि उद्वेग न पावैं ॥ ४ ॥ सो स्थान बताओ जहां सीता लक्ष्मणसहित जाकर निवास करूं ॥ ५ ॥वहां पत्तोंकी तृणशाला रचकर हे कृपालु! कुछ दिनोंतक निवास करूं ॥६॥ रामचन्द्रकी स्वाभाविक सीधी वाणी सुनकर मुनिने धन्य २ कहा ॥७॥ मुनि बोले हे भानुकुलनायक! सुनो समयानुसार सुखदायक आश्रम कहता हूं: ॥ ८ ॥ चित्रकूटपर्वतमें निवास करो वहां सबभाँतिसे आनन्द रहैगा ॥ ९ ॥

---

१ कवित्त घनाक्षरी–मनमें मुनीनके कवीनके सुवैननमें नेहिनके नैननमें प्रानमे पुरारीके।
अवध निवासिनके मिथिला विलासिनके परम उपासिनके सत्यव्रत धारीके॥
ज्ञानी गुंणमंतनके सज्जन अनतनके सांचे शुचि सतनके पर उपकारीके।
राम अभिराम सीतां लषण समेत सदा हृदय निवास करौ रसिकविहारीके ॥ १ ॥

२ कवित्त घनाक्षरी–सकल सुपास पास वास मुनिमंडलीको लायक विलास थल दायक हुलासको।
कंद मूंल सरस अतूल फल फूल मृग सरिता विसाल गिरि विपिन विकासको॥
रसिकबिहारी सो निहारी छबि भारी ताहि भावैना अनूपरूप अमर निवासको।
चित्रकूट विशद विचित्र है पवित्र तहां ठाम अभिराम राम रावरे निवासको ॥१॥

शैलसुहावन कानन चारू।कार कहार मृग विहंग विहारू॥१०॥
नदी पुनीत पुराण बखानी। अत्रितिया निज तप बल आनी ११
सुरसरिधार नाममन्दाकिनि।जो सब पातकपोतकडाकिनि १२
अत्रिआदि मुनिवर तहँ बसहीं।करहिं योग तप जप तनु कसहीं
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिवरहू १४

दो०-"चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाय ।
आइ अन्हाने सरितवर, सीयसहित दोउ भाय ॥ ६३ ॥
लषण जानकीसहित प्रभु, राजत पर्णनिकेत ।
सोह मदन मुनिवेष जनु, रति ऋतुराजसमेत" ॥ ६४

बहुत शोभायमान वन है हाथी सिंहादि मृग पक्षी विहार करते हैं ॥ १० ॥ पुराणकी बखानी हुई बड़ी पवित्र नदी है, अत्रिकी स्त्री अनसूया उसे अपने तपके बलसे लाई है ॥ ११ ॥ वह गंगाकी धारा मन्दाकिनी नाम है जो सब पातकरूप बालकोंको डाकिनी है ॥ १२ ॥ अत्रिआदि मुनिजन वहां निवास करते हैं योग जप करके शरीरको कसते हैं ॥ १३ ॥ चलकर सबका श्रम दूर करो और पर्वतको गौरव दो ॥१४॥ (दोहार्थ)—चित्रकूटकी बड़ी महिमा मुनिराजने कही सीतासहित दोनों भाई नदीमें आनकर नहाये ॥ ६३ ॥ और लक्ष्मण जानकीसहित प्रभु पर्णकुटीमें आनकर विराजे मानो कामदेव और रति वसन्त सहित शोभायमान होरहे हैं ॥ ६४ ॥

१ राग विलावल–फिर फिर राम सिया तन हेरत । तृषित जान जल लेन लषण गये भुज उठाय ऊंचे चढ टेरत । अवनि कुरंग विहग द्रुम डारन रूप निहारत पलक न फेरत । मगन न डरत निरखकर कमलन सुभग शरासन सायक फेरत । अवलोकत मग लोक चहू दिशि मनो चकोर चंद्रमाहिं घेरत । ते जन भूरि भाग्य भूतलपर तुलसी राम पथिक पद जे रत ॥

दर्शन।



स्थान अयोध्या

मंत्रीका लौटकर आना।

दो०-"देखि सचिव जयजीव कहि, कीन्हेसि दण्डप्रणाम।
सुनत उठे व्याकुल नृपति, कहु सुमंत कहँ राम॥६५॥
राजा-राम कुशल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लषण वैदेही
आनेहु फेरिकि बनहिं सिधाये। सुनत सचिवलोचन जल छाये२
शोक विकल पुनि पूंछ नरेशू। कहु सिय राम लषण संदेशू॥३॥
"राम रूप गुण शील स्वभाऊ। सुमरि सुमरि उर शोचत राऊ४"
राजा-राज्य सुनाय दीन वनवासू। सुनि मन भयउ न हर्ष हरासू
सो सुत बिछुरत गये न प्राना। को पापी जग मोहि समाना५
दो०--सखा राम सिय लषण जहँ, तहां मोहिं पहुँचाउ।

षष्ठ दर्शन।

(स्थान अयोध्या)

दोहार्थ-मंत्रीने देख जयजीव कह दण्डप्रणाम किया सो सुनकर राजा व्याकुल हो उठे हे सुमन्त राम! कहां हैं॥ ६५॥

हे सखासनेही रामकी कुशल कह सिता राम लक्ष्मण कहां हैं ॥ १॥ फेरकर लाये कि वनको चलेगये सुनकर मंत्रीके नेत्रोंमें जल भरा॥ २॥ शोकसे व्याकुल हो फिर राजा पूछने लगे सीता राम लक्ष्मणका संदेशा कहो॥३॥रामका रूप गुण शील स्वभाव सुमिर २ कर राजा शोचते हैं॥४॥ राज्य सुनाकर वनवास दिया यह सुनकर मनमें हर्ष विषाद न हुआ॥५॥ वह पुत्र बिछडतेमें प्राण न गये मेरे समान कौन पापी है॥६॥

दोहार्थ-हे सखा! जहां राम लक्ष्मण सीता हैं वहां मुझे पहुँचाओ नहीं तो अब प्राण चलना चाहतें हैं मैं सतभावसे कहताहूं॥ ६६॥

मंत्री--दोहा--प्रथम वास तमासा भयउ, दूसर सुरसरितीर।
न्हाय रहे जल पानकरि, सियासहित दोउ वीर ॥६७॥
केवट कीन्ह बहुत सेवकाई। सो यामिनि शृँगवेर गँवाई ॥१॥
होत प्रात वटक्षीर मँगावा। जटामुकुट निज शीश बनावा॥२॥
रामसखा तब नाव मँगाई। प्रिया चढ़ाइ चढे रघुराई ॥ ३ ॥
लषण धरे धनुबाण बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई ॥४॥
विकल विलोकि मोहिं रघुवीरा।बोले मधुरवचन धरि धीरा ५॥
तात प्रणाम तातसन कहेऊ। बार बार पदपंकजगहेऊ॥ ६ ॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जाते रह नरनाह सुखारी ॥७॥
कहब सँदेह भरतके आये। नीति न तजब राज्यपद पाये॥८॥
तेहि अवसर रघुवर रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई ॥ ९ ॥
रघुकुलतिलक चले इहि भाँती।देखेउँ ठाढ कुलिश धरि छाती
मैं आपन किमि कहउँ कलेशू।जियत फिरेउँ लैराम सँदेशू ११

सुमन्तने कहा पहला निवास तमसा तट दूसरा गंगाके किनारे हुआ जल पानकर सीतासहित दोनों वीर स्नान कररहे हैं ॥ ६७ ॥

केवटने बहुत सेवा की वह रात शृंगवेरपुरमें बिताई ॥ १ ॥ प्रभात होतेही वटका क्षीर मँगाय जटाओंका मुकुट अपने शिरपर बनाया ॥२॥ रामसखाने तब नाव मँगाई और सीताको चढ़ाकर पीछे आप चढ़े ॥ ३ ॥ लक्ष्मणने धनुष बाण बनाकर धरे और प्रभुकी आज्ञा पाकर आप चढ़े ॥ ४ ॥ रामचन्द्र मुझे व्याकुल देख धीर धर मधुर वचन बोले ॥ ५ ॥ हे तात्! पितासे प्रणामकर कहना बारबार चरणकमल पकडना ॥ ६ ॥ वही सब प्रकारसे मेरा हितकारी है जिससे राजा प्रसन्न रहैं ॥ ७ ॥ भरतके आनेपर संदेशा कहना राजपद पाकर नीति न त्यागैं ॥ ८ ॥ उसी समय रामका रुख पाय केवटने पार जानेको नाव चलाई ॥ ९ ॥ इस प्रकारसे रामचन्द्र चले और छातीपर वज्रधर मैं सब देखता रहा ॥१०॥ मैं अपना कलेश क्या कहूं रामका संदेशा लेकर जीता फिरा ॥ ११ ॥

"अस कहि सचिववचनरहिगयऊ। हानिगलानिशोचवशभयऊ
धरिधीरज उठिबैठुभुआलू"। कहु सुमन्त कहँराम कृपालू १३
राजा--कहां लषण कहँ राम सनेही। कहँ प्रिय पुत्रवधू वैदेही१४
हा जानकी लषणहारघुवर। हापितुहितचितचातकजलधर॥१५
हा,रघुनंदन प्राणपिरीते। तुमबिन जियत बहुत दिन बीते॥१६॥

दोहा-राम २ कहि राम कहि, राम २ कहि राम ।
तनु परिहरि रघुवरविरह, राउ गये सुरधाम ॥६८॥

सप्तम दर्शन ।



भरत आगमन ।

(वासिष्ठ दूतोंको बुलातेहैं)

वसिष्ठ-धावहुबेगभरतपहँजाहू। नृपसुधिकतहुँकहहुजनिकाहू
इतने कहउ भरत सन जाई। गुरु बुलाइ पठये

यह वचन कह मंत्री रहगया हानि गलानि शोचवश हुआ ॥१२॥ फिर राजा धीरज धरकर उठ बैठे कहो सुमन्त ! कृपासागर राम कहां हैं ॥१३॥ कहां लषण कहां स्नेही रामचन्द्र प्रिय पुत्रवधू वैदेही कहां है ॥ १४ ॥ हा जानकी ! हा लक्ष्मण ! हा रघुवर ! हा पिताके हितकारी चित्त चातकके मेघ ॥ १५ ॥ हा प्राणप्यारे राम ! तुम्हारे बिना जीते हुए बहुत दिन बीतगये ॥ १६ ॥ (दोहार्थ)-छः बार राम राम कह रामके वियोगमें शरीर त्यागकर महाराज स्वर्गलोकको गये ॥ ६८ ॥

सप्तम दर्शन ।

(भरत आगमन)

वसिष्ठ बोले-हे दूतो ! जलदीसे भरतपर जाओ और राजाका समाचार कहीं किसीसे मत कहो ॥ १ ॥ भरतसे इतना जाकर कहना कि, गुरुने दोनों भाइयोंको बुला भेजा है ॥ २ ॥

।–"इहि विधि शोचत भरतमन, धावन पहुँचे जाइ।
गुरु अनुशासन श्रवण सुनि,चले गणेश मनाइ॥६९॥
आवतसुतसुनिकैकेयिनन्दनि। हरषीरविकुलजलरुहचंदनि१॥
सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारहि भेंटि भवन लै आई॥२॥
सुतहि सशोच देखि मन मारे। पूछति नैहर कुशल हमारे॥३॥
सकल कुशलकह भरतसुनाई।पूछीनिजकुलकुशलभलाई४॥"
भर०-कहुकहँतातकहाँसबमाता।कहँसियरामलषणप्रियभ्राता
कैकेयी–तात बात मैं सकल सँवारी।भइ मंथरा सहाय विचारी६
कछुककाज विधि बीच बिगारेउ।भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ७
तात राउ नाहिं शोचन योगू।बडइ सुकृत यश कीन्हेउ भोगू॥८॥
अस अनुमानि शोच परिहरहू। सहित समाज राजपुर करहू९॥
(सब कथा सुनाती है)
भ०-जोपै कुरुचिरही असि तोहीं।जनमतकाहे न मारेसिमोहीं१०

दोहार्थ–इधर भरतजी शोच करते थे कि धावन जाकर पहुँचे और गुरुकी आज्ञा श्रवणसे सुनकर गणेश मनाय चले॥ ६९॥

पुत्रको आता हुआ सुनकर कैकेयी सूर्यकुलकमलको मलीन करनेको चांदनीरूप प्रसन्न हुई॥ १॥ पुत्रको आया सुन प्रसन्न हो उठधाई और द्वारपर भेंटकर घरमें ले आई॥ २॥ पुत्रको मनमारे और शोच करता देख पूंछने लगी कि, हमारे मायकेमें कुशल है॥३॥ सब कुशल कहकर भरतने सुनाई और अपने कुलकी कुशल भलाई पूँछी॥ ४॥ कहो पिता और सब माता कहां हैं और सीता राम लक्ष्मण प्रियभ्राता कहां हैं॥ ५॥ हे तात! मैंने सब बात सँवारी बिचारी मंथरा सहाय हुई॥ ६॥ कुछही काम विधाताने बीचमें बिगाड़ दिया कि राजा सुरपुरको गये॥ ७॥ हे पुत्र! राजा शोच करने योग्य नहीं हैं बड़े ही सुकृतसे यह भोग प्राप्त होते हैं जो उन्होंने किये॥ ८॥ ऐसा मनमें मानकर शोच त्यागन करो समाजसहित पुरका राज्य करो॥९॥भरत बोले जो तेरे मनमें ऐसी कुरुचि रही तो मुझे जन्मतेही क्यों न मारदिया॥१०॥

पेड़ काटि तैं पल्लव सींचा। मीन जियन हित वारि उलीचा॥११॥

दोहा–हंस वंश दशरथ जनक, राम लषणसे भाय।

जननी तू जननी भई, विधिसे काह बसाय॥७०॥

जबतेकुमतिकुमतिमनठयऊ।खण्डखण्डहोइहृदय न गयऊ १

वर माँगत मन भइ नहिं पीरा। जरि न जीह मुँह परे न कीरा॥२॥

भूप प्रतीतितोरि किमिकीन्हीं।मरणकाल विधि मति हरिलीन्हीं

विधिहुन नारिहृदयगतिजानी।सकलकपटअघअवगुणखानी४

सकल सुशील धर्मरत राऊ। सो किमि जानहिं तीय स्वभाऊ५

अस को जीव जन्तु जगमाहीं।जेहि रघुनाथ प्राणप्रिय नाहीं६॥

जो हसि सो हसि मुँह मसिलाई।आँखि ओ

हृदयते, प्रगट कीन्ह विधि मोहिं।

कहौं कछु तो

पेड़को काटकर तैंने पत्ते सींचे मच्छीके जीनेके निमित्त जल उलीचा॥ ११॥ (दोहार्थ)–सूर्यवंशी दशरथसे पिता जनकसे श्वशुर राम लक्ष्मणसे भाई और तू उस कुलकी जननी हुई विधातासे क्या बसाता है॥७०॥

हे कुमति! जबसे तेरे मनमें कुमति हुई तबसे तेरा हृदय खण्ड २ न होगया॥१॥ वर माँगते समय मनमें पीर न हुई जीभ न जली मुखमें कीड़े न पड़े॥२॥ महाराजने तेरा विश्वास कैसे किया मरणसमय विधाताने मति हरली॥३॥ उस विधाताने भी स्त्रीके हृदयकी गति नहीं जानी यह सब कपट पाप और अवगुणकी खान होती हैं॥४॥ सब प्रकारसे सुशील और धर्ममें प्रीति करनेवाले राजा स्त्रीका स्वभाव कैसे जानैं॥५॥ ऐसा कौन जगत्में जीव जन्तु है जिसको राम प्राणोंके समान प्यारे नहीं॥६॥ तू जो हो सो हो मुखमें मसि लगाय नेत्रोंकी ओटमें जाबैठ॥७॥

दोहार्थ–विधाताने मुझे रामके विरोधी हृदयसे प्रगट किया है मेरे समान कौन पातकी है तुझे कुछ कहना वृथा है॥७१॥

"भरत दयानिधि मन दुख पाई। कौशल्या पहँ गे दोउ भाई १॥
देखत भरत विकल भये भारी। परे चरण तनु दशा बिसारी२॥"
भ०–मातु तात कहँ देहु दिखाई। कहँ सिय राम लषण दोउ भाई३
कैकेयि कत जनमी जग माँझा। जो जनमी तो भइ किन बाँझा४
कुलकलंक जेहि जनमेउ मोही। अपयश भाजन प्रियजन द्रोही५
को त्रिभुवन मोहिं सरिस अभागी। गति अस तोरि मातु जेहि लागी
पितु सुरपुर वन रघुकुलकेतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥ ७॥
धिक मोहिं भयउ वेणुवन आगी। दुसह दाह दुख दूषण भागी८॥
"माता भरत गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदुवचन उचारे॥ ९॥"
कौ०–अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमय समुझि शोक परिहरहू
जनि मानहु जिय हानि गलानी। काल कर्म्मगति अघटित जानी
काहुहि दोष देहु जनि ताता। भा मोहिं सब विधि वाम विधाता१२

यह कह दोनों भाई कौशल्यापहँ गये ॥ १ ॥ और देखकर भरत बहुत व्याकुल हुए शरीरकी दशा भुलाय चरणोंमें पडे ॥ २ ॥ हे माता! तातको दिखा दो सीता राम लक्ष्मण दोनों भाई कहाँ हैं ॥ ३ ॥ कैकेयी जगत्में क्यों उत्पन्न हुई और हुई भी तो बाँझ क्यों न हुई ॥ ४ ॥ जिसने मुझ कुलके कलंकीको प्रगट किया जो मैं अपयशका भाजन और प्रियजनोंका द्रोही हुआ ॥ ५ ॥ तीनों भुवनमें मेरेसमान अभागी कौन है हे मातः! जिसके निमित्त यह तेरी गति हुई ॥ ६ ॥ पिता सुरपुरमें और राम वनमें और सब अनर्थोंका हेतु मैं यहां ॥ ७ ॥ मैं इस वेणुवनमें आगरूप हुआ मुझे धिक्कार है, दुसह दाह दुख और दूषणका भागी हुआ ॥ ८ ॥ तब माताने भरतको गोदमें बैठाय आँसू पोंछकर कोमलवचन उचारे ॥ ९ ॥ हे पुत्र! बलि जाऊं अबभी धीरज धरो कुसमय समझकर शोक त्यागन करो ॥१०॥ कालकर्मकी गति अघटित जानकर मनमें हानि ग्लानि मतमानो॥ ११ ॥ हे पुत्र! किसीको दोष मत दो मुझे ही सबप्रकार विधाता वाम हुआ है ॥ १२ ॥

जो ऐसेहु विधि मोहिं जियावा। अजहुँ को जानैकातेहिभावा १३
दो०-पितु आयसु भूषन वसन, तात तजे रघुवीर ।
विस्मय हर्ष न हृदय कछु, पहिरे वल्कल चीर ॥७२॥
मुख प्रसन्न मन राग न रोषू।सबकर सब विधि करिपरितोषू १॥
चलेविपिन सुनि सिय सँगलागी।रही न राम चरणअनुरागी २॥
सुनतहिलषणचले लगिसाथा।रहे न यतन कियेरघुनाथा ॥ ३ ॥
तब रघुपति सबही शिरनाई।चलेसंग सिय अरु लघु भाई ॥४॥
राम लषण सिय वनहिं सिधाये।गई न संग न प्राण पठाये ॥५॥
यह सब भा इन आँखिन आगे।तउ न तजत तनु जीव अभागे६
मोहिं न लाज निज नेह निहारी।रामसरिस सुत मैं महतारी॥७॥
जिये मरे भल भूपति जाना। मोर हृदय शतकुलिश समाना ८
"छल विहीन शुचि सरल सुवानी।बोले भरत जोरि युग पानी९"

जो ऐसी अवस्थामें भी उसने मुझे जिवाया है तो अबभी कौन जानै उसे क्या भाता है ॥१३॥ (दोहार्थ)-हे तात ! पिताकी आज्ञासे रामने भूषण वसन त्याग दिये, और हृदयमें हर्षविषादके विना वल्कल वसन धारण किये७२॥ मुख प्रसन्न मनमें राग रोष कुछ नहीं सबका सब भाँतिसे परितोष कर ॥ १ ॥ वनको चले, सुनकर जानकी संग लगी और रामके चरणोंके अनुरागके कारण न रहसकी ॥ २ ॥ सुनतेही लक्ष्मण भी साथ चले और रामके यत्नकरनेपर भी न रहे ॥ ३ ॥ तब रघुनाथजी सबको शिर नवाय सीता लक्ष्मण सहित चले ॥ ४ ॥ राम लक्ष्मण सीता वनको गये मैं न संगगई न प्राण भेजे॥ ५॥ यह सब इन नेत्रोंके आगे हुआ तो भी शरीरसे प्राण पृथक् नहीं होते ॥ ६ ॥ मुझे अपना नेह देखकर लाज भी नहीं है कि रामचन्द्रसे तो पुत्र और मुझसी महतारी ॥ ७॥ जीना मरना तो राजाने भलीप्रकार जाना मेरा हृदय तो सौ वज्रके समान है ॥ ८ ॥ छलविहीन पवित्र सीधी वाणी भरतजी हाथ जोड़ बोले ॥ ९ ॥

१ कवित्त घनाक्षरी—गाय द्विज मारे तिय बालक सँहारे गुरु स्वामी अपचारे झूंठ वचन उचारते ।
माता सुता भगिनी कुदृष्टिने निहारे मित्रद्रोह उरधारे शरणागत निकारते ।

भरत-जे अघ मातु पिता गुरु मारे।गाइगोठमहिसुरपुरजारे १०
जे अघ तिय बालक वध कीन्हें।मीत महीपति माहुर दीन्हें ११
जे पातक उपपातक अहहीं। कर्म्म वचन मन भव कवि कहहीं
ते पातक मोहिं होउ विधाता।जो यहहोइ मोर मत माता॥१३॥
दो०-जो परिहरि हरिहरचरण, भजहिं भूतगण घोर।
तिन्हकी गति मोहिं देउ विधि, जो जननी मत मोर ७३॥
बेचहिं वेद धर्म्म दुहि लेहीं। पिशुन पराव पाप कहि देहीं॥ १ ॥
लोभी लम्पट लोल लवारा। जे ताकहिं परधन परदारा॥ २ ॥
पावउँ मैं तिनकर गति घोरा। जो जननी यह सम्मत मोरा ३॥
जे नहिं साधुसंग अनुरागे।परमारथ पथ विमुख अभागे ॥ ४ ॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई।जिनहिं न हरि हर सुयश सुहाई॥

जो पाप मातापिता गुरुके मारनेसे होता है, गोशाला, ब्राह्मण और पुर जलानेसे होता है॥१०॥ जो पाप स्त्री और बालकके वध करनेसे होता है, जो मीत और राजाको विष देनेसे पाप होता है ॥ ११ ॥ जो और पातक उपपातक हैं, कर्म वचन और मनके पाप हैं, जो कवि कहते हैं ॥ १२ ॥ हे माता ! जो इसमें मेरा मत होय तो यह सब पातक मुझे लगैं ॥१३॥

दोहार्थ-जो विष्णु और शंकरके चरण छोड़कर घोर भूतगणोंका भजन करते हैं तो विधाता मुझे उनकी गति दे जो माता इसमें मेरा मत हो ॥७३॥

जो वेदको बेचते धर्मको दुहते चुगली कर पराया पाप कह देते हैं॥१॥ जो लोभी लम्पट चंचल लवार पराई स्त्री और पराये धनको ताकते हैं॥२॥ मैं उनकी घोरगति पाऊं हे माता ! जो इसमें मेरा मत हो॥३॥ जो साधुओंके संगमें प्रेम नहीं करते जो अभागे परमार्थके मार्गसे विमुख हैं॥४॥ जो नरतनु पाय भगवान्‌का भजन नहीं करते जिनको हरि हरकी कथा भली नहीं लगती ॥ ५ ॥

सत्य प्रण टारे निज धरम निवारे निंदा पिशुन प्रचारे परनारी धन हारेते।
होवैं पाप भारे मोहिं लागै मातु सारे राम बनहि सिधारे जोपै संमत हमारेते॥ १ ॥

तजि श्रुतिपन्थ वामपथ चलहीं।वंचक विरचि वेष जग छलहीं६
तिन्हकै गति शंकर मोहिं देऊ। जननी जो यह जानौं भेऊ॥७॥
छंद–मन वचन कर्म्म कृपायतन कर दास मैं सुनु मातुरी।
उर बसत राम सुजान जानत प्रीति अरु छल चातुरी॥
"अस कहतलोचन बहतजल तनु पुलक नख लेखतमही।
हिय लाय लिये बहोरि जननी जानि प्रभुपदरत सही१॥"
कौश०-राम प्राणते प्राण तुम्हारे।तुम रघुपतिहि प्राणते प्यारे १
विधु विष चुवै श्रवै हिम आगी। होइ वारिचर वारि विरागी॥२॥
भये ज्ञान वरु मिटै न मोहू। तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू॥३॥
अस कहि मातु भरत हिय लाये।थन पयश्रवहिं नयन जलछाये
'पितुहित भरत कीन्ह जसिकरणी।सोमुखलाखजाइनहिंवरणी'

जो वेदमार्गको त्याग वाम मार्गमें चलते हैं और अनेक वेष धारणकर जगत्को ठगते हैं॥ ६ ॥ उनकी गति मुझे शिवशंकर दें हे माता! जो यह भेद मैं जानता हूं॥७॥ (छन्दार्थ)–हे माता! मैं तो मन वचन कर्मसे रघुनाथजीका दास हूं वह राम सुजान हृदयमें निवास करते हैं प्रीति छल और चतुराई जानते हैं यह कह नेत्रोंसे जल बहने लगा शरीर पुलकायमान् होगया नखोंसे पृथ्वी लिखने लगे प्रभुके चरणोंमें बड़ी प्रीति देख माताने हृदयसे लगाया॥ १॥

.रामके प्राणसे तुम्हारे प्राण हैं तुम रघुनाथको प्राणसे प्यारे हो॥ १॥ चाहै चन्द्रमासे विष चुवै बरफसे आग निकलनेलगै जलचर जलके बिना जी जाँय॥ २॥ चाहै ज्ञान होनेपर मोह न मिटै परन्तु तुम रामके प्रतिकूल न होंगे॥ ३॥ यह कह माताने भरतको हृदयसे लगाया स्तनोंसे दूध और नेत्रोंसे जल बहने लगा॥ ४॥ फिर पिताके निमित्त भरतने जैसी करनी की सो लाख मुखसे वरणी नहीं जाती सब कर्मसे निश्चिन्त हुए॥ ५॥

अयोध्याकी सभा. ।

(वसिष्ठादि ऋषि मुनि और मंत्री पुरवासी बैठे हैं)

"बैठे राज सभा सब जाई। पठये बोलि भरत दोउ भाई ॥६॥
भरत वसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धर्म्ममय वचन उचारे॥७॥
प्रथम कथा सब मुनिवर बरणी।कैकेयिकठिनकीन्हजस करणी"
वसिष्ठ-राव राज्यपद तुमकहँ दीन्हा। पितावचनफुरचाहियकीन्हा
करहु शीश धरि भूप रजाई। है तुम कहँ सब भाँति भलाई १०॥
दो०-कीजिय गुरु आयसु अवशि, कहहिं सचिव करजोरि।
रघुपति आये उचित जस, तब तस करव बहोरि ॥ ७४ ॥
भरत-मोहिं उपदेश दीन्ह गुरु नीका।प्रजासचिवसम्मतसबहीका १
अब तुम विनय मोरि सुनि लेहू।मोहिं अनुहरत शिखावन देहू २
जाउँ राम पहँ आयसु देहू। एकहि आँक मोरहित येहू ॥३॥

भरतप्रबोध ।

सब कोई राजसभामें जाकर बैठे और भरत शत्रुघ्न दोनों भाइयोंको बुलाया ॥ ६ ॥ भरतको वसिष्ठने निकट बैठाय नीति धर्ममय वचन कहे ॥ ७ ॥ पहले सब कथा मुनिने कही जो कैकयीने कठिन करनी की ॥ ८ ॥ फिर कहा राजाने तुमको राजपद दियाहै पिताका वचन पूरा करना चाहिये ॥ ९ ॥ राजाकी आज्ञा शिरपर धारण कर करो तुमको सब प्रकार भलाई है ॥ १० ॥ (दोहार्थ)-गुरुकी आज्ञा अवश्य करो ऐसा सब मंत्री हाथ जोड़ बोले फिर रामचन्द्रके आनेपर जैसा उचित हो तैसा करना ॥ ७४ ॥

भरत बोले मुझे गुरुजीने अच्छा उपदेश दिया है यह प्रजा मंत्री सबको सम्मत है ॥ १ ॥ अब तुम सब मेरी विनय सुनो और मुझे देखकर शिक्षा दो ॥ २ ॥ मैं रामपर जाऊंगा मुझे आज्ञा दो एक अंकमें तो यह मेरा हित है ॥ ३ ॥

दो०-कैकेयी सुत कुटिलमति, राम विमुख गतलाज।
तुम चाहत सुख मोहवश, मोहिसे अधमके राजं ॥७५॥
डर न मोहिं जग कहिहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिंनशोचू १
एकै बड़ उर दुसह दवारी। मोहिं लगि भे सियराम दुखारी २॥
जीवनलाहु लषण भलपावा। सब तजि रामचरण मन लावा ३॥
मोर जन्म रघुवर वन लागी। झूठकाह पछिताउँ अभागी॥४॥
दो०-आपनि दारुण दीनता, सबहिं कहेउँ समुझाय।
देखे बिन रघुवीरपद, जियकी जरनि न जाय ॥ ७६ ॥
एकहि आंक इहै मन माहीं। प्रातकाल चलिहौं प्रभुपाहीं ॥ १ ॥
दो०-अवशि चलिय वन रामपहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह।
शोकसिन्धु बूड़त सबहिं, तुम अवलम्बन दीन्ह ॥ ७७ ॥

दोहार्थ-एक तो मैं कैकेयीका पुत्र कुटिलमति रामसे विमुख लाजरहित हूं, तुम मोहवश होकर मुझसे अधमके राज्यमें सुख चाहते हो ॥ ७५ ॥

मुझे इस बातका डर नहीं कि जगत् पोच कहे परलोकका भी शोच नहीं है ॥ १ ॥ पर एकही हृदयमें दुःसह आग बलती है कि मेरे निमित्त सीता राम दुःखी हुए हैं ॥ २ ॥ लक्ष्मणने उत्तम जीवनका लाभ पाया कि सब त्यागकर रामके चरणोंमें मन लगाया ॥ ३ ॥ और मेरा जन्म रामके वनमें जानेके निमित्त हुआ मैं अभागी झूठा क्या पछताऊं ॥ ४ ॥

दोहार्थ-मैं अपनी कठिन दीनता सबसे समझाकर कहता हूं रामचन्द्रके चरण देखे बिना जीकी जरन न जायगी ॥ ७६ ॥

बस मनमें एक यही अभिलाषा है प्रातःकालही प्रभुपै चलूंगा ॥ १ ॥

दोहार्थ-सब बोले रामचन्द्रपर अवश्य चलो भरतने अच्छा उपाय किया है, शोकसागरमें डूबते हुओंको तुमने अवलम्बन दिया है ॥ ७७ ॥

१ भाई हौ अवध कहा रहि लहि हौं ॥ टेक ॥ राम लषण सिय चरण विलोकन काल्हि काननहिं जैहौं ॥ भाई० ॥ यद्यपि मो कैकयी कुमातुते है आई अति पोची। सन्मुख गये शरण राखहिंगे रघुपति परम सकोची ॥ भाई० ॥ तुलसी यों कहि चले भोरही लोग सकल सँग लागे। जनु वन जरत देखि दारुण दव निकासि विहंग मृग भागे ॥ भाई हौं अवध कहा रहि लहि हौं ॥ १ ॥

दोहा-"सौंपि नगर शुचि सेवकन्ह, सादर सबहि चलाइ।
सुमिरि राम सिय चरण तब, चले भरत दोउ भाइ॥७८"
(सब चलते हैं)

अष्टम दर्शन ।



(स्थान गंगातट निषादसम्वाद)

"समाचार सब सुने निषादा। हृदय विचार करै सविषादा ॥१॥
नि०-कारण कौन भरत बनजाहीं।है कछुकपटभावमनमाहीं२
जोपै जिय न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई ॥३॥
दो०-अस विचारिगुह ज्ञातिसन, कहेउ सजग सब होहु।
हथवासहु बोरहु तरणि, कीजिय घाटारोहु ॥ ७९ ॥
होइ सजग सब रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरणके ठाटा ॥१॥
सन्मुख लोह भरतसन लेहू।जियत न सुरसरि उतर न देहू॥२॥

दोहार्थ-भले मंत्रियोंको नगर सौंपकर और आदरसे सबको बुलाय राम और सीताके चरणोंको स्मरण कर दोनों भाई चले ॥ ७८ ॥

इति सप्तम दर्शन ।

निषाद समागम। स्थान गंगातट ।

यह समाचार निषादने सुने तो विषादपूर्वक मनमें विचार करने लगा ॥ १ ॥ भरत वनको क्यों जाते हैं कुछ मनमें कपटभाव है ॥२॥ जो मनमें कुटिलाई न होती तो सेना संग क्यों लेते ॥ ३ ॥ (दोहार्थ)-ऐसा विचारकर निषादने जातिवालोंसे कहा सब सावधान होजाओ पतवार डुबाकर नाव डुबा दो और घाट रोकलो ॥ ७९ ॥

सावधान होकर सब घाट रोको और मरनके ठाट सजाओ ॥ १ ॥ भरतसे सन्मुख लोहा लो जीतेजी गंगा मत उतरने दो ॥ २ ॥

समर मरण पुनि सुरसारि तीरा । रामकाज क्षणभंगु शरीरा॥ ३॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू।बड़े भाग्य अस पाइय मीचू॥ ४ ॥
बेगिहि भाइहु सजहु सजोऊ।सुनि रजाय कदराय न कोऊ॥५॥
भले नाथ सब कहहिं सहर्षा । एकहि एक बढ़ावहिं कर्षा ॥ ६ ॥
दीख निषाद नाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू ॥७॥
"इतना कहत छींकभइ बाँये।कहेहु शकुनियन्ह खेत सुहाये८"
बूढ़ा-बूढएककह शकुनविचारी।भरतहिमिलिय न होइहिरारी९
रामहिं भरत मनावन जाहीं। शकुन कहै अस विग्रह नाहीं१०॥
सुनि गुह कहै नीक कह बूढ़ा। सहसाकरि पछिताहिं विमूढ़ा११
नि०--लखबसनेह सुभाय सुहाये। वैर प्रीति नहिं दुरतदुराये१२
"अस कहि भेंट संजोवन लागे।कन्द मूल फल खगमृग माँगे१३
देखि दूरिते कहि निज नामू।कीन्ह मुनीशहि दण्डप्रणामू॥१४॥

एक तो युद्धमें मरना दूसरे गंगाके किनारे रामके निमित्त यह शरीर जो क्षणभंगुर है लगै तो अच्छा है ॥ ३ ॥ उनके भाई भरत और मैं नीच बडे भाग्यसेही ऐसी मृत्यु होती है ॥ ४ ॥ हे भाइयो ! शीघ्रही युद्धका सामान सजाओ आज्ञा सुनकर कोई कायरता मत करो ॥ ५ ॥ जो आज्ञा स्वामीकी हर्षपूर्वक सब कोई यह कह एक एकको क्रोध बढाने लगे ॥६॥ तब निषादनाथने भला टोल देखकर कहा युद्धका बाजा बजाओ ॥ ७ ॥ इतना कहते बाईं ओर छींक हुई शकुन विचारनेवालेने कहा अच्छे स्थान में छींक हुई है ॥ ८ ॥ एक बूढेने शकुन विचारकर कहा भरतसे मिलो रारि न होगी ॥ ९ ॥ भरतजी रामचन्द्रको मनाने जाते हैं शकुन कहता है विग्रह नहीं है ॥ १० ॥ सुनकर निषादने कहा बूढ़ा अच्छा कहता है सहसा करके मूढ पछताते हैं ॥ ११ ॥ अच्छे भावोंसे इनका प्रेम देखो वैर प्रीति छिपायेसे नहीं छिपती ॥ १२ ॥ ऐसा कहकर भेंट सजाने लगे कन्द मूल फल खग मृग मांगे ॥ १३ ॥ दूरसे देखकर अपना नाम कह मुनीश्वरको दण्डप्रणाम किया ॥ १४ ॥

जानि राम प्रिय दीन्ह अशीशा। भरतहि कहेउ बुझाय मुनीशा
गांव जाति गुह नांव सुनाई। कीन्ह जुहारि माथमहि लाई॥१६॥
दो०--करत दण्डवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उरलाइ।
मनहु लषण सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ॥८०॥
तेहि बासर बस प्रातही, चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरशकी लालसा, भरत सरिस सब साथ॥८१॥"



स्थान चित्रकूट।

(राम लक्ष्मण जानकी स्थित हैं)

वहाँ राम रजनी अवशेषा। जागी सीय स्वप्न अस देखा॥ १॥

रामका प्यारा जानकर अशीश दी और वसिष्ठजीने भरतसे समझाकर कहा यह रामका सखा है॥ १५॥ गांवका निवासी निषादजाति हूं गुह नाम सुनाकर पृथ्वीमें माथा नवाय प्रणाम किया॥ १६॥

दोहार्थ–उसे दण्डवत करता देखकर भरतने हृदयसे लगालिया मानो लक्ष्मणसे भेट हुई हृदयमें प्रेम नहीं समाता है॥ ८०॥ उस दिन निषादके यहां रहकर प्रभातही रघुनाथजीको स्मरणकर रामदर्शनकी लालसासे सब चले निषादादि साथ हुए॥ ८१॥

इति अष्टम दर्शन।

स्थान चित्रकूट।

वहां राम थोडी रात्रि रहे जागे कि, सीताने यह स्वप्न देखा॥ १॥

---

१ ए उपही कोउ कुँवर अहेरी॥ टेक॥ श्याम गौर धनु बाण तूणधर चित्रकूट अब आय रहेरी॥ ए उपही०॥ इनहिं बहुत आदरत महामुनि समाचार मेरे नाह कहेरी॥ ए उपही०॥ वनिता बन्धु समेत बसत वन पितुहित कठिन कलेश सहेरी॥ ए उपही०॥ वचन परस्पर कहत किरातन पुलकगात जल नयन बहेरी॥ ए उपही०॥ तुलसी प्रभुहि विलोकत इकटक लोचन जनु विनु पलक लहेरी॥ ए उपही०॥

सीता-सहितसमाज भरतजनु आये। नाथवियोग तापतनु ताये
सकल मलिन मन दीनदुखारी। देखींसासुआन अनुहारी ॥ ३ ॥
राम--लषण स्वप्न यहनीक न होई। कठिनकुचाह सुनाइहि कोई
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी ॥५॥
सो सुनिरामहिं भा अतिशोचू। इत पितु बच उत बन्धु संकोचू६
लषणलखेउप्रभु हृदय खँभारू। कहतसमयसम
लक्ष्म० विषयीजीव पाइप्रभुताई
भरत नीतिरत साधु सुजाना। प्रभुपद प्रेम सकल जगजाना॥९॥
तेऊ आज राज्यपद पाई। चले धर्म्म मर्य्याद मिटाई ॥ १० ॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपुरण रंच न राखब काऊ ११
समुझि परिहिं सो आज विशेषी। समर सरोष राममुख देखी १२
कहँलगि सहिय रहिय मन मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे

मानो समाजसहित भरत आये हैं और तुम्हारे वियोगके तापसे तनु तप रहा है ॥ २ ॥ और सब सासू मलिन मन दुःखी औरही प्रकारकी देखी हैं ॥ ३ ॥ राम बोले हे लक्ष्मण ! यह स्वप्न भला नहीं होगा कोई आकर कठिन बात सुनावैगा ॥ ४ ॥ एक किरातने आनकर कहा भरत आते हैं जिनके संग चतुरंगिणी बड़ी सेना है ॥ ५ ॥ सो सुनकर रामको बड़ा शोच हुआ इधर पिताके वचन उधर भाईका संकोच ॥ ६ ॥ लक्ष्मणने देखा कि, प्रभुके हृदयमें कुछ चंचलता हुई समयानुसार नीतिका विचार कहने लगे ॥ ७ ॥ कि विषयी जीव प्रभुताई पाकर मूढतासे अहंकारी होजाते हैं ॥ ८ ॥ देखो भरत नीतिमें रत सुजान साधुहैं प्रभुके चरणोंमें उनका प्रेम है यह सब जानते हैं ॥ ९ ॥ पर वेभी आज राजपद पाकर धर्ममर्याद मिटाचले ॥ १० ॥ भरतने यह उचित उपाय किया कि, शत्रुमात्रको भूमिमें न रहने दूं ॥ ११ ॥ सो आज युद्धमें रामका क्रोधित मुख देखकर समझ पड़ैगी ॥ १२ ॥ हम कहांलो सहैं और मनमारे रहैं हे नाथ ! हमारे साथ धनुष बाण है ॥ १३ ॥

उठि करजोरि रजायसु मांगा । मनहुँ वीररस सोवत जागा १४॥
आजु राम सेवक यश लेऊं । भरतहि समर सिखावन देऊं १५
आइबना भल सकलसमाजू।प्रगटकरौंरिस पाछिल आजू१६॥
राम--कही तात तुम नीति सुहाई।सबते कठिनराजमद भाई१७
सुनहुलषणभल भरत सरीखा।विधि प्रपञ्चमहँ सुना न दीखा१८
दोहा--भरतहि होइ न राजमद, विधि हरिहरपद पाइ ।
कबहुँ कि कांजी सीकरन्हि, क्षीरसिन्धु विनशाइ ॥८२॥
"चले भरत जहँ सिय रघुराई।साथ निषाद नाथ लघु

रजशिर धरिहियनयनलगावहिं । रघुवरमिलनसरिससुखपावहिं
भरत दीख प्रभ आश्रम पावन । सकलसुमंगल सदन सुहावन४

यह कह उठे हाथ जोड़कर आज्ञा माँगी मानो वीररस सोतेसेजागा॥१४॥ मैं आज रामकी सेवकाईका यशलूं भरतको युद्धमें शिक्षा दूं ॥ १५ ॥ सब समाज अच्छा आ बना है आज पिछली रिसभी प्रगट करूंगा ॥ १६ ॥ राम बोले हे तात! तुमने भली नीति कही है राजमद सबसे कठिन है ॥१७॥ हे लक्ष्मण ! सुनो भरतके समान भला कोई संसारमें नहीं है ॥ १८ ॥ (दोहार्थ)--ब्रह्मा विष्णु और शंकरका पद पाकर भी भरतको राजमद न होगा कहीं कांजीके कणकोंसे क्या क्षीरसागर बिलगा सकता है ॥ ८२ ॥

यह सुन लक्ष्मण मौन हो बैठगये । इधर जहां राम सीता लक्ष्मण थे वहांको भरत चले संगमें निषाद और शत्रुघ्न थे ॥ १ ॥ आश्रमको देख दोनों भाई प्रणाम करते चले वह प्रीति देख सरस्वती सकुचाई ॥ २ ॥ वहांकी रज शिरपर धर हृदय और नेत्रोंमें लगाते हैं रामके मिलनेके समान सुख पाते हैं ॥ ३ ॥ भरतने प्रभुका पवित्र आश्रम देखा जो सब सुमंगलोंसे शोभित था ॥ ४ ॥

१ राग केदारा--विलोके दूरिते दोउ वीर । उर आयत आजान सुभग भुज श्यामल गौर शरीर ॥ १ ॥ शीश जटा सरसीरुह लोचन बने परिधन मुनि चीर । निकट निषग संग सिय शोभित करनि धुनत धनु तीर ॥ २ ॥

पाहि पाहि कहि पाहि गुसाँई। भूतल परे लकुटकी नाँई ॥५॥
दोहा-बरबस लिये उठाय उर, लाये कृपानिधान।
भरत रामकी मिलन लखि, बिसरे सबहि अपान॥८३
मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटे राम।
भूरि भाग्य भेंटे भरत, लक्ष्मण करत प्रणाम ॥८४॥
भेंट्यउ लषण ललकि लघु भाई। बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई१
पुनि मुनिगण दोउ भाइनवन्दे। अभिमत आशिष पाइ अनन्दे २
सानुज भरत उमँगि अनुरागा। धरि शिर सियपदपद्मपरागा ३॥
पुनि पुनि करत प्रणाम उठाये। सिय करकमल पराशि बैठाये ४
सीय अशीश दीन्ह मनमाहीं। मगनसनेह देह सुधि नाहीं॥५॥
दोहा-भेंटी रघुवर मातु सब, करि प्रबोध परितोष।
अम्ब ईश आधीन जग, काहु न देइय दोष ॥८५"॥

रक्षाकरो स्वामी रक्षाकरो यह कह भरत भूमिमें लकुटके समान गिरगये ५
दोहार्थ-देखतेही रामने बरबस उठाकर हृदयसे लगाया इस समय भरत रामका मिलना देख सब अपनपा भूलगये ॥८३॥ फिर प्रेमसे रिपुसूदनसे मिल रघुनाथजी केवटसे मिले लक्ष्मण प्रणाम करते भरतको मिले॥८४॥
फिर लक्ष्मण छोटे भाईसे मिले फिर निषादको हृदयसे लगाया ॥ १ ॥ फिर दोनों भाइयोंने मुनियोंको प्रणाम किया और अभिमत अशीश पाय प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ फिर भरतजीने प्रसन्नतापूर्वक भाई सहित सीताके चरणोंमें शिरधरा ॥ ३ ॥ बारंबार प्रणाम करनेपर जानकीने हाथसे स्पर्शकर उठाय बैठाया ॥ ४ ॥ और मनमेंही जानकीने अशीश दी स्नेहमें मगन होगये देहकी सुधि न रही ॥ ५ ॥
दोहार्थ-फिर रामचन्द्र सब माताओंसे मिले और सबको समझाया हे माता! ईश्वरके अधीन सब जगत् है दोष किसको दियाजाय ॥ ८५ ॥
(फिर सबको आश्रममें लाकर बैठाया पिताको जल दान दिया)

१ मन अग ढुंड तनु पुलकि शिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर ॥ गडत गोड़ मनो सकुच पंकमहँ कढत प्रेमबल धीर ॥ ३ ॥ तुलसिदास दशा देखि भरतकी उठि धाये अतिहि अधीर ॥ लिय उठाइ उरलाई कृपानिधि विरह जनित हरि पीर ॥ ४ ॥

दशम दर्शन।

चित्रकूटकी सभा।

(सब मंत्रीआदि बैठे हैं)

दो०-तब मुनिबोले भरत सन, सब सँकोच तजि तात।
कृपासिन्धु प्रियबन्धुसन, कहहु हृदयकी बात ॥८६॥
पुलकशरीर सभामे ठाढे। नीरज नयन नेह जल बाढे॥ १॥
भरत--भूपति मरण प्रेमप्रण राखी। जननी कुमति जगत सब साखी
देखि न जाहिं विकल महतारी। जरहिं दुसह ज्वर पुरनरनारी
मैंहिं सकल अनरथकर मूला। सो सुनि समुझि सहौं सब शूला
[illegible]नि वन गमन कीन्ह रघुनाथा। करि मुनिवेष लषण सियसाथा
[illegible]नु पनही अरु प्यादेहि पाये। शंकर साखि रह्यों इहि घाये६
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिश कठिन उर भयउ न वेहू७

दशम दर्शन।

चित्रकूटकी सभा।

दोहार्थ-तब वसिष्ठजीने भरतसे कहा हे तात! अब सब संकोच त्याग रामसे अपने जीकी बात कहो॥ ८६॥

तब भरतजी पुलकित शरीर हो सभामें खडे हुए कमलसे नेत्रोंमें प्रेमका जल भरा और बोले॥ १॥ राजाने शरीर त्याग प्रेमका पन रक्खा और माताकी कुमतिका सब जगत् साक्षी है ॥२॥ माताओंकी विकलता नहीं देखी जाती पुरनर नारी कठिन दुःखसे दुःखी हैं॥ ३ ॥ इस सब अनर्थका मूल मैंही हूं सो सुन समझकर सब कष्ट सहताहूं॥ ४ ॥ यह सुनकर कि आपने वनमें गमन किया है मुनिका वेष धर सीता लक्ष्मणको संग लिया है॥ ५॥ विना जूते प्यादे पाँव आप आये शिव साक्षी हैं मुझे यह बड़ा घाव है॥ ६॥ फिर निषादका सनेह निहारकर भी यह वज्रसे कठिन मेरा हृदय न फटा॥ ७॥

अब सब आँखिन देखेउ आई। जियतजीव जड़ सबै सहाई
जिनहिंनिरखिमगसाँपिनिबीछी। तजहिंविषमविषतामतितीछी
दोहा--तेइ रघुनन्दन लषण सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सहावै काहि ॥ ८७ ॥
बोले उचित वचन रघुनन्दू। दिनकर कुलकैरववन चन्दू ॥ १ ॥
राम--तात जीय जनि करहु गलानी। ईशअधीन जीवगति जानी
तीन काल त्रिभुवन मत मोरे। पुण्यश्लोक तात कर तोरे ॥३॥
दोष देहिं जननिहि जड तेई। जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई४॥
दो०--मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुयश परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार ॥ ८८ ॥

अब यह सब आंखोंसे आकर देखा यह अधम जीव सब दुःख सहकर जीताहै ॥ ८ ॥ जिनको देखकर साँपन बीछी भी मार्गमें अपने तीक्ष्ण विषको त्यागन करदेती हैं ॥ ९ ॥ (दोहार्थ-)वे राम लक्ष्मण और सीता जिसको अनहितलगे उसके पुत्रको छोड़कर विधाता दुःसह दुःख किसे सहावेगा ॥ ८७ ॥

तब सूर्यकुल कैरवके खिलानेको चन्द्रमारूप राम उचित वचन बोले ॥ १ ॥ हे तात ! जीवकी गति ईशके अधीन जानकर मनमें ग्लानि मतकरो ॥ २ ॥ तीन काल तीनों भुवनमें हे तात ! मेरे मतसे तुमको पुण्य लोक प्राप्त हैं ॥ ३ ॥ और माताको तो वे मूर्ख दोष देंगे जिन्होंने गुरु और साधु सभा नहीं सेई है ॥ ४ ॥ (दोहार्थ)--तुम्हारा नाम स्मरण करतेही सब पापके प्रपंच और सब अमंगल मिटतेहैं लोकमें सुयश और परलोकमें सुख होताहै ॥ ८८ ॥

---

१ काहेको मानत हानि हिये हौ ॥ टेक ॥ प्रीति नीति गुण शील धर्म कहँ तुम अवलंब दिये हौ॥काहे०॥ तात जात जानिवे न ये दिन करि प्रमाण पितु वानी। ऐहौ वेगि धरहु उर धीरज कठिन कालगति जानी ॥ काहे० ॥ तुलसीदास अनुजहि प्रबोधि प्रभु चरण पीठि निज दीन्हे। मनहु सबनिके प्राण पाहरू भरत शीश धरि लीन्हें ॥ काहेको मानत हानि हिये हो ॥

कहौं सुभाव सत्य शिव साखी। भरत भूमि रह राउर राखी१
तात कुतर्क करहु जिय जाये। वैर प्रेम नहिं दुरै दुराये ॥ २ ॥
राखेउ राउ सत्य मोहिं त्यागी।तनु परिहरेउ प्रेम प्रणलागी३॥
तासु वचन मेटत मन शोचू।तेहिते अधिकतुम्हार सकोचू ॥४॥
तापरगुरु मोहिं आयसुदीन्हा।अवशि जोकहहुचहौंसोकीन्हा५
दो०-मनप्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौं सो आज।
"सत्यसिन्धु रघुवर वचन, सुनि भा सुखी समाज ॥८९॥
लखि सब विधि गुरु स्वामिसनेहू।मिटेउ क्षोभ नहिं मन संदेहू
भ०-अब करुणाकर कीजिय सोई।जनहितप्रभुचितक्षोभनहोई
जो सेवक साहिबहिं सँकोची।निजहित चहै तासु मति पोची ३॥
सेवकहित साहब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ विहाई ॥ ४ ॥
स्वारथ नाथ फिरे सबहीका। किये रजाइ कोटि विधि नीका५

स्वभावसे सत्य कहताहूं शिव साखी हैं हे भरत ! यह भूमि तुम्हारे रखनेसे रहीहै ॥ १ ॥ हे तात ! तुम मनमें कुतर्क मतकरो वैर और प्रेम छिपायेसे नहीं छिपता है ॥ २ ॥ राजाने सत्य रक्खा मुझे त्यागदिया और प्रेमके निमित्त अपना शरीर त्यागदिया ॥ ३ ॥ उनका वचन मेटते मनमें शोच होता है और उससे अधिक तुम्हारा संकोच है ॥ ४ ॥ उसपर मुझे गुरुने आज्ञा दी है जो तुम कहो सो अवश्य करूंगा ॥ ५ ॥

दोहार्थ-मन प्रसन्नकर संकोच त्याग जो कहो सो आज करूं सत्यसन्ध रामके वचन सुन समाज सुखी हुआ ॥ ८९ ॥

सब विधि गुरु और स्वामिका सनेह देख क्षोभ मिटगया मनमें सन्देह न रहा और बोले ॥ १ ॥ हे कृपासागर ! अब वही करो जिसमें दासका हित हो और आपके मनमें क्षोभ न हो ॥२॥ जो सेवक साहबका संकोची अपनाही हित चाहता है उसकी मति पोचहै ॥ ३ ॥ सेवकका यही हित है कि स्वामीकी सेवा सब सुख और लोभ छोड़कर करै ॥ ४ ॥ स्वारथ तो सबका आपके फिरनेसे होगा और आज्ञा माननी कोटि भाँतिसे भली है ५

देव एक विनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी ॥६॥
तिलक समाज साजि सब आना। करिय सफल प्रभु जो मन माना ७

दो०–सानुज पठइय मोहिं वन, कीजिय सबहि सनाथ।
नतरु फेरिये बन्धु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ ॥ ९० ॥

नतरु जाहिं वन तीनों भाई। बहुरिय सीय सहित रघुराई ॥ १ ॥
जिहि विधि प्रभु प्रसन्नमन होई। करुणासागर कीजिय सोई २
राम–जानहु तात तरणिकुलरीती। सत्यसिन्धु पितु कीरति कीर्त
मातु पिता गुरु स्वामिनिदेशू। सकल धर्म धरणीधर शेषू
सो तुम करहु करावहु मोहू। तात तरणिकुलपालक होहू ॥ ५

हे देव ! एक मेरी विनय सुनिये फिर जैसा उचित हो तैसा करिये ॥ ६ ॥ सब तिलककी सामग्री सजाकर लाया हूं हे प्रभु ! जो आपके मनको रुचै तो सफल करिये ॥ ७ ॥ (दोहार्थ)–भाईसहित मुझे वनमें भेजकर अवधको सनाथ करो नहीं तो दोनों भाइयोंको लौटा दो हे नाथ ! मैं आपके साथ चलूंगा ॥ ९० ॥

न तो तीनों ही भाई वनको जायँ आप सीतासहित लौटिये ॥ १ ॥ जिसप्रकार प्रभुका मन प्रसन्न हो हे कृपासागर ! वही करो ॥२॥ राम बोले हे तात ! सूर्यकुलकी रीति जानते हो कि सत्यसागर पिताकी कैसी कीर्त्ति है ॥ ३ ॥ माता पिता गुरु स्वामीकी आज्ञा मानना सब धर्म और धरणीके धारणमें शेषके समान है ॥ ४ ॥ वही तुम करो और मुझसे कराओ हे भाई ! सूर्यकुलके पालक होओ ॥ ५ ॥

१–रघुपति मोहिं संग कि न लीजे ॥ बार बार पुर जाहु नाथ केहि कारण आयसु दीजे ॥ १ ॥ यद्यपि हौं अतिअधम कुटिलमति अपराधिनिको जायो ॥ प्रणतपाल कोमल स्वभाव जिय जानि शरण तकि आयो ॥ २ ॥ जो मेरे तजि चरण आन गति कहौं हृदय कछु राखी ॥ तो परिहरहु दयालु दीन हित प्रभु अभिअंतर साखी ॥ ३ ॥ ताते नाथ कहौं मै पुनि पुनि प्रभु पितु मातु गोसाई ॥ भजनहीन नरदेह वृथा खर श्वान फेरुकी नाई ॥ ४ ॥ बंधु वचन सुनि श्रवण नयन राजीव नीरभरि आए ॥ तुलसिदास प्रभु परम कृपा गहि बाँह भरत उर लाए ॥ ५ ॥

सो विचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवार सुखारी ॥६॥
तात तुम्हारि मोरि परिजनकी। चिन्ता गुरुहि नृपहि घर वनकी ७
माथेपर मुनि गुरु मिथिलेशू। हमहिं तुमहिं स्वप्नेहु न कलेशू ८॥
मोर तुम्हार परम पुरुषारथ। स्वारथ सुयश धर्म परमारथ ॥९॥
पितु आयसु पालिय दोउ भाई। लोक वेद भल भूप भलाई १०॥
गुरु पितु मातु स्वामि सिख पालै। चलत सुगम पग परत न खालै
अस विचारि सब शोच विहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई
तुम पुनि मातु सचिव सिख मानी। पालहु पुहुमि प्रजा रजधानी
[illegible]

दो०–"मांगेउ विदा प्रणाम करि, राम लिये उरलाय ।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसर पाय ॥ ९१

यह विचार भारी संकट सहकर प्रजापरिवारको सुखी करो ॥ ६ ॥ हे तात ! तुम्हारी मेरी कुटुम्बकी घरकी वनकी सब चिन्ता गुरु और महाराज जनकको है ॥ ७ ॥ जब शिरपर मुनि गुरु और मिथिलेश हैं तो हमको तुमको स्वप्नमें क्लेश नहीं है ॥ ८ ॥ मेरा तुम्हारा यही परमपुरुषार्थ है कि, स्वार्थ सुयश और धर्म परमार्थ बनै ॥९॥ दोनों भाई पिताकी आज्ञा पालैं इसमें लोक वेदमें भला है राजाकी भी भलाई है ॥ १० ॥ जो गुरु पिता माता स्वामीकी आज्ञा पालन करै तो उसका चलना सुगम है कहीं पैर खाली नहीं पड़ता ॥ ११ ॥ ऐसा विचारकर सब शोच त्यागकर चौदह वर्षतक अयोध्याकी पालना करो ॥ १२ ॥ माता और मंत्रियोंकी शिक्षा मानकर प्रजा राजधानी और इस भूमिकी रक्षा करो ॥ १३ ॥ यह कह प्रभुने कृपाकर अपनी खडाऊं दीं भरतने प्रेमसे शिरपर धरलीं ॥ १४ ॥

दोहार्थ–प्रणामकरके रामसे विदा मांगी रामने हृदयसे लगाया उसी समय इन्द्रने अवसर पाय लोगोंको उच्चाटन किया ॥ ९१ ॥

दोहा—लषणहि भेंटि प्रणाम करि, शिरधरि सियपद धूरि।
चले सप्रेम अशीश सुनि, सकल सुमंगल मूरि॥ ९२
भरत मातुपद प्रभु, शुचि सनेह
विदा कीन्ह सजि पालकी, सकुचि शोच सब मेंट॥९३
गुरु गुरुतियपद वन्दि प्रभु, सीता लषण समेत।
फिरे हर्ष विस्मयसहित, आये पर्णनिकेत॥ ९४"॥

इति अयोध्याकाण्ड सम्पूर्णम्।

दोहार्थ—लक्ष्मणसे मिलकर प्रणामकर जानकीके पगकी धूरि शिरपर धर और सब सुमंगलकी अशीश सुनकर चले॥९२॥ प्रभुने भरतकी माताके चरणोंको प्रणामकर पवित्र स्नेहसे मिल भेंटकर सब संकोच निवार पालकीपर चढाय बिदा किया, फिर अपनी माताको मिल बिदा किया॥९३॥ फिर प्रभुने गुरु गुरुपत्नीको प्रणामकर विदाकर हर्ष विस्मयसहित सीता लक्ष्मणके संग अपनी पर्णकुटीमें आगमन किया॥ ९४॥

इति अयोध्याकाण्ड सम्पूर्णम्।

---

१ माईरी मोहिं न कोऊ समुझावे॥टेक॥ रामगमन सांचौ किधौ सपनो मन परतीत न आवै। लगे रहत मेरे नैननि आगे राम लषण अरु सीता। तदपि न मिटत दाह या उरकी विधि जो भयो विपरीता॥ मा०॥ दुखन रहै रघुपतिहि विलोकत तनु न रहै बिन देखे। करत न प्राण पयान सुनहु सखि अरुझि परी यहि लेखे। माई०। कौशल्याके विरह वचन सुनि रोय उठी सब रानी। तुलसिदास रघुवीर विरहकी पीर न जात बखानी॥ माईरी मोहि न कोऊ समुझावे॥

हाथ मीजवो हाथ रह्यो॥ लगी न सग चित्रकूटहुते ह्याँ कहा जात बह्यो॥ १॥ पति सुरपुर सिय राम लषण वन मुनिव्रत भरत गह्यो॥ हौं रहि घर मशान पावक ज्यों मरिबोइ मृतक दह्यो॥ २॥ मेरोई हियो कठोर करिबे कहँ विधि कहुँ कुलिश लह्यो॥ तुलसी वन पहुँचाइ फिरी सुत क्यों कछु परत कह्यो॥ ३॥

राघो एकबार फिरि आवो॥ ए वरबाजि विलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावो॥ १॥ जे पय प्यायि पोषि कर पंकज बार बार चुचुकारे॥ क्यों जीवहि मेरे राम लाडिले ते अब निपट बिसारे॥ २॥ भरत सौगुणी सार करत हैं अतिप्रिय जानि तिहारे॥ तदपि दिनहुँ दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम मारे॥ ३॥ सुनहु पथिक जो राम मिलहिं वन कहियो मातु सँदेशो॥ तुलसी मोहिं और सबहिनते इनको बडो अँदेशो॥ ४॥

इति

रामलीला रामायणे अयोध्याकाण्डं

समाप्तम् ।

श्रीगणेशाय नमः

अथ

रामलीलारामायणे आरण्यकाण्डः प्रारभ्यते ।



प्रथम दर्शन ।

चित्रकूट स्थान ।

(जयन्तका काकरूप धर आना)

"एक बार चुनि कुसुम सुहाये । निजकर भूषण राम बनाये ॥१॥
सीताहिं पहिराये प्रभु सादर । बैठे फटिक शिलापर भाधर ॥२॥
सुरपति सुत धरि वायसवेषा। शठ चाहत रघुपति बल देखा ॥३॥
सीता चरण चोंच हति भागा । मूढ मन्दमति कारण कागा॥४॥
चला रुधिर रघुनायक जाना । सींक धनुष सायक सन्धाना॥५॥
प्रेरित अस्त्र ब्रह्मशर धावा । चला भाजि वायस भय पावा ॥६॥
धरि निज रूप गयउ पितुपाहीं। रामविमुख राखा तिन नाहीं ७॥

प्रथम दर्शन ।

टीका—एकबार अच्छे फूल चुनकर रामने अपने हाथसे भूषण वनाये ॥१॥ और आदरसे सीताको पहराये और शोभाके धरनेवाले स्फटिक शिलापर बैठे थे ॥२॥ कि उसीसमय इन्द्रपुत्र जयंतने कागका रूप धर प्रभुका बल देखना चाहा ॥ ३ ॥ सीताके चरणोंमें चोंच मारकर भागा मूढ मन्दमति काक होनेके कारण हुई ॥ ४ ॥ रुधिर चला यह बात रामने जानी तब धनुषपर सींकका बाण चढ़ाया ॥ ५ ॥ अस्त्रकी प्रेरणासे ब्रह्मबाण चला तब काग भय पाय भाज चला ॥ ६ ॥ अपना रूप धर पितापर गया रामसे विमुख होनेके कारण उसको पिताने नहीं रक्खा ॥ ७ ॥

दोहा-जिमि २ भाजत शक्रसुत, व्याकुल अति दुखदीन ॥
तिमि २ धावत रामशर, पाछे परम प्रवीन ॥ १ ॥
नारद देखा विकल जयन्ता। लागि दया कोमल चित सन्ता॥१॥
दूरिहिते कहि प्रभु प्रभुताई। भजे जात बहु विधि समुझाई ॥२॥
पठवा तुरत राम पहँ ताही। कहसिपुकारि प्रणतहित पाही ॥३॥
आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि कृपालु रघुराई॥४॥
सुनि कृपालु अति आरत वानी। एक नयन करि तजा भवानी॥५॥
सो०-कीन्ह मोह वश द्रोह, यद्यपि त्याहिकर बध उचित।
प्रभु छाँड़ेउ करि क्षोह, को कृपालु रघुवीरसम ॥१॥
अत्रीके आश्रम प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हर्षित भयऊ॥१॥
करतं दण्डवत मुनि उरलाये। प्रेमवारि दोउ जन अन्हवाये॥२॥
करि पूजा कहि वचन सुहाये। दिये मूल फल प्रभु मन भाये ॥३॥

दोहार्थ-दुःखसे दीन और व्याकुल इन्द्रपुत्र जैसे २ भाजने लगा तैसे परम प्रवीन रामका बाण पीछे २ धावमान हुआ ॥ १ ॥

नारदने जयन्तको व्याकुल देखा तब कोमलचित्त और सन्त होनेके कारण दया हुई ॥ १ ॥ दूरसेही उस भाजतेहुएको प्रभुकी प्रभुताई बहुत प्रकार समुझाई ॥ २ ॥ और तुरंत उसको रामपर भेजा उसने पुकारकर कहा हे दीनोंपर हितकरनेवाले ! रक्षा करो ॥ ३ ॥ और शीघ्रतासे चरण पकड़लिये हे कृपालु ! राम रक्षा करो रक्षा करो ॥ ४ ॥ कृपालुने उसकी दुःखकी वाणी सुन एक नेत्ररहित कर उसे छोड़दिया ॥ ५ ॥

सोरठार्थ-उसने मोहवश द्रोह किया यद्यपि उसका वध उचित था पर प्रभुने उसको दयाकर रक्खा भगवान्‌के समान कौन दयालु है ॥ १ ॥

फिर प्रभु अत्रिऋषिके आश्रममें गये सुनकर महामुनि प्रसन्न हुए ॥१॥ दण्डवत करतेही दोनों भाइयोंको हृदयसे लगाया और प्रेमके जलसे दोनोंको स्नान कराया ॥ २ ॥ पूजाकर अच्छे वचन कह प्रभुको मन भाये मूल फल दिये ॥ ३ ॥

सो०-प्रभु आसन आसीन, भरिलोचन शोभा निरखि।
मुनिवर परम प्रवीन, जोरि पाणि अस्तुति करत ॥ २
अनुसूयाके पद गहि सीता। मिली बहोरि सुशील विनीता१॥
ऋषिपत्नी मन सुख अधिकाई।आशिष देइ निकट बैठाई ॥२॥
दिव्य वसन भूषण पहिराये। जे नित नूतन अमल सुहाये३॥
कह ऋषिवधू सरल मृदुवानी।नारिधर्म्म कछु व्याज बखानी४"
अ०-मात पिता भ्राता हितकारी।मित सुखप्रद सुनु राजकुमारी
अमित दान भर्त्ता वैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥६॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपति काल परखिये चारी॥७॥
वृद्ध रोगवश जड़ धन हीना। अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना८
ऐसेहु पति कर किय अपमाना।नारि पाव यमपुर दुख नाना९
एकै धर्म्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा १०॥
जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं।वेद पुराण सन्त अस कहहीं

सोरठार्थ-प्रभु आसनपर बैठे हैं नेत्रभर शोभा देख परम प्रवीन मुनि हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे ॥ २ ॥

सीता अनुसूयाके पद ग्रहणकर सुशील और नम्रतासे मिली ॥ १ ॥ ऋषिपत्नीके मनमें बड़ा सुख हुआ अशीश देकर निकट बैठाया ॥ २ ॥ दिव्य भूषण वस्त्र पहराये जो नित्यनये और उज्ज्वल रहनेवाले थे ॥ ३ ॥ ऋषिवधू सरल और कोमलवाणी बोली कुछ नारिधर्मका व्याज कहने-लगी ॥ ४ ॥ हे राजकुमारि ! माता पिता भ्राता हितकारी यह सब मित सुख देनेवाले हैं ॥ ५ ॥ पर भर्त्ता अमित सुख देनेवाला है वह स्त्री बड़ी अधम है जो उसकी सेवा नहीं करती ॥ ६ ॥ धीरज धर्म मित्र और नारी यह सब आपत्कालमें परखे जाते हैं ॥ ७ ॥ बूढा रोगवश जड़ धनहीन अन्धा बहरा क्रोधी अतिदीन ॥ ८ ॥ ऐसेभी पतिका अपमान करनेसे स्त्री यमपुरमें अनेक दुःख पाती है ॥९॥ एकही धर्म एकही व्रत नेम कि, मन वचन कर्मसे पतिके चरणोंमें प्रेम करना ॥ १० ॥ जगत्में पातिव्रता चार

उत्तमके अस बस मन माहीं।स्वप्नेहु आन पुरुष जग नाहीं १२
मध्यम परपति देखहिं कैसे।भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥१३॥
विनु अवसर रह भयते जोई।जानेहु अधम नारि जग सोई १४
पतिवंचक परपति रति करई।रौरव नरक कल्पशत परई ॥१५
क्षणसुखलागि जन्म शतकोटी।दुख न समझ तेहिसमको खोटी
विनु श्रम नारि परमगति लहई।पतिव्रतधर्म छाँडि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जन्म जहँ जाई।विधवा होइ पाइ तरुणाई॥१८॥
"सुनि जानकी परम सुख पावा।सादर तासु चरण शिरनावा १९
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउँ वन आना"
अत्रि-केहिविधि कहों जाहु अब स्वामी।कहहुनाथतुम अन्तर्यामी
"मुनिपद कमल नाइ करि शीशा।चले वनहिं सुर नर मुनि ईशा
आगे राम अनुज पुनि पाछे।मुनिवर वेष बने अति आछे॥२३

प्रकारकी हैं ऐसा वेद पुराण और सब सन्त कहते हैं॥११॥उत्तमके तो मनमें यह बात होती है कि, स्वप्नमेंभी दूसरा पुरुष नहीं है॥१२॥मध्यम पतिव्रता दूसरे पुरुषोंको भ्राता पिता पुत्रके समान देखती हैं ॥ १३ ॥ जो बिना अवसर भयसे रहै उस स्त्रीको अधम जानो ॥ १४ ॥ जो अपने पतिको ठगकर दूसरेसे प्रेम करती है वह सौ कल्पतक रौरवमें पड़ती है ॥ १५ ॥ क्षणसुखके निमित्त कोटि जन्मका दुःख नहीं समझती उसके समान कौन खोटी है ॥ १६ ॥ विनाश्रमही स्त्रीको परमगति होती है जो छल छोड़ पतिव्रतधर्म करती है ॥ १७ ॥ पतिसे प्रतिकूल जहां जाकर जन्मै तरुणाई पाकर विधवा होजायगी ॥ १८ ॥ सुनकर जानकीने परमसुख पाया आदरसे उसके चरणोंमें शिर नवाया ॥१९॥तब रघुनाथजी मुनिसे बोले आज्ञा होय तो दूसरे वनमें जाऊं ॥ २० ॥ मुनि बोले स्वामी तुम अन्तर्यामी हो कैसे कहूं कि, तुम वनको जाओ ॥ २१ ॥ तब मुनिके चर- णोंमें शिर नवाय सुर नर मुनिके ईश वनको चले ॥ २२ ॥ आगे राम पीछे लक्ष्मण मुनियोंके सुन्दर वेष किये हुए चले ॥ २३ ॥

मिला असुर विराध मगु जाता। गर्जत घोर कठोर रिसाता २४

क्षेपक।

तुरतहि सो सीतहि लैगयऊ। रामहृदय कछु विस्मय भयऊ२५
बहुरि लषण रघुवरहि प्रबोधा। पांच बाण छांड़े करि क्रोधा २६

दोहा–बहुरि एक शर मारेउ, परा धरणि धुनि माथ।
उठा प्रबल पुनि गर्जेउ, चला जहाँ रघुनाथ ॥ २ ॥

ऐसे कहत निशाचर धावा। अब नहिं बचहु तुमहिं मैं खावा१॥
उरग समान जोरि शर साता। आवतही रघुवीर निपाता॥ २ ॥
सीता आइ चरण लपटानी। अनुज सहित तब चले भवानी ३॥
प्रभु आये जहँ मुनि शरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा ॥४॥
शर०-कह मुनि सुनुरघुवीरकृपाला। 'शंकर मानस राजमराला
जात रहेउँ विरंचिके धामा। सुनेउँ श्रवण वन आवत रामा ॥६॥
चितवत पन्थ रहेउँ दिनराती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती७॥

मार्गमें जाते विराध राक्षस मिला महाघोर कठोर गर्जता और रिसाता चला॥२४॥सीताको उठाकर लेचला रामका हृदय बड़ा विस्मित हुआ २५ तब लक्ष्मणने रामको समझाय क्रोधकर उसपर पांच बाण छोडे ॥ २६ ॥

दोहार्थ–फिर एक बाण मारा कि, वह माथा धुनकर भूमिपर गिरा और फिर उठकर गर्जा जहाँ राम हैं वहां चला ॥ २ ॥

ऐसा कहता राक्षस दौड़ा अब नहीं बचोगे मैंने तुमको खाया ॥ १ ॥ तव सर्पके समान सात बाण जोडकर आतेही रामचन्द्रने उसको मारदिया ॥ २ ॥ तब सीता आनकर चरणोंमें लिपट गई हे भवानी ! तब अनुज सहित राम चले ॥ ३ ॥ तब प्रभु सीता लक्ष्मणसहित शरभंगमुनिके आश्रममें आये ॥ ४ ॥ मुनि बोले हे कृपालु! आप शिवके मनरूप सरोवरमें राजहंस हैं ॥ ५ ॥ मैं ब्रह्मलोकको जाता था वहां सुना कि, वनमें श्रीराम आवैंगे ॥ ६ ॥ तबसे दिनरात मार्ग निहारता हूं अब तुमको देख

नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्हीं कृपा जानि जन दीना॥८॥
सो कछु दैव न मोर निहोरा। निज प्रण राखेउ जन मन चोरा९
तब लगि रहहु दीनहित लागी। जबलगि मिलौं तुम्हैं तनुत्यागी
"योग यज्ञ जप तप व्रत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भक्ति वर लीन्हा
यहि विधि सररचि मुनिशरभंगा॥बैठे हृदयछांडिसब संगा१२"
शरभंग–दो०-सीता अनुज समेत प्रभु,नील जलद तनुश्याम।
मम हिय बसहु निरन्तर, सगुणरूप श्रीराम॥३॥
"अस कहि योगअग्नि तनु जारा॥राम कृपा वैकुंठ सिधारा॥१॥
अस्तुति करहिं सकलमुनिवृन्दा।जयातिप्रणताहितकरुणाकन्दा।
पुनि रघुनाथ चले वन आगे। मुनिवर वृन्द पुलकि सँग लागे३॥
अस्थिसमूह देखि रघुराया। पूछा मुनिन लागि अतिदाया॥४॥
निशिचरनिकर सकलमुनि खाये।सुनि रघुनाथ नयन जल छाये

छाती ठंढी हुई॥७॥ हे नाथ! मैं सब साधनोंसे हीन हूं आपने दीन जान कृपा की है॥ ८॥ हे स्वामी! इसमें कुछ मेरा निहोरा नहीं है दासोंके मनहरनेवाले आपने अपना प्रण रक्खा॥९॥ हे दीनोंपर हितकरनेवाले! तबतक आप यहां स्थित रहो जबतक शरीर छोडकर तुमसे मिलूं॥१०॥ योग यज्ञ जप तप व्रत जो किया था वह प्रभुको देकर भक्तिका वर लिया॥११॥ इस प्रकार शरभंग मुनि चिता बनाय सब संग छोड़ बैठे १२

दोहार्थ–हे प्रभु! हे नीलमेघके समान श्यामशरीर! सीता लक्ष्मण सहित आप सगुणरूपसे निरन्तर मेरे मनमें निवास करो॥ ३॥

यह कह योगकी अग्निमें शरीर जलाय रामकी कृपासे वैकुण्ठ गया॥ १॥ सब मुनि स्तुति करने लगे हे प्रणतहितकारी करुणाकन्द! आपकी जय हो॥ २॥ फिर रघुनाथजी आगे वनको चले मुनिजन प्रेमसे संग चले॥ ३॥ रामचन्द्रने अस्थियोंका समूह देख दयाकर मुनियोंसे पूछा॥ ४॥ मुनि बोले हे राम! यहां राक्षसोंने अनेक मुनियोंको भक्षण कर लिया है सुनकर रामके नेत्रोंमें जल भरा॥ ५॥

दोहा–निशिचर हीन करौं महि, भुज उठाय प्रण कीन्ह ।
सकल मुनिनके आश्रमन्ह, जाइ २ सुख दीन्ह ॥ ४ ॥

मुनि अगस्त्यकर शिष्य सुजाना।नाम सुतीक्षण रतभगवाना१
प्रभु आगमन श्रवण सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा २
आगे देखि राम तनु श्यामा । सीता अनुज सहित सुखधामा३
परेउ लकुट इव चरणन लागी।प्रेम मगन मुनिवर बडभागी ४॥
लिये उठाई।प्रेम प्रीति राखेउ उरलाई॥५॥"

सुतीक्ष्ण–दो०-अनुज जानकीसहितप्रभु, चापबाण धरराम ।
मम हिय गगन इन्दु इव, बसहु सदा निष्काम ॥ ५ ॥

"एवमस्तुकहि रमानिवासा।हर्षि चले कुम्भज ऋषि पासा १॥
मुनि प्रणाम करि युग करजोरी।सुनहु नाथ कछु

दोहार्थ–भूमिको राक्षसहीन करदूंगा ऐसा भुजा उठाय प्रण किया और सब मुनियोंके आश्रमोंमें जाजाकर सुखदिया ॥ ४ ॥ मुनि अगस्त्यका एक सुतीक्ष्ण शिष्य भगवान्में वड़ी प्रीति करता था ॥ १ ॥ उसने प्रभुका आगमन सुना तो मनोरथ करताहुआ आया ॥ २ ॥ आगे जाकर श्याम-शरीर रघुनाथजीको देखा कि वे सुखधाम सीता लक्ष्मणसहित आरहे हैं ॥ ३ ॥ लकुटके समान चरणोंमें पड़गया बडभागी मुनि प्रेममें मगन हो । ॥ ४ ॥ बड़ी भुजासे ग्रहणकर प्रभुने उठायकर प्रेमप्रीतिसे हृदयसे लगाय रक्खा ॥ ५ ॥ (दोहार्थ)-और बोला हे प्रभु ! अनुज जानकीसहित धनुष बाण लिये आप मेरे हृदयरूपी गगन (आकाश) में चन्द्रमाके समान निष्काम निवास करो ॥ ५ ॥

. ऐसाही हो यह कह भगवान् अगस्त्यजीके पास चले ॥ १ ॥ मुनिने प्रणामकर दोनों हाथ जोडकर कहा हे नाथ ! मेरी विनती सुनो ॥२॥ मैं भी आपके संग गुरुके पास चलूंगा इसमें आपको कुछ निहोरा नहीं है ॥ ३ ॥

"देखि कृपानिधि मुनि चतुराई । लिये संग विहँसे दोउ भाई४॥
तुरत सुतीक्षण गुरुपहँ गयऊ।करि दण्डवत कहत अस भयऊ"
सुती०-नाथ कोशलाधीशकुमारा।आये मिलन जगत आधारा
राम अनुज समेत वैदेही । निशि दिन देव जपतहहु जेही ॥७॥
"सुनत अगस्त्य तुरंत उठिधाये।प्रभुविलोकि लोचनजलछाये
मुनिपदकमल परे दोउ भाई । ऋषि अति प्रीतिलिये उरलाई ९
पुनि करि बहु प्रकार प्रभुपूजा।मोहिंसम भागवन्त नहिंदूजा१०
राम-तब रघुवीर कहा मुनि पाहीं।तुमसन प्रभ दुराव कछु नाहीं
अब सो मंत्र देहु प्रभु मोहीं । ज्यहि प्रकार मारौं मुनिद्रोहीं १२
हु बड़ाइ।तात मोहि पूछयहु र
प्रभु परम मनोहरठाऊं । पावन पंचवटी त्येहि नाऊं॥ १४ ॥
गोदावरी नदी तहँ बहइ । चारिहु युग प्रसिद्ध सो अहई॥१५।

कृपानिधिने मुनिकी चतुराई देख लक्ष्मणसहित हँसकर मुनिको संग लिया ॥४॥ फिर तुरत सुतीक्ष्ण गुरुपर गया और दण्डवत् कर बोला ॥५॥ हे नाथ ! कौशलाधीशकुमार जगत्के आधार आपसे मिलने आये हैं ॥६॥ राम अनुज और सीता सहित आये हैं जिनका जप आप निरन्तर करते रहते हैं ॥ ७ ॥ सुनतेही अगस्त्यजी तुरत उठधाये और प्रभुको देख नेत्रोंमें जल भरिआया ॥ ८ ॥ दोनों भाई मुनिके चरणकमलमें पड़े और ऋषिने अतिप्रीतिसे हृदय लगाया ॥ ९ ॥ फिर बहुत प्रकारसे प्रभुकी पूजा की आज मेरे समान दूसरा भाग्यवान् नहीं है ॥ १० ॥तब रघुवीरने मुनिसे कहा हे प्रभु ! तुमसे कुछ दुराव नहीं है ॥ ११ ॥ अब आप मुझे वह मंत्र दें जिस प्रकार मुनिद्रोहियोंको मारूं ॥ १२ ॥ मुनि बोले आप निरन्तर दासोंको बडाई देते हैं इससे आपने मुझसे पूछा है ॥ १३ ॥ हे प्रभु ! पवित्र पंचवटी थोडी दूर बड़ी मनोहर स्थली है ॥ १४ ॥ वहां गोदावरी नदी बहती है, वह चारों युगमें प्रसिद्ध है ॥ १५ ॥

दण्डकवन पुनीत प्रभु करहू । उग्रशाप मुनिवरकर हरहू ॥१६॥
बास करहु तहँ रघुकुलराया।कीजै सकल मुनिन्हपर दाया १७
"चले राम मुनि आयसु पाई । तुरतहि पंचवटी नियराई ॥१८॥

दोहा--गृध्रराजसों भेंट भइ, बहुविधि प्रीति दृढाय ।
गोदावरी समीप प्रभु, रहे पर्णगृह छाय ॥ ६ ॥"

द्वितीय दर्शन ।

(शूर्पणखा विरूपकरण)

"शूर्पण रावणकी बहिनी।दुष्ट हृदय दारुण जिमि अहिनी१
पचवटा गइ यक बारा । देखि विकल भइ युगलकुमारा२॥
रुचिर प्रभुपहँ आई । बोली बचन मधुर मुसुकाई"
शू०-तुमसम पुरुष न मोसमनारी।यह संयोग विधि रचाविचारी
मम पुरुष जगनाहीं।देख्यउँ खोजि लोक तिहुँ माहीं५

हे प्रभु ! वहां जाकर दण्डक वनको पवित्र करो मुनिका बड़ा कठिन शापहरो ॥ १६ ॥ हे रघुकुलके अधिपति ! आप वहां निवासकरो सब मुनियोंपर दयाकरो ॥ १७ ॥ मुनिकी आज्ञापाय रघुनाथजी चले तुरतही पंचवटी निकट हुई ॥ १८ ॥ (दोहार्थ)–वहां गृध्रराजसे भेंट हुई बहुत प्रकारसे प्रीति बढाई गोदावरीके किनारे प्रभु पर्णशाला बनाकर रहे ॥ ६ ॥

द्वितीय दर्शन ।

(शूर्पणखा विरूपकरणम्)

रावणकी बहिनी शूर्पणखा दुष्ट हृदय दारुण सर्पिणीके समानथी ॥१॥ सो एक समय पंचटीमें गई दोनों कुमारोंको देख व्याकुल हुई ॥ २ ॥ सुन्दर रूप धरकर प्रभुपर आई मधुर मुसकाकर वचन बोली ॥ ३ ॥ तुम्हारे समान पुरुष और मेरे समान स्त्री कोई नहीं यह संयोग विधाताने संभालकर रचा है ॥ ४ ॥ मेरे समान जगत्में कोई पुरुष नहीं मिला यह

तातें अबलगि रहिउँ कुमारी। मनमाना कछु तुमहिं निहारी६॥
रा०-सीतहि चितइ कही प्रभुबाता। अहै कुमार मोर लघुभ्राता७
"गइ लक्ष्मण रिपुभगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोलेमृदुबानी८"
ल०-सुन्दरि सुनु मैं उनकर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा९
प्रभु समरथ कोशलपुर राजा। जो कछु करैं उन्हैं सबसाजा१०॥
"पुनि फिरि रामनिकट सो आई। प्रभु लक्ष्मणपहँ बहुरिपठाई ११
तब खिसिआनि रामपहँ गई। रूपभयंकर प्रगटत भई ॥ १२ ॥
राम-सीतहि सभयदेखि रघुराई। कहा अनुजसन सैन बुझाई१३

दोहा-"लक्ष्मण अति लाघव तिहि, नाक कान बिनु कीन ॥
ताके कर रावण कहँ, मनहुँ चुनौती दीन ॥ ७ ॥

(सेना आती है राम देखते हैं)

खर दूषणपै गइ बिलखाता। धृक रतव पौरुष बल भ्राता ॥१॥
तेहिपूछा सब कहेसि बुझाई। यातुधान सुनि सेन बुलाई॥२॥

मैंने तीन लोकमें खोज देखा ॥ ५ ॥ इससे अबतक कुमारी रही तुम्हें देखकर कुछ मन माना है ॥६॥ सीताको देखकर प्रभुने बात कही कि, मेरे छोटे भ्राता कुमार हैं ॥ ७॥ लक्ष्मणपर जब गई तो शत्रुकी भगिनी जानी और प्रभुको देखकर कोमल वाणी बोले ॥ ८॥ हे सुन्दरि ! सुन मैं उनका दास पराधीन तुम्हारे योग्य नहीं हूं ॥ ९ ॥ प्रभु कौशलपुरके राजा समर्थ हैं जो कुछ करैं उन्हैं सब शोभता है॥ १० ॥ वह फिर रामके समीप आई प्रभुने फिर लक्ष्मणपर भेजी ॥ ११ ॥ तब खिसियाकर रामपर गई और भयंकर रूप प्रगट करती हुई ॥ १२ ॥ सीताको सभीत देखकर रामचन्द्रने लक्ष्मणको सेनसे समझाकर कहा ॥ १३ ॥ (दोहार्थ)--लक्ष्मणने बड़ी शीघ्रतासे उसको नाक कानके बिना करदिया उसके हाथसे मानो रावणको चिनौती दी ॥ ७ ॥

व्याकुल हो खरदूषणपर गई और बोली भाई तेरे बल पौरुषको धिक्कार है ॥ १ ॥ उसके पूँछनेपर उसने सब कथा सुनाई- यातुधानने सुनकर

बहुविधि कहत वचन रणधारा। आये सकल जहाँ रघुवारा।
राम—लै जानकिहि जाहु गिरिकंदर।आवानिशिचरकटकभयंकर४
"रह्यउ सजग सुनि प्रभुकै वाणी।चलेसहितासियशरधनुपाणी५
देखि राम रिपुदल चलिआवा।विहँसिकठिन कोदण्ड चढ़ावा६"
खर—सचिवबोलिबोलेखरदूषण।यहकोउनृपबालकनरभूषण ७
सुर नर नाग असुर मुनि जेते। देखे सुने हते हम केते ॥ ८ ॥
हमभरिजन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुन्दरताई९
यद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा।वधलायक नहिं पुरुष अनूपा१०
देहिं तुरत निज नारि पठाई।जीवत भवन जाहिं दोउ भाई ११
मोर कहा तुम ताहि सुनावहु।तासु वचन सुनि आतुरआवहु१२
"दूतन कहा रामसन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई॥१३॥
राम-हमक्षत्रीमृगयावनकरहीं। तुमसेंखलमृगखोजतफिरहीं १४

सेना बुलाई ॥ २ ॥ वे बड़े वचन कहते चले और रघुनाथके समीप आये तब रामचन्द्र लक्ष्मणसे बोले ॥ ३ ॥ जानकीको ले पर्वतकी कन्दरामें जाओ राक्षसोंका भयंकर कटक आया है ॥ ४ ॥ और सावधान रहना यह प्रभुकी वाणी सुन धनुष बाण हाथमें ले चले ॥ ५ ॥ रामने देखा कि शत्रुका दल चढ़आया हँसकर कठिन धनुष चढ़ाया ॥ ६ ॥ इधर मंत्रियोंको बुलाय खर दूषण बोले यह कोई नृपबालक नरोंमें भूषण हैं ॥ ७ ॥ सुर नर नाग असुर मुनि हमने जितने देखे सुने और मारे हैं ॥ ८ ॥ हे भाई! पर हमने जन्मपर्यन्त ऐसी सुन्दरता नहीं देखी ॥ ९ ॥ यद्यपि बहनको कुरूप किया है तथापि यह अनूपपुरुष वधयोग्य नहीं हैं॥ १० ॥ अपनी स्त्री जो छिपाई है सो देदें और दोनों भाई जीते घरको जायँ११॥ मेरा कहना तुम उसे सुनाओ और उसके वचन सुन शीघ्रआओ ॥ १२ ॥ दूतोंने रामसे जाकर कहा सुनकर राम हँसते हुए बोले ॥ १३॥ हम क्षत्री वनमें मृगया करते हैं तुमसे दुष्टमृगोंको खोजते फिरते हैं ॥ १४ ॥

रिपुबलवन्त देखि नहिं डरहीं। एकबारकालहुसन लरहीं॥१५॥
"दूतन जाइ तुरत सब कहेऊ।सुनिखरदूषणउरअति दहेऊ१६

दोहा-सावधान होइ धाये, जान सबल आराति।
लागे वर्षन रामपर, अस्त्र शस्त्र बहुभाँति॥८॥

छन्द--महि परत उठिं भट भिरत पुनि२करत माया अतिघनी।
सुर डरत चौदह सहस निशिचर एक श्रीरघुकुलमनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देख मायानाथ अति कौतुक करयो।
देखत परस्पर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयो॥ १॥

दोहा--राम २ करि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्वान।
करि उपाय रिपु मारयउ,क्षणमहँ कृपानिधान॥ ९॥

तब लक्ष्मण सीतहि ले आये। प्रभुपद परत हर्षि उरलाये १॥"

बली शत्रुको देखकर नहीं डरते एकबार कालसेभी लड़सकते हैं॥१५॥
दूतोंने जाकर सब कहा सुनकर खरदूषणका हृदय दहा॥ १६॥

दोहार्थ-और उसकी आज्ञासे वह शत्रु सावधान होकर धावमान हुए और रामपर अनेक भाँतिके अस्त्र शस्त्र वर्षने लगे॥ ८॥

छन्दार्थ-कभी रामके बाणसे पृथ्वीमें गिरते फिर उठकर लड़ते बड़ी माया करते हैं देवता डरते हैं कि, राक्षस चौदहसहस्र और रामचन्द्र इकले हैं सुरमुनियोंको भयभीत देखकर मायानाथने यह कौतुक किया कि, रघुनाथजी तो देखते रहे और संग्रामकरके शत्रुका दल लड़मरा॥ १॥

दोहार्थ-राम राम कह शरीर त्यागते और निर्वाणपद पाते हैं क्षणमें भगवान्‌ने उपायकर शत्रु मारे॥ ९॥

तब लक्ष्मण सीताको लेआये, प्रभुके चरणोंमें पड़े तब उन्होंने प्रसन्नहो हृदयसे लगाया॥ १॥

तृतीय दर्शन ।

(शूर्पणखा रावणसम्वाद)

"धुँआ देखि खर दूषण केरा । शूर्पणखा तब रावण प्रेरा ॥ १ ॥"
शू०-बोली बचन क्रोधकरि भारी। देशकोशकी सुरति विसारी२
दोहा-सभा माँझ व्याकुल परी, बहुप्रकार करि रोइ ।
तोहिं जियत दशकंधर, मोरिकि असगति होइ ॥ १० ॥
रावण-कहलंकेशकहसिकिनबाता। क्यइँतवनासाकानानिपाता
शूर्प०-अवधनृपतिदशरथके जाये । पुरुषसिंहवनखेलनआये२
जिनकरभुजबल पाइ दशानन।अभयभये विचरहिं मुनिकानन
देखत बालक कालसमाना । परमधीर धन्वी गुणवाना ॥ ४ ॥
अतुलितबलप्रतापदोउभ्राता। खलवधरत सुरमुनिसुखदाता५

तृतीय दर्शन

खर दूषणका धुँआ देखकर शूर्पणखा रावणपर गई ॥ १ ॥ और क्रोधकर बोली तुमने देशकालकी सुरत विसारदी है ॥ २ ॥

दोहार्थ-सभामें व्याकुल हो गिरपड़ी बहुतप्रकारसे रोई हे दशकंधर ! तेरे जीतेजी क्या मेरी ऐसी गति होगी ॥ १० ॥

रावण बोला बात क्यों नहीं कहती तेरी नाक कान किसने काटी है ॥१॥ शूर्पणखा बोली अवधराजा दशरथके पुत्र पुरुषसिंह वनमें खेलने आये हैं ॥ २ ॥ हे रावण ! जिनकी भुजाका बल पाकर मुनि अभय हुए वनमें विचरते हैं ॥३॥ देखनेमें बालक कालके समान परमधीर धनुषधारी और गुणवान् हैं ॥ ४ ॥ दोनों भाई बडेबली प्रतापशाली दुष्टोंके मारनेमें

कवित्त घनाक्षरी-भावे मति वंक मद छावे है उतंक तिय अंकलै निशक पर्यंक माहि सोवेहै ।
अथवत भान कब होत है विहान सो न जान सुरापान माहि रैनि दिन खोवे है ।
रसिकबिहारी राज काज औ समाज साज कैसो का अकाज काज रचहू न जोवे है ।
तोसों जो नरेश सो कलेश बहु पावै देश जावे पछिताबे औ विनाश वेगि होवे है॥१॥

शोभाधाम राम अस नामा। तिन्हकेसँग इक नारि ललामा॥६
अजहुँ जाय देखव तुम जबहीं॥होइहौ विकल तासु वश तबहीं ७
तासु अनुज काटी श्रुतिनासा॥सुनि तवभगिनी करि परिहासा८
विन अपराध अस हाल हमारी॥अपराधी किमि बचहिं सुरारी९
खरदूषण सुनि लागगुहारा॥क्षणमहँ सकल कटक उन मारा१०
"खरदूषण त्रिशिराकर घाता॥सुनि दशशीश जरा सबगाता ११
दोहा--शूर्पणखहिं समुझाइ करि, बल बोलेसि बहुभाँति।
भवन गयउ अतिशोचवश, नींद परी नहिं राति॥११॥"

रावण--सुर नर असुर नाग जगमाहीं॥मोरे अनुचर सम कोउ नाहीं१
२
[illegible]
सुररंजन भंजन महिभारा। जो जगदीश लीन्ह अवतारा ॥३
तौ मैं जाइ वैर हठ करिहौं। प्रभुशरते भवसागर तरिहौं ॥ ४॥

सुरमुनियोंके सुखदेनेवाले हैं ॥ ५ ॥ शोभाधाम राम ऐसा उनका नाम है उनके संगमें एक सुन्दर स्त्री है ॥ ६ ॥ अबभी जाकर तुम जब देखोगे तो तुम उसके वशीभूत होजाओगे ॥ ७ ॥ उसके लघुभ्राताने नाक कान काटे हैं जब सुना कि, तुम्हारी बहनहै तब हँसी की ॥ ८ ॥ विनाअपराध हमारा ऐसा हाल है हे सुरारी ! अपराधी किसप्रकार बचसकता है ॥९॥ खर दूषण सुनकर पुकारलगे क्षणमें सब सेना उन्होंने मारदी ॥ १० ॥ खरदूषण त्रिशिराका घात सुनकर रावणके सब शरीर जलने लगे ॥११॥

दोहार्थ—शूर्पणखाको समझाकर बहुत बलबोला और घरगया शोचवश रातको नींद नहीं पडी ॥ ११ ॥

सुर असुर नाग जगत्में मेरे अनुचरोंके समान कोई नहीं हैं ॥ १ ॥ खरदूषण मेरे समान बलवान् हैं उनको विना भगवान्के कौन मार सकता है ॥ २ ॥ देवताओंके प्रसन्नकरने और भूमिका भय दूरकरनेको जो प्रभुने अवतार लिया है ॥ ३ ॥ तो मैं जाकर वैर करूं और प्रभुके बाणसे भव-

होइ भजन नहिं तामस देहा।मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ एहा ॥५॥
जो नररूपभूप सुत कोऊ। हरिहौं नारि जीति रण दोऊ ॥ ६ ॥
चला अकेल यान चढ़ि ताहां।वस मारीच सिन्धुतट जाहां ॥७॥
"दोहा—लक्ष्मण गये वनहिं जब, लेन फूल-फल कन्द।
जनकसुतासन बोल्यउ, विहँसि कृपासुखवृन्द१२"
राम-सुनहुप्रियाव्रतरुचिरसुशीला। मैंकछुकरबललितनरलीला
तुमपावकमहँ करहु निवासा।जौं लगि करौं निशाचर नाशा॥२॥
"जबहिं राम सब कहेउबखानी।प्रभुपद धरिहिय अनलसमानी
निज प्रति बिम्ब राखि तहँ सीता।तैसेइ शील स्वरूप विनीता४॥
दशमुख गयउ जहाँ मारीचा।नाइमाथ स्वारथरत नीचा ॥५॥"
मारीच-दोहा—करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात।
कवनहेतु मन व्यग्र अति, अकसर आयउ तात ॥१३॥

सागर तरूंगा ॥४॥ तामसदेहसे भजन नहीं होता मन वचन कर्मसे यह दृढ मंत्र है ॥५॥ और जो कोई नररूप राजकुमार हैं तो रणमें जीतकर उनकी स्त्री हरलूंगा ॥ ६ ॥ यह कह अकेला विमानमें चढ़ वहां गया जहां सागरके किनारे मारीच रहता था ॥ ७ ॥

दोहार्थ—लक्ष्मण जब वनको कन्द मूल फल लेने गये तब कृपासागर हँसकर जानकीसे बोले ॥ १२ ॥

हे व्रतरुचिरसुशीलप्रिया ! सुनो मैं कुछ नरलीला करूंगा ॥ १ ॥ तुम अग्निमें निवासकरो जबतक राक्षसोंका नाशकरूं ॥ २ ॥ जब रामने सब समझाकर कहा तब प्रभुके चरण हृदयमें धर सीता अग्निमें प्रविष्ट हुईं ॥३॥ और वैसेही रूपशीलसे विनीत अपने प्रतिबिम्बकी सीता वहाँ रखदी॥४॥ इधर रावण जहाँ मारीचथा वहाँ गया और स्वारथरत होनेसे नीचने शिर नवाया ॥ ५ ॥ (दोहार्थ)—पूजा करके मारीचने आदरसे बात पूँछी हे तात ! क्याकारण है जो मनमें व्यग्रता है और बे समय आये हो ॥ १३ ॥

रावण-दशमुखसकलकथातिहिआगे।कहीसहितअभिमानअभागे ॥१
होउ कपट मृग तुम छलकारी।ज्यहिविधिहरिआनौंनृपनारी२
मारीच-त्यहि पुनिकहासुनहुदशशीशा। तेनररूपचराचरईशा
तासों तात वैर नहिं कीजे। मारे मरिय जियाये जीजै ॥ ४ ॥
मुनिमख राखन गयउकुमारा।विनुफरशररघुपतिमोहिंमारा५॥
शतयोजन आयउँ क्षणमाहीं।तिन्हसन वैर किये भल नाहीं६॥
भइ मति कीटभृङ्गकी नाई। जहँ तहँ मैं देखौं दोउ भाई॥७॥
जो नर तात तदपि अतिशूरा।तिनहिं विरोध न आइहिपूरा॥८॥

दोहा-जेहि ताड़का सुबाहु हति, खण्ड्यउ हरकोदण्ड।
खरदूषण त्रिशिरा वध्यउ, मनुजकि अस बलवण्ड १४॥

रा अस नाम सुनत दशकन्धर। रहत प्राणनहिंममउरअन्तर१
जाहुभवन कुल [illegible] री।सुनत जरा दीन्हेसि

अभागे रावणने सब कथा अभिमानसहित कही ॥ १ ॥ कि, तुम छल करके कपट मृग बनो कि, जिसभाँति नृपनारी हरलाऊं ॥ २ ॥ तब मारीच बोला हे रावण! सुनो वे तौ नर रूप चर अचरके ईश हैं ॥ ३ ॥ हे तात! उनसे वैर मतकरो उनके मारेसे मरिये जियायेसे जीजे ॥ ४ ॥ जब यह मुनिका यज्ञ रखवारी करने गये तो रामने विना फरके मेरे बाण मारा ॥५॥ मैं क्षणमात्रमें सौ योजन आगया उनसे वैर करना भला नहीं है ॥६॥ तबसे मेरी मति कीटभृङ्गके समान होगई है जहाँ तहाँ मैं दोनों भाइयोंको देखता हूं ॥ ७ ॥ हे स्वामिन्! जो मनुष्य हैं तौ भी बड़े शूर हैं उनसे विरोध करनेसे पूर न पड़ैगी ॥ ८ ॥

दोहार्थ-जिसने ताडका सुबाहुको मारकर शिवजीका धनुष तोडा खर-दूषण त्रिशिराको मारा ऐसा बली क्या मनुष्य होसकता है ॥ १४ ॥

हे रावण! रा ऐसा नाम सुनतेही मेरे शरीरमें प्राण नहीं रहता ॥१॥ इससे अपने कुलकी कुशल विचारकर जाओ यह सुन जलकर रावणने

रावण-गुरुजिमिमूढ़करासिममबोधा। कहुजगमोहिंसमानकोयोधा।
मा०-तब मारीच हृदय अनुमाना।नवहि विरोधे नाहिं कल्याना॥
शस्त्री मर्मी प्रभु शठ धनी। वैद्य वन्दि कवि मानस गुनी ॥५॥
उभय भाँति देखा निजमरणा।तब ताकेसि रघुनायक शरणा ६
उतर देत मोहिं वधहि अभागे। कस न मरौं रघुपति शरलागे ७
अस जिय जानि दशानन संगा।चला रामपद प्रेम अभंगा॥८॥
मन अति हर्षि जनाव न तेही। आज देखिहौं परमसनेही ॥९

फिरि २ प्रभुहिं विलोकि हौं, धन्य न मोसम आन १५

"[illegible]

मारीच कपटमृग भयऊ १

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर वेषा ॥ २ ॥"

गारी दी और बोला ॥ २ ॥ रे मूर्ख ! गुरुके समान मुझे सिखाता है कह जगत्में मेरे समान योद्धा कौनहै ॥ ३ ॥ तब मारीचने मनमें विचार किया नौजनोंसे विरोध करनेमें कल्याण नहीं ॥ ४ ॥ शस्त्रधारी, मर्मज्ञाता, प्रभु,

[illegible] ॥ १४॥ १५॥ [illegible] ६ [illegible] दोनों

मरण देख श्रीरामकी शरणता की ॥ ६ ॥ कि, यह अभागा तो मुझे उत्तर देतेही मारैगा इससे रामके बाण लगनेसे क्यों न मरूं ॥ ७ ॥ यह जीमें ठान मनमें रामके चरणोंमें अभंग प्रेम करचला ॥ ८ ॥ उसके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई सो जनाई नहीं आज परमसनेही रामका दर्शन करूंगा ॥ ९॥

दोहार्थ-मेरे पीछे धनुषबाण धारणकर धावमान होंगे, मैं फिर २ कर प्रभुको देखूंगा मेरे समान दूसरा धन्य नहीं है ॥ १५ ॥

उसी वनके समीप रावण गया तब मारीच कपटका मृग हुआ ॥ १ ॥ सीताने परमरुचिर मृग देखा कि, अंगअंगसे मनोहर वेष है॥ २ ॥

---

१ कवित्त घनाक्षरी—नीलमणि नैन औ प्रवालके विशाल शृंग जटित अनेक रत्न कंचनको अग है।
दशन सुहीरनके रजतमई हैं खुर रसिकविहारी रूप सुघर सुढग है ॥
ताहि अवलोकतही सीय रघुनंदनको टेरे हुलसाय छाई अमित उमंग है।
धावो वेगि धावो लाल आओ इत आओ श्याम देखो याहि देखो कैसा रुचिरकुरग है॥ १॥

सीता-सुनहु देव रघुवीर कृपाला ।इह मृगकर अति सुन्दर छाला३
सत्यासिन्धु प्रभु वधकरि एही। आनहु चर्म कहति वैदेही ॥ ४ ॥
"तब रघुपति जाना सब कारण। उठे हर्षि सुर काज सँवारण५"
राम-प्रभुलक्ष्मणहिंकहासमुझाई।फिरंतविपिननिशिचर समुदाई ६
सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि विवेक बल समय विचारी॥७॥

(चलते हैं)

"प्रभुहि विलोकि चला मृग भाजी।धाये राम शरासन साजी८॥
प्रकटत् दुरत करत् छल भूरी। इहिविधि प्रभुहि गयो ले दूरी९॥
धरणिपर्योकरि घोरचिकारा।

[illegible]

मृगवधि तुरत फिरे रघुवीरा। सोहचाप कर कटि तूणीरा ॥१२॥
आरत गिरासुनीजब सीता। कहलक्ष्मणसन परमसभीता १३"

बोली हे देवकृपालु रघुवीर! इसमृगकी सुन्दरछाल है ॥३॥ हे सत्यसन्ध प्रभु! इसका वधकर चर्म लाओ यह सीताने कहा ॥ ४ ॥ तब राम सबकारण जान देवताओंका काज संभारनेको उठे ॥ ५ ॥ तब प्रभुने लक्ष्मणसे कहा वनमें अनेक राक्षस फिरते हैं ॥ ६ ॥ बुद्धि विवेक बल समय बिचार कर जानकीकी रखवाली करना ॥ ७ ॥ तब प्रभुको देख मृग भाग चला राम धनुषपर बाण चढाय धावमान हुए ॥ ८ ॥ प्रगट होता छिपता हुआ बड़ा छल करता प्रभुको दूर लेगया ॥ ९ ॥ तब रामने ताककर कठिनबाण मारा वह घोर चिकारकर भूमिमें गिरा ॥ १० ॥ पहले लक्ष्मणका नाम ले पीछे मनमें रामका स्मरण किया ॥११॥मृगको मारकर राम तुरत फिरे हाथमें धनुष कमरमें तूणीर शोभित है ॥ १२ ॥ जब जानकीने यह दुःख

---

१ राग सोरठ—रघुवर दूरिजाइ मृगमार्‍यो ॥ लषण पुकारि राम हरुये कहि मरतहुँ वैर सँभार्‍यो ॥ सुनहु तात कोउ तुमहि पुकारत प्राणनाथकी नाई ॥ कह्यो लषण हत्यो हरिण कोपि सिय हठि पठये वरि आई ॥ बन्धुविलोकि कहत तुलसी प्रभु भाई भली न कीन्ही ॥ मेरे जान जानकी काहू खल छलि करि हरिलीन्ही ॥

सी०-जाहुबेगिसंकटतवभ्राता।लक्ष्मणविहँसिकहयोसुनमाता १४
ल०-भृकुटि विलास सृष्टिलै होई। स्वप्नेहु संकट परैकि सोई१५
सौंपि गये मोहिं रघुपति थाती।जो तजिजाउँतोष नाहिंछाती१६
यह जिय जानि सुनहु मम माता। पूछत कहब कवन मैं बाता॥
मर्म वचन सीता जब बोली। हरिप्रेरित लक्ष्मणमति डोली १८
“चहुँ दिशि रेखा खैंचि अहीशा।बार बार,नायें पद शीशा॥१९॥
वन दिशि देव सौंपि सबकाहू।चले जहाँ रावण शशि राहू२०॥
शून्य भवन दशकंधर देखा। आवा निकट यतीके वेषा॥२१॥
करि अनेक विधि छल चतुराई।मांगेउ भीख दशानन जाई२२
अतिथिजानसियकन्दमूलफल।देनलगीतेइँकीन्हबहुरिछल२३
रा०-कह दशमुख सुनसुन्दरिबानी।बाँधीभीखनलेउँसयानी२४
“[illegible] आई२५

की वाणी सुनी तब भयभीतहो लक्ष्मणसे बोलीं॥ १३ ॥ शीघ्र जाओ तुम्हारे भाईपर संकट पड़ा है लक्ष्मणने हँसकर कहा, हे माता !॥ १४ ॥ जिसकी भ्रुकुटीविलाससे सृष्टि लय होय क्या उसको स्वप्नमें भी संकट पड़सकता है ॥ १५ ॥ रघुनाथ मुझे थातीके समान सौंपगये हैं तुमको छोडतेमें हृदय संतुष्ट नहीं होता ॥ १६ ॥ यह मनमें विचारो कि माता जब वे मुझसे कहेंगे क्यों छोडआये तब मैं क्या बात कहूंगा॥ १७ ॥ जब जानकी मर्मवचन बोलीं तब प्रभुकी प्रेरणासे लक्ष्मणकी मति डोली॥१८॥ चारोंओर रेखा खैंचकर वारंवार चरणोंमें शिर नवाय॥१९॥ सीताको वन दिशा ओंके देवताओंको सौंपकर रामके पास चले ॥ २ ॥ तब रावण शून्य स्थान देख यतीके वेषमें आया ॥२१॥ अनेकविधि छल चतुराईकर जानकीसे भीख मांगी ॥ २२ ॥ अतिथि जानकर सीता कन्द मूल फल देनेलगी तब उसने फिर छलकिया ॥ २३ ॥ रावण बोला हे सुन्दरि ! मैं बँधी भीख न लूंगा ॥ २४ ॥ विधिकी वामगति ओर कालकी कठि

नानाविधिकहि कथा सुनाई। राजनीति भय प्रीति दिखाई२६"
सी०-कह सीता सुनु यती गुसांई।बोलेसि वचन दुष्टकी नांई२७
"तब रावण निजरूपदिखावा।भइ सभीत जब नामसुनावा२८"
सी०-कह सीता धरि धीरज गाढा।आंइगयेप्रभुखलरहुठाढा२९
दोहा-क्रोधन्त तब रावण, लीन्हेसि रथ बैठाय।
चल्यउ गगनपथ आतुर, भय रथ हाँकि न जाय॥१६॥
सी०-हा जगदीश देव रघुराया।केहि अपराध बिसारेहु दाया१
आरतहरण शरण सुखदायक।हा रघुकुल सरोज दिननायक२

नाईसे रेखा उलाँघकर सीता बाहर आई॥ २५ ॥ और अनेकप्रकारसे कथा सुनाय राजनीति भय और प्रीति दिखाई ॥ २६ ॥ जानकी बोली हे यति गोसांई! तू दुष्टके समान वचन बोलता है ॥ २७ ॥ तब रावणने अपना रूप दिखाया, और जब नाम सुनाया तब डरी॥२८॥ फिर सीताजी धीरज धरकर बोलीं दुष्ट! खडारह प्रभु आये ॥ २९ ॥

दोहार्थ-तब रावणने क्रोधकर रथमें बैठालिया और वेगसे आकाश-मार्गको चला भयसे रथ हांका नहीं जाता ॥ १६ ॥

जानकी बोलीं हे जगदीश देव रघुनाथ! किस अपराधसे दया छोड़दी१ हे दुःखहारी! हे शरण सुखदायक रघुकुलकमलदिवाकर! कहांहो॥ २॥

---

१ कवित्त-हाय रघुचंद हाय दशरथनन्द प्यारे हाय रघुवीर धीर पीरके हरैया हाय। हाय प्राणवल्लभ दयालु रघुलाल हाय सकट हरैया उर आनद भरैया हाय। हाय सुखकारी हाय रसिकविहारी धाय कीजिये सहाय आय धनुष धरैया हाय। हाय प्राण प्रीतम सुजान बलवान ऐसी सुरति बिसारी क्यो दमारी रघु-रैया हाय ॥ १ ॥ हाय मतिमान धीर लषण सुजान तव कीनो अपमान सो निदान भई घातहै। हाय बलवान धाय वेगही छुडावो आन निकसत प्राण छिन कलप विहात है। रसिकबिहारी धनुधारीही तिहारी वीर मेरो दुखहारी और कोउ ना दिखातहै। हाय रघुनाथ मोहिं निरखि अनाथ दशमाथ गहिहाथ निज साथ लीने जात है ॥ २ ॥ कदली कदब अम्ब शिंशुपा अशोक वट निपट अधीन दीनदेखि दया कीजियो। सरित समीर दिशि कानन सुपंथ गिरि प्यारे ते बताय वेगि येतो यश लीजियो। रसिकविहारी कीर सारिका चकोर मोर भृंग पिक कोकिल न मौनही रहीजियो। केहरी कुरंग व्याल आवैं रघुलाल तिनै मेरो हाल सकल उताल कहि दीजियो ॥ ३ ॥

"गृध्रराज सुनि आरतबानी, रघुकुलतिलक नारि पहँचानी ३"॥
गृध्र--सीतापुत्रिकरसि जनि त्रासा।करिहौं यातुधानकरनासा ४
रेरे दुष्ट ठाढ किन होही। निर्भय चलसि न जानेसि मोही ॥५॥
सुनत गृध्र क्रोधातुर धावा। कह सुन रावण मोर सिखावा॥ ६ ॥
तजि जानकी कुशल गृह जाहू। नाहिंत सन्य सुनहुंबहुबाहू॥७॥
रामरोष पावक अतिघोरा। होइहि सकल शलभकुल तोरा॥८॥
"धरि कच विरथकीन्हमहिगिरा।सीताहि राखि गृध्र पुनि फिरा९
तब सकोप निशिचर खिसियाना।काढेसि परमकराल कृपाना"

(युद्ध होताहै)

"काटेसि पंख परा खग धरणी।सुमिरि रामकी अद्भुतकरणी११
सीतहि यान चढ़ाय बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी॥१२॥

गृध्रराजने यह आरतवाणी सुनकर रामचन्द्रकी नारी पहँचानी और बोला॥३॥हे सीता पुत्रि! दुःख मत मानो मैं राक्षसकुलकलंकीका नाश करताहूं ॥ ४ ॥ रेरे दुष्ट खडा क्यों नहीं होता निर्भय चलता है मुझे जानता नहीं ॥ ५ ॥ सुनकर गृध्र क्रोधसे बोला कि रावण मेरी शिक्षा सुनो ॥६॥ जानकीको त्याग कुशलतासे घर जाओ नहीं तो ऐसा होगा कि ॥ ७ ॥ रामकी क्रोधाग्निमें जो बडी घोर है तुम्हारा कुल पतंग हो जायगा ॥ ८ ॥ बाल पकडकर गीधने विरथकर भूमिपर डालदिया और सीताको उतारकर फिर फिरा.॥ ९ ॥ और फिर क्रोधकर रावणने कराल तलवार निकाली ॥ १० ॥ उससे पंख काटदिये गृध्र पृथ्वीपर रामकी अद्भुत करणी स्मरणकर गिरा ॥ ११ ॥ तब सीताको यानपर चढ़ाकर भयभीत हुआ शीघ्रतासे चला ॥ १२ ॥

---

१ रथको निरखत जात जटाई। किनकीहो तुम परमसुन्दरी कौन हरे लियजाई। सूर्यवश दशरथ इक राजा तिनके सुत रघुराई॥ चोंचन मार महाभारतकर रथसों दियो गिराई। अग्निबाण तब हनेउ निशाचर दोउ पख जरजाई। देत अशीश तब मनमें जानकी वसहु राम कहँ जाई ॥ १ ॥

फिरत न बारहिं बार प्रचारयो॥ चपरि चोंच चगुलहय हति रथ खड खंड कारडारयो॥ विरथ विकल कियो छीन लीन्हि सिय घनघायनि अकुलान्यो। तब असि काढि काटि पर पॉवर लै प्रभुप्रिय परान्यो॥ रामकाज खगराज आजु लरयो जियत न जानकि त्यागी॥ तुलसिदास सुरसिद्धसराहत धन्य विहँग बडभागी॥ २॥

दोहा-हारिपरा खल बहुत विधि, भय अरु प्रीति दिखाइ।
तब अशोक पादप तरे, राखेसि यतन कराइ ॥ १७ ॥

रघुपति अनुजहि आवत देखी। मनमें चिंता कीन्ह विशेखी१ ॥"
राम-जनकसुता परिहरेउ अकेली। आयहुतात वचनममपेली २
निशिचरनिकरफिरहिंवनमाहीं। ममकन सीता आश्रमनाहीं ३
अहह तात भल कीन्हेउ नाहीं। सियविहीन मम जीवन काहीं ४
आश्रम देख जानकीहीना। भये विकल जस प्राकृत दीना ॥५॥
हा गुणखानि जानकी सीता। रूपशील व्रत नेम पुनीता ॥ ६ ॥
"लक्ष्मण समुझाये बहुभाँती। पूँछत चले लता तरुपांती ॥७॥"
राम-हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनयनी ८

दोहार्थ-भय और प्रीति दिखाकर हारगया जानकी न मानी तब अशोकवृक्षके नीचे अपनी वाटिकामें यत्नसे रक्खा ॥ १७ ॥

इधर रामचन्द्रने लक्ष्मणको आतादेख मनमें बडी चिन्ता की और बोले ॥१॥ हे तात ! हमारे वचन उल्लंघन कर जानकीको अकेली छोड-आये॥२॥ वनमें अनेक राक्षस फिरते हैं मेरा मन कहता है कि जानकी आश्रममें नहीं है ॥ ३ ॥ हे तात ! तुमने भला नहीं किया मैं जानताहूं जानकी आश्रममें नहीं है सीताके विना मेरा जीवन न होगा ॥४॥ जानकीके विना आश्रमदेख प्राकृतमनुष्यके समान प्रभु दीन हुए ॥ ५ ॥ हा गुणखान जानकी सीता ! रूप शील व्रत नेममें पवित्र कहांहो ॥ ६ ॥ लक्ष्मणने अनेकप्रकार समझाया तब वृक्षोंसे लताओंसे पूछते चले ॥ ७ ॥ हे खग ! हे मृग ! हे भ्रमरो ! तुमने कहीं मृगनयनी सीता देखी है ॥ ८ ॥

---

१ कवित्त घनाक्षरी—सुवट तमाल ताल कदम रसाल साल देखो इहिकालमो विहाल मन ह्वै गयो ।
प्यारी सग छूटो पुण्य खूटो भाग फूटो मोहिं विरह जु लूटो यो अपार दुख छैगयो ।
रसिक बिहारी पढिडारी भुरकी धौं कोऊ मोरी तिय भोरीको भुराय छल कै गयो ।
मौन क्यो रहौरे निठुराईना गहौरे कोऊ नेकतौ कहौरे को प्रियाको हरलेगयो ॥ १ ॥

खंजन शुक कपोत मृग मीना। मधुपनिकर कोकिला प्रवीना ९॥
सुन जानकी तोहिं विन आजू। हर्षे सकल पाइ जनुराजू ॥१०॥
किमिसहिजातअनखतोहिं पाहीं। प्रिया वेगि प्रकटतकिमिनाहीं
कहत राम लक्ष्मणहि बुझाई। काहू कीन्ह युद्ध इहि ठाई ॥१२॥
"आगे परा गृध्रपति देखा। सुमिरत रामचरणकी रेखा ॥ १३ ॥

खंजन तोते कबूतर मृग मीन भ्रमर कोकिला प्रवीन ॥ ९ ॥ हे जानकि! यह सब तेरे विना आज मानो राजपाकर प्रसन्न हुए हैं ॥ १० ॥ सो यह अनख तुमसे कैसे सहा जाता है हे प्रिया! शीघ्र क्यौं नहीं प्रगट होती हो ॥ ११ ॥ फिर आगे चलकर रामने लक्ष्मणसे कहा देखो यहाँ किसीने युद्ध किया है ॥ १२ ॥ फिर आगे पडा गृध्रराज देखा जो रामके चरणोंकी रेखाको स्मरणकर रहाथा ॥ १३ ॥

---

१ कवित्त घनाक्षरी–केहारि कुरंग कपि कुंजर भुजग भालु धाय ढिग आय नेक धीरज धराओरे।
निपट अधीन प्राणवल्लभा विहीन हौ तो हीन छीन दीन देखि दाया उर लाओरे।
रसिकविहारी प्यारी रूप उजियारी वह कितवनचारी एक वारी तो बताओरे।
सबही निहोरो लाज छोरोंकर जोरो हाय कोऊ मोहि मेरी मनमोहनी मिलाओरे ॥ १ ॥
मो बिन सुजाके हिय छिनहू न हो तो कल सो क्यों निठुराई कारे मनको जितैगई।
रूप गुणवारी हाय जनक दुलारी प्यारी नेककृपाकोर मेरी ओर न चितैगई।
खग मृग रसिकविहारी हौं दुखारी मोको वा ढिग पठावो प्रिया भामिनी चितैगई।
दीन अवलोकि मोको कोऊतो बताओ आय हाय वह मेरी प्राणवल्लभा कितै गई ॥ २ ॥

२ मेरे एको हाथ न लागी॥टेक॥ गयो वपु वीच वादि कानन ज्यो कल्पलता दवलागी ॥मेरे०॥ दशरथसों न प्रेम प्रतिपाल्यो हुतो सकल जग साखी। वरवस हरत निशाचर पतिसे हौ न जानकी राखी॥ मेरे० ॥ भरत न भै रघुवीर विलोके तापसवेष बनायो। चाहत चलन प्राण पामर विनु सियसुधि प्रभुहि सुनायो ॥ मेरे० ॥ बारबार कर मींज शीश धुनि गीधराज पछिताई। तुलसी प्रभु कृपालु तेहि अवसर आयगये दोउ भाई॥ मेरे एको हाथ न लागी ॥ १ ॥

पद–मेरे जान तात कछुक दिन जीजै॥ टेक ॥ देखिये आप सुवन सेवा सुख मोहि पितुको सुखदीजै ॥ मेरेजान० ॥ दिव्य देह इच्छा जीवन जग विधि मनाय मांगि लीजै। हरि हर सुयश सुनाय दरशदे लोग कृतारथ कीजै ॥ मेरेजान० ॥ देखि वदन सुनि वचन अमिय तन रामनैन जलभीजै। बोल्यो विहँग वचन रघुवर बलि कहौं सुभाय पतीजै ॥ मेरे जान० ॥ मेरे मरिबे सम न चारिफल होहिं तो क्यों न कहीजै। तुलसी प्रभु दियो उत्तर मौनहीं परि मानो प्रेम सहीजै ॥ मेरे जान० ॥ १०॥

दोहा-करसरोज शिर परशउ, कृपासिन्धु रघुवीर ॥
निरखिरामछबि धाम मुख, विगत भई सब पीर॥१८॥"

गृध्र--तब कह गृध्र वचन धरि धीरा।सुनहु राम भंजन भवभीरा
नाथ दशानन यह गति कीन्ही।तेहिखलजनकसुताहरिलीन्हीर
लै दक्षिण दिशिगयउ गुसांई।विलपति अति कुररीकीनांई ॥३॥
दरशलागिप्रभुराखेउँ प्राना।चलन चहत अब कृपानिधाना ४॥
राम-रामकहा तनु राखहु ताता।मुखमुसुकाइकहीतेहिबाता ५॥
गृध्र--जाकरनाममरतमुखआवा।अधमौ मुक्तहोइ श्रुतिगावा ६
सो ममलोचन गोचर आगे। राखहुँ देह नाथ केहि आगे ७॥
राम-जलभरि नयन कहा रघुराई।तात कर्म्म निजतेगतिपाई ८
परहित वश जिनके मनमाहीं।तिन्ह कहँ जगदुर्लभ कछुनाहीं ९
तनु तजितात जाहु ममधामा।देउँ कहा तुम पूरण कामा॥१०॥

दोहार्थ-कृपासिन्धु रघुनाथजीने उसके शिरपर हाथ रक्खा सुखधाम रामका मुख देखकर उसकी सब पीर मिटगई ॥ १८ ॥

तब धीरधर गृध्र बोला हे राम ! संसारका भय दूरकरनेवाले सुनो॥१॥ हे नाथ ! रावणने यह गति की और उस दुष्टने जानकीको हरलिया ॥२॥ हे गोसाई ! वह लेकर दक्षिणकी ओर गया है जो जानकी कुररीके समान विलाप करती थी ॥ ३ ॥ प्रभुके दर्शनोंके निमित्त प्राणरक्खे थे हे कृपा-निधान सो अब चलना चाहते हैं ॥४॥रामने कहा हे तात ! शरीर रक्खो तब उसने मुसुकाकर कहा ॥ ५ ॥ जिसका नाम मरतेसमय मुखपर आवै तो वेद कहता है, अधमभी मुक्त होजाता है ॥ ६ ॥ सो मेरे नेत्रोंके सन्मुख उपस्थित हैं हे नाथ ! मैं देह किसप्रकार रक्खूं ॥ ७ ॥ तब रामने नेत्रोंमें जलभरकर कहा हे तात ! तुमने अपने कर्मसे गति पाई है ॥ ८ ॥ जिनके मनमें परोपकार रहता है उनको जगत्में कुछ दुर्लभ नहीं है ॥ ९ ॥ हे तात ! शरीर त्यागनकर मेरे स्थानमें जाओ मैं

दोहा-सीताहरण तात जनि, कहहु पितासन जाइ ॥
जो मैं राम तो कुलसहित, कहहि दशानन आइ १९
"गृध्रदेह तजि धरि हरिरूपा। भूषण बहु पट पीत अनूपा॥१॥
श्यामगात विशाल भुज चारी।अस्तुति करत नयन भरिवारी२
गृध्र-छंद-जय रामरूप अनूप निर्गुण सगुण गुण प्रेरकसही।
दशशीश बाहु प्रचण्ड खण्डन चण्ड शरमण्डन मही ॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनम्।
नित नौमि राम कृपालु बाहु विशाल भवभय मोचनम् १॥
बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचरम्।
गोविन्दगोपर द्वन्द्वहर विज्ञानघन धरणीधरम् ॥
जे राम मंत्र जपन्त सन्त अनंत जनमन रंजनम्।
नित नौमि राम अकामप्रिय कामादि खलदलगंजनम् ॥२॥
जेहि श्रुति निरंतर ब्रह्मव्यापक विरज अज कहि गावहीं।

क्यादूं तुम पूर्णकामहो ॥ १० ॥ (दोहार्थ) हे तात! सीताहरण पितासे जाकर मत कहना जो मैं रामहूं तो रावण कुलसहित जाकर कहैगा ॥१९॥

गृध्र देहत्याग हरिरूपधारणकर भूषण और पीतपटसे संयुक्त हो ॥ १ ॥ श्यामशरीर चारभुजा धारे नेत्रोंमें जलभर स्तुति करनेलगा ॥ २ ॥

छंदार्थ-हे राम अनूपरूप निर्गुण सगुणरूप गुणोंके प्रेरक! आपकी जयहो दशशीशकी प्रचण्ड भुजाओंके खण्डनको आपके तीक्ष्ण बाण हैं और भूमिको मण्डन करनेंवालेहो आपका श्यामशरीर कमलमुख कमलसेही चौंडे नेत्र हैं ऐसे कृपासागर विशाल भुजावाले संसारके भयनाशक रामको प्रणाम करताहूँ ॥ १ ॥ आपका बड़ा बलहै अनादि अजन्मा अप्रगट एक और इन्द्रियोंसे परे हो, आप गोविन्द इन्द्रियातीत द्वंद्वके हरनेवाले विज्ञानघनभूमिके धारण करनेवाले हो जो सन्त अनन्त जनोंके मनरंजन करनेवाले रामका मंत्र जपते हैं वे मुक्त होतेहैं मैं अकाम प्रियकामादि खलोंके दलनाशक रामको नित्त प्रणाम करताहूं ॥ २ ॥ जिसको वेद निरन्तर

करि ज्ञान ध्यान विराग योग अनेक मुनि जेहि पावहीं ॥
सो प्रगट करुणाकन्दशोभासिंधु अगजग माह
ममहृदय पंकज भृंग अंग अनंग ब सोहई ॥ ३ ॥
जो अगम सुगम स्वभावनिर्मल असम सम शीतल सदा ।
पश्यन्ति यं योगी यतन करि करत मन गोवश यदा ॥
सो राम रमानिवास संतत दासबश त्रिभुवन धनी ।
ममउर बसहु सो शमन संसृति जासु कीरति पावनी ॥४॥
दोहा-"अविरल भक्ति मांगिवर, गृध्र गयउ हरिधाम ।
तिहिकी क्रिया यथोचित, निजकर कीन्हीं राम॥२०॥"

चतुर्थ दर्शन ।

(शबरी मिलन)

"पुनि सीतहि खोजत दोउ भाई।चले विलोकत वन बहुताई १॥
आवत पन्थ कबन्ध निपाता । तेइँ सब कही शापकी बाता २॥

ब्रह्मव्यापक गुणोंसे परे अज कहकर गाते हैं जिसको अनेक मुनि ज्ञान ध्यान विराग योग करके पाते हैं सो करुणामय शोभासागर प्रगट हुए चराचर जगत्को मोहितकररहे हैं सो मेरे हृदयकमलमें भृंगके समान निवासकरो जिनकी शोभा कामदेवके समान है ॥ ३ ॥ जो अगम सुगम स्वभाववाले सदा असम [विषम तथा] समान शीतल हैं मन और इन्द्रियोंको वशीभूतकरके यत्नके साथ जिसको योगी देखते हैं सो लक्ष्मी-निवास राम सदा भक्तोंके आधीन त्रिभुवनधनी हैं सो संसारके शान्तक-रनेवाले पवित्रकीर्त्तिवाले निरन्तर मेरे हृदयमें निवास करो ॥ ४ ॥

दोहार्थ-अचलभक्तिका वर मांगकर गीध अपने धामको गया रामने अपने हाथसे उसकी यथोचित क्रिया की ॥ २० ॥

चतुर्थ दर्शन ।

फिर दोनों भाई सीताको देखते वनकी बहुताई निहारते चले ॥ १ ॥ मार्गमें आतेहुए कबन्धराक्षसको मारा उसने सब शापकी बात कही कि॥२॥

कबन्ध-दुर्वासा मोहिं दीन्हा शापा।प्रभुपददेखिमिटासोपापा २
" रिनाई तिपाई
राम उदारा। शबरीके आश्रम पगु धारा ॥५॥
शबरी दीख राम गृह आये।मुनिके वचन समुझि जिय भाये६
श्यामगौर सुन्दर दोउ भाई।शबरी परी चरण लपटाई ॥ ७ ॥
प्रेममगन मुख वचन न आवा।पुनि पुनि पदसरोज शिरनावा८
दोहा–कन्द मूल फल सरस अति, दिये राम कहँ आनि।
प्रेमसहित प्रभु खायउ, बारहिंबार बखानि ॥ २१ ॥"

दुर्वासाने जो मुझे शापदियाथा सो पाप आपके चरणदर्शनसे मिटगया ॥ ३ ॥ रघुपतिके चरणकमलोंको शिरनवाय अपनी गतिपाय कबन्ध गया ॥ ४ ॥ उदारतासे रामने उसको गति देकर शबरीके आश्रममें पग धारण किया ॥ ५ ॥ शबरीने रामको आया देख मुनिके वचनोंको स्मरण कर बड़ा सुख माना ॥ ६ ॥ श्याम गौर सुन्दर दोनों भाइयोंको देख शबरी चरणोंमें गिरपड़ी ॥ ७ ॥ प्रेममें मग्न हुई मुखसे वचन न आया वारंवार चरणकमलोंमें शिरनवाया ॥ ८ ॥ (दोहार्थ)–बड़े सरस कन्द मूल फल लाकर रामको दिये और वारंवार बड़ाईकर प्रेममें मग्न हो प्रभुने खाये ॥ २१ ॥

---

१ कवित घनाक्षरी–विविध विधानके अनेक पकवान जेते होतहैं जहान मेरी जान सब सीठे हैं।
रसिकबिहारी फल सरस रसाल आदि तेऊ यह स्वादु पाय सकल उबीठे हैं।
कंद मूल अधिक अतुल रुचिकारी सोऊ एकहू न इनकी समान मोहि दीठे है।
रचहू न सीठे नाउबीठे यों न दीठे कहूं लषण कहौ तौ सत्य कैसे बेर मीठे हैं ॥ १ ॥
ब्रह्मके उपासी तपराशी वनवासी वर विपुल मुनीशनके आश्रम सिधायो मै।
कीने सनमान तिन सहित विधान तऊ काहू ठौर कबहूं न पेटभरि खायो मैं।
अमृत समान शबरीके इन बेरनमें रसिकबिहारी मनभाया स्वाद पायो मैं।
अवध विहाय वन आयो जबते हौं बंधु तबते विचारो सत्य आजही अघायो मैं ॥ २ ॥
बेर बेर बेरलै सराहैं बेर बेर बहु रसिकबिहारी देत बंधु कहँ फेर फेर।
चाखि चाखि भाषैं यह वाहुते महान मीठो लेहु तो लषण यों बखानत है हेर हेर।
बेर बेर देवें बेर शबरी सुबेर बेर तऊ रघुबीर बेर बेर तिहि टेर टेर।
बेर जनि लाओ बेर बेर जनि लाओ बेर बेर जनि लाओ बेर लाओ कहै बेर बेर ॥ ३ ॥

शबरी-केहिविधि अस्तुतिकरूँ तुम्हारी। अधमजातिमैंजड़मतिभारी
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिनमें मैंमतिम   ँ
राम-कह रघुपति सुनु भामिनिबाता। मानौंएक
जाति पांति कुल धर्म्म बड़ाई। धन बल परिजन गुणचतुराई
                    न कैसे। बिनुजल वारिद देखिय जैसे॥५॥

महिमा जेहि उर बसिहि, तासु परम बड़ भाग॥२२॥

जनकसुताकैसुधिम्वहिंभामिनि। जानहुतोकहुकरिवरगामिनि
।री-पम्प।सरहि जाहु रघुराई। मुनिवर
 ष मत   सुखारी३॥
वैर न कर काहूसन कोई। जासन वैर प्रीति करु सोई॥ ४॥
हरहु सकल श्रम सबकर जाई। तहां होइ सुग्रीव मिताइ॥५॥
सो सब कहिहि देव रघुवीरा। जानतहूँ पूँछत मतिधीरा॥६॥

शबरी बोली मैं आपकी स्तुति कैसे करूं मैं अधमजाति और जड़मति हूं॥ १॥ अधमसे अधम अधमनारी होतीहै उसमें मैं मतिमन्द गँवारी हूं॥२॥राम बोले हे भामिनि! सुनो मैं एक भक्तिका नाता मानता हूं॥३॥ जाति पाँति कुल धर्म बडाई धन बल कुटुम्बीजन गुण चतुरता हो॥ ४॥ और भक्तिहीन हो तो वह ऐसे शोभित नहीं होता जैसे जलके विना बादल॥ ५॥ (दोहार्थ)—मेरे चरणोंमें अनुराग करनेसे सब प्रकार तेरा बडाभाग्य है तेरी महिमा जिसके हृदयमें बसै वहभी बड़भागी है॥ २२॥

हे गजगामिनि! यदि कुछ जनकसुताकी सुधि होय तो कहो॥ १॥ शबरी बोली हे राम! पम्पासरोवरको जाओ वहां अनेक मुनि निवास करते हैं॥२॥ वहां ऋषि मतंगकी महिमासे चराचर जीव सुखी रहते हैं ३॥ कोई किसीसे वैर नहीं करता वैरवाले भी प्रीति करते हैं॥४॥ वहां जाकर स [illegible] श्रम हरो वहां सुग्रीवसे मित्रता होगी॥५॥ हे देव रघुवीर! मति-

"बारबार प्रभुपद शिर नाई। प्रेमसहित सब कथा सुनाई
दोहा-जातिहीन अघ जन्ममय, मुक्त कीन्ह अस
महामन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥२३॥
पुनि प्रभु गये सरोवरतीरां। पम्पानाम सुभग गम्भीरा ॥ १ ॥
देखि एक सुन्दर तरु छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया ॥२॥
यह विचार नारद कर बीना। गये जहाँ प्रभु सुख आसीना३॥

धीर ! वह सब कहैगा आप जानकरभी पूछते हो ॥ ६ ॥ बारबार प्रभुके चरणोंमें शिर नवाय प्रेमसहित सब कथा सुनाई ॥ ७ ॥

दोहार्थ-जातिहीन पापजन्मवाली स्त्रीकी भी मुक्ति करदो हे महा-मन्दमन ! ऐसे प्रभुको बिसारकर सुख चाहता है ॥ २३ ॥

फिर प्रभु सुन्दर गंभीर पंपासरोवरको गये ॥ १ ॥ एक वृक्षकी सुन्दर छाया देख अनुज सहित रघुनाथजी बैठे ॥ २ ॥ उससमय एकान्तविचार हाथमें बीणालिये नारदजी सुखसे बैठेहुए रामके समीप गये ॥ ३ ॥

१ दोहा-पंपासर शोभित विशद, विमल नीर गंभीर ।
सुभग विपिन दरशतचहू, सरसत त्रिविध समीर ॥ १ ॥

कवित्त घनाक्षरी-झूमैहै चहूघा गजराजसे रसाल भूमै घूमैं हैं समीरतेज तरल तुरंग ज्यो ।
किंशुक गुलाब कचनार औ अनारनके प्यादे भाति भांति लसै सहित उमग त्यों ।
छाई नववल्ली छटा छहर रही है घनी तेई रथ राजै मोर भ्रमत अभग क्यो ।
रसिकबिहारी साज साज ऋतुराज आयो छायो वन बाग सेना लीने चतुरग यो ॥ १ ॥
कहू भौर गुजै मंद सरस सुहाये सुर कोकिला अलाप कहू मधुर उचारै है ।
लहलहे पल्लव मृदुल छवि छावैं कहू महक प्रसूननकी कहू सुखसारै है ।
कहू चटकाहट गुलाबनकी लोनी प्रात कहूं शर मैन नर नारिनको मारै हैं ।
रसिकबिहारी साज नागरी सिंगारैं कहूं अजब अनोखी ये वसंतकी बहारैं हैं ॥ २ ॥
वेलिन वसंत ज्यों न वेलिन वसंत बन बागन वसंत रंग रागन वसन्त है ॥
कुंजन वसंत दिप पुजन वसत अलिगुँजन वसत चहुँ ओरन वसंत है ॥
छैलन वसत अरु फैलन वसंत संग सैलन वसंत बहु गैलन वसत है ।
रसिकबिहारी नैन सैननमे वैननमें जिते अवलोको तितै वरसै वसंत है ॥ ३ ॥
निर्तत मयूर महा मुदित मयूरी मिलि मत्त अलि डोलैं लिये अलिनी लसंतसो ।
रसिकबिहारी कीर सारिका सु कोकिलादि करत कलोलकेलि कूजत हसतसो ।
निज निज नारी संग अपर बिहारी चहू खेद जड चेतनको सकल नसतसो ।
संत सम सुखद बसत सबहीको यह प्यारी विन मोको भयो दुखद असत सो ॥ ४ ॥

करत दण्डवत लिये उठाई । राख बहुत बार उरलाई
ना०-राम जबहिं प्रेरेहु निजमाया । मोह्यहु मोहिं सुनहु रघुराया
तब विवाह चाहौं मैं कीन्हा । प्रभु केहि कारण करै न दीन्हा॥६॥
राम-सुनुमुनितोहिंकहौंसहरोषा।भजहिमोहितजिसकलभरोषा
करौं सदा तिन्हकी रखवारी । जिमि बालकहि राख महतारी ८

दोहा-काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोहकी धारि ।
तिन्हमहँ अति दारुण दुखद, मायारूपी नारि ॥२४॥
अवगुण मूल शूलप्रद, प्रमदा सबदुखखानि ।
ताते कीन्ह निवारण, मुनि मैं यह जियजानि ॥ २५ ॥

पुनि सादर बोले मुनि नारद । सुनहु राम विज्ञानविशारद ॥१॥
-सन्तनक
-दोहा-गुणागार संसार दुख, रहित विगत सन्देह ।
तजि मम चरणसरोज प्रिय,तिन्ह कहँ देह न गेह ॥२६॥

दण्डवत् करता देखि उठालिया और बड़ी बारतक हियेमें लगाये रहे॥४॥ नारदजी बोले हे राम ! जब आपने अपनी माया प्रेरकर मुझे मोहित किया५॥ तब मैं विवाह करना चाहताथा हे प्रभु ! आपने क्यों न होनेदिया ॥ ६ ॥ सुनो मुनि तुमसे कहताहूँ जो सब भरोसा छोड मेरा भजन करते हैं॥७॥ सदा उनकी रखवाली करताहूँ जैसे बालकको महतारी रखती है ॥ ८ ॥

दोहार्थ-काम क्रोध लोभ आदि मद सब प्रबल मोहकी धारहैं उनमें मायारूपी स्त्री बड़ी दुःखदायी है॥ २४॥ अवगुणोंकी मूल शूल देनेवाली प्रमदा सब दुःखोंकी खान है हे मुनि ! यही, मैंने जीमें जानकर निवारण किया ॥ २५ ॥

फिर नारदजी बोले हे विज्ञानविशारद रामभद्र ! सुनो ॥१॥ हे भवभीर भंजन रघुवीर ! सन्तोंके लक्षण कहो ॥२॥ (दोहार्थ)-रामचन्द्र बोले गुणोंके स्थान संसारके दुःखोंसे रहित तथा सन्देह रहित और मेरे चरणकमलकी प्रियता छोड़ उनको देह गेह प्यारा नहीं है ॥ २६ ॥

सुन मुनि साधुनके गुण जेते।कहि न सकहिं शारद श्रुति तेते१॥
छंद-कहिसक न शारद शेष नारद सुनत पदपंकज गहे ।
अस दीनबन्धु कृपालु अपने भक्तगुण निजमुख कहे ॥
शिरनाय बारहिं बारं चरणन ब्रह्मपुर नारद गये ।
ते धन्य तुलसीदास आश विहाइ जे हरिरँगरये ॥ १ ॥
दोहा-रावणारि यश पावन, गावहिं सुनहिं जे लोग ।
रामभक्ति दृढ पावहीं, बिनु विराग जप योग ॥ २७ ॥

इति चतुर्थ दर्शन समाप्त ।

सुनो मुनि जितने साधुओंके गुणहैं वह सरस्वती और श्रुतिभी नहीं कहसकतीं ॥ १ ॥ (छंदार्थ)-शारद शेष वर्णन नहीं करसकते यह सुनकर नारदजीने चरणकमल पकड़लिये कृपासागर ऐसे दीनबन्धु हैं कि अपने मुखसे अपने भक्तोंके गुण कहे वारंवार चरणोंमें शिरनवाय नारदजी ब्रह्मलोकको गये सब आशा छोड़कर जो हरिके रंगमें रंगरहे हैं तुलसीदास कहते हैं वे धन्य हैं ॥ १ ॥

दोहार्थ-रामचन्द्रके पवित्र यशको जो लोग गावैं और सुनैंगे वह विना विराग जप योगके रामकी दृढभक्ति पावेंगे ॥ २७ ॥

(सबगये)

इति आरण्यकाण्ड सम्पूर्णम् ।



इति

रामलीलारामायणे आरण्यकाण्डं

समाप्तम् ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

रामलीलारामायणे किष्किन्धाकाण्डं प्रारभ्यते

प्रथम दर्शन ।

(सुग्रीवसमागम वर्णन)

'आगे चले बहुरि रघुराई । ऋष्यमूक पर्वत नियराई ॥ १ ॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बलसींवा ॥२॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना।पुरुषयुगल बल रूपनिधाना ३"
सु०—धरि बटुरूप देखतैं जाई।कहसि मोहिं निज सैन बुझाई ४॥
पठवा बालि होइ मन मैला । भागौं तुरत तजौं यह शैला ॥ ५ ॥
"विप्ररूपधरि कपि तह गयऊ।माथ नाय पूछत अस भय
भ०—को तुम [illegible] गौर [illegible] ७
कठिन भूमि कोमलपदगामी । कवन हेतु वन विचरहु स्वामी ८
मृदुल [illegible] । सहत दुसह वन आतप

प्रथम दर्शन ।

टीका—फिर रघुनाथजी आगे चले ऋष्यमूकपर्वतके निकट गये ॥ १ ॥ वहां मंत्रियोंसहित सुग्रीव रहताथा उसने अतुलबलशाली राम लक्ष्मणको आते देखा ॥ २ ॥ बहुत भयकर बोले हे महावीर ! सुनो यह दोनों पुरुष बलरूपके निधान हैं ॥ ३ ॥ बटुरूपधारण कर इन्हें जाकर देखो और फिर मुझे सैनसे समझाकर कहदेना ॥ ४ ॥ यदि वालिने भेजा हो तो मन मैला होजाना इस पर्वतको छोड़कर तुरत भागजाऊँगा ॥ ५ ॥ ब्राह्मणका रूपधर महावीर वहां गये और माथा नीचाकर पूछने लगे ॥ ६ ॥ श्यामल गौर शरीर तुम कौनहो वीरवेष क्षत्रियशरीर वनमें फिरते हो ॥ ७ ॥ इस कठिन भूमिमें तुम कोमलचरणोंसे फिरतेहो हे स्वामी ! किसकारण वनमें विचरते हो ॥ ८ ॥ तुम्हारे कोमल मनोहर सुन्दर गातहैं तुम वनमें धूप और पवन सहतेहो ९ ॥

की तुम तीन देवमें ॰ ।

की तुम अखिल भुवनपति, लीन मनुज अवतार ॥१॥
राम-कोशलेशदशरथकेजाये।हम पितु वचन मान वन आये१॥
रामनाम लक्ष्मण दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥ २ ॥
यहाँ हरी निशिचर वैदेही। विप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥३॥
"आपन चरित कहा हम गाइ। कहहु विप्र निज कथा बुझाई४॥
प्रभु पहिचानि परे गहिचरणा। सो सुख उमा जाय नहिं बरणा
महावीर-मैं अजान होइ पूँछा साँई। तुम कस पूछौ नरकी नांई ॥६॥
तव मायावश फिरौं भुलाना। ताते प्रभुपद नहिं पहँचाना॥७॥



हृदय अज्ञान ।
पुनि प्रभु मोहिं बिसारेहु, दीनबन्धु भगवान ॥ २ ॥

क्या तुम तीनों देवताओंमें कोई हो वा नरनारायण हो ॥ १० ॥
दोहार्थ—जगत्के कारण संसारके तारनेवाले भूमिका भार हरनेवाले क्या तुम सब भुवनोंके अधिपतिहो मनुष्य अवतार लिया है ॥ १ ॥
राम बोले अयोध्यानरेशके जाये हम पिताके वचन मान वनमें आये हैं ॥ १ ॥ हम राम लक्ष्मण दोनों भाई हैं साथमें हमारे सुकुमारी नारी रही॥२॥यहां जानकीको राक्षसोंने हरलिया है हे विप्र ! हम उसे ही खोजते फिरते हैं ॥ ३ ॥ अपना चरित्र हमने समझाकर कहा हे विप्र ! अब अपनी कथा कहो ॥ ४ ॥ प्रभुको पहँचान महावीर चरणोंमें पड़े हे पार्वति ! सो सुख वर्णा नहीं जाता ॥ ५ ॥ हे स्वामी ! मैंने तो अजान होकर पूँछा था परन्तु तुम मनुष्यके समान कैसे पूँछते हो ॥६॥ तुम्हारी मायाके वश भूला फिरताहूं इससे प्रभुका पद नहीं पहँचाना ॥ ७ ॥ (दोहार्थ)—एकतो मैं मन्दमति मोहसे युक्त फिर हृदयका अज्ञानी मर्कट दूसरे दीनबन्धु भगवान् आपने मुझे विसारदिया है ॥ २ ॥

यदपि नाथ अवगुण बहु मोरे।सेवक प्रभुहिं परेजनुभोरे ॥ १ ॥
नाथ जीव तव मायामोहू । सो निस्तरै तुम्हारे छोहू ॥ २ ॥
तापर मैं रघुवीर दुहाई । जानौं नहिं कछु भजन उपाई ॥ ३ ॥
सेवक सुत पितु मातु भरोसे । रहै अशोच बनै प्रभुपोसे ॥ ४ ॥
अस कहि चरण परे अकुलाई।निज तनु प्रकट प्रीति उरछाई५
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निजलोचनजलसींचजुडावा ६ ॥
राम-सुनुकपिजियजनिमानसिऊना।तैंममप्रियलक्ष्मणतेदूना
समदर्शीमोहिं कह सबकोई। सेवक प्रिय अनन्य गति सोई ८॥
दोहा-सो अनन्य अस जाहिके, मति न टरे हनुमन्त ।
मैं सेवक सचराचर, रूपराशि भगवन्त ॥ ३ ॥
महावीर-नाथशैलपरकपिपतिरहई । सोसुग्रीवदासतवअहई १
तासन नाथ मयत्री कीजै।दीन जानि त्याहि अभय करीजै॥२॥

हे नाथ ! यद्यपि मुझमें बहुत अवगुण हैं सेवकको प्रभु तोभी भूलते नहीं हैं ॥ १ ॥ हे नाथ ! यह जीव तुम्हारी मायासे मोहा हुआ तुम्हारी कृपासे निस्तार पासकता है ॥ २ ॥ इसपरभी मैं रघुवीरकी दुहाई कुछ भजनका उपाय नहीं जानताहूं ॥३॥ हे प्रभु ! सेवक और पुत्र पिता माताके भरोसे अशोच रहते हैं उन्हैं पाले पोसेही बनता है ॥ ४ ॥ यह कह व्याकुलहो चरणोंमें गिरे और हृदयकी प्रीति शरीरपरभी प्रगट हुई ॥५॥ तब रघुनाथजीने उठाय हृदयसे लगाया और अपने नेत्रोंके जलसे सींच ठंढाकिया ॥ ६ ॥ हे कपि ! मनमें बुरा मतमानो तुम मुझे लक्ष्मणसे दूने प्यारे हो ॥ ७ ॥ मुझे सबकोई समदरशी कहते हैं परन्तु सेवक वही प्रिय है जो अनन्य गतिहो ॥ ८ ॥ (दोहार्थ)-हे हनुमान् ! अनन्य वह है जिसके ऐसी मति न टरै कि, मैं सेवक हूं और चराचरके स्वामी भगवान् रूपराशि हैं ॥ ३ ॥

हे नाथ ! पर्वतपर तुम्हारा दास सुग्रीव कपीश्वर रहताहै ॥ १ ॥ उससे मित्रता कीजे और दीन जानकर अभय करिये ॥ २ ॥

सो सीताकर खोज कराई। जहँ तहँ मर्कट कोटि पठाई ॥३॥
इहिविधि सकल कथा समुझाई। लिये दोउजन पीठ चढ़ाई४
"जब सुग्रीव राम कहँ देखा। अतिशयधन्यजन्मकरिलेखा५
सादर मिल्यउ नाइपद माथा।भेंट्यउ अनुजसहित रघुनाथा६
दोहा--तब हनुमंत उभयदिशि, कहि सब कथा बुझाइ।
पावक साखी देइकरि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥ ४ ॥"
सु०-कह सुग्रीवनयनभरिवारी। मिलिहिनाथमिथिलेशकुमारी
मंत्रिन सहित यहाँ इक बारा। बैठिरहयउँकछुकरताविचारा २
गगनपंथ देखी मैं जाता। परवश परी बहुत बिलखाता ॥ ३ ॥
राम राम हा राम पुकारी। मम दिशि देखि दीनपटडारी ॥४॥
मांगा राम तुरत सो दीन्हा। पट उर लाइ शोच अतिकीन्हा ५॥

वह सीताका खोज करावेंगे जहाँ तहाँ अनेक वानर भेजैंगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार सब कथा समझाय दोनों भाइयोंको पीठपर चढालिया ॥ ४ ॥ जब सुग्रीवने रामको देखा तब अपना जीवन धन्य माना ॥ ५ ॥ आदरसे चरणोंमें शिर नवाय मिला और लक्ष्मणसहित राम मिले ॥ ६ ॥

दोहार्थ--तब महावीरने दोनों ओरकी कथा समझाकर कही और अग्नि साक्षी देकर प्रीति जोड़ी ॥ ४ ॥

सुग्रीव नेत्रोंमें जल भरकर बोला हे नाथ! मिथिलेशकुमारी मिलैगी॥१॥ यहां एकसमय मंत्रियोंसहित बैठा विचार कररहाथा ॥२॥ तब मैंने आकाशमार्गमें जाती देखीथी कि, परवशपड़ी व्याकुल जारही थी ॥ ३ ॥ राम राम हाराम पुकारकर हमारी ओर देख वस्त्र डालदिया॥ ४ ॥ रामने मांगा तो सुग्रीवने तुरत दिया और पटको हृदयमें लगाय बहुत शोच किया५॥

---

१ राग केदारा--भूषण वसन विलोकत सियके ॥ टेक ॥ प्रेमविवश मनमे पुलकित तनु नीरज नयन नीरभारि पियके ॥ भू० ॥ सकुचत कहत सुमिरि उर उमगत शील सनेह सुगुण गण तियके ॥ भू० ॥ स्वामिदशा लखि लषण सखा कपि पघिले है आच पाठ मानो घियके ॥ भूषण वसन विलोकत सियके ॥

लक्ष्मण, कवित्त--अमल अमोल गोल कुंडल प्रकाशमान कोऊ ऐसो दरशात राजभामिनीको है ॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा। तजहु शोक मन आनहु धीरा ॥६॥
सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि विधि मिलहि जानकी आई७

दोहा–सखावचन सुनि हरषेउ, रघुपति करुणासीव।"
राम–कारण कवन बसहु वन, मोसन कहु सुग्रीव ॥ ५ ॥

सु०-नाथ वालि अरु मैं दोउभाई।प्रीति रही कछु वरणि नजाई१
मयसुत मायावी तेहि नाऊं। आवा सो प्रभु हमरे गाऊं ॥ २ ॥
अर्धरात्रि पुरद्वार पुकारा। वालिहु रिपु बल सहै न पारा ॥ ३ ॥
धावा वालि देखि सो भागा। मैं पुनि गयउँ बन्धुसँग लागा ॥४॥
गिरिवर गुहा पैठि सो जाई। वालि मोहिं तब कहा बुझाई ॥ ५ ॥
परखेउ मोहिं एक पखवारा। नहिं आवौं तो जानेहु मारा ॥६॥
मास दिवस तहँ रह्यउँ खरारी। निसरी रुधिरधार तहँ भारी ॥७॥
तब मैं निज मन कीन्ह विचारा। जाना असुर बन्धुकहँ मारा ८॥

सुग्रीवने कहा हे राम! सुनो शोच त्यागनकरो मनमें धीर धरो ॥६॥ सबप्रकारसे सेवा करूंगा जिसप्रकार जानकी आय मिलैंगी ॥ ७ ॥

दोहार्थ–करुणामय रामचन्द्र सखाके वचन सुन प्रसन्न हुए और बोले हे सुग्रीव! मुझसे कहो वनमें क्यों निवासकरते हो ॥ ५ ॥

हे नाथ! वालि और मेरी दोनों भाइयोंकी अकथनीय प्रीतिथी ॥१॥ एकसमय मयका पुत्र मायावी हमारे गाँवमें आया ॥ २ ॥ आधीराको पुरके द्वारे पुकारा वालि शत्रुका बल सहन न करताथा ॥ ३ ॥ तुरत धावमान हुआ वह वालिको देख भागा मैंभी भाईके पीछे चला ॥ ४ ॥ वह पर्वतकी कन्दरामें घुसगया तब वालिने मुझे समझाकर कहा ॥ ५ ॥ मुझे एक पखवारा परखना, नहीं आउँ तौ मरा जानना ॥६॥ हे राम! मैं वहां एक महीनेके दिनतक रहा तब उसमेंसे रुधिरकी भारी धारा निकली ॥७॥ तब मैंने अपने मनमें विचार किया कि, असुरनें भाईको मारा ॥ ८ ॥

—तैसेही अमन्द भुजबन्द चन्दते दुचंद दीपति सुदिव्य दुतिहारी दामिनी कोहै ॥
परम पुनीत पदभूषण अनूप चारु पूजनीय संतत त्रिलोक नामिनीको है ॥
रसिकबिहारी और नाहिं पहँचाने एकजाने यह नूपुर हमारी स्वामिनीकोहै ॥ १ ॥

वालि हतेसि मोहिं मारहि आई। शिला द्वारदे चलेउँ पराइ॥९॥
मंत्रिन पुर देखा बिनुसाईं। दीन्हेउ राज्य मोहिं बरिआई ॥१०॥
वाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहिं जिय भेद बढ़ावा ११
रिपुसमानम्वहिंमारेसिभारी। हरिलीन्हेसिसरवश अरु नारी १२
ताके भय रघुवीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरहुं विहाला॥१३॥
यहाँ शापवश आवत नाहीं। तदपि सभीत रहौं मन माहीं ॥१४॥
"सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठे दोउ भुजा विशाला"

राम--दोहा--सुन सुग्रीव मैं मारिहौं, वालिहिं एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र शरणागतहु, गये न उबरहिं प्रान ॥ ६ ॥

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हें विलोकित पातक भारी ॥१॥
निज दुख गिरिसम रजकर जाना। मित्रकेदुखरज मेरुसमाना २
जिनके असमति सहज न आई। ते शठ हठ कतकरत मिताई३

वालिको मारकर आकर मुझेभी मारैगा तब शिला द्वारपर रख चलाआया ९ मंत्रियोंने विना महाराजके पुर देखकर मुझे वरवस राज्य देदिया ॥१०॥ वालि उसे मारकर घर आया और मुझे देखकर मनमें भेद बढाया ॥ ११ ॥ शत्रुके समान मुझे बहुत मारा मेरी स्त्री और सर्वस्व हरलिया ॥ १२ ॥ हे कृपासागर राम ! उसके भयसे मैं सर्वत्र विहाल फिरता हूँ ॥१३॥ यहां शापके कारण नहीं आसकता तौभी मनमें बड़ा सभीत रहता हूँ ॥ १४ ॥ इसप्रकार सेवकका दुःख सुनकर दीनदयालुकी दोनों भुजा फरकउठीं ॥१५॥

दोहार्थ—और बोले हे सुग्रीव ! मैं वालिको एकही बाणसे मारदूँगा यदि वह ब्रह्मारुद्रकी शरणमें जायगा तौभी उसके प्राण नहीं उबरेंगे ॥६॥ जो मित्रके दुःखसे दुःखी नहीं होते उनको देखनेमें बड़ा पातक लगता है ॥ १ ॥ अपना दुःख पर्वतके समानभी रजके समान जानै और मित्रका रजके समान दुःख मेरुके समान जानै ॥ २ ॥ जिनके स्वभावमें ऐसी मति नहीं आती उनसे हठकर मित्रता क्यों करते हो ॥ ३ ॥

कुपथ निवार सुपन्थ चलावा। गुण प्रगटै अवगुणहि दुरावा॥४॥
देत लेत मन शंक न धरहीं। बल अनुमान सदा हित करहीं॥५॥
विपति कालकर शतगुण नेहा। श्रुति कह संतमित्र गुण एहा॥६॥
आगे कह मृदुवचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई॥७॥
जाकर चित इहि गति समभाई। अस कुमित्र परिहरे भलाई॥८॥
सेवक शठ नृप कृपण कुनारी। कपटी मित्र शूलसमचारी॥९॥
सखा शोच त्यागहु बल मोरे। सबविधि करब काज मैं तोरे॥१०॥
सुग्रीव-कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा। वालि महाबल अतिरणधीरा॥
सप्त ताल यह कृपानिधाना। वेधै जो सब एकहि बाना॥१२॥
चन्द्रमंडलाकार सुहाई। परै एक बाणहि महि आई॥१३॥
ताके कर वाली प्रभु मरई। नातौ श्रम मिथ्या कोउ करई॥१४॥
'दुन्दुभि अस्थि ताल दिखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये॥१५'

जो कुपंथमें निवारणकर सुपंथमें चलाते हैं गुण प्रगटकर अवगुण छिपाते हैं॥ ४॥ देते लेते मनमें शंका न करके बलके अनुसार सदा हित करते हैं॥ ५॥ विपत्तिकालमें सौगुणा नेह करते हैं श्रुति कहती है सन्त और मित्रोंके यह गुण हैं॥ ६॥ और जो आगे मीठे वचन बनाकर कहते हैं पीछेमें अनहित मनमें कुटिलता करते हैं॥ ७॥ हे भाई! जिसका चित्त इसप्रकार वा सर्पकी गतिके समान है ऐसा कुमित्र त्यागनेसे ही भलाई है॥ ८॥ मूर्ख सेवक, कृपण राजा, खोटी स्त्री, कपटी मित्र, यह चारों शूलके समान हैं॥ ९॥ हे सखा! तुम मेरे बलपर शोच त्यागदो मैं सबप्रकार तुम्हारे कार्य करूंगा॥ १०॥ सुग्रीव बोला हे राम! वालि महाबली और बड़ा रणधीर है॥ ११॥ हे कृपानिधान! यह सात तालके वृक्ष जो कोई एकही बाणसे वेधदे॥ १२॥ जो यह चन्द्रमण्डलाकार एकही बाणसे भूमिपर आगिरे॥ १३॥ तो उसीके हाथसे वालि मरै नहीं तो श्रम करना व्यर्थ है॥ १४॥ दुन्दुभीकी अस्थि और ताल रामचन्द्रने विना प्रयास ढा दिये॥ १५॥

उपजाज्ञानवचनतब बोला। नाथकृपामनभयउ अडोला १६॥
सुग्रीव-सुखसम्पतिपरिवारबडाई। सबपरिहरिकरिहौं सेवकाई
ये सब रामभक्तिके बाधक।कहहिं सन्त तवपद अवराधक१८॥
वालिपरमहितजासुप्रसादा। मिलेउरामतुम शमन विषादा १९
अब प्रभु कृपा करहुइहिभाँती।सबतजिभजनकरौंदिनराती २०
राम-जो कछु कहेउ सत्यसब सोई।सखावचन ममसृषा न होई
"लै सुग्रीव संग रघुनाथा।चले चाप सायक गहि हाथा॥ २२
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा॥२३॥
सुनत वालि क्रोधातुर धावा।गहिकरचरण नारि समुझावा २४"
तारा-सुनुपतिजिनहिं मिलासुग्रीवा। ते दोउबन्धुतेज बलसीवा
कोशलेशसुत लक्ष्मण रामा।कालहु जीतिसकहिं संग्रामा २६॥
दोहा-"कहा वालि सुनु भीरु प्रिय, समदर्शी रघुनाथ।
जो कदापि मोहिं मारिहैं, तौ पुनि होब सनाथ॥७॥"

तब ज्ञान उपजनेसे सुग्रीव बोला स्वामीकी कृपासे मन अडोल होगया ॥ १६ ॥ सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई यह सब त्याग कर आपकी सेवा करूंगा॥ १७॥ कारण कि, यह सब रामभक्तिमें बाधा करते हैं ऐसा तुम्हारे चरणोंके आराधक सन्त कहते हैं॥ १८॥ वालि तो मेरा परम हितू है हे राम! जिसके कारण तुम दुःख दूरकरनेवाले मिले॥१९॥हे प्रभु! अब इस-प्रकार कृपा करो जो सब त्यागकर दिनरात भजन करूं॥२०॥रामचन्द्र बोले हे सखा! जो तुम कहते हो सब सत्य है पर मेरा वचन मिथ्या नहीं होता ॥२१॥ तब सुग्रीवको साथ ले धनुषबाण हाथमें लिये रामचन्द्र चले ॥२२॥ तब रघुनाथजीने सुग्रीवको भेजा और निकट जाकर बलपाय गर्जा॥२३॥ सुनतेही वालि क्रोधसे दौड़ा तब उसकी नारीने चरण पकड़ सम-झाया॥ २४ ॥ हे स्वामी! जिनसे सुग्रीव मिलाहै वे दोनों भ्राता बड़े तेजस्वी बलवान् हैं॥ २५ ॥ वे दशरथपुत्र लक्ष्मण राम कालकोभी संग्राममें जीतसकते हैं॥ २६॥ (दोहार्थ)-वालिने कहा हे प्रिये! राम तो समदर्शी हैं जो कदाचित् मुझे मारेंगेभी तो सनाथ होजाऊंगा॥ ७॥

द्वितीयदर्शन।

स्थान किष्किंधाका उपवन।

[वालिसुग्रीवका युद्ध]



दोनों लड़तेहैं।

"भिरेउ युगुल वाली अतितर्जा। मुष्टिकमार महाधुनि गर्जा१॥
तब सुग्रीव विकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार वज्रसम लागा॥२"॥
सुग्रीव-मैं जोकहा रघवीरकृपाला।बन्धु न होइ मोर यह काला३
राम-एकरूप तुम भ्राता दोऊ। तेहि भ्रमते नहिंमारेउँ सोऊ४॥
"करपरशा सुग्रीव शरीरा। तनुभा कुलिश मिटीसब पीरा॥५॥
मेली कण्ठसुमनकी माला। पठवा पुनि बल देइ विशाला॥६॥
पुनि नानाविधि भई लराइ। विटप ओट देखहिं रघराई॥७॥
दो०-बहु छलबल सुग्रीव करि, हृदय हारि भय मानि।
मारा वालिहि राम तब, हिये माँझ शरतानि॥८॥

द्वितीय दर्शन।

दोनों गर्जकर भिड़गये वालि मुष्टिक मारकर महाधुनिसे गर्जा॥१॥तब सुग्रीव व्याकुल होकर भागा वह मुष्टिप्रहार वज्रके समान लगा॥२॥ हे कृपालु राम! मैंने जो कहाथा यह बंधु नहीं मेरा कालहै॥३॥ रामचन्द्र बोले तुम दोनों भ्राता एकरूप हो इसी भ्रमसे उसको नहीं मारा॥४॥ फिर सुग्रीवके शरीरपर हाथ फेरा जिससे उसका शरीर वज्रके समान कठोर होगया शरीरकी सब पीर मिटगई॥५॥ और अपने गलेकी फूलमाला उसके कण्ठमें डाली और फिर बड़ा बल देकर भेजा॥६॥ फिर अनेक प्रकारसे लड़ाई हुई रघुनाथजी वृक्षकी ओटमें देखते हैं॥७॥

दोहार्थ-सुग्रीव बहुतसे छलबलकर जब भयमान हृदयमें हारगया तब रघुराजने बाणको चढ़ाय वालिके हृदयमें प्रहार किया॥८॥

परा विकल महि शरके लागे।पुनि उठि बैठे देख प्रभु आगे॥१॥
हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा। बोला चितै रामकी ओरा॥२॥
वालि-धर्महेतु अवतरेहु गुसाई। मारेहु मोहिं व्याधकी नाईं३॥
मैं वैरी सुग्रीव पियारा। कारण कवन नाथ म्वहिं मारा॥४॥
राम-अनुजवधू भगिनी सुतनारी।सुन शठ ये कन्यासम चारी
इन्हैं कुदृष्टि विलोकै जोई। ताहि वधे कछु पाप न होई॥६॥
मूढ़तोहिंअतिशय । नारिसिखावन करेसि न काना७
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। माराचहसिअधमअभिमानी८
वालि-दोहा-सुनहु राम स्वामी सुभग, चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूं मैं पातकी, अन्तकाल गति तोरि ॥९॥
"सुनत राम अति कोमल वाणी।वालिशीशपरसा निजपाणी१"
राम-अचल करौंतनु राखहु प्राना।वालिकहा सुनुकृपानिधाना२

बाण लगनसे व्याकुलहो पृथ्वीमें गिरा।फिर उठबैठा तो रामको आगे देखा॥१॥हृदयमें प्रीति मुखमें कठोरवचन रामकी ओर देखकर बोला॥२॥ हे गोसाईं आपका अवतार धर्मके निमित्त है मुझे व्याधके समान क्यों मारा३॥ मैं वैरी और सुग्रीव पियारा हुआ हे नाथ! क्या कारण जो आपने मुझे मारा है॥४॥ राम बोले छोटेभ्राताकी बहू, बहन, बेटेकी स्त्री और कन्या हे मूर्ख! यह चारों समान हैं॥५॥ इन्हैं जो कुदृष्टिसे देखै उसके मारेसे पाप नहीं होता॥६॥ हे मूर्ख! तुझको ऐसा अभिमान है कि, स्त्रीका सिखानाभी कान न किया॥७॥ मेरी भुजबलका आश्रित जानकर हे अभिमानी! तू मारा चाहता है॥८॥ (दोहार्थ)-वालिने कहा हे स्वामी!राम आपसे तौ कुछ मेरी चतुराई नहीं चल सकती, परन्तु हे प्रभु! जब अन्तकालमें तुम्हारी गति है तौ क्या मैं अबभी पातकी हूँ॥९॥

रामने अतिकोमल वाणी सुन उसके शिरपर अपना हाथ रक्खा और बोले॥१॥ शरीर अचल करता हूँ प्राण रक्खो वालिने कहा हे कृपानिधान॥२॥

वा०-जन्मजन्ममुनियतनकराहीं। अन्तरामकहिआवतनाहीं ३
जासु नामबल शंकर काशी। देत सबहि समगति अविनाशी४
ममलोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि किअस प्रभुबनहिंबनावा५
छंद-सो नयन गोचर जासु गुण नितनेति कहि श्रुतिगावहीं।
जिमि पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं॥
मोहिं जानि अति अभिमानवश प्रभु कह्यउ राख शरीरहीं।
अस कवन शठ हठ काटि सुरतरु वारि करहिं करीरहीं॥ १॥
अब नाथ करि करुणा विलोकहु देव यह वर माँगऊं।
जेहि योनि जन्मौं कर्मवश तहँ रामपद अनुरागऊं॥
यह तनय मम सम विनय बल कल्याणप्रद प्रभु दीजिये।
गहि बाँह सुर नरनाह अंगद दास अपनो कीजिये॥ २॥

जन्म २ तक मुनि यत्न करते हैं पर अन्तमें राम ऐसा कहाभी नहीं जाता॥ ३॥ जिसके नामके बलसे शिवजी काशीमें सबको समान गति देते हैं॥४॥ वह मेरी नेत्रइन्द्रियके समक्ष हैं हे प्रभु! फिर ऐसा बनाव क्या बनसकताहै॥५॥ (छंदार्थ)-जिसके गुण नेति २ कहकर वेद गाते हैं सो मेरे नेत्रोंके सन्मुख हैं जिसे प्राण मन और इन्द्रियोंको निरसकर कभी मुनिजन ध्यानमें पातेहैं मुझे अभिमानके वश जानकर प्रभुने शरीर रखनेको कहा है पर ऐसा कौन मूर्ख है जो कल्पवृक्षको काट कीकड़ बोवै॥१॥ हे नाथ! अब करुणाकर देखो और यह वरदो कि, कर्मवश जिस योनिमें जन्मूँ वहां तुम्हारे चरणोंका अनुराग हो यह पुत्र विनय बलमें मेरे समान है हे प्रभु! इसे कल्याणपद दो हे सुरनरोंके अधिपति! अंगदकी बाँह पकड इसको अपना दास करो॥ २॥

दोहा-"रामचरण दृढ प्रीति कर, वालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कण्ठते, गिरत न जानै नाग॥ १०॥
नानाविधि विलापकर तारा। छूटे केश न देह सँभारा॥ १॥"
तारा-मैं पति तुमहिं बहुत समुझावा। कालविवश पियमनहिं न आवा
अंगद कहँ कछु कहन न पायहु। बीचहि सुरपुर प्राण पठायहु २॥
राम-क्षिति जल पावक गगनसमीरा। पंचरचित यह अधम शरीरा
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीवनित्य तुम केहि लगि रोवा५॥
"तब सुग्रीवहिं आयसु दीन्हा। मृतककर्म विधिवत सब कीन्हा६
राम कहा अनुजहि समुझाई। राज्य देहु सुग्रीवहि जाई॥७॥
रघुपतिचरण नायकरि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा८॥
दोहा-लक्ष्मण तुरत बुलावा, पुरजन विप्रसमाज।
राज्य दीन्ह सुग्रीव कहँ, अंगद कहँ युवराज॥ ११॥"

दोहार्थ-रामके चरणोंमें दृढ प्रीति कर वालिने अपना शरीर त्यागदिया। जिसप्रकार हाथी अपने गलेसे फूलोंकी माला गिरती नहीं जानता॥१०॥

तारा अनेक विलाप करने लगी केश छूटगये देहकी संभार न रही॥१॥ हे पति! मैंने तुमको बहुत समझाया पर कालके वशसे तुम्हारे मनमें कुछ न आया॥ २॥ अंगदसे भी कुछ कहने नहीं पाये बीचमें ही सुरपुरको प्राण भेजदिये॥ ३॥ रामचन्द्र बोले भूमि जल अग्नि वायु आकाश इन पांच तत्त्वका रचा यह अधम शरीर है॥ ४॥ प्रगटमें तुम्हारे आगे सोता है और जीव नित्य है उसके निमित्त क्यों रोती हो॥ ५॥ तब सुग्रीवको आज्ञा दी उसने मृतककर्म विधिपूर्वक किया॥ ६॥ रामने लक्ष्मणसे कहा तुम सुग्रीवको जाकर राज्यदो॥ ७॥ लक्ष्मण रामके चरणोंमें शिरनवाय रामसे प्रेरित हो सबके साथ चले॥ ८॥

दोहार्थ-लक्ष्मणने पुरवासी और ब्राह्मणोंके समाजको बुलाया सुग्रीवको राज्य और अंगदको युवराज दिया॥ ११॥

तृतीय दर्शन।

रामका प्रवर्षणपर निवासनकरना.

(राम लक्ष्मण बैठे हैं)

"पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बुलाई। बहुप्रकार नृपनीति सिखाई ॥१॥
राम-कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीशा। पुर न जाउँ दशचारि बरीशा २
गत ग्रीषम वर्षाऋतु आई। रहिहौं निकट शैल पर छाई ॥३॥
अंगद सहित करहु तुम राजू। संतत हृदय राखि मम काजू ४
"तब सुग्रीव भवन फिरि आये। राम प्रवर्षणगिरिपर छाये५"
दोहा--लक्ष्मण देखहु मोरगण, नाचत वारिद पेखि।
गृही विरति जिमि हर्षयुत, विष्णुभक्त कहँ देखि॥१२॥

तृतीय दर्शन।

फिर सुग्रीवको बुलाकर अनेक प्रकारसे राजनीति सिखाई ॥ १ ॥ प्रभु बोले हे वानरराज सुग्रीव! मैं चौदह वर्षतक पुरमें नहीं जाऊंगा ॥२॥ अब गरमी बीतकर वर्षाऋतु आई है निकटके पर्वतपर मैं निवास करूंगा ॥३॥ तुम निरन्तर हमारा काज हृदयमें धारण कर राज्य करो ॥ ४ ॥ तब सुग्रीव घरको लौट आये रामने प्रवर्षण पर्वतपर निवास किया ॥ ५ ॥

दोहार्थ—और बोले हे लक्ष्मण ! देखो यह मोर मेघोंको देखकर नाचते हैं जैसे वैरागी गृहस्थी विष्णुभक्तको देख प्रसन्न होते हैं ॥ १२ ॥

१ कवित्त घनाक्षरी—कीधौं विरहीके प्राणदाहे धूमधुंधर ये कीधौं है सपक्ष गिरि उडत उतग है
कीधौं ऋतु पावसके विविध वितान तने कीधौं नभ मंडलमें तरल तुरग है।
रसिक बिहारी कीधौं बालक निशाके श्याम कीधौं वर्षाके दूत डोलत सुढंग हैं।
कीधौं युग मासके विलासके अवास सोहै छूटे किधौं मदन महीपके मतंग है ॥ १ ॥
आवत चहूंवा घन घेरि नभ मंडलमें करत अँध्यारी भारी गरजत जोरसों।
दुरि दुरि दौरि विज्जु छटा छहरात ज्योंहीं त्योंहीं तरु तोरै पौन प्रबल झकोरसों।
रसिकबिहारी मोर मुदित पुकारत हैं जित तित झिल्ली झनकारत हैं जोरसों।
वर्षत नीर धार धरणी धरै न धीर होत हैं अधीर सब मदन मरोरसो ॥ २ ॥
धावैहैं बलाक झुंड झुंड नभ मंडलमें नीके कोकिलानके सरस सुरमाचै हैं।

घनघमण्ड नभ गर्जत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा १॥
दामिनि दमकिरही घन माहीं। खलकी प्रीति यथा थिर नाहीं२
वरषहिं जलद भूमि नियराये। यथा नवहिं बुध विद्या पाये ३॥
बूँद अघात सहै गिरि कैसे। खलके वचन सन्त सहैं जैसे ४॥
क्षुद्रनदी भारि चलि उतराई। जस थोरे धन खल बौराई ॥५॥
सिमिटि २ जल भरै तलावा। जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा६॥
दोहा—हरित भूमि तृण संकुल, समुझि परै नहिं पंथ।
जिमि पाखण्ड विवादते, लुप्त भये सद्ग्रन्थ ॥ १३ ॥
वर्षागत निर्मल ऋतु आई। सुधि न तात सीताकी पाई ॥ १ ॥
एकबार कैसेहु सुधि जानौं।कालहु जीति निमिषमहँ आनौं २॥

मेघ घुमड़कर आकशमें घोर गर्ज रहे हैं प्रियाके विना मेरा मन डरता है ॥ १ ॥ मेघोंमें बिजली चमकरही है जैसे खलोंकी प्रीति स्थिर नहीं रहती ॥ २ ॥ भूमिके निकट होकर मेघ गर्जते हैं जैसे पंडित विद्या-पाकर झुकजाते हैं ॥३॥ बड़ी २ बूँदें पर्वत ऐसे सहते हैं जैसे खलोंके वचन सन्त सहते हैं ॥ ४ ॥ छोटी नदी ऐसे उतरा चलीं जैसे थोड़े धनमें खल इतरा जाता है ॥ ५ ॥ सिमिट २ कर जलसे तलाव भरगये जैसे सद्गुण सज्जनोंपर आते हैं ॥ ६ ॥ (दोहार्थ)—तृणोंसे व्याप्त होकर भूमि हरी हो रही है मार्ग नहीं समझ पड़ता है जैसे पाखण्ड विवादसे सद्ग्रन्थ होजाते हैं ॥ १३ ॥

वर्षा बीतकर निर्मल ऋतु आई हे तात! सीताकी सुधि नहीं पाई ॥१॥ एकबार जो कैसेभी सुध पाऊं तौ पलमें कालको जीत लाऊँ ॥ २ ॥

गुंजत मधुपपुंज पुंजनमें कुंजनमें बोलत पपीहा पीव पीव रंग राचैहैं।
रसिकबिहारी उर आनँद अपार होत पावसके साज सबै सांचे सुख सांचै हैं।
लरज उठै हैं सुनि मेघकी गरज देखो बागनमें मुदित मयूर गण नाचै है ॥ ३ ॥
सवैया—झूमिरहीं द्रुमडारै चहूंदिशि भूमि हरी लखि होत हरो हिय।
लोनीलता लपटीं तरु अंगन मानो नवेली रहीं मिलिकै पिय।
इन्द्रवधू छबिछावै चहूं रसिकेश विलोकतहीं हुलसै हिय।
श्याम मनाये न मानती ज्यों सोइ आपहिते तजिमान मिलै तिय ॥ ४ ॥

कतहुँ रहो जो जीवति होई। तात यतन करि आनौं सोई॥ ३ ॥
सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। पावा राज्य कोष पुरनारी ॥ ४ ॥
जेहि सायक मैं मारा बाली। तेहि शर हतौं मूढ़ कहँ काली ॥५॥
लक्ष्मण क्रोधवन्त प्रभु जाना। धनुष चढ़ाय गहे कर बाना॥६॥

दोहा—तब अनुजहि समुझायउ, रघुपति करुणा सीव।
भय दिखाय लै आवहु, तात सखा सुग्रीव॥ १४ ॥

चतुर्थ दर्शन।

(महावीरजीका सुग्रीवको समझाना और लक्ष्मण का नगरमें आना)

"यहां पवनसुत हृदय विचारा। राम काज सुग्रीव बिसारा॥१॥
निकटजाय चरणन शिरनावा। चारिहुविधितेहिकहिसमुझावा"
सुग्रीव-अबमारुतसुत दूतसमूहा। पठवहु जहँ तहँ वानरयूहा३॥
कहहु पक्षमहँ आव न जोई। मोरे कर ताकर वध होई॥ ४ ॥

कहीं भी रहै जो जीतीहोगी तो हे तात! एकबार यत्न करकै उसे लाऊंगा॥ ३ ॥ सुग्रीवनेभी मेरी सुधि बिसारदीहै उसे राज्य कोष पुर और स्त्री मिलगई है॥ ४ ॥ जिस बाणसे मैंने वालिको मारा है उसीसे कल उस मूढको मारूंगा ॥ ५ ॥ लक्ष्मणने प्रभुको क्रोधवन्त जान धनुष चढ़ाय बाण ग्रहण किये ॥ ६ ॥ (दोहार्थ)—तब करुणासागर रामने अनुजको समझाया कि हे तात! सखा सुग्रीवको भय दिखाय लेआओ॥ १४ ॥

चतुर्थ दर्शन।

यहां महावीरजीने मनमें विचारा कि, सुग्रीवने रामका काज बिसार दिया है॥ १ ॥ निकट जाकर चरणोंमें शिरनवाय विग्रह सांधि भेदादि चार प्रकारसे समझाया॥२॥ सुग्रीवने कहा हे महावीर! अब चारोंओर दूत भेजो॥ ३ ॥ और कहो जो एक पखवारेमें नहीं आवेगा तो मेरे हाथसे

"त्यहि अवसर लक्ष्मणपुर आये।क्रोधदेखिजहँतहँकपिधाये५

दोहा–धनुष चढ़ाय कहा तब, जारि करौं पुरछार।
व्याकुल नगर देखि तब, आवा वालिकुमार ॥१५॥

चरणनाय शिर विनती कीन्हीं।लक्ष्मणअभयबाँह तेहि दीन्हीं१
लक्ष्मण सुनिकाना।कहहकपीशअतिशयव्यकुलाना२"

सु०–तुम हनुमन्त संगलै तारा । करि विनती समुझाउ कुमारा

"तारासहित जाइ हनुमाना।चरणवन्दि प्रभु सुयश बखाना॥४॥
मंदिरलै ॥ ५ ॥

तब कपीश चरणन शिर नावा।गहि भुज लक्ष्मणकण्ठलगावा ६
पवनतनय सब कथा सुनाई । ज्यहि विधि गये दूत समुदाई ७॥

दोहा–हर्षि चले सुग्रीव तब, अंगदादि कपि साथ
॥ १६ ॥"

उसका वध होगा ॥ ४ ॥ यह सुन जहाँ तहाँ वानर गये और उसी समय लक्ष्मण पुरमें आये क्रोध देखकर जहाँ तहाँ कपि धावमान हुए ॥ ५ ॥

दोहार्थ–तब लक्ष्मणने धनुष चढ़ाकर कहा जलाकर पुर छार करदूंगा तब नगरको व्याकुल देख अंगदजी आये ॥ १५ ॥

चरणोंमें शिर नवाय विनती की लक्ष्मणने उनको अभय बाँह दी॥१॥ लक्ष्मणको क्रोधवन्त जानकर सुग्रीव बहुत व्याकुल हुए और बोले ॥ २ ॥ हे महावीर ! तुम ताराको साथ ले विनतीकर कुमारको समझाओ ॥ ३ ॥ हनूमान्ने ताराके सहित जाय चरणोंमें प्रणामकर प्रभुका सुयश वर्णन किया ॥ ४ ॥ विनती करके मन्दिरमें ले आये चरण धोकर पलँगपर बैठाया ॥ ५ ॥ तब सुग्रीवने चरणोंमें शिर नवाया भुजा पकड़ लक्ष्मणने कंठ लगाया ॥ ६ ॥ महावीरजीने सब कथा सुनाई जिसप्रकार दूत सेना बुलानेको गये हैं ॥ ७ ॥ (दोहार्थ)–तब सुग्रीव प्रसन्नहो अंगदादि वानरोंके साथ चले लक्ष्मणको आगे कर रामचन्द्रपर आये ॥ १६ ॥

सु०-अतिशय प्रबल देवतवमाया।छूट तबहिं करहु जब दाया १
विषय विवशसुरनरमुनि स्वामी। मैं पामर पशु कपि अतिकामी
नारि नयन शर जाहि न लागा। महाघोर निशि सोवत जागा३॥
लोभपाश जेहि गर न बँधाया।सो नर तुम समान रघुराया ॥४॥
यह गुण साधनते नहिं होइ।तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई ॥ ५ ॥
राम-तब रघुपतिबोले मुसुकाई।तुमप्रियमोहिंभरतजिमिभाई६
अब सोइ यतन करहु मनलाई।जेहिविधि सीताकी सुधि पाई७।

दोहा-"इहि विधि होत बतकही, आये वानर यूथ।
नाना वरण अतुलबल, देखिय कीशवरूथ ॥१७॥"

सु०-(सोनासे)रामकाजअरुमोर निहोरा।वानरयूथजाहुचहुँओरा
जनकसुताकहँ खोजहुजाई। मास दिवस महँ आयहु भाई॥२॥
अवधिमेटि जो बिनुसुधिपाये।अवशिमरिहिसो ममकर आये ३

सुग्रीव बोले हे देव ! आपकी माया बड़ी प्रबल है यह जभी छूटसकतीहै जब तुम दया करो॥ १ ॥ हे स्वामी ! विषयके वश तौ सुर नर ।हैं म तौ पामर पशु वानर बड़ा कामीहूँ ॥ २ ॥ नारिके नेत्रोंका के नहीं लगा वह महा घोर रातमें सोताहुआ जागा ॥ ३ ॥ जिसने लोभकी पाशीसे अपना गला नहीं बँधाया हे राम ! वह तुम्हारे समान है.॥ ४ ॥ यह गुण साधनसे नहीं होते तुम्हारी कृपासे कोई कोई पाते हैं ॥ ५ ॥ तब श्रीराम हँसकर बोले तुम मुझे भाई भरतके समान प्रिय हो ॥ ६ ॥ अब मन लगाय सो यत्नकरो जिससे जानकीका समाचार मिले ॥ ७ ॥

दोहार्थ-इसप्रकार वार्त्ता होती थी कि, वानरोंके अनेक यूथ आये अनेक वर्णोंके अतुल बलवाले वानरोंके यूथ थे ॥ १७ ॥

सुग्रीव बोले रामके काज और मेरे निहोरेसे चारोंओर वानरसेना जाओ ॥१॥ जानकीका खोजकर सब एकमासमें लौटआना ॥२॥ अवधि मेटकर जो विना सुध पाये आवेगा वह निश्चय मेरे हाथसे मरेगा ॥ ३ ॥

दोहा–"वचन सुनत सब वानर, जहँ तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीव बुलायउ, अंगदादि हनुमंत ॥ १८ ॥
सु०-सुनहु नील अंगद हनुमाना।जाम्बवंत मतिधीर सुजाना १
सकल सुभट मिलि दक्षिण जाहू।सीतासुधि पूछेहु सब काहू२॥
मन वच क्रमसोयतन.विचारहु।रामचन्द्रकर काज सँवारहु ३॥
भानु पीठ सेइय उर आगी।स्वामी सेइय सब छल त्यागी ॥४॥
देहधरेकर यह फल भाई। भजिय राम सब काम विहाई॥ ५ ॥
सोइ गुणज्ञ सोई बड़भागी। जो रघुवीर चरण अनुरागी ॥ ६ ॥
"आयसु माँगि चरण शिरनाई।चले सकल सुमिरत रघुराई ७॥
पाछे पवनतनय शिरनावा।जानि काज प्रभु निकट बुलावा॥८॥
— सरोरुह पानी ! करमुद्रिका दीन्हजन जानी॥९॥"

दोहार्थ–यह वचन सुन जहां तहां सब वानर चले तब सुग्रीवने अंगद और महावीरादिको बुलाकर कहा ॥ १८ ॥

हे नील अंगद हनुमान ! बुद्धिमान् धीर जाम्बवन्त सुनो ॥ १ ॥ तुम सब मिलकर दक्षिणदिशामें जावो सबसे जानकीकी सुध पूछना ॥२॥ मन वचन कर्मसे यत्न विचारकर रामचन्द्रका काम सँभालो ॥ ३ ॥ सूर्यको पीठ और आगीको हृदयसे सेवन करो पर स्वामीको सब छल त्यागकर सेवन करो ॥ ४ ॥ हे भाई ! देहधरनेका यह फलहै, कि सब काम छोड़ रामका भजन करो ॥ ५ ॥ वही गुणज्ञ और बड़भागी है जो रघुवीरके चरणोंका अनुरागी है ॥ ६ ॥ आज्ञा मांग चरणोंमें शिर नवाय सब रघुनाथका स्मरण करते चले ॥ ७ ॥ पीछे महावीरजीने चरणोंमें शिरनवाया काज जानकर प्रभुने समीप बुलाया ॥ ८ ॥ उनके शिरपर हस्त

१ राग केदारा-रजायसु रामको जब पायो ॥ टेक ॥ गालमेलि मुद्रिका मुदित मन पवनपूत शिरनायो ॥रजा०॥ भालुनाथ नल नील साथ चले, बली बालिको जायो। फरकि सुअंग भय शकुन कहत मानो, मग मुद मंगल छायो ॥ रजा० ॥ देखि विवर सुधिपाय गीधसो सब अपनो बलगायो। सुमिरि राम ताकि तरकि तोयनिधि लकलूकसों आयो ॥ रजा० ॥ खोजत घरघर जनु दरिद्र मन फिरत लागि धनु धायो। तुलसी सिय बिलोकि पुलको तनु भूरिभाग्य भयो भायो ॥ १ ॥

राम-बहुप्रकारसीताहिंसमुझायहु।कहिबलवीरवेगितुमआयहु १०
"हनुमतजन्मसफलकरिजाना।चलेहृदयधरि कृपानिधाना ११
दोहा—चले सकल वन खोजत, सरिता सर गिरिखोह।
रामकाज लवलीन मन, बिसरा तनुकर छोह ॥१९॥
लागितृषा अतिशय अकुलाने।मिलइ न जल वनगहनभुलाने १
मन हनुमान कीन्हअनुमाना।तजन चहत सब बिन जलप्राना २
चढ़िगिरिशिखर चहूँदिशिदेखा।भूमि विवर इक कौतुक पेखा ३
गिरिते उतरि पवनसुत आवा। सबको ले सो ठाँव दिखावा ॥४॥
आगेकर हनुमन्तहि लीन्हा।प्रगटे विवरविलम्ब न कीन्हा॥५॥
दोहा—दीखजाय उपवन सुभग, सर विकसे बहु कंज।
मंदिर एक रुचिर तहँ, बैठि नारि तपपुंज ॥ २०॥

कमल रक्खा और पहँचानको हाथकी अंगूठी दी ॥ ९ ॥ और बोले जानकीको अनेक प्रकारसे समझाना और हे वीर ! बल कहकर फिर तुम शीघ्र आना ॥ १० ॥ महावीरने अपना जन्म सफल करके जाना मनमें भगवान्‌का स्मरण करते चले ॥ ११ ॥ (दोहार्थ)—सब कोई वन सरिता पर्वत कन्दराको खोजते चले, रामके काजमें मन लगगया शरीरका छोह विसर गया॥ १९ ॥

प्यास लगनेसे सब व्याकुल हुए जल न मिलनेसे गहन वनमें भूल गये ॥ १ ॥ तब हनुमानने विचारा कि, जलके विना सबके प्राण जाना चाहते हैं ॥ २ ॥ तब पर्वतके शिखरपर चढकर चारों ओर देखा पृथ्वीमें एक विवर और कौतुक देखा ॥ ३ ॥ महावीर गिरिसे उतर आये और सबको लेकर वह स्थान दिखाया ॥ ४ ॥ आगे महावीरजीको करके सब कोई विवरमें प्रविष्ट हुए देर नहीं की ॥ ५ ॥ (दोहार्थ)—वहाँ जाकर अच्छे उपवन देखे सरोवरमें अनेक रंगोंके कमल खिलरहेथे एक सुन्दर मन्दिरमें तपस्विनी स्त्री बैठीथी ॥ २० ॥

दूरहिंते सबने शिरनावा। पूछासि निज वृत्तान्त सुनावा॥ १
तब तेहि कहा करहु जलपाना।खाहू सरस सुन्दरफल नाना२॥
मज्जन कीन्ह मधुरफल खाये।तासुनिकट पुनिसबचलिआये३
तेहि सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाउँ जहाँ रघुराई॥४॥
तप०-मूँदहुनयन विवरतजिजाहू।पैहहुसीतहि जनिकदराहू५॥
"नयन मूंदि तब देखहिं वीरा।ठाढे सकल सिन्धुके तीरा॥६॥
इहाँविचारहिं कपि मनमाहीं।बीती अवधि काज कछु नाहीं७॥
सबमिलिकरहिंपरस्परबाता। विनुसुधिलिये करबका भ्राता८"
अंगद-कह अंगद लोचन भरि वारी।दुहुँप्रकारभइमृत्युहमारी९
यहाँ न सुधि सीता कर पाई। वहाँ गये मारिहि कपिराई१०॥
पिता वधेपर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही॥११॥
वानर-हम सीता सुधि लीन्हें बीना।नाहिं जैहैं युवराज प्रवीना१२
"असकहि लवण सिन्धु तट जाई।बैठे कपि सब दर्भ डसाई १३

सबने उसको दूरसे शिर नवाया पूछनेसे अपना वृत्तान्त सुनाया॥१॥ तब उसने कहा जलपान करके सुन्दर फल खाओ॥ २॥ स्नानकर सबनें मीठे फल खाये और उसके समीप सब चले आये॥ ३॥ उसने सब अपनी कथा सुनाकर कहा कि, मैं अब रघुनाथजीके समीप जाऊँगी॥४॥ तुमभी नेत्रमूँदो इसबिलसे बाहर हो जाओगे जानकी मिलैगी व्याकुल मतहो॥ ५॥ तब नेत्र मूँदकर सब वानर वीर क्या देखते हैं कि, सागरके किनारे खड़े हैं॥६॥ और यहां पहुँच वे विचारने लगे कि समय बीतगया काम कुछ बना नहीं॥ ७॥ सब मिलकर परस्पर बात कहने लगे विना समाचार लिये क्या करैंगे॥८॥अंगदने नेत्रोंमें जल भरकर कहा कि, दोनों प्रकारसे हमारी मृत्यु हुई॥९॥ यहां सीताकी सुधि नहीं मिली वहां जानेसे सुग्रीव मारैंगे॥१०॥ पिताके मारने परभी मुझे मारता पर रामके निहोरेसे रहने दियाहै॥११॥ सब वानर बोले हे युवराज! हम सीताकी सुधिलियें विना नहीं जायँगे॥ १२॥ ऐसा कह सब वानर क्षारसमुद्रके समीप कुछ

जाम्बवन्त अंगद दुख देखी। कही कथा उपदेश विशेखी१४"
जाम्ब०-तातरामकहँनरजनिजानहु।निर्गुणब्रह्मअजितअजमानहु १५
हम सबसेवक अतिबड़भागी। सन्तत सगुण ब्रह्म अनुरागी१६
दोहा-निज इच्छा अवतरेउ प्रभु, सुर द्विज गो महि लागि।
सगुणउपासक रहहिं सब, मोक्षसकलसुखत्यागि॥२१॥

"यहिविधि कथाकहतबहुभाँती।गिरिकन्दरासुनासम्पाती॥१॥
बाहर होइ देखे सब कीशा। मोहिं अहार दीन्ह जगदीशा॥२॥
सं०-आजुसबनकहँभक्षणकरऊं। दिनबहुगयेअहारविनु मरऊं३
भरिउदर अहारा। आजुदीन्हविधिएकहिवारा४
"कपि सब उठे गृध्र कहँ देखी। जाम्बवन्त मन शोच विशेखी५
कह विचारि अंगद मनमाहीं।धन्य जटायुसरिस कोउ नाहीं६"
अं०-रामकाजकारणतनु त्यागी।हरिपुर गयउपरमबडभागी७

बिछाय बैठे कि, प्राण त्यागन करदेंगे॥ १३ ॥ जाम्बवन्तने अंगदका दुःख देख अनेक उपदेशकी कथा कही॥१४॥ हे तात! रामको मनुष्य मत जानो उनको निर्गुण ब्रह्म अजित और अज जानो॥१५॥हम सब सेवक बड़भागी हैं जो निरन्तर सगुणब्रह्ममें प्रेम करते हैं॥१६॥ (दोहार्थ)-वह प्रभु देवता भूमि और गौओंके निमित्त अपनी इच्छासे अवतार लेआये हैं सगुण उपासक मोक्षकाभी सुख त्यागकर इनके भजनमें प्रेम करते हैं ॥ २१ ॥ इसप्रकार बहुत कथा कहते थे कि पर्वतकंदरामें सम्पातीने सुना॥ १ ॥ बाहर होकर सब वानरोंको देख कहा कि, मुझे जगदीश्वरने भोजन दियाहै ॥२॥ आज सबका भक्षण करूँ बहुतदिन बीतगये भोजन विना मरताहूँ ॥ ३ ॥ कभी पेटभर भोजन नहीं मिला आज विधाताने एकही वार देदिया है॥४॥ सब कपि गीधको देखकर उठे जाम्बवन्तके मनमें बड़ा शोच हुआ ॥५॥ तब अंगदने मनमें विचारकर कहा जटायूके समान कोई धन्य नहीं है॥ ६ ॥ जो रामकाजके निमित्त शरीर त्यागकर वैकुण्ठको गया बड़ा

"सुन खग हर्ष शोकयुत बानी।आवा निकटकपिन भय मानी८
ताहि देखि सब चले पराई।ठाढ कीन्ह तिन्ह शपथ दिवाई॥९॥
तिन्हें अभय करिपूछासि जाई।कथा सकलतिन्हताहिसुनाई१०
सुन सम्पाति बंधुकी करणी।रघुपतिमहिमाबहुविधिवरणी ११"

सं०-दो०-मोहिं लै चलहु सिंधुतट, देउँ तिलांजलि ताहि।
वचन सहाय करब म, पैहहु खोजहु जाहि ॥ २२ ॥

"अनुजक्रियाकर सागरतीरा।कह निजकथा सुनहुकपिवीरा॥"
हम दोउ बन्धु प्रथम तरुणाई।गगन गये रविनिकट उड़ाई॥२॥
तेज न सहि सक सो फिरि आवा। म अभिमानीरविनियरावा॥३
जरें पंख रवि तेज अपारा। पऱ्यउ भूमि करि घोर चिकारा॥४॥
मुनि इक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि कर मोही॥५॥
बहु प्रकार तिन्हज्ञान सिखावा।देहजनित अभिमान छुडावा६॥

बडभागी था ॥ ७ ॥ जब उसने हर्षशोकभरी वाणी सुनी तब समीप आया वानरोंने भय माना ॥ ८ ॥ उसे देख सब वानर भाग चले तब उसने अपनी सौगंद दिवाय खडा किया ॥ ९ ॥ और उनको अभय करके पूछा तब उन्होंने सम्पातिसे जटायूका चरित्र कहा ॥ १० ॥ सम्पातीने भाईकी करणी सुनकर रामचन्द्रकी बहुत महिमा वर्णन करी॥ ११॥

दोहार्थ—और कहा मुझे सागरके किनारे लेचलो मैं उसे जलांजलि दूं और वचनोंसे मैं तुम्हारी सहाय करूंगा तुम जानकीको पाओगे ॥ २२ ॥

अनुजकी क्रिया करके सागरके किनारे अपनी कथा कहने लगा हे मतिधीरो ! सुनो ॥१॥ हम दोनों भाई तरुणाईमें सूर्यके समीप आकाशमें उडगये ॥ २ ॥ वह तो तेज न सह सकनेके कारण फिर आया और मैं अभिमानी सूर्यके समीप हुआ ॥ ३ ॥ तब सूर्यके अपारतेजसे मेरे पंख जलगये घोर चिकारकर भूमिपर गिरा ॥ ४ ॥ एक चन्द्रमा नाम मुनिको देखकर दया आई ॥ ५ ॥ उन्होंने बहुत भाँतिसे ज्ञान सिखाकर

त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिहैं। तासु नारि निशिचरपति हरिहैं॥७॥
तासु खोज पठवहिं प्रभु दूता। तिन्हैं मिले तुम होब पुनीता॥८॥
जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता। तिन्हैं दिखाइ देब तैं सीता९॥
यह मुनिकहि निज आश्रमं गयऊ। तिहि क्षणहृदय ज्ञान कछु भयऊ
सदा रामकर सुमिरणकरऊँ। निशिदिनमग्गजोवतादिनभरऊँ११
मुनिकीगिरा सत्य भइ आजू। सुनिममवचनकरहुप्रभुकाजू १२
गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावण सहज अशंका१३
तहाँ अशोक वाटिका अहई। सीय बैठि तहँ शोचति रहई १४॥

दोहा--मैं देखौं तुम नाहिंन, गृध्रहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयो नतु करतेउँ, कछुक सहाय तुम्हार॥२३॥

जो लांघै शतयोजन सागर। करै सो रामकाज अति आगर१॥
जोकोइ करै राम कर काजू। तेहि सम धन्य आन नहिं आजू २

देहका अभिमान छोडादिया॥ ६॥ और कहा त्रेतामें परमात्माका मनुज अवतार होगा राक्षसपति उनकी स्त्री हरण करैंगे॥ ७॥ उसकी खोजको प्रभु दूत भेजेंगे उनके मिलनेसे तुम पवित्र होजाओगे॥ ८॥ तुम्हारे पंख जमिआवेंगे चिन्ता मत करना उनको तुम सीता दिखादेना॥ ९॥ मुनि यह कह अपने आश्रमको गये उस समय हृदयमें कुछ ज्ञान हुआ॥ १०॥ सदा रामका स्मरण करता रात दिन मार्ग देखताहूं॥११॥ मुनिकी वाणी आज सत्य हुई मेरे वचन सुन प्रभुका काम करो॥ १२॥ त्रिकूट पर्वतपर लंका बसती है वहां रावण निडर निवास करताहै॥ १३॥ वहां अशोकवाटिका है जहां जानकी बैठी शोच करतीहैं॥ १४॥

दोहार्थ—मैं देखताहूं तुम नहीं देखते गीधकी बडी दृष्टि होती है मैं बूढ़ा होगयाहूं नहीं तो तुम्हारी और भी सहायता करता॥ २३॥

जो सौ योजन सागर लांघ जाय वह रामका कांज शीघ्र कर सकता है॥ १॥ जो यह रामका काज करै उसके समान कोई धन्य नहीं है॥२॥

मोहिं विलोकि धरहु मन धीरा। रामकृपा कस भयउ शरीरा३॥
पापिउ जाकर सुमिरण करहीं । अति अपार भवसागर तरहीं४
तासु दूत तुम तजि कदराई । राम हृदय धरि करहु उपाई ॥५॥
"अस कहि उमा गृध्रजबगयऊ।सबकेमन अतिविस्मयभयऊ
निज निज बल सब काहू भाखा । पार जानकर संशय राखा७"
जाम्ब०-जरठभयउँअबकहइऋछेशा।नहिंबलरहाप्रथमतनुलेशा

दोहा-बलि बाँधत प्रभु बाढेउ, सो तनु वरणि न जाय ।
उभय घरी महँ दीन्ह मैं, सप्त प्रदक्षिण धाय ॥२४॥

अंगद-अंगद कहा जाउँ मैं पारा। जियसंशयकछु फिरतीबारा१
जाम्ब०-जाम्बवन्तकहतुमसबलायक। किमिपठवौसबहीकरनायक
कहा ऋक्षपति सुनु हनुमाना । का चुपसाधि रह्यो बलवाना॥३॥
पवनतनय बल पवनसमाना । बुधि विवेक विज्ञाननिधाना ॥४॥

मुझे देखकर धीर धरो कि, रामकी कृपासे कैसा शरीर होगया पंख जमि आये ॥ ३ ॥ पापीभी जिसका स्मरण कर अति अगाध भव-सागर तर जाते हैं ॥ ४ ॥ उसके दूत होकर तुम कायरता छोड रामको हृदयमें धर उपाय करो ॥ ५ ॥ हे पार्वति ! यह कहकर जब गृध्र चलागया उडगया। तब सबके मनमें विस्मय हुआ ॥ ६ ॥ अपना २ बल सबने कहा पारजानेका संशय ही रहा ॥ ७ ॥ जाम्बवन्तने कहा अब बूढा होगया हूं पहलेसे लेशमात्रभी बल नहीं रहा ॥८॥ (दोहार्थ)–जब वालिको बांधतेमें प्रभुने शरीर बढ़ाया था सो वरना नहीं जाता तब दो घडीमें मैंने सात प्रदक्षिणा दीथीं ॥ २४ ॥

अंगदने कहा पार तो मैं जासकता हूं पर फिरतीबार सन्देह है ॥ १ ॥ जाम्बवन्तने कहा तुम सबलायक हो पर सबके नायक हो तुमको कैसे भेजूं ॥ २ ॥ फिर ऋक्षराज बोले हे बलवान् हनुमान ! तुम क्यों चुप साध रहेहो ॥ ३ ॥ तुम पवनपुत्र हो तुम्हारा बल पवन के समान है बुद्धि विवेक और विज्ञानके निधानहो ॥ ४ ॥

कौनसो काजकठिनजगमाहीं। जो नहिं तात होइ तुम पाहीं५॥
रामकाज लगि तव अवतारा। सुनि कपि भयउ पर्वताकारा ६॥
"कनकवर्ण तनु तेज विराजा। मानहुँ अपर गिरिन कर राजा७॥
हनू०-सिंहनाद करि बारहिंबारा।लीलहिं लाघौंजलनिधिखारा८
सहित सहाय रावणहिं मारी। आनौं यहां त्रिकूट उपारी ॥ ९॥
जाम्बवन्त मैं पूछौं तोहीं। उचित सिखावन दीजै मोहीं ॥ १०॥
जा०-इतना करहु तात तुम जाई।सीतहिदेखिकहौसुधिआई११
तब निज भुजबलराजिवनयना।कौतुकलागिसंगकपिसयना१२
छंद--कपिसैनसंग सँहारि निशिचर राम सीतहि आनिहैं।
त्रयलोक पावन सुयश सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
"जो सुनत गावत कहत समुझत परमपद नर पावहीं।
रघुवीरपदपाथोजमधुकर दास तुलसी गावहीं॥ १॥

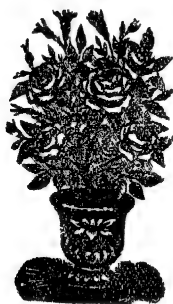
ऐसा जगत्में कौनसा कठिन काम है जो तुमसे न होसके ॥५॥ रामके काज निमित्तही तुम्हारा अवतार है महावीर यह वचन सुन पर्वताकार होगये॥ ६ ॥ सुवर्ण कैसा वर्ण शरीरमें तेज विराज रहाहै मानो दूसरे पर्वतोंके राजा हैं ॥ ७॥ वारंवार सिंहनाद कर बोले लीलासेही खारीसमुद्रको उलांघ जाऊंगा ॥ ८॥ सेनासहित रावणको मारकर यहां त्रिकुट पर्वत उखाड लाऊंगा ॥ ९॥ हे जाम्बवन्त! मैं तुमसे पूछता हूं मुझे उचित शिक्षा दो ॥ १० ॥ जाम्बवन्त बोले हे तात ! तुम इतना जाकर करो कि सीताको देखकर सुध कहो ॥ ११॥ तब भगवान् अपनी भुजाओंके बलसे और वानरी सेनाको साथ लिये॥ १२॥ (छंदार्थ)—राक्षसोंका संहार कर जानकीको ले आवेंगे, और नारदआदि त्रिलोकीका पवित्र करनेवाला यश बखान करैंगे, जो इसको सुनते गाते कहते समझते हैं वे परमपद पाते हैं रघुनाथके चरणकमलके मधुकर तुलसीदास यह चरित्र गाते हैं॥ १॥

दोहा--भवभेषज रघुनाथयश, सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिनकर सकल मनोरथ, सिद्धकरहिं त्रिपुरारि ॥२५॥"

इति किष्किंधाकाण्ड संपूर्णम्।

दोहार्थ-संसाररोगको ओषधिरूप जो नर नारी यह चरित्र गावैंगे उनके सब मनोरथ शिवजी सिद्ध करैंगे ॥ २५ ॥

इति किष्किंधाकाण्ड संपूर्णम्।



श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

रामलीलारामायणे सुन्दरकाण्डं प्रारभ्यते ।

प्रथम दर्शन ।

महावीरजीका समुद्रको लांघना.

(स्थान सागरका तट)

जाम्बवन्तके वचन सुहाये । सुनि हनुमान हृदय अति भाये १

म०-तबलगि मोहिं परखियहु भाई। सहि दुख कन्द मूल फल

जबलगि आवौं सीतहि देखी। होइ काज मन हर्ष विशेखी ॥ २ ॥

"सिन्धुतीर इक सुन्दर भूधर । कौतुक कूदि चढ़े तेहि ऊपर ॥ ४ ॥

जात पवनसुत देवन देखा । जाना चह बल बुद्धि विशेषा ॥ ५ ॥

प्रथम दर्शन ।

टीका-जाम्बवन्तके सुन्दर वचन महावीरजीको भले लगे और बोले १ हे भाई ! तबतक कन्दमूल फल खाकर मेरी बाट देखते रहना ॥२॥ जबतक मैं सीताको देखकर आऊँ ॥३॥ यह कह सिन्धुके किनारे एक सुन्दरनामका पर्वत था उसपर चढ गये और छलांग मारी ॥ ४ ॥ देवतोंने महावीरको

१ कवित्त-वचन निवेरे ऋक्षपतिके घनेरे सुनि बाढे वीर रंगके उमंग अग तेरे है ।
नयननिको फेरे औ तरेरे दिशि दक्षिणपै भुजनको हेरे त्योंही पूँछको मुरेरे हैं ।
मानि लक नेरे ह्वै निशंक महावीर टेरे मारि करौं ढेरे भट लंकापति केरेहैं ।
राम केरे साँरगते चलै प्रेरे सायक ज्यों जैहौं लंक सुनौंगे सबेरे गुण मेरे हैं ॥ १ ॥

२ कवित्त-भुजनि बढाय लामी लूमको उठाइ कारि कानन चपाइ ग्रीवा नेसुक नवाइकै ।
पाँयनको रोंपि महिकोपि त्योंही रावणपै कूदिवेको वारिनिधि चोपि चित्त चाइकै ।
कटिको सकेलि मुख मेलि मुद्रिकाको कीश झेलिउर आगू कहि रामै चित्त लाइकै ।
कीन्ह्यो अट्टहास रघुराजै मोद राशी दीन्ह्यो शैलै लीन्ह्यो ढाँपि बजरग रग छाइकै ॥ १ ॥

३ कवित्त-चल्यो लक नगरको मारुत डगर ह्वै कै मारुतको नद मारुतैकी गति धारिकै ।
दूजो मार्तंडसो अकाशमे प्रकाशमान मार्तंड डारि भाग्यो ग्रसिवे विचारिकै ।
फूलन झरत फूले फूले तरु संग उडे चले पहुँचावे मनो बंधु शोक टारिकै ।
रघुराज मोद छाये दुन्दुभी बजाये देव जैजै कहिगाये रामदूतको निहारिकै ॥ १ ॥

पठई

०-आजसुरनमोहिंदीन अहारा।सुनिहँसिबोलापवनकुमारा।

तव तव वदन पैठिहौं आई।सत्य कहौं मोहिं जानदे माई ॥ ९

यतन देहि नहिंजाना।ग्रससिनमोहिंकहाहनुमाना १०

"योजनभरि तेइँ वदनपसारा।कपितनुकीन्हदुगुणविस्तारा ११

सोरह योजन मुखतेइँ ठयऊ।तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ १२

शतयोजन तेहिआननकीन्हा।अतिलघुरूप पवनसुतलीन्हा १३

वदन पैठ पुनि बाहर आवा। मांगी विदाताहि शिरनावा ॥ १४॥"

सु०-मोहिं सुरन जेहि लागिपठावा।बुधिबलमर्म तोरमैंपावा १५

दोहा-रामकाज सब करिहहु, तुम बल बुद्धिनिधान ।
आशिषदै सुरसा चली, हर्षि चले हनुमान॥ १ ॥

जाता देख बल बुद्धि जाननेकी इच्छा की ॥५॥ सुरसानाम सर्पोंकी माताको देवतोंने यह बात कहकर भेजा उसने आकर कहा ॥६॥ आज देवताओंने तुमको मुझे आहारमें दियाहै सुनकर हँसतेहुए महावीरजी बोले ॥ ७ ॥ मैं रघुनाथजीका काम करके आऊँ और प्रभुको सीताका समाचार सुनाऊँ॥८॥ तब तेरे मुखमें आनकर प्रवेश करूँगा मैं सत्य कहताहूँ माई मुझे जानेदे॥९॥ जब किसी यत्नसे जाने न दिया तब महावीरजी बोले तौ खा क्यौं नहीं लेती ॥ १० ॥ तब उसने योजनभरका मुख फैलाया महावीरजीने अपने शरीरका विस्तार दूना किया ॥ ११ ॥ जब उसने सोलह योजनका मुख किया तब यह बत्तिसके हुए॥ १२ ॥ उसने सौ योजनका मुख किया तौ इन्होंने बहुत छोटा रूप धारण किया ॥ १३ ॥ और मुखमें प्रवेशकर फिर बाहर आये शिर नवाय विदा मांगी ॥ १४ ॥ सुरसा बोली मुझे देवताओंने जिस निमित्त भेजाथा तुम्हारी बल बुद्धिका मैंने मर्म पाया ॥ १५ ॥

दोहार्थ-तुम बलबुद्धिके निधान रामका काज करोगे सुरसा आशीर्वाद देकर गई महावीर प्रसन्न हो चले ॥ १ ॥

"निशिचरि एक सिंधुमहँ रहई। करिमाया नभकेखगगहई१
सोइ छल हनूमानसे कीन्हा। तासुकपटकपितुरतहि चीन्हा २
ताहि मारि मारुतसुत वीरा। वारिधिपार गयउ मतिधीरा ॥३॥
। लंका चले सुमिरि नरहरी ॥४॥
नाम लंकिनी एक निशिचरी।सोकह चलेसि मोहिं निंदरी५॥"
लं०-जानसिनाहिं मर्म शठ मोरा। मोर अहार लंक कर चोरा६
मुष्टिक । रुधिर वमत धरनी ठनमनी७॥
। जोरि पाणि कर विनय सशंका८"
लं०-जबरावणहि ब्रह्मवरदीन्हा।चलतविरंचिकहामोहिंचीन्हा ९
विकलहोसि जब कपिके मारे। तबजानसि निशिचरसंहारे १०
अतिपुण । देखेउँ
। २
२ ।

मायासे आकाशके
ड़लेतीथी ॥ १ ॥ सोई छल महावीरजीसे किया उसका कपट इन्होंने तुरत जाना ॥ २ ॥ मारुतसुत वीर मतिके धीर उसे मारकर सागरके पार गये ॥ ३ ॥ और छोटासा रूप धारणकर नरहरिको स्मरण कर लंकामें चले ॥ ४ ॥ एक लंकिनीनाम निशाचरी बोली मेरा निरादर कर कहां जाते हो ॥ ५ ॥ हे शठ! मेरा भेद नहीं जानता कि, मेरा अहार लंकाका चोर है ॥ ६ ॥ तब महावीरजीने उसके एक मुष्टिक मारा वह रुधिरवमन करती भूमिपर गिरी ॥ ७ ॥ फिर वह लंका सँभलकर उठी और हाथ-जोड शंकासे विनय करने लगी ॥ ८ ॥ जब ब्र

तब चलते समय मुझे पहँचानकर कहा ॥ ९ ॥ जब कपिके मारसे व्याकुल होजाय तब राक्षस मरे जानना ॥ १० ॥ हे तात! मेरा बड़ा पुण्य है जो नेत्रोंसे रामका दूत देखा ॥ ११ ॥ नगरमें प्रवेशकर हियेमें रामको धारणकर सब काज करो ॥ १२ ॥ तब महावीरजी चले और प्रत्येक

भवन एक पुनि दीख सुहावा।हरिमन्दिर तहँ भिन्न बनावा१४॥
विप्ररूपधारि वचन सुनावा। सुनतविभीषण उठि तहँआवा१५"
वि०—करिप्रणाम पूंछीकुशलाई।विप्रकहहु निजकथाबुझाई१६
कीतुम हरिदासनमहँ कोई।मोरे हृदयं प्रीति अतिहोई॥१७॥
कीतुम राम दीन अनुरागी। आयहु मोहिं करन बडभागी १८॥
दोहा-"तब हनुमंत कही सब, रामकथा निजनाम।
सुनत युगल तनु पुलक अति, मगन सुमिरि गुणग्राम २
हनु०—तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखा चहौं जानकी माता१
"युक्ति विभीषण सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदाकराई २
धरि सोइ रूप गयउ पुनि तहँवा।वन अशोक सीता रहजहँवा३॥
दोहा -निजपद नयन दिये मन, रामचरण लवलीन॥
परमदुखीभा पवनसुत, निरखि जानकी दीन॥३॥"

मंदिर ढूंढे जहां तहां अनेक योद्धादि देखे रावणको सोता देखा पर कहीं जानकी न देखी ॥ १३ ॥ फिर एक सुन्दर मंदिर देखा जहां एक हरि मन्दिरभी बनाथा ॥ १४ ॥ वहां महावीरजीने ब्राह्मणका रूप धर वचन सुनाया सुनकर बिभीषण उठ आये ॥ १५ ॥ प्रणाम कर कुशल पूछी हे विप्र! अपनी कथा समझाकर कहो ॥ १६ ॥ क्या तुम कोई हरिभक्तोंमें हो ? तुमको देख मेरे हृदयमें प्रीति अधिक होतीहै ॥ १७ ॥ क्या तुम दीनोंपर प्रेमकरनेवाले रामहो ? मुझे बड़भागी करने आयेहो ॥ १८ ॥
दोहार्थ—तब महावीरजीने सब रामकी कथा और अपना नाम कहा सुन कर दोनोंके शरीर पुलकित हुए हरिके गुणसमूह स्मरणकर मगन हुए ॥२॥
तब महावीरजी बोले हे भ्राता! मैं माता जानकीको देखनेकी इच्छा करताहूं॥१॥तब बिभीषणने सब युक्ति बताई महावीर बिदाहो चले ॥ २ ॥ वही रूप धारण कर वहाँ गये जहाँ अशोकवाटिकामें सीताथीं ॥ ३ ॥
दोहार्थ—वह नेत्रोंको चरणोंमें लगाये रामके चरणोंमें मनको लीन किये बैठीथीं ऐसी दीन अवस्थामें जानकीको देख महावीरजी बड़े दुःखी हुए३

द्वितीय दर्शन।



(अशोकवाटिकामें जानकीका दर्शन)

"तरुपल्लवमहँ रहा लुकाई। करै विचार करौं का भाई ॥ १ ॥
तेहि अवसर रावण तहँ आवा। संग नारि बहु किये बनावा ॥२॥"
रावण—कह रावणसुनुसुमुखि सयानी। मंदोदरी आदिसबरानी ३
तवं अनुचरी करौं प्रणमोरा। एक बार विलोकु मम ओरा ॥४॥
"तृणधरि ओट कहति वैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही५"
सीता—सुनदशमुखखद्योतप्रकाशा। कबहुँकिनलिनीकराहिंविकाशा
शठ सूने हरि आनेसि मोहीं। अधम निलज्ज लाज नहिं तोहीं ७
रावण—सीता तैं ममकृत अपमाना। काटौं तव शिरकठिनकृपाना
नाहित सपदि मानुमम बानी। सुमुखिं होत नतु जीवनहानी॥९॥
सी०-श्यामसरोजदामसमसुन्दर। प्रभुभुजकरिकरसमदशकंधर
सोभुजकंठ कितवअसि घोरा। सुनशठअसप्रमाण प्रणमोरा११

द्वितीय दर्शन।

वृक्षके पत्तोंमें छिप रहे विचारने लगे क्या करूं ॥ १ ॥ उसी समय रावण बनाव किये संगमें अनेक स्त्री लिये आया ॥ २ ॥ रावण बोला हे सुमुखि सयानी! यह मन्दोदरी आदि जितनी रानी हैं ॥ ३ ॥ सब तेरी अनुचरी करदूंगा प्रण यहहै कि, एकबार मेरी ओर देखले ॥ ४ ॥ तिनके की ओटकर रामका स्मरण कर जानकी बोलीं॥५॥हे रावण! क्या पटबी-जनेके प्रकाशसे कमलिनी खिलती है ॥६॥ हे मूर्ख! तू मुझे सूनेमें हर-लाया है हे अधम निर्लज्ज! तुझे लाज नहीं आती ॥ ७॥ रावण बोला सीता तैंने मेरा अपमान किया है तेरा शिर कठिन तलवारसे काट लूंगा ॥८॥नहीं तो शीघ्र मेरी वाणी मान ले सुमुखि! नहीं तो जीवनकी हानि होती है ॥ ९ ॥ जानकी बोलीं हे रावण! श्यामकमलके दामके समान सुन्दर प्रभुकी भुजा हाथीकी सूंडके समान हैं ॥ १० ॥ या तो कंठमें वह

“[illegible] ॥१२”

राव०-कहसि सकल निशिचरी बुलाई।सीतहित्रास दिखावहु जाइ
मास दिवस महँ कहा न माना । तौ मैं मारब कठिन कृपाना १४

दोहा--“भवन गयउ दशकन्ध तब, यंहाँ निशाचरि वृन्द ।
सीतहि त्रास दिखावहीं, धरहिं रूप बहुमन्द ॥ ४ ॥

त्रिजटानाम राक्षसी एका । रामचरणरत निपुण विवेका ॥१॥”
त्रिज०-सबहि बुलाइ सुनायसि सपना।सीतहिसेइ करो हित अपना
स्वप्ने वानर लंका जारी । यातुधान सेना सब मारी ॥ ३ ॥
खर आरूढ नगन दशशीशा। मुण्डितशिर खंडितभुजवीशा४॥
इहि विधिसो दक्षिण दिशि जाई । लंका मनहु विभीषण पाई५॥
नगर फिरी रघुवीर दुहाई ।-तब प्रभु सीतहि बोलि पठाई ॥ ६

भुजा पडैंगी या यह तेरी तलवार पड़ैगी हे शठ ! मेरे प्रणका यह प्रमाण है ॥ ११ ॥ यह वचन सुन रावण मारने दौड़ा मन्दोदरीने नीति सुनाय समझाया कि स्त्री मारने योग्य नहीं है ॥ १२ ॥ सब राक्षसियोंको. बुलाकर कहा कि जाकर सीताको त्रास दिखावो ॥ १३ ॥ जो मासभरमें मेरा कहा न माना तो मैं कठिन कृपाणसे मारूंगा ॥ १४ ॥ (दोहार्थ)–यह कह रावण घर गया यहाँ राक्षसी अनेक मंद रूप धारणकर सीताजीको त्रास दिखाने लगीं ॥ ४ ॥

एक त्रिजटानाम राक्षसी रामके चरणोंमें प्रीति करनेवाली विवेक युक्त थी ॥ १ ॥ उसने सबको बुलाय एक स्वप्न सुनाकर कहा कि, सीताकी सेवा करके अपना हित करो ॥ २ ॥ स्वप्नेमें वानरने लंका जलाई है और राक्षसोंकी सब सेना मारदी है ॥ ३ ॥ रावण गदहेपर चढ़ा नंगा शरीर शिरमुंडा और बीसौं भुजासे खंडित है ॥४॥ इस प्रकारसे वह दक्षिण दिशामें गया और लंका मानो विभीषणने पाई है ॥ ५ ॥ नगरमें रामचन्द्रकी दुहाई फिरी तब प्रभुने जानकीको बुला भेजा ॥ ६ ॥

यह स्वप्ना मैं कहौं विचारी। होइहि सत्य गये दिन चारी॥ ७
"तासु वचन सुनकै सब डरीं। जनकसुताके चरणन परीं
दोहा-जहँ तहँ गईं सकल मिलि, सीताके मन शोच।
मास दिवस बीते मोहिं, मारिहि निशिचर पोच॥ ५॥"
सी०-त्रिजटा सन बोली करजोरी। मातु विपति संगिनितैं मोरी १
तजौंदेह करु बेगि उपाई। दुसहविरह अब सहा न जाई॥ २॥
आनि काठ रचि चिता बनाई। मातु अनल तुम देहु लगाई॥३॥
त्रि०-सुनत वचन पद गहि समुझावा। प्रभुप्रताप बल सुयशसुनावा
निशिनअनलमिलराजकुमारी। असकहि सो निजभवनसिधारी
सी०-सुनहुविनयममविटपअशोका। सत्यनाम करु हरु मम शोका६
नूतनकिसलयअनलसमाना। देहुअगिनि मम करहु निदाना ७
सोरठा-"कपि करि हृदय विचार, दीन्ह मुद्रिका डारि तब।
जनु अशोक अंगार, दीन्ह हर्ष उठिकर गहेउ॥ १॥

मैं विचारकर कहती हूँ कि, थोड़े दिनोंमेंही यह स्वप्न सत्य होगा॥ ७॥ उसके वचन सुनकर सब डरीं और जानकीके चरणोंमें पड़ीं॥ ८॥

दोहार्थ-और सब मिलकर जहां तहां चली गईं जानकीके मनमें शोच हुआ कि, महीनेभर पीछे पोचमति निशाचर मुझे मारैगा॥ ५॥ त्रिजटासे हाथ जोड़कर बोलीं हे माता! तुम विपत्तिमें मेरी संगति करनेवाली हो॥ १॥ मैं देह त्यागन करूंगी शीघ्र उपाय करो अब महाविरह सहा नहीं जाता॥ २॥ तुम काठ लाकर चिता बनाओ और पीछे उसमें अग्नि लगादो॥ ३॥ यह वचन सुन चरण पकड़कर समझाया प्रभुका प्रताप बल और सुयश सुनाया॥ ४॥ राजकुमारी! रातमें आग नहीं मिलैगी यह कह वह अपने स्थानको गई॥ ५॥ सीता बोलीं हे अशोकवृक्ष! मेरी विनय सुनो और अपना सत्य नामकर शोक हरो॥ ६॥ नवीन कोंपल अग्निके समानहैं अग्नि देकर मेरा अन्त करो॥७॥ (सोरठार्थ)-उससमय हृदयमें विचारकर महावीरने मुद्रिका डालदी मानो अशोकने अंगारा दिया प्रसन्न होकर उठाया॥ १॥

जब देखी मुद्रिका मनोहर । राम नाम अंकित अति सुन्दर १"
सी०--जीतिको सकै अजय रघुराई। मायातेअसिरची न जाई२
"सीता मन विचारकर नाना । मधुरवचन बोले हनुमाना ॥ ३ ॥
रामचन्द्र गुण वर्णन लागे । सुनतहि सीता कर दुख भागे ॥४॥"
सी०-श्रवणामृत जो कथा सुनाई।काहे न प्रगट होत सो भाई५॥
'तबहनुमन्तनिकटचलिगयऊ। फिरिबैठीमनविस्मयभयऊ६'
हनु०राम दूत मैं मातु जानकी।सत्यशपथकरुणानिधानकी ७
यह मुद्रिका मातु मैं आनी।दीन्ह राम तुम कहँ सहिदानी ॥८॥

ज़ब वह मनोहर अंगूठी देखी कि उसपर सुन्दर रामका नाम अंकित है ॥ १ ॥ तब व्याकुल हो बोलीं अजय रघुराजको कौन जीत सकता है और मायासे ऐसी नहीं रची जायगी॥२॥सीता अपने मनमें अनेक विचार करने लगीं तब महावीरजी मधुरवचन बोले॥३॥रामचन्द्रके गुण वर्णन करनेलगे सुन्तेही सीताके दुःख भागे और बोलीं ॥ ४ ॥ कानोंको अमृतरूप जिसने कथा सुनाई है भाई ! वह प्रगट क्यों नहीं होता ॥ ५ ॥ तब महावीरजी समीप चले गये उससमय विस्मित हो जानकी मुख फेरकर बैठगईं ॥ ६ ॥ तब महावीरजी बोले हे माता जानकी ! मैं रामका दूत हूं करुणानिधान रामकी सत्य शपथ है ॥ ७ ॥ हे माता ! यह

---

१ कवित्त घनाक्षरी–दृगन छुवावैं गंहि शीशपै चढावैं ताहि हृदय लगावैं बारम्बार दुलरावैं हैं ।
फेरि फेरि हे रै हेरि हेरिकै कपोल भेरैं भेरि कंठ फेरैं फेरि हेरि हुलसावै हैं ।
पीय गति बूझै बूझि बूझिकै अरूझै करजोरि जोरि कोरि कोरि विनय सुनावैं है ।
रसिकबिहारी पति मुद्रिका निहारी सीय छिन सुधिलावैं छिन प्रेममें भुलावै है ॥ १ ॥

२ राग केदार–हौं रघुवंशमणिको दूत ॥ टेक ॥ मातु मानु प्रतीत जानकि जानि मारुतपूत ॥ हौंर० ॥ मै सुनी बातैं अनैसी जे कहीं निशिचर नीच ॥ क्यों न मारै गाळ बैठो काल डाढनि वीच ॥ हौंर० ॥ निदरि अरि रघुवंशमणि लै जाउँ जो हठि आज ॥ डरौं आयसु भंगते अरु बिगरि है सुर काज ॥ हौंर० ॥ बाँधि वारिधि साधि रिपुदिन चारिमें दोउ वीर ॥ मिलहिंगे कपि भालुदल सँग जननि उर धर धीर ॥ हौंर० ॥ चित्रकूट कथा कुशल कहि शीश नायो कीश ॥ सुहृद सेवकनाथको लखि दई अचल अशीश ॥ हौंर० ॥ भये शीतल श्रवण तन मन सुने वचन पियूष ॥ दास तुलसी रही नयननि दरशहीकी भूख ॥ हौंर० ॥ १ ॥

सीता-नर वानरहि संग कहु कैसे। कही कथा संगति भइ जैसे९
दोहा-"कपिके वचन सप्रेम सुनि, उपजा मन विश्वास।
जाना मन क्रम वचन यह, कृपासिन्धु कर दास॥६॥"
अब कहु कुशलजाउँबलिहारी। अनुजसहितसुखभवनखरारी १
कोमल चित कृपालु रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥२॥
सहज बानिसेवकसुखदायक। कबहुँकसुरतिकरतरघुनायक३॥
कबहुँ नयन मम शीतलताता। होइहिनिरखि श्याम मृदुगाता४
हनु०--मातुकुशल प्रभुअनुज समेता। तवदुखदुखितसोकृपानिकेता
जननी जानि मानहु मन ऊना। तुमते प्रेम रामके दूना ॥६॥
राम वियोग कहा सुनु सीता। मोकहँ सकल भयउ विपरीता७॥

मुद्रिका मैं लाया हूं रामने तुमको पहँचान भेजी है॥८॥ जानकी बोलीं नरवानरकी संगति कैसे हुई तब सब कथा कही जैसे संगति हुई ॥९॥

दोहार्थ-कपिके वचन प्रेमसे सुनकर मनमें विश्वास हुआ और जाना कि यह मन वचन कर्मसे कृपासागर रामका दास है॥६॥

अब कुशल कहो बलिहारी जाऊं भ्रातासहित सुखके सागर प्रसन्न हैं॥१॥ वह कृपालु रघुराई तो कोमल चित्त हैं हे कपि! उन्होंने निठुरता क्यों धारण की है॥२॥ उनकी तो सहजसे यह बान है कि वह सेवकके सुख देनेवाले हैं कभी रामचन्द्र मेरी सुरत करते हैं॥३॥ हे तात! वह साँवले मृदुगातको देखकर कभी मेरे नेत्र शीतल होंगे॥४॥ महावीरजी बोले हे माता! प्रभु भाई सहित कुशल हैं वह कृपासागर तुम्हारे दुःखसे दुःखी हैं॥५॥ हे माता! मनमें दुःख मत मानो रामको तुमसे दूना प्रेम है॥६॥हे सीता! रामने कहाहै कि तुम्हारे वियोगमें मुझे सब विपरीतहोगये७

---

१ कवित्त घनाक्षरी-जबते वियोग भयो रावरे तबैते राम काहू तिय ओरहू न हेरैं नेह भारिकै।
नव फल फूल नारि देखैं जल नैन ढारि श्वासलै अधीर होत हाय प्यारी कारिकै।
पौढैं ना सुबैठैं भूमि साथरी अजिन शिला रसिकबिहारी अर्द्ध आसन उतारिकै।
खान पान होवे कछु आपतिहिलेत पाछे प्रेम युत प्रथम तिहारो भाग धारिकै॥१॥
मद मधु कंद मूल पल फल फूल तजे रैनं वन तंदुल सो अशन करात है।
वृश्चिक न दश श्वहि मसक निवारै अंग सतत विदेह ढंग विपुल रहात हैं।

जिहितरुरहौंकरत सो पीरा।उरग श्वास सम त्रिविध समीरा ८
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥९॥
सो मन सदा रहत तोहिं पाहीं। जानु प्रीति रस इतने माहीं१०॥
दोहा–निशिचरनिकर पतंग सम, रघुपतिबाण कृशानु।
जननी हृदयधीर धरु, जरे निशाचर जानु॥७॥
जो रघुवीर होत सुधिपाई। करते नहिं विलम्ब रघुराई॥ १॥
अबहिं मातु मैं जाउँ लिवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दुहाई२॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन सहित ऐहैं रघुवीरा ३
निशिचर मारि तुम्हैं लै जैहैं। तिहुँपुर नारदादि
०-हैं सब कपि मत तुम्हैंसमाना।यातधानभट२

जिस वृक्षके नीचे रहता हूँ सोभी पीर करता है तीन प्रकारकी पवन सर्पके श्वासके समान हैं॥ ८॥ हे प्रिया! मेरे और तेरे प्रेमका तत्त्व एक मेरा मन जानता है॥ ९॥ सो मेरा मन सदा तुम्हारे पास रहता है इतनेहीमें प्रीतिका रस जानो॥१०॥ (दोहार्थ)--राक्षससमूह पतंगके समान हैं रामचन्द्रके बाण अग्निके समान हैं हे माता! हृदयमें धीरज धारण करो राक्षसोंको भस्मीभूत जानो॥ ७॥

जो रामचन्द्रने सुधि पाई होती तो वह आनेमें देर नहीं करते॥१॥ हे माता! मैं अभी तुमको लिवा ले जाता पर रामदुहाई उनकी आज्ञा नहीं है॥२॥ हे माता! तुम कुछ दिनतक धीरज धारण करो कपियोंसहित श्रीरघुनाथजी आवेंगे॥ ३॥ राक्षसोंको मारकर तुमको ले जायँगे तीनों पुरमें नारद आदि यश गावेंगे॥ ४॥ सीता बोली हे पुत्र! क्या

सब निशि जागै बारबार अनुरागैं राम ध्यान तुव पागै छिन छिन अकुलात हैं १
रसिकविहारी कबौ पलक झपात तबै झझकि उठात हाय सीते विलपात हैं॥ २॥
गावै रावरेही गुण ध्यावै रावरेही रूप बंधुसे सुरावरीही चरचा चलावे हैं।
रसिकबिहारी रघुबीर ढिग आवै कोऊ तासों हठि रावरीही चर्चा चलावे हैं।
करै कछु काम लेत रावरो प्रथम नाम रावरी कथामें वसुयाम बिलमावे हैं।
परम विचित्राचित्र रावरौ सुपत्रनपै लिखि लिखि बार बार हृदय लगावे है॥ ३॥

मोरे हृदय परम सन्देहा । सुन कपि प्रगटकीन्ह निज देहा ॥६॥
"कनक भूधराकार शरीरा । समर भयंकर अतिरणधीरा ॥७॥
सीता मनभरोस तब भयऊ । पुनि लघुरूपपवनसुतलयऊ॥८"
सी०-अजर अमरगुणनिधिसुतहोहू ।करहिंसदा रघुनायकछोहू
महा०- । विख्याता
सुनहुमातु मोहिअतिशयभूखा।लागिदेखिसुन्दरफलरूखा ११
सी०-सुनु सुत करैं विपिन रखवारी। परमसुभट रजनीचरझारी
महा०-तिनकरभयमाता मोहिंनाहीं।जो तुमसुख मानहुमनमाहीं
दोहा-देखि बुद्धि बल निपुण कपि, कहेउ जानकी जाहु ।
रघुपति चरण हृदय धारि, तात मधुर फल खाहु ॥ ८॥
"चलेउ नाइ शिर
रहे तहाँ बहु भट रखवारे । कछु मारे कछु जाय पुकारे ॥२॥"

सब वानर तुम्हारे समान हैं राक्षस तौ बड़ेबली हैं ॥ ५ ॥ मेरे हृदयमें परम सन्देह है सुनकर महावीरजीने अपनी देह प्रगट की ॥६॥ सुवर्णके पर्वतके समान शरीर समरके बड़े भयंकर रणधीर हुए ॥ ७ ॥ तब सीताके मनमें भरोसा हुआ महावीरजीने फिर छोटासा रूप धारण किया ॥ ८ ॥ सीता बोली हे पुत्र! तुम अजर अमर गुणनिधान हो सदा रघुनाथजी तुमपर कृपा करैं ॥ ९ ॥ महावीर बोले हे माता! अब मैं कृतकृत्य होगया तुम्हारी अशीश अमोघ है यह जगतमें विख्यात है ॥ १० ॥ हे माता ! यह सुन्दर-फल वृक्षोंमें देखकर मुझे भूँख बहुत लगी है ॥ ११ ॥ सीता बोली हे पुत्र! बड़े २ योद्धा इसस्थानकी रखवाली करते हैं ॥ १२ ॥ महावीर बोले हे माता ! जो तुम मनमें सुख मानो तौ मुझे उनका भय नहीं ॥ १३ ॥

दोहार्थ-बुद्धिबलमें निपुण देखकर जानकी बोलीं जाओ और रामके चरण हृदयमें धरकर मीठे फल खाओ ॥ ८ ॥

शिरनवाय बागमें प्रवेश किया, फल खाये वृक्ष तोड़ने लगे ॥ १ ॥ वहाँ जो रखवारी योद्धा थे कुछ मारे कुछ जाकर पुकारे ॥ २ ॥

दूत–नाथ एक आवा कपिभारी। तेइँ अशोक वाटिका उजारी३
खायसि फल अरु विटप उपारे।रक्षक मर्दि मर्दि महि डारे ॥४॥
"सुनिरावण पठये भट नाना।तिनहिं देखि गरजा हनुमाना॥५॥
सब रजनीचर कपि संहारे । गये पुकारत कछु अधमारे ॥ ६ ॥
सुनि पठवा तेहि अक्षकुमारा । चला संग लै सुभट अपारा ॥ ७॥
आवत देखि विटप गति तर्जा।ताहि निपाति महाधुनिगर्जा ॥८॥
सुनि सुत वध लंकेश रिसाना । पठवा मेघनाद बलवानां ॥९॥"
रावण-मारेसि जनि सुत बाँधेसि ताही। देखौंकीशकहाँकरआही
"चला इंद्रजित अतुलितयोधा।बन्धुवधनसुनिउपजाक्रोधा११
ब्रह्मबाण तेहि कपि कहँ मारा। परतिहुबारकटक संहारा ॥१२॥
तेहि देखाकपि मूर्च्छितभयऊ।नागफाँस बाँधेसि लैगयऊ१३"
रावण-कह लंकेश कवनतैं कीशा।केहिके बल घालेसि वन खीशा

हे नाथ! एक बड़ा वानर आयाहै उसने अशोकवाटिका उजाडदीहै॥३॥ फल खाये और वृक्ष तोडदिये रक्षकोंको मर्दनकर भूमिमें डालदिया॥ ४॥ सुनकर रावणने अनेक योद्धा भेजे उनको देख महावीरजी गर्जे ॥ ५॥ कपिने सब राक्षस संहार कर दिये कुछ अधमरे पुकारते गये ॥ ६ ॥ सुन कर अक्षकुमारको रावणने भेजा वह बड़ी सेनाले चला ॥ ७ ॥ उसको आता देख महावीर वृक्ष लेकर दौड़े और मार बड़ी गर्जना करी ॥ ८ ॥ तब रावण पुत्रका वध सुनकर रिसाया, और बलवान मेघनादको भेजा और कहा ॥ ९ ॥ हे पुत्र! मारना नहीं बांधकर लाना देखूं कि, कहांका बंदर है ॥ १० ॥ महायोद्धा मेघनाद चला भाईका वध सुन बडा क्रोध हुआ ॥ ११ ॥ युद्ध करते हुए उसने कपिके ब्रह्मास्त्र मारा तब उन्होंने तीनोंवार वा गिरतेमें भी सेना संहार की ॥१२॥ जब उसने इनको मूर्च्छित देखा तब नागफांससे, बांधकर लेगया ॥ १३ ॥

(रावणकी सभामें महावीरका गमन)

रावण बोला हे वानर तू कौनहै किसके बलसे तैंने वाटिका उजाडी१४॥

कीधौंश्रवणसुनेसिनहिं मोहीं। देखौं अतिअशंक शठ तोहीं१५
मारेसिनिशिचरकेहिअपराधा।कहुशठतोहिंनप्राणकीबाधा १६
म०-सुनरावणब्रह्माण्डनिकाया।पाइजासुबलविरचितमाया १७
जाके बल विरंचि हरि ईशा। पालत हरत सृजत दशशीशा १८॥
[illegible] सहसानन। [illegible]
धरै जो विविध देह सुरत्राता। तुमसे शठन सिखावन दाता२०॥
हरकोदण्ड कठिन जेइँ भंजा।तोहिं समेत नृपदलमद गंजा २१
खर दूषण विराध अरु बाली।वधे सकल अतुलित बलशाली२२

दोहा--जाके बल लव लेशते, जितेउ चराचर झारि।
तासु दूत हौं जाहि की, हरि आनेहु प्रिय नारि॥ ९ ॥

जानौं मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लड़ाई ॥ १ ॥
खायउँ फल मोहिं लागी भूँखा। कपि स्वभावते तोरेउँ रूखा२॥

क्या तैंने मुझे कानोंसे नहीं सुना हे मूढ ! मैं तुझको बडा अशंक देखता हूं॥ १५ ॥ किस अपराधसे राक्षस मारे कह मूर्ख तुझको प्राणोंका डर नहीं ॥ १६ ॥ हनुमान्‌जी बोले हे रावण ! सुन जिसका बल पाकर यह माया सब ब्रह्माण्ड रचती है ॥ १७ ॥ जिसके बलसे ब्रह्मा विष्णु महेश पालन सृजन और संहार करते हैं ॥ १८ ॥ जिसके बलसे शेषजी गिरिकानन सहित भूमि धारण करते हैं॥ १९ ॥ जो देवताओंकी रक्षा करने और तुमसे मूर्खोंको शिक्षा देनेको अनेक देह धारण करता है ॥ २० ॥ जिसने शिवजीका कठिन धनुष तोडकर तुम्हारे सहित राजोंके दलका घमंड भंजन किया ॥ २१ ॥ खर दूषण विराध और वालि यह सब बडे बली जिसने मारे ॥ २२ ॥

दोहार्थ—तथा जिसके बलके लवलेशसे चर अचर सब तुमने जीते हैं तथा जिसकी तुम प्रियनारी हरलाये हो मैं उसीका दूत हूँ ॥ ९ ॥

मैं तुम्हारी प्रभुताई जानता हूं कि सहस्रबाहुसे तुम्हारी लडाई हुई थी ॥ १ ॥ भूँख लगनेसे मैंने फलखाये वानरी स्वभावसे वृक्ष तोडे ॥ २ ॥

सबके देह परमप्रिय स्वामी। मारहिं मोहिं कुमारग गामी ॥३॥
जिन्ह मोहिं मारा तेहि मैं मारा।तेहि पर बांधेउ तनय तुम्हारा४
देखहु तुम निज हृदय विचारी।भ्रम तजि भजहु भक्तभयहारी५
जाके डर अति काल डराई। जो सुर असुर चराचर खाई ॥६॥
तासों वैर कबहुँ नहिं कीजे। मोरे कहे जानकी दीजे ॥ ७ ॥

दोहा--प्रणतपाल रघुवंशमणि, करुणासिन्धु खरारि।
गये शरण प्रभु राखि हैं, तव अपराध विसारिं ॥११॥
मोह मूल बहु शूल प्रद, त्यागहु तुम अभिमान।
भजहु राम रघुनायकहि, कृपासिन्धु भगवान ॥ ११ ॥

रावण--बोलाविहँसि अधमअभिमानी।मिलाहमहिंकपिगुरुबड़ज्ञानी
मृत्यु निकट आई खल तोहीं।लागेसि अधम सिखावनमोहीं२

हे स्वामी! देह तो सबको परमप्रिय है मुझे कुमार्गगामी मारते हैं ॥३॥ जिसने मुझे मारा मैंने उसे मारा तिसपर तुम्हारे पुत्रने मुझे बांधा है ॥४॥ तुम अपने हृदयमें विचार देखो भ्रम त्यागकर भय हरनेवालेका भजन करो ॥ ५ ॥ जिसके डरसे कालभी डरता है जो सुर असुर चर अचरको खाजाता है ॥ ६ ॥ उससे कभी वैर मतकरो मेरे कहनेसे जानकी देदो॥७॥

दोहार्थ—खरके मारनेवाले रघुवंशमणि दीनोंपर रक्षा करनेवाले शरण जानेसे तुम्हारा अपराध विसार देंगे ॥ १० ॥ मोह अनेक दुःखोंको दूर करनेवाला है इससे तुम अभिमान त्याग दो और कृपासागर रघुनाथजीका भजन करो ॥ ११ ॥

तब महाअभिमानी रावण हँसकर बोला हमको तो यह कपि बडा ज्ञानी गुरु मिला है ॥१॥ हे खल! तेरी मृत्यु निकट आई है हे अधम! जो तू मुझे

---

१ कवित्त—देखि लंकनाथको निशंक कपि बोल्यो बैन छोंडि धर्म कीन्ह्यो है अधर्म कर्म भारीतू।
जनस्थान जायकै लुकायकै चुराई शठ लाजहि विहाय हारिल्यायो परनारी तू।
भयो जो सो भयो अब जनकसुताको लये प्रभु पाँय आसु परै दंत तृणधारीतू।
सकै नहिं राखि विधि हरि हर रामद्रोही मारिजै है हठि सीख मानिले हमारी तू॥ १॥

"उलटा होइ कहा हनुमाना। मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना३॥
सुनि कपि वचन बहुत खिसियाना। वेगि न हरहु मूढकर प्राना४
सुनत निशाचर मारन धाये। सचिवन सहित बिभीषणआये५॥
नाइ शीश करि विनय बहूता। नीति विरोध न मारिय दूता॥६॥"
बि०-आन दण्ड कछुकरिय गुँसाई। सबही कहा मंत्रभल भाई ७

दोहा-कपिकर ममता पूँछकर, सबहिं कहा समुझाइ।
पुान, पावक देहु लगाइ॥ १२

(यही करते हैं)

"बाजहिं ढोल देहिं सबतारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी॥ १॥
निबुकि चढ्यो कपि कनक अटारी। भईंसभीतनिशाचरनारी॥

भी सिखावन देने लगा॥ २॥ महावीरजी बोले मेरी तौ नहीं तेरी मृत्यु आई है, मैंने तेरी मतिका भ्रम प्रगट जानलिया॥ ३॥ महावीरजीके वचन सुनकर बहुत खिसियाया कि इस मूढके प्राण शीघ्रही हरो॥ ४॥ सुनकर राक्षस मारने दौड़े, उसी समय मंत्रियोंसहित बिभीषण आये॥५॥ शिर नवायकर बहुत विनय की हे प्रभु! नीतिसे विरोध होगा दूतको मत मारो॥६॥हे गोसाई! कुछ और दण्ड करो सबने कहा यह मंत्र भला है॥७॥

दोहार्थ-सबने समझाकर कहा कि वानरकी ममता पूंछपर अधिक होतीहै इससे कपडोंको तेलमें बोर पूंछमें लपेट उसमें आग लगा दो॥ १२॥

राक्षस यही करने लगे। ढोल बजने लगे सब ताली बजाने लगे नगरमें फेरकर पूंछमें आग लगादी॥ १॥उस समय महावीरजी कूदकर एक सुवर्णकी अटारीपर चढ़गये निशाचर और उनकी स्त्री भयभीत हुईं॥ २॥

---

१ कवित्त-सुनत सकोप दशकंठ कह्यो वीरनसों सुनत कहाहौं वेगि कीश वधि डारोरे।
उठतै भटन वैन बोलत बिभिषणभे दूत है अवध्य बैठो सकल गँवारोरे।
नीति निरधारौ नहिं मारौ नाथ दूतैकोपि इनसों उचारो अंगभग करि डारोरे।
मानि लंकराय,अतुराय या रजाय दीन्हौ पावक लगाय याकी पूँछ प्रिय जारोरे॥ १॥

दोहा--हरि प्रेरित तेहि अवसर, चलीं पवन उनचाश।
अट्टहास करि गरजेउ, कपि बढ़ि लाग अकाश॥१३॥"

(लंका दहन)

राक्षस चिल्लाते हैं महाबीर लंकाजलाते हैं।

"उलटि पुलटि लंका सब जारी।कूदि परा पुनि सिन्धु मँझारी१
दोहा--पूँछ बुझाई खोय श्रम, धरि लघुरूप बहोरि।
जनकसुताके आगे, ठाढ़ भयउ कर जोरि॥१४॥"

हनु०-मातु मोहिं दीजै कछुचीन्हा।जैसे रघुनायक मोहिंदीन्हा
चूड़ामणि उतारि तब दयऊ।हर्षसमेत पवनसुत लयऊ॥ २॥
सीता--कहेहु तात अस मोर प्रणामा।सबप्रकारप्रभुपूरणकामा
दीनदयालु बिरद सम्भारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥४॥
तात शक्रसुतकथा सुनायहु।बाणप्रतापप्रभुहि समुझायहु॥५॥

दोहार्थ—हरिकी प्रेरणासे उससमय ॥ ४९ ॥ पवन चलने लगी तब बड़े वेगसे हँसकर कपि आकाशको बढने लगे ॥ १३ ॥

उलट पुलटकर सब लंका जला दी और तब सागरमें कूद पड़े ॥१॥

दोहार्थ—पूंछ बुझाकर श्रम खोकर फिर छोटा रूप धारणकर जानकीके आगे हाथ जोड खडे हुए॥ १४ ॥

हे माता! मुझे कुछ चिह्न दीजिये जैसे रघुनायकने मुझे दिया था॥१॥ तब जानकीने चूडामणि उतारकर दी और महावीरजीने प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण की॥२॥ हे तात! मेरा प्रणाम कहकर विनय करना कि आप सबप्रकार पूर्ण-काम हो॥३॥ अपना दीनदयालु रूप विरद सँभारकर हे नाथ मेरा संकट हरो॥४॥ हे तात! इन्द्रपुत्रकी कथा सुनाकर बाणका प्रताप प्रभुसे समझाना५

---

१ कवित्त—बालधी विशाल विकराल ज्वाल जाल मानो लंक लीलवेको कालरसना पसारी है।
कैधौ भूमि वीथिका भरेहैं भूरि धूमकेतु वीररस वीर तरवारसी उघारी है॥
तुलसी सुरेश चाप कैधौ दामिनीकलाप कैधौ चली मेरु है कृशानसरि भारी है।
यातुधान यातुधानी अकुलानी कहै कानन उजारो अब अगनी प्रचारी है॥

मास दिवसमहँ नाथ नआवहिं।तो पुनिमोहिंनियतनहिंपावहिं६
कहुकपि केहि विधि राखौं प्राना । तुमहूं तात कहतअबजाना७
तुमहिं देखि शीतल भइ छाती।पुनिमोकहँ सोइदिनसोइराती८
दोहा–"जनकसुतहिं समुझाइ करि, बहु विधि धीरजदीन्ह ।
चरणकमल शिरनाइ करि, गमन राम पहँ कीन्ह॥१५॥"

तृतीय दर्शन ।



(महावीरजीका रघुनाथके निकट गमन)

"नाँघि सिन्धु यहि पारहि आवा।शब्दकिलकिलाकपिनसुनावा
मिले सकल अति भये सुखारी।तलफत मीन पाव जनु वारी॥२॥
तब मधुवनभीतर सब आये।अंगदसहित मधुर फल खाये॥३॥

जो एक महीनेतक स्वामी नहीं आये तो फिर मुझे जीती न पावैंगे ॥६॥
हे कपि ! कहो कैसे प्राण रक्खूँ तुम भी अब जानेको कहतेहो ॥७॥
देखकर छाती शीतल हुई अब मुझे फिर वही दिनरात है ॥ ८ ॥

दोहार्थ–महावीरजीने जानकीको समझाकर बहुत धीरज दिया और चरणकमंलोंमें शिरनवाय रामपर गमन किया ॥ १५ ॥

तृतीय दर्शन ।

समुद्र लाँघकर इसपार आये वानरोंको किलकिलाशब्द सुनाया॥१॥तब सब मिलकर बडे प्रसन्न हुए मानो तडफती मछलीको जल मिलगया॥२॥ तब सब मधुवनके भीतर आये और सबने अंगदसहित मीठे फल खाये ३॥

---

१ राग केदार–कबहुँ कपि।राघव आवाहिंगे ॥ टेक ॥ मेरे नयन चकोर प्रीतिवश राका शशिमुख दिखरावहिंगे ॥ कबहुँ० ॥ मधुप मराल मोर चातकहै लोचन बहुप्रकार धावहिंगे । अंग अंग छबि भिन्न २ सुख निराखि २ तहँ २ छावाहिंगे । कबहुँ० ॥ विरह अगिनि जरिरही लता ज्यो कृपादृष्टि जल पलुहावाहिंगे । निजवियोग दुख जानि दयानिधि मधुर वचन कहि समझावहिंगे ॥ कबहुँ० ॥ लोकपाल सुर नागज सब परे बदि कब मुकतावाहिंगे ॥ कबहुँ० ॥ रावणवध रघुनाथ विमलयश नारदादिमुनिजन गावहिंगे ॥ कबहुँ क० ॥ यह अभिलाष रैनि दिन मेरे राज्य बिभीषण कब पावाहिंगे ॥ तुलसिदास प्रभु मोहजनितभ्रम भेद बुद्धि कब बिसरावाहिंगे ॥ कबहुँ क० ॥

आइ सबन नायउ पद शीशा। मिलेउ सबन अतिप्रेम कपीशा ४"
जाम्बवन्त-नाथकाज कीन्हेउ हनुमाना। राखेस सकल कपिन कर प्राना।
सुनि सुग्रीव बहुरि उठि मिलेऊ। कपिन सहित रघुपति पै चलेऊ ६

दोहा—"प्रीति सहित भेंटे सकल, रघुपति करुणापुंज।
पूंछी कुशल कुशल अब, नाथ देखि पदकंज। ।"

इसुनु रघुराया

ताहि सदा शुभ कुशल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न तेहि ऊपर २
प्रभुकी कृपा भयउ सब काज। जन्म हमार सफल भा आजू॥ ३॥

मुखलाखउ

'सुनि कृपाल उठि हृदय लगाये। जानि सुभट र पति मन भाये
रा०—कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रक्षा सुप्रानकी

फिर सबने आय सुग्रीवके चरणोंमें शिर नवाया कपीश बडे प्रेमसे सबसे मिले ॥ ४ ॥ जाम्बवन्त बोले हे नाथ ! महावीरने सबकार्य किया और सब कपियोंके प्राण रक्खे ॥ ५ ॥ सुनकर सुग्रीव फिर मिले और सबके सहित रघुराजके पास चले ॥ ६ ॥

दोहार्थ—रघुनाथजी सबसे प्रेमपूर्वक मिले कुशल पूँछी तब सब बोले हे नाथ ! अब आपके चरणकमल देखकर सब कुशल है ॥ १६ ॥

जाम्बवन्त बोले हे रघुराज ! जिसपर आप दया करते हो ॥ १ ॥ उसे निरन्तर शुभ कुशल है सुर नर मुनि उसपर सब प्रसन्न रहते हैं ॥ २ ॥ प्रभुकी कृपासे सब काज हुआ हमारा जन्म आज सफल हुआ ॥ ३ ॥ हे नाथ ! पवनसुतने जो करणी की है वह लाख मुखसे भी वरणी नहीं जाती ॥ ४ ॥ सुनकर कृपालुने उठकर हनुमानको हृदयसे लगाया और सुभट जानकर रघुपतिके मनको भाये ॥ ५ ॥ हे तात ! कहो तो जानकी किस प्रकार अपने प्राणोंकी रक्षा करती रहती है ॥६॥

---

१ कवित्त घनाक्षरी—मेरी प्राणप्यारी तुम निज दृगदेखी सत्य भाषो वेगि नेकहू न शक हिय राखौ वीर।
कित हैं कहा हैं 'किहि देश किहि वेष माहिं ग्राम नाम ठाम धाम बरणि धरावो धीर।
रसिकबिहारी कही जनकदुलारी काह जीवै किमि बाला कैसे सहत वियोग पीर।
मेरे दिन रात विरहानल जरावे गात सपदि सिरावो बरसायकै सुबैन नीर ॥ १ ॥

हनू०-दोहा-नामपाहरू दिवसनिशि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निजपद यंत्रिका, प्राणजाहिं केहि वाट॥ १७॥
चलत मोहिं चूडामणि दीन्हीं। रघुपतिहृदयलाय तेहि लीन्हीं१
नाथ युगल लोचन भरि वारी।वचन कह्यो कछु [illegible] २
अनुज समेत गहेहु प्रभुचरणा।दीनबन्धु प्रणतारति हरणा॥३॥
मनक्रमवचन चरण अनुरागी।केहिअपराधनाथमोहिंत्यागी ४
अवगुण एक मोर मैं जाना।विछुरत प्राण न कीन्ह पयाना॥५॥
नाथ सो नयनन कर अपराधा। निसरतप्राणकराहिंहठि बाधा६
विरह अग्नि तनु तूल समीरा। श्वास जरै क्षणमाहिं शरीरा॥७॥

दोहार्थ–महावीर बोले तुम्हारा नाम दिनरात पहरा देताहै तुम्हारा ध्यान किवाड हैं नेत्रोंको अपने चरणोंमें लगाये रहती हैं यही ताला है. फिर प्राण किस वाटसे जायँ॥ १७॥

चलते समय मुझे चूडामणि दी रामचन्द्रने हृदयसे लगाई॥ १॥ हे नाथ! दोनों नेत्रोंमें जल भरकर जानकीने कुछ वचन कहे हैं॥ २॥ कि अनुजसहित प्रभुके चरण स्पर्श करना कि हे दीनबन्धु! आप दीनोंके दुःख हरनेवाले हो॥ ३॥ हे नाथ! मैं मन वचन कर्मसे आपके चरणोंकी अनुरागिणी हूं मुझे किस अपराधसे त्यागन किया है॥ ४॥ हां मैंने जाना कि मेरा एक अवगुण है कि आपके बिछुडते ही अपने प्राण नहीं दिये॥ ५॥ हे नाथ! सो यह नेत्रोंका अपराध है कि प्राणोंके निकलतेमें बाधा करते हैं॥ ६॥ तुम्हारा वियोग अग्नि है शरीर रुई है श्वास पवन है क्षणमें शरीर

---

१ पद–अतिहि अधिक दरशनकी आरति। राम बियोग अशोक विटपतर सीय निमेष कलपसम टारति॥ १॥ बार बार वर वारिज लोचन भरि भरि वरत वारि उर ढारति॥ मनहुँ विरहके सद्य घाय हिये लखि तकि २ धरि धीरत तारति॥ २॥ तुलसिदास यद्यपि निशि वासर छिन छिन प्रभु मूर निहारति॥ मिटति न दुसह ताप तउ तनुकी यह विचारि अंतर्गत हारति॥ ३॥

२ कवित्त–चूडामणि पाये रघुराज जू लगाये हिये भरि आये पदुम पलास युग नैनहै।
क्षण एक रही नहिं अंगनकी सुधि नेक थकित है रहे नाहिं बोलि आये वैन हैं॥
सुख दुख रोष उर भये हैं समान तीनों सुरति सम्हारि मिले कौशै मुद ऐन
मानो रूपवान वातसल्य दास्यरस्य दोऊ बार बार भूरि भरे चित चैन हैं॥ १॥

नयन श्रवैं जल निजहित लागी । जरै न पाव देह विरहागी ॥८
सीताकी अति विपति विशाला॥विना कहे भल दीनदयाला॥९॥
दो०-निमिष२करुणायतन, जाहिं कल्पशत बीति ।
बेगि चलिय प्रभु आनिये, भुजबल खलदल जीति१८॥
राम-सुनकपि तोहिं.समानउपकारी। नहिंकोउसुरनरमुनितनुधारी
प्रति उपकार करौं का तोरा॥सन्मुख होइ न सकत मन मोरा२॥
सुनु कपि तोहिं उऋण मैं नाहीं॥देखउँ करि विचार मनमाहीं ३
दो०-"सुनि प्रभुवचन विलोकि मुख, हृदय हर्ष हनुमन्त ।
चरण परेउ परमाकुल, त्राहि त्राहि भगवन्त ॥ १९ ॥
कपि उठाय प्रभु हृदयलगावा॥कर गहि परम निकट बैठावा१"
राम-कहुकपि रावण पालित लंका । केहि विधि दहेउ दुर्ग अतिबंका
शाखामृगकी अति मनुसाई । शाखाते शाखापर जाई ॥ ३ ॥

जलजाय ॥ ७ ॥ पर नेत्र अपने हितके निमित्त नीर त्यागते हैं इससे विरहाग्निसे देह नहीं जलने पाता ॥८॥ हे दीनदयालु ! सीतापर जो बड़ी विपत्ति है वह विना कहेही अच्छी है ॥९॥ (दोहार्थ)—हे करुणासागर ! एक२ पलक कल्पके समान बीतताहै आप शीघ्र चलकर राक्षसोंको मार जानकीको लाओ ॥ १८ ॥

रामचन्द्र बोले सुनो कपि तुम्हारे समान उपकार करनेवाला सुरनरोंमें कोई नहीं है ॥ १ ॥ मैं तुम्हारा प्रतिउपकार क्या करूं मेरा मन सन्मुख नहीं होसकता ॥ २ ॥ हे कपि ! मैं तुमसे उऋण नहीं हूं मनमें विचारकर देखलिया ॥३॥ (दोहार्थ)—प्रभुके वचन सुन उनका मुख देख महावीरके मनमें बडा हर्ष हुआ और त्राहि २ कहकर परम व्याकुलहो भगवान्‌के चरणोंमें गिरगये ॥ १९ ॥

कपिको उठाकर प्रभुने हृदयसे लगाया और हाथ पकड अति निकट बैठाया ॥ १ ॥ और बोले कहो कपि ! रावणसे पालित बडा बांका लंका दुर्ग तुमने कैसे जलाया ॥ २ ॥ हनूमान्‌जी बोले शाखामृगकी यही

नाँघिसिन्धुहाटकपुर जारा। निशिचरगणवधि विपिन उजारा४
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछुक मोरि प्रभुताई ॥५॥
दो०—ताकंहँ प्रभु कछु अगम नहिं, जापर तुम अनुकूल।
तव प्रताप वड़वानलहिं, जारिसकै खल तूल ॥ २० ॥
"तब रघुपति कपिपतिहि बुलावा। कहा चलैकरकंरहुबनावा १"
राम-अब विलम्बकेहिकारणकीजै। तुरत कपिन कहँ आयसुदीजै२
"हर्षि राम तब कीन्ह पयाना। शकुनभये सुन्दर शुभ नाना३॥
दो०—इहि विधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागरतीर।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु विपुल कपिवीर ॥२१॥"

चतुर्थ दर्शन।

रावण मन्दोदरी संवाद-(रावण बैठा है मंदोदरी खडी है)

"रही जोरिकर पतिपद लागी। बोली वचन नीतिरस पागी॥१॥"

वीरता है कि, एक शाखासे दूसरीपर जाना ॥ ३ ॥ सागर लांघकर सोनेका पुर जलाया राक्षसोंको मारकर वन उजाड़ा ॥ ४ ॥ हे रघुराई! सो सब आपका प्रताप है कुछ मेरी प्रभुताई नहीं है ॥ ५ ॥

दोहार्थ—हे प्रभु! जिसपर तुम अनुकूल हो उसको कुछ भी अगम नहीं है आपका प्रताप वड़वानल रुईरूप खलोंको भस्मकर सकता है ॥ २० ॥

तब रघुनाथजीने सुग्रीवको बुलाय कहा कि, अब चलनेका उद्योग करो ॥ १ ॥ अब विलम्ब किस कारण करते हो वानरोंको शीघ्र आज्ञा दो ॥ २ ॥ तब रघुनाथजीने प्रसन्न हो पयान किया और सुन्दर शकुन हुए ॥ ३ ॥ (दोहार्थ)—और इस प्रकार जाकर कृपानिधि सागरके किनारे उतरे भालु और कपिवीर जहाँ तहाँ फल खानेलगे ॥ २१ ॥

मन्दोदरी हाथ जोड़ पतिके चरणोंमें प्रणामकर नीतिके वचन बोली १

---

१ कवित्त—बोले हरषाय रघुनाथ वैन बार बार देइबेको आज तीनोंलोक तोहिं थोरा है।
तातेकै विचार मन माँह ठीक योंही दियो उऋण न तोसों सदा यही मन मोराहै ॥
प्रभुके वचन सुनि कीश करजोरि कहै काज तू प्रतापै कियो मोहि ना निहोराहै।
कीश सेवकाई तैसे प्रभु प्रभुताई लखि झुलै रंघुराज मन हरषि हिंडोराहै ॥ १ ॥

मं०—कन्तकर्षहरिसन परिहरहू। मोरकहाअतिहितचितधरहू २
समुझत जासु दूतकी करनी। श्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी ॥३॥
तासु नारि निज सचिव बुलाई। पठवहु कन्त जो चहहु भलाई ४
तवकुलकमल विपिन दुखदाई। सीतां शीत निशासम आई॥५॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार शम्भु अज कीन्हें६
दो०—राम बाण अहिगण सरिस, निकर निशाचर भेक ।
जौं लगि ग्रसत न तबहिं लगि, यतन करहु तजि टेक ॥२२॥
रा०—सभयस्वभावनारिकरसाँचा। मंगलमाहिं अमंगलराँचा१
जो आवै मर्कट कटकाई । जियहिं विचारे निशिचर खाई ॥२॥
कम्पहिं लोकप जाके त्रासा। तासु नारि सभीत बड़िहाँसा ॥३॥

(गया)

"बैठेउ सभा खबरि अस पाई। सिन्धुपार सेना सब आई ॥४॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मौन करि रहहू५॥

हे स्वामी ! रघुनाथसे विरोध त्यागो और मेरे वचन हितसे सुनो ॥२॥ जिसके दूतकी करनी समझकर राक्षसोंकी घरनियोंके गर्भ गिरजाते हैं॥३॥ उसकी स्त्रीको मंत्रीको बुलाय भेज दो हे कन्त ! जो भला चाहते हो ॥४॥ तुम्हारे कुलकमलरूप वनको सीता शीत रातके समान आई है ॥ ५ ॥ हे नाथ ! सुनो सीताके विना दिये शम्भु और अज तुम्हारे हितकारी नहीं होसकते ॥ ६ ॥

दोहार्थ—रामके बाण सर्पोंके समान हैं राक्षससमूह मेढक हैं वे जबतक ग्रास नहीं करते हैं तब तक हठ छोड़कर यत्न करो ॥ २२ ॥

रावणने कहा सत्य है स्त्रियें स्वाभाविक भीरु होतीहैं मंगलमें अमंगल करती हैं ॥ १ ॥ जो वानरोंकी सेना आवेगी तो बिचारे राक्षस खाकर जियेंगे ॥ २ ॥ जिसके भयसे लोकपाल कांपते हैं उसकी स्त्री भयभीत हो बड़ी हँसीकी बात है ॥ ३ ॥ यह कह सभामें जा बैठा, वहाँ खबर पाई कि, सागर पार सब सेना आगई ॥४॥ मंत्रियोंसे पूँछा उचित

राक्षस-जितहु सुरासुरतब श्रमनाहीं।नरवानरकेहिलेखेमाहीं६॥
"अवसर जानिविभीषणआवा।भ्राताचरण शीश तेहि नावा७॥"
विभीषण-जो कृपालुपूछेहुमोहिंबाता। मति अनुरूपकहबमैंताता
जो आपन चाहो कल्याना।सुयश सुमति शुभगति सुख नाना९
तो परनारि लिलार गुसांई। तजो चौथि चन्दाकी नांई ॥ १० ॥
दो०-काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक कर पन्थ।
सब परिहरि रघुवीरपद, भजहु कहहिं सदग्रंथ ॥ २३ ॥
तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहुके काला ॥ १ ॥
गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिन्धु मानुष तनुधारी ॥२॥
ताहि वैर तजि नाइय माथा। प्रणतारति भंजन रघुनाथा ॥३॥
देहु नाथ प्रभु कहँ वैदेही। भजहु राम विनु काम सनेही ॥४॥
शरणगयेप्रभु ताहु न त्यागा।विश्वद्रोह कृत अघ जेहिलागा ५॥

मत कहो वे सब हँसे कि मौन होरहो ॥ ५ ॥ जब कि सुर असुरोंके जीतनेमें श्रम नहीं हुआ तो नर वानर किस लेखेमें हैं ॥ ६ ॥ अवसर जानकर बिभीषणने आय भ्राताके चरणोंमें शिर नवाया ॥ ७ ॥ बिभीषणने कहा हे कृपालु ! जो मुझसे पूछते हो तो मैं अपनी मतिके अनुसार कहता हूं ॥ ८ ॥ जो तुम अपना भला, सुमति, अच्छी गति और अनेक सुख चाहते हो ॥ ९ ॥ तो हे गोसाईं ! भादोंकी चौथके चन्दाके समान पराई स्त्रीका मुख देखना त्यागन करो ॥ १० ॥

दोहार्थ-हे नाथ! काम क्रोध मद लोभ यह सब नरकके पंथ हैं सबको छोड़ रघुवीरके चरणोंको भजन करो यह सद्ग्रन्थ कहते हैं ॥ २३ ॥

हे तात ! रघुनाथजी नर भूपाल नहीं हैं वह भुवनेश्वर कालके भी काल हैं ॥ १ ॥ गो द्विज धेनु देवताओंके हितके निमित्त कृपासागरने मनुष्यका शरीर धारण किया है ॥ २ ॥ उनको वैर त्याग माथा नवाओ रघुनाथ दीनोंका दुःख दूर करनेवाले हैं ॥ ३ ॥ हे नाथ! प्रभुको जानकी देदो वह विनाही कारण स्नेह करते हैं उनका भजन करो ॥ ४ ॥ शरण जानेपर

जासुनामत्रयताप नशावन।सो प्रभुप्रगटसमुझ जिय रावन॥६॥
दो०-बार बार पद लागौं, विनय करौं दशशीश।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोशलाधीश॥ २४॥
माल०-तातअनुजतवनीतिविभूषण।सोइउरधरहुजोकहतविभीषण
रावण-रिपुउत्कर्षकहत शठदोऊ।दूर न करहु यहाँते कोऊ२॥
विभी.-सुमतिकुमतिसबकेउररहई।नाथपुराणनिगमअसकहई
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना४
तव उर कुमति बसी विपरीती।हित अनहित मानत रिपु प्रीती५
दोहा-तातचरण गहि मांगौं, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु रामकहँ, अतिहित होइ तुम्हार॥ २५॥
रावण-जियसिसदाशठमोरजिआवा। रिपुकरपक्षसदातोहिंभावा१
कहसि न खल असकोजगमाहीं।भुजबल जिहि जीता मैं नाहीं२

तो प्रभुने विश्वद्रोह करनेवाले पापीको भी नहीं त्यागा॥ ५॥ जिसका नाम तीनों तापको नाशकरता है वही प्रभु प्रगट हैं हे रावण! यह समझो॥६॥

दोहार्थ-हे दशशीश! बार बार पद लगकर विनय करताहूं मान मोह मद त्यागनकर कोशलाधीशका भजन करो॥ २५॥

मालवन्त बोला हे तात! तुम्हारे भ्राता नीतिके गहने हैं जो बिभीषण कहते हैं सो मानो॥१॥ रावण बोला दोनोंही शत्रुका उत्कर्ष करते हैं यहां कोई है जो इनको दूर करो॥२॥बिभीषण बोला सुमति कुमति सबके हृदयमें रहती है हे नाथ! ऐसा पुराण और शास्त्र कहते हैं॥३॥ जहां सुमति है वहां अनेक सम्पत्ति हैं जहां कुमति है वहां अन्तमें विपत्ति है॥४॥ तुम्हारे मनमें विपरीत कुमति बसी है जो हितको अनहित मान शत्रुसे प्रीति मानते हो॥५॥

(दोहार्थ)-हे तात! चरण पकड़कर मांगताहूं मेरा प्यार रक्खो रामको सीता दो तुम्हारा मंगल होगा॥ २५॥

रावण बोला हे शठ! सदा मेरे जियानेसे जीता है शत्रुका पक्ष सदा तुमको भाता है॥ १॥ अरे मूर्ख! कह तो ऐसा कौन जगत्में है जिसको

ममपुरवासि तपसिन सन प्रीती।शठमिलुजाहिताहिकहुनीती ३
"अस कहि कीन्हेसिचरणप्रहारा।अनुज गहेपद बारहिंबारा४"
बि०-तुमपितुसरिस भलेमोहिंमारा।रामभजेहित होइतुम्हारा५
"सचिव संगलै नभपथगयंऊ।सबहिंसुनायकहतअसभयऊ६"

दोहा-राम सत्य संकल्प प्रभु, सभा कालवश तोरि।
मैं रघुनायक शरण अब, जाउँ देहु जनि खोरि ॥ २६ ॥

"यहि विधि करत सप्रेम विचारा। आयउसपदिसिन्धुकेपारा१

मैंने अपनी भुजाके बलसे न जीता हो॥२॥मेरे पुरमें निवासकर तपस्वियोंसे प्रीति करता है हे शठ! उन्हींसे जाकर मिल और उन्हींसे नीति कह ॥३॥ यह कह चरणप्रहार किया छोटे भ्राताने बारंबार चरणस्पर्श किये ॥४॥ तुम पिताके समान हो मुझे मारा अच्छा किया रामके भजनसे तुम्हारा मंगल होगा ॥ ५ ॥ यह कह मंत्रियोंको साथ ले आकाशमार्गमें गया, सबको सुनाकर ऐसा कहने लगा ॥ ६ ॥ (दोहार्थ)-राम तो सत्यसंकल्प हैं तेरी सभा कालवश है मैं अब रघुनाथजीकी शरण जाता हूं मुझे दोष मत दीजे। ॥ २६ ॥

इसप्रकार कह रामके दर्शनका प्रेमपूर्वक विचार करता शीघ्रही साग-

१ कवित्त घनाक्षरी-तब कछु वीरता न काहू ते बनैगी नेक जब कपि भालुवीर धाय आय जूटैंगे।
ताछिन बचैना कोउ भागेहू त्रिलोक माहिं जाही छिन राम बाण पन्नगसे छूटैंगे।
रावव विरोधी यातुधानके रहैंना प्राण सहित समाज राज साज सब खूटैंगे।
रसिकविहारी सिय दीनेही भलीहै वात नतु बहु मुड दधिकुंड सम फूटैंगे ॥ १ ॥

२ कवित्त घनाक्षरी-सुंदर ललाम सुखधाम अभिराम अति सेय वसुयाम उर आनंद बगारिहौ।
ऊरध कमल वज्र अंकुशादि चिह्न सबै परसि प्रमोद पाय शोक श्रम टारिहौ।
रसिकबिहारी रज नैनन लगाय नित लोचन सिराय निज जनम सुधारिहौ।
नाथ है अनाथनके ऐसे रघुनाथजूके दृग भरि आज पदपकज निहारिहौ ॥ १ ॥
मेटत सकल दुख द्वंद भ्रम फंद घने रहत अमद सुखकन्द छवि पेखिहौं।
जाहि लखि कोटि चद होतहैं दुचंदमद ताहि मैं विलोकों धन्य सुकृति विशेषिहौ ॥
दरशत भूलैं छलछंदके प्रबध सबै रसिकविहारी युग पल सम लेखिहौ ॥
दशरथ नंदहैं अनंदके अनंददानि आजु रघुचंदजीको मुखचंद देखिहौ ॥ २ ॥
आयहै लषण कपिरायहैं सुभाय भले पायके रजाय धाय बेगही बुलाय है।

ताहि राखि कपिपति पहँ आये। समाचार सब जाइ सुनाये॥२॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दशानन भाई॥ ३ ॥
कह प्रभु सखा बूझिये काहा। कहै कपीशसुनहु नरनाहा॥४॥"
सुग्री :-जानि
भेद हमार लेन शठ आवा। राखिय बांध मोहिं असभावा ६॥
राम-सखा नीति तुमनीक विचारी।ममप्रण शरणागतभयहारी॥

दोहा-शरणागतको जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पामर पापमय, तिनहिं विलोकत हानि॥२७॥

कोटि विप्रवध लागहि जाहू। आये शरण तजौं नहिं ताहू॥१॥

रके पार आया॥ १॥ वानर उसे रख सुग्रीवपर आये और समाचार सुनाये॥ २॥ सुग्रीव बोला हे रघुराज! रावणका छोटा भाई मिलने आया है॥ ३॥ श्रीरामचन्द्र बोले सखा फिर क्या पूछते हो सुग्रीव बोले हे नरनाह! सुनो॥ ४॥ राक्षसकी माया नहीं जानी जाती यह कामरूप जाने क्यों आया है॥ ५॥ यह शठ हमारा भेद लेने आया है मेरा मत यह है इसे बांधलो॥ ६॥ राम-हे सखा! तुमने भली नीति विचारी पर मेरा प्रण है शरणागतका भय दूर करता हूं॥ ७॥

दोहार्थ-जो अपना अनहित जानकर शरणागतको त्यागते हैं वे मनुष्य पापमय हैं उनके दर्शनसे हानि है॥ २७॥

कोटि विप्रोंका वध किसीको लगा हो तौभी शरण आयेपर उसे नहीं

देखि रघुराय मुसकायकै बढाय प्रीति सुख सरसाय मीठे वचन सुनाय हैं।
रसिकविहारी कृपा लायहै दिवाय अभै मोद उमगाय तनु तपन सिरायहैं।
मुख दरशाय करकंज परसाय शीश कोशल किशोर आज मोहिं अपनायहै॥ ३॥

१ सवैया-एकहि वेर कहौं सुकहौ कहिकै पुनि और को और न भाखौं॥
कीन्हीं कृपा जेहि पै तेहि पै अपराध निहारि न रचहु लाखौ।
जाहि लिये गहिकै अपनाय तिन्है रसिकेश न भूलिहु नाखौं॥
लाओ कपीश बिभीषणको करि देउँ अभय शरणागत राखौं॥ १॥

सन्मुख होइ जीव मोहिं जबहीं। जन्मकोटि अघ नाशौं तबहीं २
पापवन्तकर सहज स्वभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ ३
जोपै दुष्ट हृदय सो होई। मोरे सन्मुख आव कि सोई ॥ ४ ॥
निर्मलमन जन सो मोहिं पावा। मोहिं कपट छल छिद्र न भावा ५
भेद लेन पठवा दशशीशा। तबहुँ नकछु भय हानि कपीशा ६॥
जगमहँ सखा निशाचर जेते। लक्ष्मण हनहिं निमिष महँ तेते ७॥
जो सभीत आवा शरनाई। राखिहौं ताहि प्राणकी नाईं ॥ ८ ॥

दोहा-उभय भांति लै आवहु, हँसिकह कृपानिधान।
जयकृपालु कहिकपि चले, अंगदादि हनुमान ॥ २९ ॥

(विभीषणको लाते हैं)

बिभी०-नाथदशाननकर मैं भ्राता। निशिचर वंश जनम सुरत्राता १

दोहा-श्रवण सुयश सुनि आयऊँ, प्रभु भंजन भय भीर।
त्राहि त्राहि आरतिहरण, शरण सुखद रघुवीर ॥ २९ ॥

त्यागूँगा ॥ १ ॥ जबही जीव मेरे सन्मुख होगा तबहीं कोटि कल्पके पाप नाश करूंगा ॥ २ ॥ पापीका तो यह सहज स्वभाव है कि उसको मेरा भजन भला नहीं लगता ॥ ३ ॥ जो दुष्टहृदय होगा वह मेरे सन्मुख नहीं आवैगा ॥ ४ ॥ निर्मलमनके भक्तही मुझे पासक्ते हैं मुझे कपट छल छिद्र भला नहीं लगता ॥ ५ ॥ हे सुग्रीव जो रावणने भेद लेने भेजा है तौ भी कुछ भय हानि नहीं ॥ ६ ॥ हे सखा ! जगत्में जितने राक्षस हैं उतनोंको लक्ष्मण एक पलमें मार सकते हैं ॥ ७ ॥ और जो भयसे शरणमें आया है तौ प्राणके समान उसे रक्खूंगा ॥ ८ ॥ (दोहार्थ)-दोनोंही प्रकारसे लेआओ यह बात रामने हँसकर कही, कारण कि कृपानिधान हैं हे कृपालु ! आपकी जय हो ऐसा कह अंगदादि हनूमान चले ॥ २८ ॥

बिभीषण (आकर) हे नाथ मैं रावणका भाई हूं, हे सुररक्षक ! मेरा निशाचर वंशमें जन्म है ॥ १ ॥ (दोहार्थ)-हे प्रभु ! आप संसारका भय दूर करते हो, मैं आपका यश सुनकर आया हूं हे शरणागतोंको सुखदेनेवाले !

(बिभीषण दण्डवत करता है)

"दीनवचनसुनि प्रभु मनभावा।भुजविशालगहिहृदयलगावा१"
राम-कहु लंकेश सहितपरिवारा।कुशल कुठाहर बास तुम्हारा२
खलमण्डली बसहु दिनराती। सखाधर्म निबहैकेहि भांती ॥३॥
बिभी०-अबपददेखिकुशलरघुराया।जोतुमकीन्ह जानिजनदाया
अबमैंकुशल मिटे भय भारे।देखि राम पद कमल तुम्हारे ॥५॥
म कृपालु जापर अनुकूला। ताहि न व्याप त्रिविध भवशूला६

दुःखियोंके दुःख दूरकरनेवाले रघुवीर मेरी रक्षा करो रक्षा करो ॥ २९ ॥
यह दीनवचन सुन प्रभु प्रसन्न हुए और बड़ी भुजाओंसे ग्रहणकर हृदयसे लगाया ॥ १ ॥ हे लंकापति! कहो परिवार सहित कुशल हो तुम्हारा निवास बडी कुठौर है ॥ २ ॥ दिनरात खलमण्डलीमें निवास करते हो, हे सखा! धर्म किस प्रकार निभताहै ॥ ३ ॥ बिभीषण—हे रघुराज! आपके पद देखकर कुशल हुई जो तुमने अपना भक्त जान दयाकी ॥४॥ अब मैं कुशल हुआ मेरे भय मिटगये हे राम! तुम्हारे चरणकमल देखे॥५॥ हे कृपालु! तुम जिसपर अनुकूल रहतेहो उसे तीन प्रकारके संसारके ताप नहीं व्यापते ॥ ६ ॥

---

१ राग केदारो—दीनहित बिरद पुराणन गायो । आरत बन्धु कृपालु मृदुलचित जानशरण हौं आयो ॥ तुमरे रिपुको अनुज बिभीषण वंश निशाचर जायो । सुन गुण शील स्वभाव नाथको मैं चरणन चितलायो॥ जानत प्रभु दुख सुख दासनके ताते कहि न सुनायो । कर करुणा भर नयन विलोको तब जानों अपनायो ॥ वचन विनीत सुनत रघुनायक हँसकर निकट बुलायो । भेंटयो हरि भर अंक भरत जिमि लंकापति मनभायो ॥ करपकज शिर परस अभय कियो जन परहेतु दिखायो।तुलसीदास रघुवीर भजन कर को न अभयपदपायो१॥

राग धनाश्री । सत्य कहौं मेरो सहज स्वभाऊ । सुनो सखा कपिपति लंकापति तुमसों कहा दुराऊ ॥ सब विधि दीन हीन अति जडमति जाको कतहुँ न ठाऊ । आए शरण भजो न तजो तिहिं यह जानत ऋषिराऊ ॥ जिनको हौं हित सब प्रकार चित नाहिंन और उपाऊ । तिन हितलागि धर देह करों सब डरों न सुयश नशाऊ ॥ पुनि पुनि भुजा उठाय कहतहौ सकल सभापति याऊ । नाहिन कोउ प्रिय मोहिं दास सम कपट प्रीति बहजाऊ ॥ सुन रघुपतिके वचन बिभीषण प्रेममगन मन चाऊ । तुलसीदास तज आश त्रास सब ऐसे प्रभुको गाऊ ॥ १ ॥

दोहा-अहोभाग्य मम अमित अति, राम कृपा सुखपुंज।
देखउँ नयन विरंचि शिव, सेव्य युगलपदकंज ॥ ३० ॥

राम-सुनु लंकेश सकल गुण तोरे। तातेतुम अतिशयप्रियमोरे १॥
"पदअम्बुज गहि वारहिं बारा। हृदय समात न प्रेम अपारा २॥"
विभीषण-सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रणतपालउर अन्तर्यामी
उर कछु प्रथम वासना रही। प्रभुपद प्रीति सरित सो बही॥४॥
अब कृपालु निजभक्ति पावनी। देहु दयाकर शम्भु भावनी॥५॥
राम-"एवमस्तु कहिप्रभुरणधीरा। माँगातुरत सिन्धुकरनीरा६"
यदपि सखा तोहिं इच्छा नाहीं। मम दर्शन अमोघ जगमाहीं ७
"अस कहिरामतिलकतेहिसारा। सुमनवृष्टिनभ भयउ अपारा"
सुनु कपीश लंकापति वीरा। केहि विधि उतरिय जलधि गँभीरा
वि०-कहलंकेश सुनुहुरघुनायक। कोटिसिन्धुशोषै तवसायक१०

दोहार्थ-अहो मेरे बड़े भाग्यहैं जो रामकी कृपा सुखकी पुंजता प्राप्त हुई और ब्रह्मा शिवसे सेवित दोनों चरणकमलोंका दर्शन किया ॥ ३० ॥

राम-हे लंकेश! तुममें सबही गुण हैं इससे तुम मेरे परमप्रिय हो॥१॥ यह सुन बिभीषणने बारबार चरण गहे और हृदयमें प्रेम नहीं समाता और बोला ॥ २ ॥ हे चराचरके स्वामी देव! सुनो आप दीनोंके पालक और हृदयकी जानते हो ॥ ३ ॥ पहले तो कुछ हृदयमें वासना रही वह आपके चरणोंकी प्रीतिरूपी नदीमें बहगई ॥ ४ ॥ अब तो हे कृपालु! अपनी पवित्रभक्ति जो शिवके मनको भाती है सो दो ॥ ५ ॥ यही होगा यह कह प्रभु रणधीरने कहा समुद्रका जल लाओ ॥६॥ हे सखा! यद्यपि तुमको इच्छा नहीं है पर जगतमें मेरा दर्शन अमोघ है ॥ ७ ॥ यह कह रामने बिभीषणको तिलक किया और आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई ॥ ८ ॥ राम-हे सुग्रीव! हे लंकापति वीर! यह गंभीरसागर किसप्रकार उतरै ॥ ९ ॥ बिभीषण बोले हे राम! आपका तो बाण कोटि सागर शोष

यद्यपि तदपि नीति अस गाई। विनय करिय सागर पहँ जाई ११
दोहा-प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहहि उपाय विचारि।
विनु प्रयास सागर तरहिं, सकल भालु कपि धारि ॥ ३१ ॥
लक्ष्मण-नाथ दैवकर कवन भरोसा। सोखिय सिन्धु करियमनरोसा१
कादर मनकर एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ॥ २ ॥
"सुनत विहँसि बोले रघुवीरा। ऐसेइ करब धरहु मनधीरा ॥३॥
प्रथम प्रणाम कीन्ह प्रभु जाई। बैठे तट पुनि दर्भ डसाई ॥ ४ ॥
जबहिं विभीषण प्रभुपहँ आये। पाछे रावण दूत पठाये ॥ ५ ॥
रिपुका दूत कपिन जब जाना। ताहि बाँधि कपिपतिपहँ आना६
कह सुग्रीव सुनहु सब वनचर। अंग भंग करि पठवहु निशिचर ७
सुनि सुग्रीव वचन कपि धाये। बाँधि कटक चहुँ पास फिराये ८॥
बहुप्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे ९॥"
राक्ष०-जोहमारहरनासाकाना। तेहि कोशलाधीशकर आना१०

सकता है ॥ १० ॥ पर तो भी यही नीति है कि चलकर सागरसे विनय करो ॥ ११ ॥ (दोहार्थ)-हे प्रभु ! सागर तुम्हारा कुलगुरु है विचार कर कोई उपाय कहेगा जिससे विना परिश्रम भालु कपि पार होजायँगे ॥३१॥

लक्ष्मण-हे नाथ ! दैवका क्या भरोसा है मनमें रोषकर सागरको सोख लीजिये ॥ १ ॥ यह तो कादरोंके मनका आधार है दैव दैव आलसी पुकारते हैं ॥ २ ॥ सुनकर रघुनाथजी बोले ऐसाही करेंगे मनमें धीरज धरो ॥ ३ ॥ यह कह सागरके समीप जाय कुश बिछाय बैठे ॥ ४ ॥ जभी विभीषण प्रभुके पास आये पीछे रावणने दूत भेजे ॥ ५ ॥ शत्रुका दूत जानकर वानर उन्हें बांध कपीशपर लाये ॥ ६ ॥ सुग्रीव बोले हे वानरो ! सुनो अंगभंगकर इन दूतोंको भेजो ॥ ७ ॥ सुग्रीवके वचन सुन वानर चले और उन्हें बांधकर कटकके चारों ओर फिराया ॥ ८ ॥ और फिर बहुत प्रकारसे मारने लगे दीन पुकारनेसे भी नहीं त्यागा ॥ ९ ॥

क्षस-जो हमारी नाक कान काटै उसे कोशलाधीशकी आन है ॥१०॥

"सुनिलक्ष्मणतेहिनिकटबुलाई।दया लागि हँसिदीनछुड़ाई ११
ल०-रावणकरदीन्हेउयहपाती।लक्ष्मणवचनबांचकुलघाती १२
दोहा–कहेउ मुखागर मूढ सन, मम सन्देश उदार।
सीता देहु मिलहु न तो, आवा काल तुम्हार॥ ३२॥
"तुरत नाइ लक्ष्मण पद माथा। चला दूत वर्णत गुणगाथा॥१॥

(रावणकी सभा)

रावण-विहँसिदशाननपूँछासिबाता।कहसिनशुकआपनिकुशलाता
पुनि कहु कुशल बिभीषण केरी। जासु मृत्यु आई अतिनेरी३
करतराज्य लंका शठ त्यागा। होइहि यव करि कीट अभागा४
पुनि कहु भालु कीश कटकाई।कठिन काल प्रेरित चलि आइ ५
तिनके जीवनकर रखवारा। भयउ मृदुलचित सिन्धु विचारा ६
कहु तपसिनकर बात बहोरी।जिनके हृदय त्रास बड़ मोरी॥७॥

सुनकर लक्ष्मणने समीप बुलाया और दयाकर हँसकर छुडा दिया ॥ ११ ॥ यह पत्री रावणके हाथमें देकर कहना हे कुलनाशक यह लक्ष्मणके वचन बांच ॥ १२ ॥ (दोहार्थ)--और उस मूर्खसे मेरा यह उदार संदेशा मुखसे भी कहदेना सीता देकर शीघ्र मिलो नहीं तो तुम्हारा काल आया है ॥ ३२ ॥

तुरत लक्ष्मणके चरणोंमें शिर नवाय दूत गुणोंको वर्णन करता चला १॥ हँसकर रावणने कहा शुक अपनी कुशल क्यों नहीं कहता ?॥ २ ॥ फिर बिभीषणकी कुशल कह जिसकी मृत्यु बहुत समीप है ॥ ३ ॥ मर्खने लंकाका राज्य त्यागदिया अब अभागा यवका कीड़ा होजायगा ॥ ४ ॥ फिर भालु कीशकी सेनाका वर्णन करो जो कठिन कालकी प्रेरणासे चली आई है ॥ ५ ॥ उनके जीवोंका रखवाला कोमलचित्त विचारा समुद्र हुआ है ॥ ६ ॥ फिर तपस्वियोंकी बात कहो जिनके हृदयमें मेरा बड़ा भय है ॥ ७ ॥

दोहा-भई भेंटकी फिरि गये, श्रवण सुयश सुनि मोर।
कहसि न रिपुदल तेजबल, कस चकित चित तोर ३३॥
शुक-नाथ कृपाकरि पूछहु जैसे। मानहु वचन क्रोध तजि तैसे ॥ १ ॥
मिला जाइजब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहिसारा २
रावण दूत हमहिं सुनि काना। कपिन बांधि दीन्हें दुख नाना॥ ३॥
श्रवण नासिका काटन लागे। राम शपथ दीन्हीं तब त्यागे॥ ४॥
पूछेहु नाथ कीश कटकाइ। वदन कोटिशत वरणि न जाई ॥५॥
नानावरण भालु कपि धारी। विकटानन विशाल भयकारी॥६॥
जेइ पुर दहेउ वधेउसुततोरा। सकल कपिन मह तेहिबल थोरा ७
अमित नाम भट कठिनकराला। विपुलवरण तनु तेज विशाला ८
दोहा-द्विविद मयन्द नील नल, अंगदादि विकटासि।
दधिमुखकेहरि कुमुदगव, जाम्बवन्त बलराशि ॥ ३४ ॥

दोहार्थ-तुम्हारी भेंट हुई कि वे मेरा यश सुनकर लौटगये रिपुका दल तेज बल क्यों नहीं कहता तेरा चित्त क्यों चकित होरहा है ॥ ३३ ॥

हे नाथ ! जैसे कृपाकर पूछते हो वैसे क्रोध त्याग वचन मानो॥ १॥ जभी तुम्हारा लघुभ्राता उनसे जाकर मिला जाते ही रामने उसको लंकाराज्यका तिलक कर दिया ॥ २॥ हमें तुम्हारा दूत जानकर वानरोंने बांधकर बडे २ दुःख दिये ॥ ३ ॥ वे नाक कान भी काटते थे पर रामकी शपथ दिवानेसे छोड़ा ॥ ४ ॥ हे नाथ ! जो वानरोंकी कटकाई पूँछते हो वह तो कोटिसौमुखसे भी नहीं कही जायगी ॥ ५ ॥ अनेक वर्णके भालु और कपि हैं विकट मुख बडे भयदाई हैं ॥ ६ ॥ जिसने नगरको जलाकर तुम्हारे पुत्रको मारा सब बन्दरोंमें उसको थोड़ा बल है ॥ ७ ॥ योद्धा बड़े कठिन कराल हैं उनके अनेक नाम हैं अनेक वर्णके शरीरमें बड़ा तेज है ॥ ८ ॥ (दोहार्थ)-द्विविद, मयन्द, नील, नल, अंगद, विकटास, दधिमुख, केहरि, कुमुद, गव, जाम्बवन्त यह बलके समूह हैं ॥ ३४ ॥

ये कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटि गनै को नाना॥१

ना दशकन्धर। पद्म अठारह यूथप बन्दर॥२॥

महँ सो कपि ना तहि ३

राम तेज बलबुधि विपुलाई। शेष सहस शत सकहिं न गाई ४॥

तासु वचन सुनि सागर पाहीं। माँगत पन्थ कृपा मन माहीं॥६॥

रावण-सुनत वचन विहँसा दशशीशा॥जो अस मति सहायकृत कीशा॥

हठाई

मूढ़ मृषा का करसि बड़ाई। रिपु बल बुद्धि थाह मैं पाई॥ ९॥

सचिवसभीतविभीषणजाके। विजयविभूतिकहाँलगिताके१०॥

शुक-रामअनुज दीन्हींयहपाती।नाथबचायजुडावहुछाती ११

"विहँसिवामकरलीन्हींरावन।सचिवबोलिशठलागबचावन १२

यह तो सब सुग्रीवके समान हैं और इनके समान करोडों हैं कान गिनसकता है ॥ १ ॥ हे रावण ! मैंने ऐसा सुना है कि अठारह पद्म तो वानरोंके यूथपति हैं ॥२॥ हे नाथ ! कटकमें ऐसा तो एक बन्दर भी नहीं जो तुमको युद्धमें न जीतले ॥ ३ ॥ रामका तेज बल बुद्धिकी बहुताई लाख शेष भी नहीं कहसकते ॥ ४ ॥ एक ही बाणसे सौ सागर शोष सकते हैं पर आपके भ्रातासे नीति पूछी ॥ ५ ॥ उनके वचन मान मनमें कृपाकर सागरसे मार्ग माँगते हैं ॥ ६ ॥ रावण-(हँसकर) जो ऐसी मति है तभी वानरोंकी सहाय है ॥ ७॥ स्वभाविक डरपोकके वचन मान अब सागरसे हठ ठानी है ॥ ८ ॥ अरे मूढ ! वृथा क्यों बडाई करता है शत्रुके बल बुद्धिकी थाह मैंने पाली ॥ ९ ॥ जिसके बिभीषणसे भयभीत मंत्री हैं उसको विजय विभूति कहाँ होसकती है ॥ १० ॥ शुक बोला-यह रामके छोटे भैयाने पत्री दी है, इसे बँचाय छाती ठंढी करो ॥ ११ ॥ रावणने हँसकर बायें हाथमें ली,

दोहा-बातन मनहिं रिझाय शठ, जनि घालसि कुल खीश ।
रामविरोध नउबरिहहु, शरण विष्णु अज ईश ॥ ३५ ॥
होउ मान तजि अनुज इव, प्रभुपद लोचन भृंग ।
होहि राम शर अनलजनि, खलकुल सहित पतंग ३६॥
रावण-भूमिपरा करगहतअकाशा।लघु तापसकरवागविलासा ॥१॥
शुक-अति कोमल रघुवीरस्वभाऊ। यद्यपि अखिल लोककरराऊ२
मिलत कृपा प्रभु तुमपर करिहैं।उर अपराध न एकौ धरिहैं ३॥
जनकसुता रघुनाथहिं दीजै। इतना कहा मोर प्रभु कीजै ॥४॥
जब तेइ देन कहेउ वैदेही। चरण प्रहार कीन्ह शठ तेही ॥ ५ ॥
दोहा-विनय न मानत जलधिजड़, गये तीनदिन बीति ।
बोले राम सकोप तव,भयविनु होय न प्रीति ॥ ३७ ॥
राम-लक्ष्मण बाण शरासन आनू।शोषौंवारिध विशिष कृशानू ॥१॥

मंत्रीको बुलाकर बचवाने लगा ॥१२॥ (दोहार्थ)-हे शठ ! बातोंसे मनको मत रिझावे कुलको मत नष्टकर चाहै विष्णु, अज, ईशकी शरण जाओ पर रामके विरोधसे उद्धार न होगा ॥ ३५ ॥ मानको त्यागकर छोटे भ्राताके समान प्रभुके चरणकमलके भ्रमर बनो नहीं तो हे खल ! रामके अग्निसमान बाणोंसे पतंगके समान कुलसहित भस्म हो जाओगे ॥ ३६ ॥

रावण बोला-भूमिमें पड़ा आकाशको ग्रहण करना चाहता है ऐसा लघुतापसका वाक्यविलास है ॥ १ ॥ शुक बोला हे महाराज ! यद्यपि रघुनाथ त्रिलोकीके अधिपति हैं पर उनका स्वभाव बड़ा कोमल है ॥ २ ॥ वह प्रभु तुमपर मिलते ही कृपा करैंगे हृदयमें कोई अपराध नहीं धरैंगे ॥ ॥३॥ हे प्रभु ! जानकी रामचन्द्रको दे दो इतना मेरा कहना करो ॥ ४ ॥ जब उसने जानकी देनेको कहा रावणने उसके लात मारी वह रामपर गया ॥ ५ ॥ (दोहार्थ)-इधर मूर्खता वश सागरने विनय न मानी तब राम क्रोधकर बोले भयके बिना प्रीति नहीं होती ॥ ३७ ॥

हे लक्ष्मण ! धनुष बाण लाओ अग्निबाणसे सागर शोषलूं ॥ १ ॥

शठसन विनय कुटिलसनप्रीती।सहज कृपणसनसुन्दर नीती २
क्रोधिहि शम कामिहि हरिकथा।ऊषर बीज बये फल यथा ॥३॥
"संधानेहु शरविशिष कराला।उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला ४
कनकथार भरि मणिगण नाना।विप्ररूप आये तजि माना ५॥"
सागर-सभय सिन्धु गहि पद प्रभु केरे।क्षमहु नाथ अवगुण बहु मोरे६
गगनसमीर अनल जलधरणी।इनकी नाथ सहज जड़ करणी७
तव प्रेरित माया उपजाये। सृष्टि हेतु सब ग्रन्थन गाये ॥८॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहही।सोतेहिभाँतिरहैसुखलहही९
प्रभुभलकीन्हमोहिंशिखदीन्हीं।मर्य्यादा सब तुम्हरीकीन्हीं१०
ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़नके अधिकारी ॥ ११ ॥
प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटक न मोरि बडाई १२
प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई। करहु वेगि जो तुमहिं सुहाई१३॥

शठसे विनय कुटिलसे प्रीति स्वभाविक कृपणसे नीति कहनी॥२॥ क्रोधीसे शान्ति और कामीसे हरिकथा कहनी ऊषरमें बीज बोनेके समान है॥३॥ यह कह कठिन बाण चढ़ाया और समुद्रके भीतर अग्नि बली ॥ ४ ॥ तब सुवर्णके थालमें मणि भरकर ब्राह्मणका रूप धर मान छोड़ सागर आया॥ ५ ॥ और भयसे सागरने प्रभुके चरण पकड़कर कहा हे नाथ! मेरे अवगुण क्षमा करो॥६॥ आकाश, पवन, आग, जल, भूमि हे नाथ! इनकी तो स्वभाविक जड़ करनी है ॥७॥ आपकी मायाकी प्रेरणासे उपजाये हुए सृष्टिके कारण सब ग्रन्थोंने गाये हैं॥८॥ प्रभुकी आज्ञा जिसको जैसी है वह उसी प्रकार सुख पा रहा है॥९॥ आपने मुझे शिक्षा दी भला किया पर यह मर्यादा सब तुम्हारी की है॥१०॥ ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी यह सब ताडनाके अधिकारी हैं॥११॥ प्रभुके प्रतापसे मैं सूख जाऊंगा सेना उतर जायगी पर इसमें मेरी बड़ाई न होगी॥ १२ ॥ प्रभुकी आज्ञा अपेलहै ऐसा वेद कहता है जो तुम्हें अच्छा लगै सो करो१३



कृपालु मुसुकाइ।
जेहि विधि उतरै कपिकटक, तात सो करहु उपाइ ॥३८॥

सां०—नाथनीलनलकपिदोउभाई।लरिकाईऋषि आशिषपाई१
तिनके परशकिये गिरिभारे।तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे॥२॥
।करिहौं बल अनुमान सहाई॥३॥
इहिविधिनाथपयोधिबँधाइय।जेहि अस सुयश लोक तिहुँगाइय४
इहि शर मम उत्तरतटवासी।हतहु नाथ खलगण अघराशी॥५॥
"सुनि री।तुरतहि
सकल चरित कहि प्रभुहिसुनावा।चरण वन्दि पाथोधिसिधावा७

दो०

दर सुनहिं ते तरहिं भव, सिन्धु विना जलयान३९॥"

इति सुन्दरकाण्ड संपूर्णम्।

दोहार्थ—यह वचन सुन श्रीरघुनाथ हँसकर बोले जिसप्रकार वानरोंका कटक उतरै हे तात! सो उपाय करो ॥ ३८ ॥

हे नाथ! नील नल नामक जो दोनों भाई वानर हैं उन्होंने लरिकाईमें मुनिकी आशीश पाई है ॥ १ ॥ उनके स्पर्शकिये पर्वत तुम्हारे प्रतापसे तर जायँगे ॥ २ ॥ मैं भी आपकी प्रभुताई हृदयमें धर बलके अनुसार सहाय करूंगा ॥ ३ ॥ इस प्रकारसे आप सागर बँधवाओ जिससे यह सुयश त्रिलोकी गावै ॥ ४ ॥ और इस बाणसे मेरे उत्तर तटके रहनेवाले पापी दुष्टोंका नाश करो ॥ ५ ॥ भगवान् राम रणधीरने सागरके मनकी पीर सुनकर तुरंत हरी ॥ ६ ॥ इस प्रकार सब चरित्र कह चरणोंको प्रणाम कर सागर गया ॥ ७ ॥ (दोहार्थ)—रघुनाथजीके गुणोंका गान सब सुमंगलकी खान है जो आदरसे सुनते हैं वे बिना जहाज भवसागर तर जाते हैं ॥ ३९ ॥

इति सुन्दरकाण्डं संपूर्णम्।

भजन।

राग सोरठा—जानत प्रीति रीति रघुराई। नाते सब हाते कर राखत राम सनेह सगाई। नेह निवाह देह तज दशरथ कीरति अचल चलाई। ऐसेहु पितुते अधिक गीधपर ममता गुण गरुवाई। तीय विरह सुग्रीव सखा लख प्राण प्रिया बिसराई। रण परयो बंधु बिभीषणहीको शोच हृदय अधिकाई। घर गुरु गृह प्रिय सदन सासुरे भई जब जहाँ पहुनाई। तब तहिं कहि शबरीके फलनकी रुचि माधुरी न पाई। सहज स्वरूप कथा मुनि वर्णत रहत सकुच शिरनाई। केवट मीत कहत सुख मानत वानर बन्धु बडाई। प्रेम कनौडो रामसों प्रभु त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई। तेरो ऋणीहौं कह्यों कपिसों ऐसी मानि है को सेवकाई। तुलसी राम सनेह शील लख जो न भक्ति उरआई। तो तोहि जन्म जाय जननी जड तनु तरुणता गँवाई॥ १॥

राग जैतश्री—श्रीरघुवीरकी यह बान। नीचहू सो करत नेह सो प्रीति मन अनुमान। परम अधम निषाद पामर कौन ताकी कान। लियो सो उर लाय सुत ज्यों प्रेमको पहँचान। गधि कौन दयालु जो विधि रच्यो हिंसा सान। जनक ज्यो रघुनाथ ताको दियो जल निजपान। प्रकृति मलिन कुजाति शबरी सकल अवगुण खान। खात ताके दिये फल अतिरुचि बखान बखान। रजनीचर अरु रिपु बिभीषण शरण आयो जान। भरत ज्यों उठ ताहि भेंटत देह दशा भुलान। कौन सौम्य सुशील वानर जिनहिं सुमरत हान। किये ते सब सखा पूजे भवन अपने आन। राम सहज कृपालु कोमल दीनहित दिनदान। भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी कुटिल कपट न ठान॥ २॥

राग सोरठा—ऐसे राम दीनहितकारी। अतिकोमल करुणानिधान विन कारण पर उपकारी। साधन हीन दीन निज अघवश शिलाभई मुनिनारी। गृहते गवन परशपदताको घोर शापते तारी। हिंसारत निषाद तामस वपु पशु समान वनचारी। भेटयों हृदय लगाय प्रेमवश नहिं कुल जात बिचारी। यद्यपि द्रोह कियो सुरपति सुत कहि न जाय अतिभारी। सकल लोक अवलोकि शोकहत शरण गए भयटारी। विहँग योनि आमिष अहारपर गीध कवन व्रतधारी। जनक समान क्रिया ताकी निजकर सब भात सँवारी। अधम जात शबरी योषित शठ लोक वेदते न्यारी। जान प्रीति दे दरश कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी। कपि सुग्रीव बंधु भय व्याकुल आयो शरण पुकारी। सहनसके दारुण दुख जनके हत्यो बालिसह गारी। रिपुको बधु विभीषण निशिचर कौन भजन अधिकारी। शरण गए आगे होय लीनो भेटयों भुजा पसारी। अशुभ होय जिनके सुमरनते वानर रीछ विकारी। वेद विदित पावन किये ते सब महिमा नाथ तुम्हारी कहँलग कहौं दीन अगणित जिनकी तुम विपति निवारी। कलिमल ग्रसित दास तुलसीपर काहे कृपाबिसारी॥ ३॥

इति।

इति

रामलीलारामायणे सुंदरकाण्डं

समाप्तम् ।

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

रामलीलारामायणे लङ्काकाण्डं प्रारभ्यते

प्रथम दर्शन ।

(स्थान सागर तट)

सेतुबंधन.

सो०—"सिन्धुवचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ॥"
राम—अब विलम्ब केहि काम, करहु सेतु उतरै कटक ॥ १ ॥
जाम्ब०-जाम्बवन्त बोलेद्वौभाई।नल नीलहि सब कथा सुनाई १
रामप्रताप सुमिरि उरमाहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं॥ २॥
रामचरणपंकज उरधरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू ॥ ३॥
धावहु मर्कट विकट वरूथा। आनहु विटप गिरिनके यूथा ॥ ४॥

(वानर सेतुरचना करते हैं)

दोहा—"अतिउतंग तरु शैलगण, लीलहि लेइँ उठाय ।
आनि देहिं नल नील कहँ, विरचहिं सेतु बनाय ॥ १॥"

प्रथम दर्शन ।

सोरठार्थ—सागरके वचन सुन रामने मंत्रियोंको बुलाकर यह कहा अब विलम्ब क्यों है सेतु बांधौ कटक उतरै ॥ १ ॥

जाम्बवन्तने नल नील दोनों भाइयोंको बुलाय सब कथा सुनाई ॥१॥ कि रामका प्रताप हृदयमें स्मरण कर पुल बांधो प्रयास न होगा ॥ २ ॥ हे रीछ बानरो ! रामके चरणकमल हृदयमें धरकर यह कौतुक करो ॥३॥ मर्कटोंके विकट वरूथ धावमान हो और पर्वत तथा वृक्ष लाओ ॥ ४ ॥

दोहार्थ—बड़े ऊंचे पर्वत तथा वृक्षोंको लीलासे ही वानर उठा लेते हैं वे नल नीलको लाकर देते हैं, और वे पुल बनाते हैं ॥ १ ॥

राम-परमरम्यसुन्दरयहधरणी । महिमाअमितजायनहिंवरणी
करिहौं इहां शम्भु थापना । मोरे हृदय परम कल्पना ॥ २ ॥
लिंग थापि विधिवत करि पूजा। शिवसमान प्रिय मोहिं न दूजा ३
शिवद्रोही मम दास कहावै । सो नर सपनेहुँ मोहिं न पावै ॥४॥
शंकर विमुख भक्ति चह मोरी। सो नर मूढ मन्दमति थोरी५॥

दोहा--शंकरप्रिय मम द्रोही, शिवद्रोही ममदास !
ते नर करहिं कल्पभर, घोरनरकमहँ बास ॥ २ ॥

जो रामेश्वरदर्शन करिहैं । सो तनु तजि मम धाम सिधारिहैं १
जो गंगाजल आनि चढ़ाई । सो सायुज्यमुक्ति नर पाई ॥२ ॥
रामवचन सबके मन भाये ।मुनिवर निज निज आश्रम आये३
चली सेन कछु वरणि न जाई । गर्जहिं मर्कटभट समुदाई ॥४॥
सेनसहित उतरे रघुबीरा । कहि न जाय कछु यूथप भीरा॥५॥

रामचन्द्र—यह धरणी परममनोहर है इसकी महिमा वरणी नहीं जाती १ यहां शिवजीकी स्थापना करूंगा यह मेरे हृदयमें परम संकल्प है ॥ २ ॥ लिंग थापकर विधिपूर्वक पूजा कर बोले कि शिवके समान कोई दूसरा मुझे प्रिय नहीं है ॥ ३ ॥ जो शिवका द्रोह करे और मेरा दास कहावै वह मुझे स्वप्नमें भी नहीं पासकता ॥ ४ ॥ जो शिवसे विमुख होकर मेरी भक्ति चाहता है वह मूढ बडा मन्दमति है ॥ ५ ॥

दोहार्थ—शिवका प्रिय मेरा द्रोही हो वा शिवका द्रोह करके मेरा दास बनै वह मनुष्य कल्पपर्यन्त घोर नरकमें वास करैगा ॥ २ ॥

जो रामेश्वरके दर्शन करैंगे वह शरीर त्यागकर मेरे स्थानमें सिधार जायँगे ॥१॥ जो आनकर गंगाजल चढ़ावैंगे वह सायुज्यमुक्ति पावैंगे ॥२॥ रामके वचन सबके मनको भाये, सब मुनि अपने २ आश्रमको गये ॥३॥ सेना चली कुछ कही नहीं जाती, मर्कट भटोंके यूथ गर्जते हैं ॥ ४ ॥ सेनासहित श्रीरामचन्द्र उतरे, यूथपोंकी भीर कही नहीं जाती ॥ ५ ॥

सिन्धुपार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहँ आयसु दीन्हा६"

(रामचन्द्र निवास करते हैं.)

स्थान लंकापुरी.

[रावणकी सभा.]

"बैठेउ सभा खबरि असपाई। सिन्धुपार सेना सब आई॥ १॥
बूझेसि 'उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्टकरि रहहू॥२॥"
मंत्री-कहहु कवन भय करिय विचारा। नर कपि भालु अहार हमारा
प्रह०-सचिव कहहिं सब ठकुर सुहाती। नाथन पुर आइहि इहि भाँती
वारिध लांघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महँ सब गावा५॥
क्षुधा न रही तुमहिं सब काहू। जारत नगर न सक धरि खाहू॥६॥
सुनत नीक आगे दुखपावा। मंत्रिन असमत प्रभुहि सुनावा ७
सुनु मम वचन तात अति आदर। जनि मन गुणहु मोंहि कर कादर८
प्रथम वशीठ पठव सुन नीती। सीतहि देइ करिय पुनि प्रीती९॥

सागरके पार डेराकर प्रभुने सब वानरोंको आज्ञा दी मूल फल खाओ॥६॥

रावणकी सभा.

रावण सभामें बैठा यह खबर पाई कि सागरके पार सब सेना आगई ॥ १ ॥ मंत्रियोंको बुलाकर कहा उचित मत कहो वे सब हँसे कि मौन होरहो ॥ २ ॥ कहो किस भयसे विचार करैं नर कपि भालु तौ हमारा अहार हैं ॥ ३ ॥ प्रहस्त–हे महाराज मंत्री ! तौ ठकुर सुहाती कहते हैं पर इसमें पूरा न पडैगा ॥ ४ ॥ एक वानर सागर लांघ कर आया मनमें सब उसका चरित्र गाते हैं ॥ ५ ॥ उस समय तुम सबको भूंख नहीं रही नगर जलाता रहा पकड़कर खा न गये ॥ ६ ॥ सुननेमें अच्छा पर आगे दुःखदाई ऐसा मत मंत्रियोंने तुमको सुनाया है ॥ ७ ॥ हे तात ! मेरे वचन आदरसे सुनो मुझे मनमें कादर मत जानियो ॥ ८ ॥ पहले तो नीतिके अनुसार एक दूत भेजो फिर सीताको भेजकर प्रीति करो ॥ ९ ॥

दो०-नारि पाय फिरि जाहिं जो, तौ न बढाइय रारि।
नाहिं तो सन्मुख समरमहँ,नाथ करिय हठि मारि॥३॥
यह मत जो मानहु प्रभु मोरा।उभय प्रकार सुयश जग तोरा१॥
रा०-सुतसनकहदशकंठरिसाई। असमतितोहिंशठकवनसिखाई
अबहींते उर संशय होई। वेणुवंश सुत भयो घमोई ॥ ३ ॥
प्र०-हितमत तोहिं न लागत कैसे।काल विवशकहँ भेषजजैसे४

(जाता है और रावण लंकाके शिखरपर बैठकर नाच देखता है.)

(स्थान सुवेलपर्वतपर रामचन्द्र विराजमान् हैं)

राम-देख बिभीषणदक्षिण आसा।घन घमण्ड दामिनी विलासा१॥
मधुरमधुर गर्जत घन घोरा। होय वृष्टि जनु उपलकठोरा॥२॥
बिभी०-लंकाशिखररुचिर आगारा।तहँदशकंधरकेरअखारा३
बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव सरस सुनहु सुर भूपा॥४॥
छत्रमेघडम्बर शिरधारी।सोइ प्रभु जलद घटा अतिकारी॥५॥

दोहार्थ-यदि वह स्त्रीको पाकर फिर जायँ तो रार मत करो. यदि न मानैं तो युद्धमें मार करो ॥ ३ ॥

हे प्रभु! जो तुम यह मेरा मत मानोगे तो जगतमें दोनों प्रकार तुम्हारा यश होगा ॥ १ ॥ रावण पुत्रसे रिसाकर बोला मूर्ख तुझे ऐसी मति किसने सिखाई है ॥ २ ॥ अबहींसे मनमें शंका होती है वेणुवंशमें तू घमोई (एक बांसका कीडा) हुआ ॥ ३ ॥ प्रहस्त बोला तुमको हित मत इस प्रकार भला नहीं लगता जैसे कालविवशको औषधी ॥ ४ ॥

[गया.]

राम-हे बिभीषण! दक्षिण ओर देखो मेघ घुमड़ रहे बिजली चमकती है ॥ १ ॥ मेघ मधुर मधुर गर्जता है मानो कठोर ओले पडैंगे ॥२॥ विभीषण-हे महाराज! लंकाके शिखरपर एक स्थानमें रावणका अखाडा है, बडा विचित्र है ॥ ३ ॥ वहां श्रेष्ठ ताल मृदंग बजते हैं, हे सुर, भूप! वही यह मधुरशब्द है ॥ ४ ॥ शिरपर जो मेघाकार बड़ा छत्रहै सो

मन्दोदरी श्रवणताटंका।सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ॥ ६ ॥
"प्रभु मुसुकान देख अभिमाना। चाप चढाय बाण सन्धाना॥७॥
दो०–छत्र मुकुट ताटंक सब, हते एकही बान।
सबके देखत महि गिरे, मर्म न काहू जान ॥ ४ ॥"

(रावण सभा विसर्जन करता है)

द्वितीयदर्शन।



(अंगद गमन)

"इहां प्रात जागे रघुराई।पूछा मत सब सचिव बुलाई ॥ १ ॥
जा०–मंत्रकहौंनिजमति अनुसारा।दूत पठाइय वालिकुमारा २
राम-वालितनय बलबुधिगुणधामा।लंकाजाहुतातममकामा॥३॥
काज हमार तासु हित होई। रिपुसन करहु बतकही सोई ॥ ४ ॥
अंगद–जो आज्ञा (गया.)

(स्थान लंकापुरी)

"पुर पैठत रावणकर बेटा। खेलत रहा सो हुइगइ भेटा ॥ ५ ॥
तेहि अंगद कहँ लात उठाई।गहि पद पटक्यो भूमि भ्रमाई ६॥

कालीघटा है ॥५॥ मन्दोदरीके कर्णफूलही मानो बिजली चमकतीहै ॥६॥ यह अभिमान देख प्रभु मुसुकाये और धनुष चढाय बाणसंधान किया॥७॥ (दोहार्थ)–छत्र मुकुट कर्णफूल सब एकही बाणसे उड़ादिये सबके देखते भूमिपर गिरे मर्म किसीने न जाना ॥ ४ ॥

द्वितीयदर्शन।

यहां प्रभातकाल जागकर प्रभुने मंत्रियोंको बुलाय कहा क्या करैं ॥१॥ जाम्बवन्तने कहा वालिकुमारको दूत बनाकर भेजो ॥२॥ राम–हे वालिपुत्र! तुम बल बुद्धि गुणोंके धाम हो मेरे निमित्त लंका जाओ ॥ ३ ॥ हमारा काम और उसका हित हो शत्रुसे वही बात करो ॥ ४ ॥ अंगद चले पुरमें प्रवेश करते ही रावणका बेटा खेलरहा था उससे भेंट होगई ॥ ५ ॥ उसने बात २ में अंगदको लात उठाई उसको अंगदने उठाय घुमाय

(रावणकी सभामें गये) (वार्त्तिक)

अंगद--हे द्वारपाल! जाकर कहो द्वारपर एक दूत आया है.
द्वार०--अच्छा अभी कहता हूं (गया.)
द्वार०--(रावणसे) महाराज! एक दूत बाहर खड़ा है.
रावण--तुरन्त लाओ.
द्वार०--जो आज्ञा (जाता है और अंगदको लाता है.).

रावण--कह लंकेश कवन तैं बन्दर॥
अंगद--मैं रघुवीर दूत दशकन्धर॥ ७॥
मम जनकहि तोहिं रही मिताई। तव हित कारण आयउँ भाई ८
उत्तमकुल पुलस्त्यकर नाती। शिवविरंचि पूजे बहुभांती॥ ९॥
बरपायउ कीन्हेउ सबकाजा। जीतेहु लोकपाल सुरराजा १०
नृपअभिमान मोहवश किम्बा। हरि आनेहु सीताजगदम्बा ११
अब शुभकहा करहु तुम मोरा। सब अपराध क्षमहिं प्रभ तोरा
दशनगहहु तृण कंठकुठारी। पुरजन संग सहित निज नारी १३॥
सादरजनकसुतहिकरआगे। इहिविधिचलहुसकलभयत्यागे

भूमिपर देमारा॥६॥ सभामें जानेपर रावणने पूछा हे बन्दर! तुम कौन हो? अंगद--हे रावण! मैं रामका दूत हूँ॥ ७॥ मेरे पिताकी तुमसे मित्रता थी सो मैं तुम्हारे हितके कारण आया हूं॥८॥ तुम्हारा उत्तमकुल पुलस्त्यके नाती हो शिव विरंचिको अनेकबार पूजे हो॥ ९॥ वर पाकर अनेक काज किये लोकपाल और सुरराज जीते हो॥ १०॥ फिर हे नृप! अभिमान या मोहके वशसे तुम जगदम्बा जानकीको क्यों हरलाये?॥ ११॥ अब तुम मेरा शुभ कहा करो प्रभु तुम्हारा सब अपराध क्षमा करेंगे॥ १२॥ दाँतोंमें तृण कंठमें कुठार धारणकर पुरजन और अपनी नारी संगलो॥१३॥ आदरसे जानकीको आगे कर तुम सब भय त्यागकर चलो॥ १४॥

१ कवित्त घनाक्षरी--बोले पुनि अंगद अरे मलीन मदमति भयो मतवारो तोहिं रंचहू न चेत है।
कायर कलंकी निशिचारी अनाचारी चोर देवदुखदारी दुष्ट पातक निकेत है।
शीख या हमारी तु सुरारी शुभकारी मान रसिकविहारी होय भारी तुव हेतहै।
त्यागि अभिमान तिय लैकै अगवान गहु राम पदत्रान क्यों वृथाही प्राणदेतहै॥ १॥

दो०–प्रणतपाल रघुवंशमणि, त्राहि त्राहि
सुनतहि आरत वचन प्रभु, अभय करहिंगे तोहिं ॥ ५
रा०–रेकपिपोच बोल संभारी। मूढ न जानसि मोहिं सुरारी ॥ १ ॥
कहु निज नाम जनककर भाई। केहि नाते मानिये मिताई ॥२॥
अं०–अंगद नाम्म बालिकर बेटा। तोसों कबहुँ भई धौं भेंटा ॥ ३ ॥
राव०–अंगदताहिवालिकरबालक। उपजेउ वंश अनलकुलघालक



अब कहु कुशल वालकहँ अहइ। विहँसि वचन अगद असक
अं०–दिन दश गये वालिपहँ जाई। पूछेहु कुशल सखा उरलाई ॥७
रामविरोध कुशल जस होई। सो सब तुम्हैं सुनाइहि सोई
सुन शठ भेद होय मन ताके। श्रीरघुवीर हृदय नहिं जाके ॥९॥

अंधो बधिर न

दोहार्थ–और कहो हे दीनोंके पालक श्रीराम ! मुझे अब रक्षा करो तुम्हारे आर्त्तवचन सुनते ही प्रभु अभय करदेंगे ॥ ५ ॥

रावण–रे बन्दरके बच्चे ! सँभालकर नहीं बोलता रे मूढ ! नहीं जान्ता कि मैं सुरारी हूं ॥ १ ॥ पहले अपने पिताका नाम तो कह किस नातेसे मित्रता मानताहै॥२॥अंगद–मेरा नाम अंगद है वालिपुत्र हूं तुमसे कभी भेंट हुई है ॥ ३ ॥ रावण–अंगद उसी वालिके पुत्र हो अपने वंशके जलानेको अग्निरूप प्रगट हुए ॥ ४ ॥ गर्भ ही न गिरा तुम्हारा जन्म वृथा हुआ, अपने मुखसे तपस्वीके दूत कहाये ॥ ५ ॥ अच्छा अब वालिकी कुशल कहो हँसकर अंगदने कहा ॥ ६ ॥ दश दिन पीछे वालि-पर जाकर कुशल पूछना ॥ ७ ॥ रामके विरोध करनेसे जैसी कुशल होती है वह तुमको सब सुनावेगा ॥ ८ ॥ हे शठ ! यह भेद तो उसके मनमें होता है श्रीराम जिसके हृदयमें नहीं होते ॥ ९ ॥ (दोहार्थ)–हे रावण ! हम

१ रागकान्हरा–तू दशकंठ भले कुल उपज्यो ॥ टेक ॥ तामहँ शिवसेवक विरचिवर भुजबल विपुल जगत यश पायो ॥ तू दश०॥ खर दूषण त्रिशिरा कबन्ध रिपु जेहि वाली यमलोक पठायो । ताको

शिव विरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरण सेवकाई १॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। ऐसी मतिउर विहर न तोरा॥ २॥
रा०-खलतव वचन कठिनमैंसहऊँ।नीतिधर्म सब जानत अहऊँ
अं०-दशशिर धर्म शीलता तोरी।हमहुँ सुनीकृतपरतिय चोरी ४
देखेउँ नैन दूत रखवारी। बूडि न मरहु धर्मव्रतधारी॥ ५॥
नाक कान विनु भगिनि निहारी।क्षमा कीन्ह तुम धर्म विचारी६
रा०-दोहा--जनिजल्पसिजडजन्तुकपि,शठविलोक मम बाहु।
लोकपाल बल विपुल शशि, ग्रसन हेतु जिमि राहु॥७॥

तो कुलनाशक और तुम सत्यही कुलपालक हो ऐसा तो अंधे बहरे भी न कहेंगे तुम्हारे कान और नेत्र बीस हैं॥ ६॥

शिव, विरंचि, देवता, मुनि जिसके चरणोंकी सेवकाई चाहते हैं॥१॥ उसके दूत बनकर हमने कुल बोरा जो ऐसी मति है तो तेरा हृदय क्यों नहीं फटता है॥ २॥ रावण—रे मूढ ! मैं नीतिधर्मको जानकर तेरे कठिन वचन सहताहूं॥ ३॥ अंगद—हे रावण ! हमने तुम्हारी धर्मशीलता सुनी कि, परतिय चुरा लाये हो॥ ४॥ दूतकी रखवाली आँखोंसे देख ली हे धर्मव्रतधारी ! डूब नहीं मरते॥ ५॥ नाक कानके विना भगिनीको निहार धर्म विचारकरही तुमने क्षमा की थी॥ ६॥ (दोहार्थ)—रावण--हे

—दूत पुनीत चरित हरि शंभुसंदेश कहनहौ आयो। तू दश०॥ श्रीमद नृप अभिमान मोहवश जानत अन जानत हरिलायो। तजि व्यलीक भजु कारुणीक प्रभु दै जानकिहि सुनहि समुझायो॥ तू दश०॥ याते तवहित होइ कुशलकुल अचलराज चलि है न चलायो। नाहित रामप्रताप अनलमहँ है पतगपारि है शठ धायो॥ तू दश०॥ यद्यपि अंगद नीति परमहित कह्यो तथापि न कछु मनभायो। तुलसीदास सुनि वचन क्रोध अति पावक जरत मनहुँ घृतनायो॥ तू दश०॥ १॥

रावण—तैं मेरो मरम कछू नहिं पायो॥ टेक॥ रे कपि कुटिल ढीठ पशु पावर मोहि दास ज्यो डाटन आयो॥ तैं०॥ भ्राता कुम्भकरण रिपुघातक सुत सुरपतिहि बदिकर लायो। निजभुज बल अतिअतुल कहों क्यों कंदुकज्यों कैलास उठायो॥ तैं०॥ सुर नर असुर नाग खग किन्नर सकल करत मेरो मन भायो। निश्चर रुचिर अहार मनुज तनु ताको यश खल मोहि सुनायो॥ तू०॥ कहा भयो वानर सहाय मिलि करि उपाय जो सिन्धु बँधायो। जो तरिहै भुज बीस घोर निधि ऐसो को त्रिभुवनमें जायो॥ ॥ तू०॥ सुनि दशशीश वचन कपि कुजर विहँसि ईश मायहि शिरनायो। तुलसीदास लंकेश कालवश गनत न कोटि यतन समुझायो॥ २॥

तुम्हरे कटक माहिं सुन अंगद। मोसन भिराहिं कवन योधावद
तव प्रभु नारि विरह बलहीना। अनुजतासुदुखदुखितमलीना २
तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। बंधु हमार भीरु अति सोऊ ॥ ३ ॥
जाम्बवन्त मंत्री अतिबूढ़ा। सो किमि होय समर आरूढ़ा ॥ ४ ॥
शिल्पकर्म जानत नल नीला। है कपि एक महाबल शीला ५ ॥
आवा प्रथम नगर जेहि जारा। सुनि हँसि बोलेउ बालिकुमारा ६
अंगद-सत्यवचन कहनिशिचरनाहा। सांचेउकीशकीन्हपुरदाहा
रावण नगर अल्पकपि दहई। को अस झूठ सुनै को कहई ८ ॥
जो अतिसुभट सराहेउ रावन। सो सुग्रीवकेर लघु धावन ॥ ९ ॥
चलै बहुत सो वीर न होई। पठवा खबर लेन हम सोई ॥ १० ॥
दोहा--अब जाना पुर दहेउ कपि, विन प्रभु आयसु पाय।
गयउ न फिर निज नाथपहँ, तेहि भय रहेउ लुकाय ॥ ८ ॥

जड जन्तु कपि ! बकबाद मत कर मेरी भुजाको देख यह लोकपालोंका बल चन्द्ररूप ग्रास करनेको राहु हैं ॥ ७ ॥

हे अंगद तुम्हारे ! कटकमें मुझसे कौन योद्धा भिड़ सकते हैं सो तो कहो ॥ १ ॥ तुम्हारे प्रभु तो नारिके विरहसे बलहीन हैं, लक्ष्मण उनके दुःखसे दुःखी मलीन हैं ॥ २ ॥ तुम और सुग्रीव नदीके दोनों किनारेके वृक्ष हो आपही नष्ट होगे हमारा भ्राता डरपोक है ॥ ३ ॥ जाम्बवन्त मंत्री बूढा है वह क्या युद्ध करसकता है ॥ ४ ॥ नल नील शिल्पकर्म जान्ते हैं हां एक कपि बहुत बली है ॥ ५ ॥ जो पहले आकर नगर जलागया सुनकर अंगदने हँसकर कहा ॥ ६ ॥ क्या यह वचन सत्य है ? सत्यही तुम्हारा नगर बानरने जलाया ? ॥ ७ ॥ ऐसा छोटा कपि रावणका नगर जलावे ऐसे झूठको कौन कहै सुनैगा ॥ ८ ॥ हे रावण ! जिसको तुमने महा योद्धा कहकर सराहना की है वह तो सुग्रीवका छोटा दूत है ॥ ९ ॥ जो बहुत चलता है वह वीर नहीं होता हमने उसे सुधलेनेको भेजा था ॥ १० ॥

दोहार्थ–अब जाना कि, विना प्रभुकी आज्ञाके तुम्हारा नगर जलाया इसीसे वह लौटकर न गया कहीं छिपरहा ॥ ८ ॥

दो०--सत्य कहसि दशकंठतैं, मोहिं न सुनि कछु कोह ।
कोउ न हमरे कटक अस, तुमसन लरत जो सोह
यद्यपि लघुता राम कहँ, तोहिं वधे बडदोष ।
तदपि कठिन दशकन्ध सुन, क्षत्रि जातिकर रोष ॥१०

रा०--धन्यकीश जे निजप्रभुकाजा। जहँतहँनाचहिं परिहरिलाजा
नाच कूद कर लोग रिझाई। पतिहित करत कर्म निपुणाई॥२॥
अंगद स्वामिभक्त तव जाती।प्रभुगुण कस न कहसिइहिभाँती३
मैं गुणगाहक परम सुजाना।तव कटुवचन करौं नाहिं काना॥४॥
अं०--कह कपि तव गुण गाहकताई।सत्य पवनसुत मोहिं सुनाई
वनविध्वंस सुतवध पुर जारा।तदपि न तेहि कछुकृत अपकारा६
सोइ विचार तब प्रकृति सुहाई। दशकंधर मैं कीन्ह ढिठाई॥७॥
देखेउँ आय जो कछु कपि भाषा।तुम्हरे लाज न रोष न माषा ८

दोहार्थ–हे रावण! तुमने सत्य कहा मुझे भी सुनकर क्रोध नहींहै हमारे कटकमें ऐसा कोई नहीं जो तुमसे लड़कर शोभा पावे ॥ ९ ॥ यद्यपि तुमसे युद्धमें रामको लघुता है तो भी हे रावण! क्षत्रिय जातिका क्रोध बडा होता है॥ १० ॥

रावण–बानर धन्य हैं जो अपने प्रभुके काज जहां तहां लाज त्याग-नाचते हैं ॥ १ ॥ नाच कूदकर लोगोंको रिझाते हैं अपने. स्वामीके निमित्त निपुण कर्म करते हैं ॥ २ ॥ हे अंगद! तुम्हारी जातिही स्वामि भक्त है फिर इस प्रकार प्रभुके गुण क्यों न कहोगे ॥ ३ ॥ मैं परम चतुर गुणगाहक हूं तुम्हारे वचन कान नहीं करताहूं ॥४॥ अंगद–तुम्हारी गुण ग्राहकता सत्यही पवनसुतने मुझे सुनाई थी ॥ ५ ॥ तुम्हारा वन उजार पुत्र मार पुर जार दिया तो भी तुमने उसका कुछ अपकार नहीं किया६॥ सो इसी तुम्हारे स्वभावकी बडाई विचार मैंने भी दर्शनकी ढिठाई की ॥ ७ ॥ जो कुछ कपिने कहा सो आकर देखा तुम्हारे लाज रोष और मान नहीं है ॥ ८ ॥

रा०-जो असमति पितुखायउकीशा।कहिअसवचनहँसादशशीशा॥
अं०-पितहिखायखातेउँ अबतोही। अबहीं समुझिपराकछुमोहीं
बालि विमलयशभाजनजानी।हतौंनतोहिंअधमअभिमानी११
कहुरावणरावणजगकेते।मैं निज श्रवण सुने सुनु तेते ॥ १२ ॥
बलिजीतन इकगयउ पताला।राखा बांधाशिशुन हयशाला १३
खेलहिं बालक मारहिं जाई।दयालागिबलिदीन्हछुड़ाई ॥१४॥
एक बहे
कौतुक लागि भवन ले आवा।सोपुलस्त्यमुनि जाय छुड़ावा१
दोहा-एक कहत मोहिं सकुच अति, रहा बालिकी
तिनमहँ रावण कवन तुम, सत्य ॥

रावण--जो ऐसी मति है तभी तो पिताको खागये यह कह हँसा ॥ ९ ॥ अंगद--पिताको खाकर अब तुम्हें ख पर अभी एक समझ आगई ॥ १० ॥ बालिके विमलयशके तु हो हे अधम अभिमानी! इसीसे तुमको नहीं मारता ॥ ११ ॥ कहो तो जगत्में कितने रावण हैं जो मैंने अपने कानोंसे सुने हैं सो सुनो ॥ १२ ॥ एक बलिको जीतने पातालमें गया जिसको बालकोंने घुडशालमें बांध रक्खा॥१३॥ बालक खेलमें जाकर मारते थे दयामय बलिने कृपाकर उसे छुड़ाया ॥ १४ ॥ फिर एक सहस्रबाहुने देखा जिसे जन्तुके समान पकड़ लिया ॥ १५ ॥ और कौतुकके लिये घर लेआये सो पुलस्त्यने जाकर छुटाया ॥ १६ ॥ (दोहार्थ)-एक कहनेमें तो बडा संकोच है कि, मेरी पिताकी कांखमें रहा उसमें तुम कौन रावण हो अभिमान छोड़ कहो ॥ ११ ॥

---

१ कवित्त-एकको सहस्रबाहु बाँधलै गयो अवाप ऐसो त्रास दीनो तोहि कैसेकै सुनाइये।
दूसरेको राजावलि बांधिले गयो पताल दासनके आगे नाहिं जोत तब पाइये।
तीसरेको वाली मेरो पिता मेरे काजलायो छौना लेखि लौना बांध पालने झुलाइये।
रावण सुने अनेक तिनमें तू कौन एक गरबकी टेक मेरे आगे ना जनाइये ॥ १ ॥

रा०-सुनुशठसोईरावणबलशीला । हरगिरिजासुजानभुजलीला
जान उमापति जासु शुराई । पूजे जेहि शिर सुमन चढ़ाई ॥ २ ॥
शिरसरोज निज करन उतारी । पूजे अमित बार त्रिपुरारी ॥३॥
जानहिं दिग्गज उर कठिनाई।जब जब भिरेउँजाय बरिआई ४
जिनके दशन कराल न फूटे । उरलागत मूलक इव टूटे ॥५॥
जासु चलत डोलत इमि धरणी । चढइमत्तगज जिमिलघुतरणी
सोइ रावण जग विदित प्रतापी।सुने न श्रवण अलीक प्रलापी ७
दोहा-तेहि रावणकहँलघु कहसि, नरकर करसि बखान ।
रेकवि बर्बर खर्व खल, अब जाना तव ज्ञान ॥ १२ ॥

रावण--हे शठ ! मैं वह रावण हूं जिसके भुजबलको कैलास जानता है ॥ १ ॥ जिसकी शूरता शंकर जानते हैं कि मैंने फूलोंके स्थानमें अपने शिर शंकरको चढाये ॥ २ ॥ शिररूपी कमल अपने हाथसे उतारकर अनेकबार शंकरका पूजन किया ॥ ३ ॥ दिग्पाल मेरे हृदयकी कठिनता जानते हैं,जब जब उनसे बलकर भिडता हूं ॥४॥ जिनके कठिन दांत कहीं नहीं टूटे वे मेरे हृदयमें लगकर मूलीके समान टूटगये॥५॥जिसके चलतेमें भूमि ऐसी डोलती है जैसे मतवाले हाथीके चढनेसे नाव ॥ ६ ॥ सोई रावण बड़ा प्रतापी जगत्में प्रसिद्ध है हे असम्बद्धप्रलापी तैंने सुना नहीं॥७॥

दोहार्थ-उस रावणको लघु कहकर नरका बखान करता है रे नीच ! छोटे कपि अब तेरा ज्ञान जाना ॥ १२ ॥

---

१ कवित्त-भाई कुंभकान सन्मान जाको करै विधि बलको प्रमाण ताको कस उर आनिये ।
पूत मेघनाद जिन इन्द्र आदि जीते सब औरनको बूझ देख कैसेके बखानिये ।
धार तरवारकी न वज्रसे समारी जाय ऐसो चन्द्रहास जाको तेज नभ मानिये ।
ऐसो राजा रावणको तू न पहँचानतहै आज जाको पौरुष त्रिलोकी माहि जानिये ॥१॥
इन्द्र मेरे माली अंशुमाली दरबार पाली तारापति छत्रहाथ लियेइ रहत हैं ।
वरुण समीर मेरो मंदिर बुहारत है नीर अँचवत पाछे जगमें बहत है ।
पाक करै पावक प्रवीण वीणलीन्हें ऋषि नारद औ वाकपति सभामे रहत हैं ।
सुनो रामदूत घर एतीहै विभूत मेरे रावण सुपूत विधि आपन कहत हैं ॥ २ ॥

अंगद-सुनिसकोपअंगदकहवानी।बोलसँभारअधमअभिमानी
सहसबाहुभुजगहन अपारा। दहन अनलसम जासु कुठारा२॥
जासु परशु सागर खरधारा। बूडे नृप अगणित बहुबारा॥ ३॥
तासु गर्व जेहि देखत भागा।सो नर किमि दशकंठ अभागा॥४॥
मूढमृषा जनि मारसि गाला। राम विमुख अस होइहि हाला ५
तब शिरनिकर कपिनके आगे। परिहैं धरणि रामशरलागे ६॥
जबहिं समर कोपहिं रघुनायक।छूटहिं अतिकरालबहुसायक ७
तब कि चलहि अस गाल तुम्हारा।असविचारभजु रामउदारा८
रा०--दोहा--कुम्भकरणसम बन्धु मम, सुत प्रसिद्ध शक्रारि।
मोर पराक्रम सुनेसि नहिं, जितेउँ चराचर झारि ॥१३॥
जो पै समर सुभट तव नाथा।पुनि २ कहसि जासु गुण गाथा १॥
तौ वसीठ पठवा केहि काजा। रिपुसन प्रीति करत नहिं लाजा २

अंगद कोपकर बोले अरे अधम अभिमानी! सँभालकर बोल॥ १॥ सहस्रबाहुकी घनी भुजा भस्मकरनेको जिसका कुठार अग्निसम है॥ २॥ जिसके परशेरूप सागरकी खरधारमें अनेक बार अनेकों राजा डूबे॥ ३॥ उस परशुरामका गर्व जिसके देखते ही भागगया हे दशकंठ अभागे! वह मनुष्य कैसे है॥ ४॥ हे मूढ! व्यर्थ गाल मत मारै रामके विमुख होनेसे यह हाल होगा॥ ५॥ कि रामके बाण लगनेसे वानरोंके आगे भूमिमें तेरे शिर पडैंगे॥ ६॥ जबहीं युद्धमें रघुनाथजी कोप करैंगे और बडे बाण छूटेंगे॥ ७॥ तब क्या तुम्हारा यह गाल चलसकताहै ऐसा विचार उदार रामका भजन करो॥ ८॥

दोहार्थ—रावण—कुम्भकर्णके समान मेरा भाई इन्द्रका जीतनेवाला प्रसिद्ध पुत्र और मेरा पराक्रम नहीं सुना कि मैंने, चराचरको जीतलियाहै॥ १३॥

जो तुम्हारे स्वामी समरके सुभट हैं, बारबार जिनके गुणोंकी कथा कहते हो॥ १॥ तौ दूत किस [illegible] भेजाहै शत्रुसे प्रीति करनेमें लाज

पुनिशठकपि निजस्वामि

शूर कौन रावण सरिस, निजकरकाटे शीश ।
हुने अनल महँ बार बहु, हर्षित साखि गिरीश ॥ १४

आन वीर को शठ मम आगे। पुनि २ कहसि लाज परित्यागे१
अंगद--शिरअरु शैल कथा चितरही।ताते बार बीसतैं कही॥२॥
सो भुजबल राखेउ उर घाली। जितेउ न सहसबाहु बलिवाली३
बाजीगर कहँ कहिय न वीरा।काटै निजकर सकल शरीरा ॥४॥

नहीं आती ॥ २ ॥ शिवजीके पर्वतका मान मथनेवाली मेरी भुजाओंको देख फिर अपने स्वामीकी सराहना करना ॥ ३ ॥ (दोहार्थ)--रावणके समान शूर कौन है जिसने अपने हाथसे शिर काट प्रसन्नतासे अनेकबार अग्निमें होम दिये, शिवजी इसके साक्षी हैं ॥ १४ ॥

हे शठ ! मेरे आगे दूसरा वीर कौन है जो तू बारबार लाज त्याग ऐसा कहताहै ॥ १ ॥ अंगद--शिर और शैलकी कथाही चित्तमें रही इसीसे वह तुमने बीसबार कही हैं ॥ २ ॥ सो वह भुजाओंका बल हृदयमें ही धारण कियरहे, सहस्रबाहु, बलि और वालिको न जीता ॥ ३ ॥ बाजीगर वीर नहीं कहाजाता वह अपने हाथसे सब शरीर काटताहै ॥ ४ ॥

---

१ कवित्त--रावण कहत मैं तो राम बल जान्यो एक जाजरो पुरानो शिव धनुष चढायो है ।
दूसरहु सप्त ताल छेदे हैं जु कर्मकाल क्योंहूं बनगई बूढो शाखामृग धायेहै ।
लखन निहोरे कर तेरे मेरे पाँयपर लैलै कपि रीछ नीर वारिधि पटायो है ।
अंगद विकलवाके एई चारोंबलताके आए लक चौगुनो चवाव तैं चलायोहै ॥ १ ॥
और एक पैडे चली जाती ताड़का निपाती ताके मारे शूरनको बडा उपहासहैं ।
कंचनके लोभ मृग कचनकी मारयो मुनि यह कछू और कपि पौरुष विश्वासहै ।
मेरे भुजदण्डके प्रतापको न जानै राम इन्द्र यम वरुण कुबेर मानै त्रासहै ।
तापर तो लकको निशंक चल्यो आवतहै प्राणते उदास पै न सीताते उदासहै ॥ २ ॥
२ कवित्त घनाक्षरी--जौलौं दशशीश भुजबीश ना नशाय तौलौं चार दिन औरहू अनंद उर धरिले ।
येरे मतिमंद निज वीरता बढाय झूठी सकल वृथाहीं अभिमान हीय भरिले ।
रसिकबिहारी तोहिं जानत जहान जैसो होवे जो लवारी तिनै फेरिहू उचारिले ।
और तो न कोऊ तोको नेकहू सराहैयाते आपनी बड़ाई तू घनेरी आप करिले १

दोहा-जरहिं पतंग विमोह वश, भार वहहिं खरवृन्द।
ते नहिं शूर कहावहीं, समुझि देख मतिमन्द ॥ १५ ॥
दशमुख मैं न वसीठी आयउ। अस विचार रघुवीर पठायउ१॥
बार २ इमि कह्यो कृपाला। नहिं गजारियश वधे शृगाला॥ २ ॥
मनमहँ समुझि वचन प्रभुकेरे। सहउँ कठोर वचन शठतेरे॥३॥
नाहितकर मुखभंजन तोरा। लेजातेउँ सीतहि बरजारा ॥ ४ ॥
दोहा-तोहिं पटकिमहि सेन हति, चौपट करि तव गांउँ।
मन्दोदरीसमेत शठ, जनकसुतहि लेजाउँ ॥ १६ ॥
रा०--रेकपिपोच मरणअबचहसी।छोटेवदन बात बडिकहसी१
कटुजलपसिजड़कपिबल जाके।बुधि बल तेज प्रताप न ताके २
दोहा--अगुण अमान विचार तेहि; दीन्ह पिता वनवास।
सो दुख अरु युवती विरह,पुनि निशि दिन मम त्रास१७

दोहार्थ-मोहवश पतंग दीपकपर जलाकरतेहैं गदहे भार वहन करते हैं हे मतिमंन्द ! समझदेख वे शूर नहीं कहातेहैं ॥ १५ ॥

हे रावण ! मैं दूत बनकर नहीं आया हूं ऐसा विचारकर रघुनाथजीने भेजाहै ॥ १ ॥ बारबार रघुनाथजीने यही कहा है सिंहका यश शृगालके मारनेसे नहीं होता ॥ २ ॥ वह प्रभुके वचन मनमें समझकर हे शठ ! तेरे कठोर वचन कहताहूं ॥ ३ ॥ नहीं तो तेरा मुख भंजन कर बरजोरी सीताको लेजाता ॥ ४ ॥ (दोहार्थ)--तुझे भूमिमें पटककर और तेरी सेनाको मार तेरा गांव चौपट कर हे शठ ! जानकीको लेजाऊंगा ॥ १६ ॥

रावण--रे कपि ! नीच अब मरना चाहता है जो छोटे मुखसे बड़ी न कहता है ॥ १ ॥ हे कपि ! जिसके बलसे तू यह कल्पना करताहै

दोहा--जिनके बलको गर्व तोहिं, ऐसे मनुज अनेक।
खाहिं निशाचर दिवसनिशि, मूढ़ समुझ तज टेक॥१८॥
(अंगद क्रोधित होता है पृथ्वीपर हाथ मारता है सभासद उलटेमुख गिरपड़ते हैं.)

अं०-राम मनुज बोलत अस वानी।गिरत न तव रसनाअभिमानी
गिरिहैं रसना संशय नाहीं। शिरनसमेत समरमहिमाहीं ॥ २ ॥
मैं तव दशन तोरिबे लायक। आयसुपै न दीन्ह रघुनायक ॥३॥
अस रिस होत दशौं मुख तोरौं। लंका गहि समुद्रमें बोरौं ॥४॥
गूलरफल समान सब लंका। बसहिं मध्य जनु जन्तु अशंका ५
मैं वानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा ॥६॥
राव०-वालि कबहुँअसगालनमारा।मिलितपसिनतैभयउलवारा
अंगद-सांचहु मैं लबार भुजवीहा।जो न उपारौं तव दश जीहा८

दिनरात मेरा त्रास ॥ १७ ॥ जिनके बलका तुझको गर्व है ऐसे मनुष्य बहुत हैं निशाचर उनको दिनरात खातेहैं, हे मूढ ! समुझ और टेक छोड ॥१८॥ अंगद-हे अभिमानी!तू रामको मनुष्य कहताहै तेरी रसना नहीं गिरती ॥१॥ इसमें सन्देह नहीं समरभूमिमें शिरोंसमेत तेरी रसना गिरेगी ॥ २ ॥ मैं तेरा मुख तोडनेयोग्य हूं पर रघुनाथकी आज्ञा नहीं है ॥ ३ ॥ रिस ऐसी होती है दशोंमुख तोड लंकालेकर समुद्रमें बोरदूं ॥ ४ ॥ यह सब लंका गूलरके फलके समान है इसमें राक्षसरूपी जन्तु अशंक रहते हैं ॥५॥ मैं वानर फल खाते देर न लगाऊंगा पर क्या करूं रामकी आज्ञा नहीं है ॥ ६ ॥ रावण--वालिने तो कभी ऐसा गाल नहीं मारा तू तपस्वियोंसे मिलकर लवार होगया ॥ ७ ॥ अंगद--हे रावण ! यदि मैं तेरी बीस, जीभ न उखाडूं तौ अवश्य लवार हूं ॥ ८ ॥

---

१ कवित्त घनाक्षरी—येरे कपि मूढ क्यो बखानत बडाई बहु जाहिर जहान माहि जेतो हालसारोहै।
रसिकबिहारी तु वही है जो पिताकोनेक बदलो न लीनो औ सुकठ साथ धारोहै।
सुकंठ सो जो बालि डरते भगोहै वालि सोई जाहि राम एक बाणहीते मारोहै।
सोई राम जाको देखि निपट निकाम बधु वामके समेत बाप धामते निकारोहै ॥ १ ॥

"रामप्रताप सुमरि कपि कोपा।सभामाँझकरिप्रणपदरोपा९॥"
जो मम चरण सकहि शठ टारी।फिरहिं राम सीता म हारी१०॥
राव०-सुनहु सुभटसब कह दशशीशा।पद गहि धरणि पछारहु कीशा

(इन्द्रजीत आदिकबलवान योद्धा चरण उठाते हैं जब नहीं उठा तब रावणही उठता है)

अं०-गहत चरण कह वालिकुमारा।मम पद गहे न तोर उबारा १२॥
गहसि न रामचरण शठजाई।सुनत फिरामन अतिसकुचाई१३
अबहीं मुख का करौं बडाई।हतिहौं तोहिं खिलाय खिलाई १४॥
दोहा-"रिपुबल धर्षि हर्षि हिय, वालितनय बलपुंज।
सजलनैन तनु पुलक अति, गहे रामपद कंज॥१९॥"

(गये

[रावण मंदोदरी सम्वाद]

मन्दो०-कंत समुझि मन तजहु कुमतिही।सोह नसमर तुमहिं रघुपतिही
रामअनुजधनुरेख खचाई।सो नहिं

रामका प्रताप समझकर कपिने कोप किया सभामें प्रण करके पग रोपा९ कि जो शठ मेरा चरण इस स्थानसे चलायमान करदे तो राम फिर जायँगे सीता मैंने हारी॥१०॥रावण-हे सब योद्धाओ! सुनो चरण पकडकर भूमिमें वानरको डालदो ॥ ११ ॥ रावणके चरण पकडनेपर अंगदने कहा मेरे चरण पकड़नेसे तेरा उद्धार नहीं होगा ॥ १२ ॥ हे मूढ ! रामके चरण जाकर नहीं पकडता सुनकर मनमें सकुचाकर रावण लौटा ॥ १३ ॥ अंगद-अबहीं बहुत क्या बडाई करूं तुझको खिला खिलाकर मारूंगा १४

दोहार्थ-इस प्रकार शत्रुका बल चूर्णकर मनमें प्रसन्न हो बलनिधान वालिपुत्रने आय प्रभुके चरण गहे ॥ १९ ॥

(रावण मन्दोदरी संवाद)

मन्दोदरी-हे कन्त ! मनमें समझकर कुमति त्यागो तुम्हैं और रामसे समर शोभा नहीं देता.॥ १ ॥ रामके छोटे भ्राताने धनुषकी रेखा खैंची थी

तेहिते जीतब संग्रामा। जाके दूतनके अस कामा ॥ ३ ॥
हति विपिन उजारा। देखत तुमहिं अक्ष जिन मारा४
जारि नगर जेहि कीन्हेसि क्षारा।कहांरहा बल गर्व तुम्हारा ॥५॥
पतिहि मनुज जनि जानहु। अंगजगनाथ अजितअजमानहु
बाणप्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहु नीचा ॥ ७ ॥
जनकसभा अगणित महिपाला।रहेउ तहां बलगर्व विशाला८॥
भंजि धनुष जानकी विवाही। सक संग्राम जीत को ताही ॥९॥
सुरपतिसुत जाना बल थोरा।राखा जियत आंखइक फोरा१०॥
तु शेखी ११

वहभी तुमसे नहीं लांघीगई यह तो वीरता है ॥ २ ॥ हे स्वामी! उससे संग्राम जीतोगे जिसके दूतोंके यह काम हैं कि ॥ ३ ॥ रखवारोंको मारकर वन उजाड़ा तुम्हारे देखतेही अक्षको मारा ॥ ४ ॥ नगर जलाय क्षार कर दिया तुम्हारा बल गर्व कहां रहा ॥ ५ ॥ हे स्वामी! रामको मनुष्य मत जानो अगजगनाथ अजित और अज मानो ॥६॥ देखो मारीच बाणका प्रताप जानताथा उसका कहना नीचतावश तुमने न माना ॥७॥ जनककी सभामें अनेक राजा थे और बल गर्वमें विशाल तुमभी थे ॥८॥ वहां रामने धनुष तोड जानकी विवाही उनको संग्राममें कौन जीत सकता है ॥ ९ ॥ इन्द्रपुत्रने थोडा बल जाना तब उसकी एक आंख फोडकर छोड़ दिया ॥ १० ॥ शूर्पणखाकी तुमने गति देखी तौभी हृदयमें लाज नहीं आती ॥ ११ ॥

---

१ अब देखो रामजीं धुजा फहरानी। हलकतढाल फडक्कतनेजा गरद उठी असमानी। लक्ष्मण वीर वालिसुत अंगद हनूमान अगवानी। कहत मदोदरि सुनि पियरावन कौन कुमति सिय आनी। जेहि सागरको मान करतहो तापर शिलातरानी। तिरियाजात बुद्धिकी ओछी उनकी करत बडाई। ध्रुव मंडलसे पकड मँगाऊ वे तपसी दोउभाई। हनूमानसे पायक उनके लछमनसे बलभाई। जलतीअगनमें कूदपडैंगे शोच कभू नहिं पाई। मेघनादसे पुत्र हमारे कुंभकर्णसे भाई। एक बेर सन्मुख होय लडिहैं युग युग होय बडाई। यक लखपूत सवालख नाती मीचु आपुनी आनी। अग्नके स्वामी लंका वेरी अजहुँ समझ अभिमानी ॥ १ ॥

दोहा-वध विराध खरदूषणहिं, लीला हतेउ कबन्ध।
बालि एकशर मारेऊ, तेहि जानहु दशकन्ध॥ २०॥
जेहि जलनाथ बँधायउ हेला।उतरे कपिदल सहित सुबेला॥१॥
कारुणीक दिनकरकुलकेतू। दूत पठायउ तव हित हेतू॥ २॥
सभामाँझ जेइँ तव बल मथा।करि वरूथ महँ मृगपति यथा॥३॥
अंगद हनुमत अनुचर जाके। रणबाँकुरे वीर अतिबांके॥ ४॥
तेहि कह पिय पुनि २ नर कहहू।वृथा मान ममता मद गहहू॥५॥
अहह कन्त कृत राम विरोधा।कालविवश मन उपज न बोधा ६
निकटकाल जेहि आव गुसांई। तेहि भ्रमहोय तुम्हारी नाई॥७॥
दोहा-दुइ सुत मारेउ दहेउ पुर, अजहुँ पूरि पियदेहु।
कृपासिन्धु रघुनाथ भजि, नाथ विमलयश लेहु॥२१॥
रा०-रिपुकररूपसकलतैं गावा। अतिविशाल भय मोहिंदिखावा
सो सब प्रिया सहज वश मोरे।समुझिपरा प्रभाव अब तोरे॥२॥

दोहार्थ-विराध और खरदूषणको मार लीलासेही कबन्धको मारदिया तथा बालिको एकही बाणसे मार दिया ऐसा पुरुष है सो उसे जानो २०॥
जिसने खेलसेही सागर बांधलिया कपिदलसहित सुवेलपर डेरा किया॥ १॥ उन दयामय भगवान्ने तुम्हारे हितनिमित्त दूत भेजा॥ २॥ उसने हाथियोंमें सिंहके समान सभामें तुम्हारा बल मथन किया॥ ३॥ जिसके अंगद हनुमानसे अनुचर रणके बांके बडे वीर हैं॥ ४॥ हे पिय! बारंबार उनको नर कहते हो तुम वृथा मान और ममता करते हो॥ ५॥ हे कन्त! रामसे विरोध करतेहो कालके विवश मनमें बोध नहीं होता॥६॥ हे गोसाईं! जिसके समीप काल आता है तुम्हारीही समान उसको भ्रम होताहै॥ ७॥ (दोहार्थ)-दो पुत्र मारे पुर जलाया अब तो समझ करो कृपासागर रघुनाथका भजन कर हे नाथ! निर्मल यश लो॥ २१॥
रावण-तुमने सब शत्रुका रूप गाया और मुझे बड़ा भय दिखाया॥१॥ हे प्रिया! सो सब मेरे वशमें है अब तैंने प्रभाव जाना॥ २॥

जानेउँ प्रिया तोरि चतुराई। इहि मिसि कहेउ मोरि प्रभुताई॥३॥

(सभाको जाताहै)

तृतीय दर्शन।



(स्थान सुवेल पर्वत.)

(राम लक्ष्मण जाम्बवन्त वानर भालुकी सेना स्थित है)

राम-लंका बाँके चारि दुआरा। केहिविधि लाँघिय करहु विचारा।

वार्त्ता

जा०-महाराज सेनाके चार भाग बनाकर चारों द्वार लंकापुरीके घेरलो।

राम-तो अभी वानरोंको आज्ञा दो।

सु०-जो आज्ञा (वानरोंसे) हे वानरो ! अभी जाय लंकाके द्वार तोड़दो।

(वानर जाकर लंका घेरते हैं)

रावण-देखहु वनरनकेरि ढिठाई। यातुधान सुनि सेन बुलाई २॥

आये कीश कालक प्रेरे। क्षुधावन्त रजनीचर मेरे॥३॥

सुभट सकल चारहु दिशि जाहू। धरि २ भालु कीश सब खाहू ४

हे प्रिया ! मैंने तेरी चतुराई समझी इस बहाने मेरी प्रभुताई कही है॥३॥

लंकाके बडे २ चार दरवाजेहैं वह कैसे लांघे जावेंगे यह विचार करो॥१॥ वानरोंकी ढिठाई देखो यातुधानने सुनकर सेना बुलाई॥२॥ यह वानर कालके प्रेरे आयेहैं मेरे राक्षस इनके भूखेहैं॥३॥ सब ओरको हमारे योद्धा जायँ और रीछ वानरोंको पकड़ पकड़ कर खाजायँ.॥४॥

---

१ अहंकार तजि अमर न हुइहौ तू समझैना रानी री। जाको जप तप योग रटत हैं तीरथ जिन्है नवावै। ब्रह्मा इन्द्र सकल मुनि मिलिकै शेष पार नहिं पावै। शंकर ध्यान धरत युग बीते तेहू दरश न पावैं। सो रघुनाथ संग कपिदल ले घर बैठेमें पायेरी॥१॥ एक चोट सन्मुख हुइ लरिहौ पौरुष उन्हैं दिखैहौ। काट पिशाच खेत ले डारौं सो रण नदी वहैहौं। चढत कबंध वीर सब जूझैं, हारि हथियार गहैहौं। कीरति चलै जुगाजुग मोरी तो शिवभक्त कहैहौंरी॥२॥ चौंसठ युगलौं राज कियेहै सुख समाज कियो भारी। तीनो लोक जीत वश कीन्हें सुर मुनि आज्ञाकारी। अब मोहि उचित मिलेनहि शोभा मैं रावण हंकारी। कुल कुटुम्ब कहिबेको हुइहै युग २ मिटत न गारीरी॥३॥ तुलसी कह मिथ्या नहि भाषौं मान वचन हित मोरा। एक दिना सागरके तटपर प्रबल युद्ध कियो घोरा। कुलकुटुम्बपरिवारसकल मिल पीछेपग नहि मोरा। जब रघुनाथ काट दशमस्तक लेकर सिया सिधारेरी॥४॥

जो रणविमुख फिरा मैं जाना। तेहि मारिहौं कराल कृपाना॥५॥

(राक्षस चलते हैं और वानरोंके साथ संध्यातक युद्ध होताहै वानर लंकाको खण्ड खण्ड करते हैं सन्ध्याको सब अपने २ स्थानोंको जाते हैं.)

(रावणकी सभा)

रा०-आधा कटक कपिन्ह संहारा। कहहुबेगिकाकरियविचारा६

माल०-जबते तुम सीता हर आनी। अशकुन होहिं न जात बखानी७

वेद पुराण जासु यशगावा। तासु विमुख सुख काहु न पावा॥८॥

परिहरि वैर देहु वैदेही। भजहु कृपानिधि परमसनेही ॥ ९ ॥

रा०--मूढभयसि नतौंमरतेउँतोही। अब जनि वदन दिखावसिमोही

"सो उठि गयउ कहत दुर्वादा। तब सकोप बोल्यो घननादा ११

कौतुक प्रात देखिहौ मोरा। करिहौं बहुत कहतहौं थोरा॥१२॥"

(प्रभातमें फिर युद्ध होताहै और मेघनाद युद्धको चलता है)

मे०-कहँ कौशलाधीशदोउ भ्राता। धन्वीसकललोकविख्याता

कहँ नल नील द्विविद सुग्रीवा। कहँ हनुमत अंगद बलसींवा१४॥

कहां बिभीषण भ्राता द्रोही। आजु शठहि हठ मारहुँ आही१५

जिसको मैंने सुना कि, युद्धसे विमुख हुआहै उसे तीक्ष्ण खड्गसे मारूंगा॥ ५ ॥ रावण-वानरोंने आधा कटक संहारा अब कहो क्या विचार करैं ॥ ६ ॥ मालवन्त--जबसे तुम जानकी हरलाये हो बडे कुशकुन होते हैं कहे नहीं जाते ॥ ७॥ वेद पुराण जिसका यश गातेहैं उससे विमुख होनेसे किसीको सुख नहीं मिलता ॥ ८ ॥ वैर छोडकर जानकी दो परम-स्नेही कृपानिधिका भजन करो ॥९॥ रावण-- अरे मूढ ! बड़ा होगया नहीं तो मैं तुझे मारता अब मुझे मुख मत दिखावे ॥ १० ॥ वह दुर्वचन कहता उठगया तब क्रोध कर मेघनाद बोला ॥ ११ ॥ प्रभात समय मेरा कौतुक देखना करूंगा बहुत कहताहूं थोड़ा ॥ १२ ॥ मेघनाद--कौशलाधीश दोनों भाई लोक विख्यात धनुषधारी कहांहैं ॥ १३ ॥ नल नील द्विविद सुग्रीव हनुमान बलसींव अंगद कहांहैं॥ १४ ॥ भ्रातासे द्रोह करनेवाला बिभीषण कहांहै आज हठसे उस शठको मारूंगा ॥ १५ ॥

"असकहि कठिन बाणसंधाने।अतिशय कोपि श्रवणलगिताने
दोहा–मारिसि दश दश विशिख उर, परे भूमि सब वीर।
सिंहनाद करि गज तब, मेघनाद रणधीर॥ २२॥
महायुद्ध करताहै.)
दोहा–आयसु मांगी रामपहँ, अंगदादिकपि साथ।
लक्ष्मण चले सकोप तब, नाय रामपद माथ॥२३॥
लक्ष्मण मेघनाद दोउ योधा। लरत परस्पर करि अति क्रोधा१
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता॥ २॥
रावणसुत निजमन अनुमाना। संकट भये हरहि मम प्राना ३
वीरघातिनी छांडेसि सांगी। तेजपुंज लक्ष्मण उर लागी॥ ४॥
मूर्च्छा भई शक्तिके लागे। तब चलिगयउ निकट भयत्यागे५
दोहा–मेघनाद सम कोटिशत, योधा रहे उठाय।
जगदाधार अनन्त सो, उठहि न चला खिसाय॥२४॥"

यह कह कठिन बाण सन्धान किये और कोपकर कानोंतक ताने॥१६॥

दोहार्थ–दश दश बाण सबके हृदयमें मारे सब वीर भूमिपर गिरे तब रणधीर मेघनाद सिंहनाद कर गर्जनेलगा॥ २२ ॥ तब रघुनाथजीसे आज्ञा मांग अंगदादि कपियोंको साथ ले रामके चरणोंमें माथा नवाय कोपके लक्ष्मण चले॥ २३॥

लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा परस्पर क्रोध करकर लडते हैं॥१॥ तब लक्ष्मणने क्रोधकर उसका रथ सारथी नष्ट किया ॥ २ ॥ तब मेघनादने विचारा अब यह संकट पडनेसे मेरे प्राण हरैंगे॥ ३ ॥ तब वीरघातिनी साग छोडी वह तेजकी पुंज लक्ष्मणके हृदयमें लगी॥ ४॥ शक्तिके लगनेसे मूर्च्छा हुई तब भय त्याग समीप गया॥ ५॥

दोहार्थ–लक्ष्मणको मेघनादके समान अनेक योद्धा उठारहेथे पर वह जगदाधार अनन्त कैसे उठैं न उठे तब खिसियाकर चला॥ २४॥

(महावीरजी लक्ष्मणको लातेहैं रामचंद्र दुःखी होते हैं)

(वार्ता)

जा०-हे महावीर ! तुम अभी जाओ और लंकासे सुखेन वैद्यको लाओ ।

महा०--अभी जाताहूँ भवनसमेत उठाये लाताहूँ ।

(सुखेनको भवन समेत लातेहैं)

सुखेन--लक्ष्मणकी नाडी देख हे महावीर ! तुम द्रोणाचलपर्वतपर जाओ और सजीवनमूल लेकर आओ ।

महा०-मैं अभी जाता हूं (गये)

[रावणकालनेमि संवाद]

रा०-हे कालनेमि ! तुम जाकर मार्गमें हनूमानको मायाकर प्रभात तक रोको ।

का०--देखत तुमहिनगर जेहि जारा।तासुपन्थको रोकनहारा १ भजिरघुपतिहिकर २

सोई

रा०-जो मैं कहूं सो करो ज्ञान सिखाओगेतौमारदूंगा अभीजाकरमायारचो ।

का०-तौ अभी जाताहूं (गया और आश्रम बनाय बैठा)

म०-[आश्रमको देख] हेमुनिराज! प्रणामहै मुझे प्यास लगी है थोडा जलदो।

का०--होतमहारणरावणरामहिं।जीतहिं राम न संशययामहिं४

तुम्हारे देखते २ जिसने नगर जलादिया उसका मार्ग कौन रोकसकता है ॥ १ ॥ तुम रघुनाथको भजन कर अपना हित करो यह व्यर्थ कल्पना छोडो ॥ २ ॥ जो कालरूपी सर्पकोभी खाजाता है, क्या उससे कोई स्वप्नमेंभी समर जीतसकता है ॥ ३ ॥ कालनेमि-राम और रावणमें बडा युद्ध होता है राम जीतैंगे इसमें सन्देह नहीं ॥ ४ ॥

---

१ भजन-नाथ नेकु जो शासन पाऊं । तो चन्द्रमहि निचोरि चैल ज्यो आनि सुधा शिर नाऊं । कै पातालदलौ व्यालावलि अमृतकुंड महिलाऊं । भेद भुवनकरि भानु बाहिरो तुरत राहु देताऊं । विबुध वेद वरवस आनों धारे तो प्रभु अनुग कहाऊं । पटकौं मीच नीच मूषक ज्यों सबहि को पाप बहाऊं । तुम्हारिहि कृपा प्रताप तिहारेहि नेक विलम्ब न लाऊं । दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जेहि तुम्हरे मन भाऊं ॥ १ ॥

यहाँ भये मैं देखहुँ भाई । ज्ञानदृष्टि बल मोहिं अधिकाई ॥५॥
"मांगाजलतेहिदीन्हकमंडला।कह कपि नहिं अघाउँथोरेजल"
का०-सर मज्जनकरिआतुर आवहु।दीक्षादेहुँ ज्ञानजेहिपावहु७

दोहा--"सर पैठत कपिपद गहे, मकरी अति अकुलान ।
मारी सो धरि. दिव्य तनु,चली गगनचढि यान॥२५॥"

म०--कपितव दरश भयउँनिःपापा।मिटातातमुनिवर कर शापा
मुनि न होय यह निशिचर घोरा।मानहु सत्यवचन कपि मोरा२
"असकहिगई अपसराजबहीं। निशिचरनिकटगयो कपितबहीं"
हनू०--पहले मुनि गुरुदक्षिणा लेहू । पाछे हमहिं मंत्र तुम देहू४
शिर लंगूर लपेट पछारा । निज तनु प्रगटसि मरतीबारा ॥ ५ ॥

[पर्वतपर जाकर ओषधि न पहँचानकर पर्वत उखाडकर
अयोध्याकी ओरको आते हैं]

दोहा--"देखा भरत विशाल अति, निशिचर मन अनुमानि ।
विनु फर शर तकि मारेउ, चाप श्रवण लगि तानि ॥२६॥

मैं यहां बैठेही देखताहूं मुझे ज्ञानदृष्टिका बडा बलहै ॥ ५ ॥ तब जल मांगनेसे कमण्डलु दिया महावीर बोले थोडे जलसे प्यास नहीं बुझैगी ॥६॥ कालनेमि—अच्छा सरोवरमें मज्जन कर शीघ्र आओ ऐसी दीक्षा दूंगा जिससे ज्ञान पाओगे ॥७॥ (दोहार्थ)—महबीरजीके सरोवरमें प्रवेश करतेही एक मकरीने उनका चरण पकडा और व्याकुल हुइ महावीरजीके मारने-पर वह दिव्ययानमें चढ़ दिव्यरूप धार आकाशको गई और बोली ॥२५॥

हे कपि ! म तुम्हारे दर्शनसे निष्पाप हुई मुनिराजका शाप मिट-गया ॥ १ ॥ यह मुनि नहीं घोर निशाचर है मेरा वचन सत्य मानो ॥२॥ यह कह जब अप्सरा गई तब महावीरजी मुनिके समीप आये ॥ ३ ॥ हनू०—हे मुनि ! पहले गुरुदक्षिणा लो पीछे तुम मंत्र दो ॥ ४ ॥ यह कह शिरपर लंगूर लपेट पछाडा और उसने मरतीबार अपना शरीर प्रगट किया ॥ ५ ॥ (दोहार्थ)--जब भरतने इनको विशाल देखकर मनमें निशा-

१ भजन—कौतुकही कपि कुधर लियो है ॥ टेक॥ चल्यो नभनाइ माथ रघुनाथहि सरिस न वेग वियोहै ॥

लागत सायक। सुमरत रामराम रघुनायक १
सुनि प्रियवचन भरत उठिधाये। कपिसमीप अति आतुर आये२
भरत–जेहि विधि राम विमुखमोहि कीन्हा। तेहिपुनि यह दारुण दुखदीन्हा३
जो मोरे मन वच अरु काया। प्रीति रामपदकमल अमाया॥४॥
तौ कपि होउ विगत श्रम शूला॥ जो मोपर रघुपति अनुकूला ५॥

[महावीरजी उठ बैठते हैं.]

तातंकुशलकहु सुखनिधानकी। सहित अनुज अरुमातुजानकी
"कपि सब चरित संक्षेप बखाने। भये दुखी मनमें पछताने ७॥"
भरत-अहह दैव मैं कत जगजायउँ। प्रभुके एका काज न आयऊँ॥८॥

चर मान धनुषपर विना फरका बाण चढ़ाकर तककर मारा ॥ २६ ॥
बाणके लगते ही मूर्च्छित हो भूमिपर गिरे लंगूरपर पर्वत रहा रामराम रघनायकका स्मरण करनेलगे ॥ १ ॥ यह प्रिय वचन सुन भरत उठ दौड़ और बड़ी शीघ्रतासे कपिके समीप आये ॥ २ ॥ भरत-जिस विधाताने मुझे रामसे विमुख किया उसीने मुझे यह दारुण दुःख दिया ॥ ३ ॥ जो मेरे मन वचन कर्मसे रामके चरणोंमें अमायिक प्रीति है ॥ ४ ॥ तो यह कपि श्रम और शूलरहित होजाय ॥ ५ ॥ हे तात ! सुखनिधानकी कुशल कहो अनुज और माता जानकी कुशल हैं ॥ ६ ॥ कपिने सब चरित्र संक्षेपसे वर्णन किये तब सुनकर दुःखीहो मनमें पछताये ॥ ७ ॥ हा विधाता मैं

० ॥ देख्यो जात जानि निशिचर विनु फर शर हयो हियो है। परयो कहि राम पवन राख्यो गिरि पुरतेहि तेज पियो है ॥ की० ॥ जाइ भरत भरि अंक भेटनिज जीवन दान दियो है। दुख लघु लषण परम घायल सुनि सुख बडो कीश जियो है ॥ की० ॥ आयसु इतहि स्वामि संकट उत परत न कछू कियो है। तुलसीदास विहरयो प्रकाश सो कैसे कै जात सियोहै ॥ कौतुकही कपि कुधर लियो है ॥ १ ॥

सुमित्रा–सुनि रणघायल लषण परे हैं ॥ टेक ॥ स्वामिकाज संग्राम सुभटसौं लोहे ललकारि लरे है ॥ सु० ॥ सुवन शोक संतोष सुमित्रहि रघुपति भगति वरे है। छिनछिन मातु सुखाति छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं। सुनि० ॥ कपिसों कहति सुभाय अम्बके अंबक अम्बुभरे हैं। रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर यद्यपि धनुष धरे है ॥ सु० ॥ तात जाहु कपिसग रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे है। प्रमुदित पुलकित नैन परे जनु विधिवश सुढर ढरे है ॥ सु० ॥ अब अनुज गति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे हैं। तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे है ॥ २ ॥

तात गहरु होइहि तोहिं जाता । काज नशाई होत प्रभाता ॥९॥
शैलसमेता मैं जहँ कृपानिकेता१०॥
हनू०-तव प्रताप उररांखिगुसाईं।जैहौं नाथ बाणकी नाईं॥११॥
दोहा-तव प्रताप उरराखि प्रभु, जैहौं नाथ तुरन्त ।

[स्थान रामका शिविर.]

अर्धरात गइ कपि नहिं आवा।राम उठाय अनुजउर लावा॥१"
राम-सकहुनदुखितदेखमोहिंकाऊ।बंधुसदा तवमृदुलसुभाऊ२
।जे पितु माता।सहेउ विपिन हिम आतप वाता३
न सुनि मम बच विकलाई४॥

जगत्में क्यों उत्पन्न हुआ जो प्रभुके एक कामभी नहीं आया ॥ ८ । हे तात ! तुमको जातेमें देर होगी और प्रभात होतेही काज नाश हो जायगा ॥ ९ ॥ मेरे बाणपर तुम शैल समेत चढ़ो मैं कृपासागरके समीप भेज दूंगा ॥ १० ॥ हनूमान-हे गोसाँई ! आपका प्रताप हृदयमें धरकर बाणके समानही जाऊंगा ॥ ११ ॥ (दोहार्थ)-हे नाथ ! तुम्हारा प्रताप हृदयमें रखकर तुरन्त जाऊंगा यह कह आज्ञा पाय पदवन्द हनूमान चले ॥ २७ ॥

अर्धराततक जब महावीर नहीं आये तब रामने लक्ष्मणको उठाय हिये लगाया॥ १ ॥हे भ्राता ! तुम तौ मुझे कभी दुःखी नहीं देखसकते थे हे बंधु ! सदा तुम्हारा कोमल स्वभाव है ॥ २ ॥ मेरे निमित्त पिता माता त्यागन कर वनमें शरदी धूप और पवन सही ॥ ३ ॥ हे भ्राता ! अब वह अनुराग

---

१ राग केदार-राम लषण उर लाय लये हैं ॥ टेक ॥ भरे नीर राजीव नयन सब अंगपर तापतये है ॥ कहत सशोक विलोकि बन्धुमुख वचन प्रीति गथये हैं ॥ रामल० ॥ सेवक सखा भगति भायपगुण चाहत अब अथये हैं । निज कीरति करतूति तात तुम सुकृती सकल जये है । मैं तुम विन तनु राखि लोक अपने अपलोक लये हैं ॥ मेरे प्राणकी लाज यहांलौ हठि प्रिय प्राण दये है ॥ राम ल० ॥ लागत साँगि बिभीषणही परसी पर आयु भये है ॥ सुनि प्रभुवचन भालु कपिगण सुर शोच सुखाइ गये है ॥ राम ल० ॥ तुलसी आइ पवनसुत विधि मानो फिरि निरमये नये है ॥ राम लषण उर लाय लये हैं ॥ १ ॥

जोजनितेउ वन बन्धुविछोहू । पिता वचन मनतेउँ नाहिं ओहू ५
सुत वित नारि भवन परिवारा । होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ६॥
अस विचारि जियजागहुताता। मिलहि न जगत सहोदर भ्राता ७
यथापंखविनु खगपतिदीनां । मणि विनु फणि करिवर करिहीना ८
अस मम जिवन बंधु बिन तोहीं। जो जड दैव ज़ियावै मोहीं॥ ९॥
जैहौं अवध कवन मुखलाई । नारिहेतु प्रियबंधुगँवाई ॥ १० ॥
नारिहानि विशेष क्षति नाहीं १
सहै
निजजननीके एक
॥ १३॥
सौंपेहु मोहिं तुमहिं गहिपानी । सबविधिसुखदपरमहितुजानी १४
उतर ताहिदेहौं का जाई । नारिहेतु प्रियबंधु गँवाई ॥ १५ ॥

कहा है, मेरे विकलताके वचन सुनकर उठते नहीं ॥४॥ जो जानता कि, वनमें बंधुका बिछोह होगा तो पिताके वह चार दिन वाले भी वचन न मानता॥५॥पुत्र धन स्त्री घर परिवार जगत्में अनेक बार होकर जाता रहता है ॥ ६ ॥ हे तात ! ऐसा विचार कर जागो कि जगत्में सहोदर भाई नहीं मिलते ॥ ७ ॥ जैसे पंखके बिना खगपति दीन हो मणिके विना सर्प और सूँडके बिना हाथी दुःखी हो ॥ ८ ॥ इस प्रकारसे हे बंधु ! तुम्हारे बिना मेरा जीवन है जो जड़ दैव मुझे जिवावै ॥ ९ ॥ मैं क्या मुख लेकर अयोध्यामें जाऊंगा नारिके हेतु प्रिय बंधुको गमादिया ॥१०॥ चाहै जगत्में अपयश सहता कारण कि नारिकी हानिसे कोई विशेष हानि नहीं ॥ ११ ॥ पर अब यह तुम्हारा शोक देख कठोर निठुर मेरा मन सब सहता है ॥ १२ ॥ अपनी माताके तुम ऐसे एकही कुमार हो और उसके प्राणोंके आधार हो ॥ १३ ॥ हाथ पकड़ मुझको तुम्हें सौंपादिया था मुझे सब प्रकार सुखदाई और परमहितू जाना था ॥ १४॥ उसे जाकर क्या उत्तर दूंगा नारिके

१ कवित–तातको शोच न मातको शोचरु शोच नहीं मोहि अवध तजीको । शोच नहीं वनवास भये अरु शोच नही मोहिं सीय हरीको । शोच नहीं अस वालिके घांतको शोच नहीं कछु विपत्ति परीको । तुलसी शोच भयो इक मोहिं सुभक्त विभीषण बाँह गहीको ॥ १ ॥

सोरठा--"प्रभुप्रताप सुनि कान, विकलभये वानरनिकर ।
आय गये हनुमान, जिमि करुणामें वीररस ॥२८॥
तुरत वैद्य तब कीन्ह उपाइ । उठि बैठे लक्ष्मण हर्षाई ॥ १ ॥
पुनि कपि वैद्य तहां पहुँचावा।जेहि विधि तबहिं ताहि लेआवा २

चतुर्थ दर्शन ।

रावणका कुंभकर्णको जगाना ।

(कुंभकर्ण वध)

"यह वृत्तान्त दशानन सुनेऊ। अति विषाद पुनि २ शिर धुनेऊ १
व्याकुल कुंभकर्ण पहँ गयऊ। करि बहु यतन जगावतभयऊ २
कुंभकर्ण पूँछा सुनभाई । काहे तव मुख रहा सुखाई ॥ ३ ॥
कहीकथा तेहि सब अभिमानी।जेहिप्रकार सीताहरि आनी४"
रावण--तात कपिन निशिचर संहारे। महामहायोधा सब मारे५

निमित्त मैंने अपना प्रियबन्धु गँवादिया ॥ १५ ॥ (सोरठार्थ)—प्रभुका प्रलाप सुनकर सब बानर व्याकुल हुए उसी समय- करुणामय वीररसके समान महावीर आये ॥ २८ ॥

तुरतही वैद्यने उपाय किया और प्रसन्न हो लक्ष्मण उठ बैठे ॥ १ ॥ फिर कपि जिस प्रकार वैद्यको लायेथे उसी प्रकार पहुँचा दिया ॥ २ ॥

चतुर्थ दर्शन ।

रावणने यह वृत्तान्त सुना तो विषादसे बारबार शिर धुना॥ १॥ व्याकुल कुम्भकर्णपर गया और अनेक यत्न कर जगाया ॥ २ ॥ कुंभकर्णने पूँछा भाई तुम्हारा मुख क्यों सूखरहा है ॥ ३ ॥ तब उस अभिमानीने सब कथा कही जिस प्रकार जानकी हर लाया था ॥ ४ ॥ हे तात ! कपियोंने सब निशाचर जो बड़े बली योद्धा थे मारदिये ॥ ५ ॥

दोहा–दशकंधरके वचन सुनि, कुंभकर्ण विलखान।
कुंभ०-जगदम्बा हरि आनिकै, शठ चाहसिकल्यान॥२९॥

भल न कीन्हतैं निशिचरनाहा।अब मोहिं आन जगायहु काहा
अजहुँ तात त्यागहु अभिमाना। भजहु राम होइहिकल्याना २
अहह बंधु तैं कीन्ह खुटाईप्रथमहिं मोहिं न जगायहु आई ३॥
कीन्हेउ प्रभुविरोध तेहि देवक। शिवविरंचि सुरजाके सेवक ४॥
नारदमुनिमोहिं ज्ञान जो कहेऊ। कहतेउँतोहिंसमयनहिं रहेऊ५
अब भरि अंक भेंट मोहिं भाई।लोचन सफलकरौं मैं जाई ॥६॥
श्यामगात सरसीरुहलोचन। देखौं जाय तापत्रयमोचन॥ ७॥
"कुंभकर्णदुर्मदरणरंगा । चलादुर्गतजि सैन न संगा ॥ ८ ॥
देखि विभीषण आगे आयउ। पुनिपदगहि निजनामसुनायउ"

दोहार्थ--रावणके वचन सुन कुंभकर्ण व्याकुल हो बोला अरे शठ जगन्माताको हरकर अब कल्याण चाहता है ॥ २९ ॥

हे निशिचरपति! तुमने अच्छा नहीं किया अब मुझे आनकर जगानेसे क्या है ॥ १ ॥ हे तांत! अवभी अभिमान त्यागो रामका भजन करो कल्याण होगा ॥ २ ॥ हे भाई! तुमने बडी खुटाई की प्रथमही मुझे आकर न जगाया ॥ ३ ॥ हे प्रभु! उस देवतासे तुमने विरोध किया है शिव विरंचि देवता जिसके सेवक हैं ॥ ४ ॥ नारदमुनिने मुझे जो ज्ञान कहा था सो मैं तुमसे कहता पर समय नहीं रहा ॥ ५ ॥ हे भाई! अब अंक भरकर मुझसे भेंटौ मैं जाकर नेत्र सफल करूं ॥ ६ ॥ श्यामशरीर कमललोचन तीन तापके मुक्त करनेवालेको जाकर देखूंगा ॥ ७ ॥ कुंभकर्ण दुर्मदरणमें रंग गया बिनाही सेनाके दुर्गको छोडकर चला ॥ ८ ॥ देखकर विभीषण आगे आया और फिर चरण स्पर्शकर अपना नाम सुनाया ॥ ९ ॥ हे तात! परम हितकारी विचारका मंत्र कहते भी रावणने मेरे लात मारी ॥ १० ॥

तेहिगलानिरघुपतिपहँ आयउँ।दीनजान प्रभुके मन भायउँ ११

कुं०-सुनसुत भयोकालवश रावन।सो किमिमानैपरम

धन्यधन्यतैंधन्य विभीषण। भयउतातनिशिचर कुलभूषण १३

-मनक्रमवचन कपटतजि, भजहु तात रघुवीर।

जाहु न निजपर सूझ मोहिं, भयउँ कालवश वीर ॥३०॥

"बंधुवचन सुनि फिरा विभीषण। आयो जहँत्रैलोक्य विभूषण".

विभी०-नाथभूधराकार शरीरा। कुंभकर्णआवतरणधीरा ॥२॥

(युद्धको वानर दौडते हैं)

राम-दोहा-सुन सौमित्रि विभीषण, सकल सँभारहु सैन।

मैं देखौं खलबल दलहिं, बोले रा

"धनुसंधानि शिर

उसी ग्लानिसे रघुनाथजीपर आया और दीन जानकर रघुनाथजीके मनको भाया हूं ॥ ११ ॥ कुंभकर्ण बोला हे पुत्र! रावण तो कालवश हुआ वह परम सिखावन कैसे मानैगा ॥ १२ ॥ हे बिभीषण! त धन्य है जो निशिचरकुलमें भूषण हुआ ॥ १३ ॥ (दोहार्थ)-हे तात! मन वचन कर्मसे कपट तजकर रघुनाथका भजन करो अब जाओ मुझे अपना पराया नहीं सूझता कालवश हुआ हूँ हे वीर! जांओ॥ ३० ॥

बंधुके वचन सुन बिभीषण लौटकर त्रिलोकीके भूषण रामके समीप गया॥१॥और बोला हे नाथ! यह पर्वतके समान शरीरवाला बडा रणधीर कुंभकर्ण आता है ॥२॥ (दोहार्थ)-राम--हे लक्ष्मण विभीषण! सब अपनी

देखूं यह रामने कहा ॥ ३१ ॥

धनुष संधानकर लाखबाण छोडे मानो पंखसहित कालरूपी सर्प.चले१

१ भजन--कुंभकर्णसे आज भई है लडाई। धाय धाय निशिचर चहुँ दिशिको भालु कपिन गयो खाई। श्रवण नासिका माहिं निकसके कीश भालु सब चलहिं पराई॥ १ ॥ राम लषण दोउ वीर बली तब कोपबाण झरलाई॥ हाथ पाँव निशिचरके काटे शीशकाट भूदियो गिराई॥ २ ॥ मार असुर प्रभु शोभित दलमे महिमा कही न जाई। रघुनायक सुखदायक प्रभुकी देवन सब जय जयति सुनाई ॥ ३ ॥ महावलिष्ठ असुर जब मारो देव सुमनझरलाई। मिश्र तुम्हारी महिमा वरणै ऐसा है कौन जगत कविराई ॥ ४ ॥

२

रामसेन निज पाछे घाली । चले सकोप महाबलशाली ॥
धनुषशतशरसंधान । छूटे तार श
शरनिभरा मुख स

शिर ६

छंद–संग्रामभूमि विराज रघुपति अतुलबल शोभा धनी

भुजयुगलफेरत शर
कहदासतुलसी कहि नसक छबि शेषजेहि आनन घने १"

(मेघनादवध)

"बहु विलाप दशकंधर करई । पुनिपुनि बन् उर धरई"

बलसे वह बाण चले और राक्षस कटकटकर गिरने लगे ॥ २ ॥ रामचन्द्र सेना पीछेकर आप क्रोधकर उसके सन्मुख हुए ॥ ३ ॥ धनुष खैंच सौ बाण मारे वह उसके शरीरमें समागये ॥ ४ ॥ बाणोंका भरा ऐसे सन्मुख आया जैसे कालका तरकस सजीव आता हो ॥ ५ ॥ तब क्रोधकर तीक्ष्ण बाण ले प्रभुने उसका शिर धडसे पृथक् करदिया ॥ ६ ॥ वह शरीर रावणके आगे पड़ा मणि नष्ट होनेसे सर्पके समान रावण व्याकुल हुआ ॥ ७ ॥ (छंदार्थ)–अतुलबली शोभाके धनी रामचन्द्र संग्रामभूमिमें विराजे मुखपर श्रमके बिन्दु कमललोचन सुन्दर शरीरपर रुधिरके कण विराजमान हैं धनुष बाणोंपर दोनों हाथ फेरते हैं चारोंओर रीछ वानर विराजमान हैं तुलसीदास कहते हैं अधिक मुखवाले शेषजी भी यह छबि नहीं कह सकते ॥ १ ॥

पंचमदर्शन ।

(समरभूमिमें मेघनादका वध.)

रावण बहुत विलाप करता और बारबार बंधुका शिर हृदयमें धरताहै॥१॥

मेघनाद तिहिअवसर आवा। कहि बहुकथापितहि समुझावा २"
मे०—देखहु कालिह मोरि मनुसाई। अबहिंबहुतका करौं बड़ाई ३
"इहिविधिजलपत भयो बिहाना। लगे भालुकपि चहुँदिशिनाना

(मेघनाद मायाके रथपर चढ नागपाशसे सबको बांधता है और महायुद्ध होताहै।)

धरु धरु मारु सुनहिं कपिकाना। जो मारै तेहि काहु न जाना ५
जाहिं कहांव्याकुलभयबंदर। सुरपतिबंदि परे जनुमंदर ॥ ६॥
मारुतसुत अंगद नलनील। कीन्हेसि विकल सकलबलशील७
पुनि लक्ष्मण सुग्रीव बिभीषण। शरनमार कीन्हेसि जर्जर तन८
पुनि रघुपति सन जूझै लागा। शर छांडत होइ लागहिं नागा९॥
व्याल फांस वश भये खरारी। स्ववश अनंत एक अविकारी१०
व्याकुल कटककीन्ह घननादा। पुनिभा प्रगट कहत दुर्वादा११
जाम्ब०-जाम्बवन्त कह खलरहु ठाढा। सुनकर ताहि क्रोध अतिबाढ़ा
मेघ-बूढ जानि शठछांडेउँ तोहीं। लागेसि अधम प्रचारन मोहीं १३॥

उसी समय मेघनादने आय बहुत कथा कह पिताको समझाया ॥ २ ॥ कि कल मेरा पराक्रम देखना अबहीं बहुत बड़ाई क्या करूं ॥ ३ ॥ इसभांति प्रभात हुआ और वानर लंकाके चारों ओर धाये ॥ ४ ॥ पकड़ो मारो ऐसा कपि सुनते हैं पर जो मारता है उसे किसीने नहीं जाना ॥ ५ ॥ डरसे व्याकुल बंदर कहां जायँ मंदरपर्वत इन्द्रके बंधनमें जैसे हुआ तैसे हुए ॥६॥ महावीर, अंगद, नल, नील इन सब बलियोंको विकल किया ॥ ७ ॥ फिर लक्ष्मण, सुग्रीव, बिभीषणका शरीर बाण मारमार कर जर्जर करदिया ॥ ८ ॥ फिर रघुनाथसे युद्ध करनेलगा उसके बाण छुटकर सर्प होजाते थे ॥ ९ ॥ अपने वश अनंत अविकारी भगवान् नाग-फांसके वश हुए ॥ १० ॥ इस प्रकार कटकको व्याकुल कर दुर्वचन कहता मेघनाद प्रकट हुआ ॥ ११ ॥ जाम्बवन्तने कहा अरे दुष्ट ! खड़ा तो रह सुनकर मेघनाद बडा क्रोधित हुआ ॥ १२ ॥ हे शठ ! मैंने तुझे बूढा जान-

"अस कहि तरल त्रिशूलचलावा।जाम्बवन्त सो करगहि धावा
मारेउ मेघनाद्की छाती। परा धरणि घुर्मित सुरघाती ॥१५॥
पुनि चरण फिरावा।महिपछारिनिजबलहिदिखावा
वर प्रसाद सो मरै न मारा। तब पद गहि लंकापर डारा१७॥
इहां देवऋषि गरुड पठाये। राम समीप सपदि चलि आये१८

दोहा--पन्नगारि खाये सकल, क्षणमहँ व्यालवरूथ।
भई विगतमाया तुरत, हर्षे वानरयूथ ॥ ३२ ॥

मेघनादकी मूर्च्छा जागी। पितहिं विलोकि लाज अति लागी १
तुरतगयउ सो गिरिवरकंदर।करौंअजयमखअसनिजमनधर २
सोसुधिपायबिभीषण कहई।सुनप्रभुसमाचार अस अहई ३॥"
बिभीषण--मेघनाद मखकरैअपावन।खलमायावीदेवसतावन॥

कर छोड़ा था तू मुझेही ललकारता है ॥ १३ ॥ ऐसा कह एक तीक्ष्ण त्रिशूल चलाया जाम्बवन्त बीचमेंही पकड़ धावमान हुआ ॥ १४ ॥ और उसे मेघनादकी छातीमें मारा लगते ही वह सुरघाती घायल हो घूमकर भूमिमें गिरा ॥ १५ ॥ फिर रिसाय चरणपकड़ घुमाया पृथ्वीपर पछारकर अपना बल दिखाया ॥ १६ ॥ वरके कारण मारेसे नहीं मरा तब चरण पकडकर लंकापर फेंकदिया ॥ १७ ॥ यहां नारदजीने गरुडको भेजा वह बहुत शीघ्र रामके समीप आये ॥ १८ ॥ (दोहार्थ)—और गरुड़-जीने क्षणमें वह सर्प खालिये तुरत माया छुटनेसे रीछ वानर प्रसन्न हो धावमान हुए ॥ ३२ ॥

[मेघनाद यज्ञ]

मेघनादकी मूर्च्छा जागी तब पिताको देख बड़ी लाज लगी ॥ १ ॥ तुरत पर्वतकी कन्दरामें अजययज्ञ करने चला गया ॥ २ ॥ यह सुधि पाकर बिभीषण बोला हे प्रभु ! ऐसा समाचार है कि ॥ ३ ॥ वह दुष्ट मायावी देवताओंका सतानेवाला मेघनाद अपावन यज्ञ करता है ॥ ४ ॥

जोप्रभुसिद्धहोइ सो पाइहि।नाथबेगि रिपु जीतिनजाइहि ॥५
राम--लक्ष्मणसंगजाहु सबभाई।करहुविध्वंसयज्ञकर जाई ॥६॥
अतिमोही
नसमेत रहहु तीनों जन ॥८॥

(लक्ष्मण सज्जित होते हैं)

लक्ष्मण-जो तोहि आजु वध बिनुआवौं।तौरघुपतिसेवकनकहावौं
दोहा-"वंदि रामपदकमलयुग, चले तुरन्तअनन्त ।
अंगद नील मयंद नल, संगसुभट हनुमन्त ॥३३॥
जायकपिनदेखासोवैसा । आहुति देत रुधिर अरु भैंसा ॥१॥
तब कीशन कृतयज्ञ विध्वंसा।जब न उठहि तब करहिं प्रशंसा२
तदपि न उठै धरहिं कच जाई।लातन हतिहति चलहिं पराई३॥
ले त्रिशूल धावा कपि भागे । आवा राम अनुजके आगे ॥४॥
आवा परमक्रोधकर मारा । गर्जि घोर रव बारहिंबारा ॥५॥

हे प्रभु ! जो वह सिद्ध होजायगा तौ शीघ्रतासे शत्रु न मारा जायगा॥५॥ राम बोले हे वीरो ! तुम सब लक्ष्मणके संग जाओ और यज्ञविध्वंस करो ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम उसे युद्धमें मारना देवताओंको भयभीत देख मुझे अति दुःख है ॥ ७ ॥ जाम्बवन्त सुग्रीव बिभीषण यह तीनों जन सेना सहित संग रहना ॥ ८ ॥ लक्ष्मण बोले जो मैं आज मेघनादको मारे बिना आऊँ तौ रघुनाथका सेवक न कहाऊँ ॥ ९ ॥ (दोहार्थ)-यह कह रामके चरणोंमें प्रणामकर अंगद नील मयन्द नल बली महावीरके साथ लक्ष्मण चले ॥ ३३ ॥

जाकर वानर देखते हैं कि, वह रुधिर और भैंसेकी आहुती देता है ॥ १ ॥ तब वानरोंने यज्ञ विध्वंस किया जब न उठा तब प्रशंसा की॥ २ ॥ तब भी न उठनेसे बाल पकड़े और लातैं मारमारकर भागने लगे ॥ ३ ॥ तब वह त्रिशूल लेकर उठा वानर भागे वह लक्ष्मणके आगे आया ॥ ४ ॥ और बारम्बार गर्जकर लक्ष्मणको मारा ॥ ५ ॥

क्रोपि मरुतसुत अंगद धाये। हति त्रिशूल उर धरणि गिराये ६
ध वेषधरि करै लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई ॥७॥
सुमिरि कौशलाधीश प्रतापा। शरसंधानकीन्ह अतिदापा॥८॥
गा।

दोहा–रामअनुजकहि रामकहि, असकहि छाँडसिप्राण।
धन्यशक्रजित मातु तव, कहि अंगद हनुमान ॥३४॥

विनुप्रयास हनुमान उठाये। लंकाद्वार राख पुनि आये ॥१॥
प्रभुहि विलोकि शीशपद नाये।उठि प्रभु अनुज हर्षि उरलाये२
प्रभु कौतुकी निरखि रिपुशीशा।राखन कहेउ कोशलाधीशा३"

सब विश्राम करते हैं।

(स्थान सुलोचनाका मंदिर)

वार्त्ता

सखी–देखो तो आज अंगनमें एक भूषण जटित भुजा किसकी पडी है।

सुलो०–होत महारण रावण रामहिं।वीर धुरीण मोर पियतामहिं१
"इतनाकहत गई चलिआपू।पतिभुज लखि करिकोटि कलापूर

क्रोधकर महावीर अंगद चले त्रिशूल मार उन्हें भूमिमें गिराया ॥ ६ ॥ अनेक वेषधर लड़ाई करे कभी प्रगट हो कभी छिपजाय ॥ ७ ॥ लक्ष्मणने कोशलाधीशका प्रताप स्मरणकर प्रतिज्ञापूर्वक बाण चढाया ॥ ८ ॥ बाण छोडते ही उसके हृदयमें लगा मरती बार उसने सब कपट त्यागा॥९॥

दोहार्थ–राम और लक्ष्मण कहां हैं ऐसे नाम लेकर प्राण त्यागे अंगद हनूमानने कहा तेरी माता धन्य है ॥ ३४ ॥

बिना प्रयास हनूमानजी उठाकर लंकाके द्वारपर उसे धर आये ॥ १ ॥ और सबंने आय प्रभुके चरणोंमें शिर नवाया प्रभुने उठ लक्ष्मणको हृदयसे लगाया ॥ २ ॥ कौतुकी प्रभुने वह शिर देख रखनेको कहा ॥ ३ ॥

(सुलोचनाकी कथा क्षेपक)

सुलोचना–राम रावणमें महायुद्ध होता है वीरधुरीण मेरा पति उसी में है ॥ १ ॥ इतना कह आपही चलीगई और पतिकी भुजा देख

नींद नारि भोजन परिहरई। बारहवर्ष तासुकर मरइ॥ ३॥

दोहा-करि विचार मन टेकदे, मैं पतिदेवत नारि।
भुजलिखि मेटहु दुचितई, सुनि कर दीन पसारि ३५

लखि रुख तासु सखी उठिधाई।सोतेहि खोजखरी ले आई१"
भुजा--नींद नारि भोजनशतकोटी।तजत तासु महिमाअति छोटी२
लीलातनु सुरसेवककहेतू। जासु नाम भवसागर सेतू॥ ३॥

दोहा--कोटिकल्प वर्णत निगम, अगम जासु गुणगाथ।
तम शरीर जडजीव विनु, किमि वर्णत लिखि हाथ ३६

ममाशिर ॥

[सुलोचना अनेक विलाप करती है]

सुलो--जेहि भुजबलसुरनाथविगोवा। सो भुज आज समरमें सोवा

विलाप करने लगी॥ २॥ जो बारह वर्ष नींद, नारि, भोजन छोड़दे उसके हाथसे मृत्यु होनी थी ॥ ३ ॥ (दोहार्थ)-फिर विचारकर मनमें टेकदे कहा जो मैं पतिव्रता स्त्री हूं तौ यह भुजा लिखकर मेरी दुचितई मेटे सुनकर हाथ फैलगया॥ ३५॥

रुखदेख सखी ढूंढकर खरीलाई और वह हाथ आंगनमें लिखने लगा ॥ १ ॥ नींद नारि और शतकोटि भोजन आदि त्यागना भी उसकी महिमा है ॥ २ ॥ उसने देवता और सेवकोंके शरीर धारण किया है जिसका नाम भवसागर पार जानेको सेतुरूप है ॥ ३ ॥(दोहार्थ)-जिसके गुण वेद कोटिकल्पतक वर्णन करके भी पार नहीं पासकते फिर यह तमोगुणी शरीर जड़जीवके विना हाथमात्र क्या लिखसके॥ ३६॥

मेरा शिर रघुराजके पास गया और तुम्हारी प्रतीतिके लिये भुजा पठाई है॥ १॥ सुलोचना-जिसने अपने भुजबलसे इन्द्रको व्याकुल

छूटि बंदि अब सुरगण केरी। निजनिज पुरन दुहाइ फेरी ॥३॥
मुनि पुलस्त्यकर भा कुलनाशा। अब रवि शशि सुखकरहिं प्रकाशा ४
तजवन्त पावक परिहरिदु

विजय राम लक्ष्मण कहँ आवा। सुयश सकल मर्कटकुलपावा ६
कुलकलंक बड़लहेउ बिभीषण। कुलकुठार असुनेउ न दीखन

[रावणके पास पालकीमें जातीहै।]

सु०--तुमंहिं अछत अस दशा हमारी। सुखतजि भ

रणकबन्ध भुजममगृह आई। शिरतहँ गयउ जहाँ रघुराई
करहुसोयतन मिलै जेहिशीशा। तुमसामर्थ्य निशाचरईशा १०
रावण--दोहा--रामलषण सुग्रीव नल, नील द्विविद हनुमन्त।
माथ बिभीषण ऋषभकर, आनव मारि तुरन्त॥ ३७ ॥

करदिया वह भुजा आज समरमें पडी है॥२॥ अब देवताओंका बांद छुटगई उन्होंने अपने २ पुरोंमें दुहाई फेरदी ॥ ३ ॥ पुलस्त्यमुनिका कुल नाश हुआ अब सूर्य चन्द्र सुखसे प्रकाश करेंगे ॥४॥ अग्नि दुःख त्याग तेजवन्त होगी-पवन आज अपने सुखसे चलैगी ॥ ५ ॥ राम लक्ष्मणकी विजय हुई वानरोंका यश हुआ ॥ ६ ॥ विभीषणने बड़ा कुलका कलंक पाया ऐसा कुलकुठार नहीं सुना न देखा ॥ ७ ॥ (रावणसे)--तुम्हारे होते हमारी यह दशा हुई कि, सुख त्याग दुःखकी अधिकारी हुई ॥ ८ ॥ युद्धमें कबन्ध है भुजा मेरे घर आई शिर रामचन्द्रपर गया ॥ ९ ॥ वह यत्नकरो जिससे शिर मिलै हे निशाचरराज ! तुम समर्थ हो ॥ १० ॥ (दोहार्थ)--रावण--राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, नल, नील, द्विविद, हनुमान, बिभीषण और ऋषभ इनको मारकर अभी इनके शिर लाता हूँ ॥ ३७ ॥

---

१ भजन--देखके भुजा सुलोचन रानी रोई। कैसे भुजा गिरी आँगनमें मोहि समझावे कोई। बारह वर्ष नींद नारी सँग जो त्यागै पियमारै सोई ॥ १ ॥ शका मान खरी तिन दीनी लिखत चरित भयो जोई। नींद नारि भोजन शतकोटी तजत न महिमा जाकी मोटी होई ॥ २ ॥ तब प्रतीति लगि भुजा पठाई शका करो न कोई। मम शिरगयो जहां रघुराई मागले आवो संत साज सजोई ॥ ३ ॥ सुनत सुलोचन चली महलसे दीनो सर्वस खोई। रामादलमे कियो पयानो पतिहित पतिव्रतधर्म रहोई ॥ ४ ॥

। कुम्भकर्ण घननाद सुरारी ॥१ ॥
तेहु आज लग कीन्ह न जूझा।इन सब कर पुरुषारथ बूझा॥२॥
मरेउ सो नर बानरके मारे। बात सुनत अति लाज हमारे ॥ ३॥
गिनतीकिवनवीरमें तिनकी। अतिदुर्दशा कीन्ह कपिजिनकी४॥
तजहुशोक कुलवंधूपुतोहू। उन समान जनि जानहु मोहू ॥५॥
पुत्रि विलम्बकरहु घटिचारी। देखहु मोर भयंकर भारी ॥ ६ ॥
आनि शीश तव शत्रुन केरा । विना प्रयास न लाउंब बेरा॥७॥
भोगत जन्तु पुराकृत भोगा। नतुकिमिनिशिचर वनचर योगा८

दोहा–मेरु उखारन हार जे, धराधरत कर बीच ।
ते भट खाये मशक शिशु,काल कुटिलता नीच॥३८॥

सु०–नर बानर पुरुषारथ देखत। बडोप्रभाव छोट करि लेखत१
कुंभकर्ण अतिकाय महोदर। मम पतिगिरेउ समेत सहोदर२॥

अबतक इस बातका बड़ा भरोसा था कि, कुम्भकर्ण मेघनाद बड़े बली हैं ॥ १ ॥ इसीसे मैंने आजतक युद्ध नहीं किया इन सबका पुरुषार्थ देखा॥२॥सो यह नर वानरोंके मारे मरगये यह सुनकर हमको बड़ी लाज आती है ॥ ३ ॥ क्या उनकी वीरोंमें गिनती हो सकती है जिनकी बन्दरोंने बडी दुर्दशा कर दी ॥ ४ ॥ हे कुलवधू ! शोक त्यागन करो उनके समान मुझे मत जानो ॥ ५ ॥ हे पुत्री ! एक चार घडी विलम्बकर मेरा पराक्रम देखो ॥ ६ ॥ विना प्रयास मैं तुम्हारे शत्रुओंका शिर ले आऊंगा देर न होगी ॥ ७ ॥ यह प्राणी पूर्वजन्मानुसार भोग भोगता है न तो क्या निशाचर वानरोंके योग्य थे ॥ ८ ॥ (दोहार्थ)–जो सुमेरुके उखाडनेवाले भूमिको हाथमें धरनेवाले थे उन योद्धाओंको मच्छरके बालक खागये यह नीच कालकी कुटिलता है ॥ ३८ ॥

सुलोचना–नर वानरोंका पुरुषार्थ देखते हो बड़ा प्रभाव भी छोटाकर मानते हो ॥ १ ॥ कुम्भकर्ण, अतिकाय, महोदर . और सहोदरसहित

ते रिपु चहत दशानन जीती। देखहु महा मोहकर रीती ॥ ३ ॥
उतर देउँ तौ पातक होई। कह विवादकर सर्वस खोई ॥ ४ ॥
फिरहि राज्यकछुमोहिंन काजू॥विनुपिय सकल नरककर साजू
दोहा-"तुरतहि उठी सुलोचना, गइ मयतनया पास।
पद गहि रोवत सकल कह, प्रगट शोक इतिहास ॥३९॥
आदिहिते सब कथा बखानी। सुनि सुनि रोवत रावणरानी १॥"
मन्दो०-सुनि निजपुत्रवधूकीवानी।बोलीदुखित मँदोदरिरानी२
कहत सो मानहु सत्य सयानी।सुनि जो नारदमुनिकी वानी ३॥
बात भई सब सांची
देवि न होय मृषा ऋषि भाषत।अपने महामोह मन राखत॥५॥
वैरभाव दशकंधर जूझब। प्राणहु गये नीति नहिं
[illegible]
अब पुत्री परिहारि सब शोका।पति सँग वेगि साध परलोका॥८॥

मेरा पति युद्धमें गिरगया ॥ २ ॥ उन शत्रुओंको रावण जीतना चाहता है महामोहकी रीति तौ देखो ॥ ३ ॥ उत्तर देनेसे पातक होगा विवाद कर कौन सर्वस खोवै ॥ ४ ॥ राज्यभी फिरै तो मुझे क्या काम है प्रीतमके विना सब नरकका साज है ॥५॥ (दोहार्थ)-तुरत सुलोचना उठ मन्दोदरीके पास गई चरण पकड रोकर सब कथा सुनाई ॥ ३९ ॥

आदिसे सब कथा सुनाई सुनकर मन्दोदरी रोने लगी ॥ १ ॥ और पुत्रवधूकी वाणी सुन दुःखी हो मन्दोदरी बोली ॥ २ ॥ हे सयानी ! जो नारद कह गये हैं सो सुनो सब सत्य है ॥ ३ ॥ पिछली बात सब सत्य हुई अनुभव कर देखा एक न बची ॥४॥ हे देवि ! ऋषिका कहना मिथ्या न होगा चाहै अपने मनमें महामोह रक्खौ ॥५॥ वैरभावसे रावण जूझैगा प्राण जानेपर भी नीति न मानैगा ॥ ६ ॥ सीता शोचसंकटसे छूटजायगी रीछ वानर राज्यघरकी लूट करैंगे ॥ ७ ॥ हे पुत्रि ! अब तुम सब शोक

[illegible] शिर [illegible] किन मांगी९

पुनि श्वशुर विभीषण तोरा।वालितनय बालक सम मोरा १०॥
एक नारिव्रत रघुवर केरा। लषण सुयश तुम सुनेउ घनेरा११॥
जाम्बवन्त मंत्री सुग्रीवा। द्विविद मयन्द महाबल सीवा॥१२॥
जानहु ब्रह्मचर्य्य हनुमंता। शिवस्वरूप भवहर भगवंता ॥१३॥
सदा नीतिरत राम नरेशा। तहाँ जात कहु कवन कलेशा ॥१४॥

दोहा–विदित तोर पति भुज लिखत, लक्ष्मण राम प्रभाव।
हमहूं ऋषि भाषित कहेउ, अब विलंब जनि लाव॥४०॥

बारबार चरणन शिर नाई। चली जहाँ लक्ष्मण रघुराई ॥१॥

दोहा–देखत डरत सुलोचना, धीरज धरत बहोरि।
महाराज रघुवीर कहँ, विनय सुनावो मोरि ॥ ४१ ॥

करत दण्डवत शिर धर धरणी। तिहि कर चरित विभीषण बरणी१

त्यागकर पतिके संग शीघ्र परलोक साधो ॥ ८ ॥ पतिके शिरके निमित्त रामपर जाओ और संकोच तज मांग लाओ ॥ ९ ॥ वहां विभीषण तुम्हारे श्वशुर हैं वालिपुत्र मेरे बालकके समान हैं ॥ १० ॥ रघुनाथका एकनारिव्रत है, लक्ष्मणका घना यश तुमने देख सुनही लिया ॥ ११ ॥ जाम्बवन्त सुग्रीव द्विविद मयन्द महाबली रामके आज्ञाकारी मंत्री हैं॥१२॥ हनूमान नैष्ठिकब्रह्मचारी हैं यह साक्षात् शिवस्वरूप संसारनाशक भगवन्त हैं ॥ १३ ॥ रामचन्द्र सदा नीतिकी मर्यादा रखते हैं फिर वहां जानेमें क्लेश क्या है ॥ १४ ॥ (दोहार्थ)--और लक्ष्मण रामका प्रभाव तेरे पतिकी भुजाने ही लिखदिया है हम भी ऋषिका भाषण कहचुकी अब देर मत लगाओ ॥ ४० ॥

तब सुलोचना बारबार चरणोंमें शिर नवाय जहां राम लक्ष्मण थे वहां गई ॥ १ ॥ (दोहार्थ)--सुलोचना देखकर डरी और फिर धीरज धारण कर बोली श्रीरामसे मेरी विनय सुनाओ ॥ ४१ ॥

पृथ्वीमें शिर धर दंडवत् की उसका चरित्र विभीषणने वर्णन किया१॥

बिभी०-पुत्रवधू दशकंधर केरी। बडी पतिव्रताजानि प्रभुहेरी २
मेघनादकी नारि सुशीला।असगति तव विरोध कर लीला ॥३॥
करत प्रणाम प्रेम नहिं थोरे।करुणावचन कहत करजोरे ॥ ४ ॥
सुलो०-छंद-निरखतयुगचरणं अशरणशरणं तारणतरणं भयहरणम्।
जगकारणकरणं पोषणभरणं खलदलहरणं दुखटरणम् ॥
घनश्यामस्वरूपं अतिहिअनूपं सुरवरभूपं नररूपम् ।
जेहि निगमंनिरूपं अकलअरूपं कीन्हकुरूपं नखशूपम् ॥१॥
तव शरणहिं आई जन सुखदाई रघुराई करुणासागर ॥
पतिमस्तक पाऊँ जरि सँग जाऊं शिरपाऊं शोभा आगर ॥
पति मम तनु त्यागी अति बडभागी अनुरागी जिनमुक्तिलही
ममता किमि तासू वरणूं आशू जासु अचल जगपंक्ति रही ॥
इहि विधि पदपंकज सेव्य रमा अज शिरनामि द्वौ करजोरिरही

महाराज! यह रावणकी पुत्रवधू है प्रभुने बड़ी पतिव्रता जानकर देखा ॥ २ ॥ यह मेघनादकी सुशील स्त्री है परन्तु आपके विरोधसे इसकी यह गति हुई ॥ ३ ॥ बडे प्रेमसे प्रणाम करती है हाथ जोड करुणाके वचन कहती है ॥ ४ ॥ (छन्दार्थ)–आपके दोनों चरण अशरणके शरण देने-वाले तारणतरण भय हरनेवाले देखे जगके कारणकरण भरणपोषण करनेवाले खलोंके दलके हरनेवाले दुःख टारनेवाले हैं तुम्हारा घनश्याम स्वरूप बडा अनूप है आप नररूप देवताओंके भूप हो जिसको वेद अकल अरूप वर्णन करता है उसने शूर्पणखाको विरूप किया ॥ १ ॥ हे जन-सुखदाई रघुराज करुणासागर! मैं तुम्हारी शरण आई हूं. मैं पतिका शिर पाऊं तो संगमें सती होजाऊं. हे शोभाके खान! मुझे शिर मिलै मेरा पति बडा बडभागी है अनुरागी है जिसने शरीर त्यागकर मुक्ति पाई उसकी अब ममता क्या वर्णन करूं जिसकी जगत्में अचल बडाई रही इसप्रकार रमा ब्रह्मासे सेवित पद रामको प्रणाम कर दोनों

सुनि पंकजलोचन वचन सुलोचनलोचनमें जलधार बही ॥२॥
दोहा--मुये जान पतिभुजा लिखि समुझाई प्रभु मोहिं।
महाराज रघुवंशमणि, याचन आई तोहिं ॥ ४२ ॥
राम--देहुँजिवाय तोरपति आजू। भोगहुजाय कल्पशतराजू१
छाडिं शोच अब मन हर्षाहू।तुरत भवन अपने फिर जाहू ॥२॥
देखि बहुत रघुवरकर छोहू।विनय करति दशकंधपतोहू ॥ ३ ॥
सु०-तुम उदार सब देबेलायक।करुणामय देखे रघुनायक४॥
हमहु विचारि दीख मन माहीं।जीवनते अस मरण सराहीं ॥५॥
भुजबल जीति लोक वशकीन्हें।चौदहभुवन भोगकरि लीं

हाथ जोडकर रहगई कमललोचनं रामके नेत्रोंमें सुलोचनाके यह वचन सुन जलभर आया ॥ २

दोहार्थ-मेरे मरे हुए पतिकी भुजाने मुझे लिखकर समझाया हे महाराज रघुवंशमणि ! मैं आपसे पतिका शिर मांगने आई हूं ॥ ४२ ॥

राम-मैं तेरा पति जिवायदेताहूँ तुम युग युग अकंटक राज्यकरो ॥१॥ शोच त्याग अब मनमें प्रसन्न हो अपने घरको जाओ ॥ २ ॥ रामकी बडी कृपा देख सुलोचना विनय करने लगी ॥ ३ ॥ हे उदार ! तुम सब कुछ देने योग्य हो आपको करुणामय देखा है ॥ ४ ॥ पर मैंने भी मनमें विचार देखा कि, जीनेसे ऐसा मरण अच्छा है ॥ ५ ॥ जिसने भुजबलसे जीत सब लोक वश किये चौदह भुवनका सुख भोगा ॥ ६ ॥

१ भजन--दीजै पति शीश राम हितकारी। दोपतिशीश राम हितकारी विनती करू तिहारी। चरण शरण कीहौ आई हौं त्राहि त्राहि जन आरत हारी ॥ १ ॥ करुणामय गोविन्द ईश प्रभु सुर मुनि जनरखवारी। कृपा करहु मोपर रघुराई देव देव रघुवर असुरारी ॥ २ ॥ धन्य भाग्य मेरे स्वामीके करी ब्रह्मसों रारी। प्राणदान कर मुक्ति लही जिन कहा जाय अर्द्धांगी नारि ॥ ३ ॥ होय सती मैं हू निजपिय सग पाऊ होउँ सुखारी। मिश्रगुणाकर दीनबंधुके चरण कमल बलिहारी ॥ १ ॥

रण तीरथ याचक बड चीन्हा । प्राण सुधन लक्ष्मणकहँदीन्हा ७
अब न उचित पतिदैउपहारा।तेहिपरअधिक सोदरशतुम्हारा ८
हमहू जाइ मरबसत साधी।मिलब तुमहिं जस मिलत समाधी९
"लीन्हेउ राम कपीश बुलाई।मेघनाद शिर दीन्ह मँगाई ॥१०॥
अंचल पोंछति मुखकी धरी।कहि मम प्राण सजीवन मूरी११॥
सुग्रीव-देखिसँदेहकहतसुग्रीवा।भुजकिमिलिखतजीहबिनग्रीवा
हँसिहहि वदन तो है है सांची।नातर निशिचर मायाकांची१३॥
कित अस ज्ञान मृतक भुज गावा।जो मुनिवर साधन नाहिं पावा॥
राम-प्रभुअसकहेउहँसब यहशीशा।करत कुतर्क न उचितकपीशा
सुलो०-दोहा-शिरसों कहति सुलोचना,हँसहु बेगि मम नांथ ।
नातर सत्य न मानिहैं, लिखा जो तुम्हरे हाथ॥४३॥
पुनि पुनि कहत सो नागकुमारी।श्रमित भयउरणमेंकरिमारी१

रणतीर्थमें लक्ष्मणको बड़ा याचक जानकर प्राणरूपी धन दान किया ॥ ७ ॥ तो अब यह उचित नहीं । पतिको उपहारमें लूं और फिर उसपर आपका दर्शन हुआ ॥ ८ ॥ इससे अब मैं जाय सत साधकर मरूँगी और योगियोंके समान तुमसे मिलूँगी ॥ ९ ॥ तब रामने सुग्रीवको बुलाय मेघनादका शिर मँगादिया ॥ १० ॥ सुलोचना प्राणनाथ जीवनमूल इत्यादि शब्द कहकर अंचलसे मुखकी धूरि पोंछनेलगी॥ ११॥ यह देख सन्देहसे सुग्रीवने कहा बिना जीव बिना शिरके भुजा कैसे लिखसकती है ॥ १२ ॥ जो यह मुख हँसै तौ यह बात सत्य है नहीं तो स्त्रीकी असत्य माया है ॥१३॥ मृतककी भुजा कैसे ऐसा ज्ञान कहसकती है जिसको मुनिवर साधन कर नहीं पासकते ॥१४॥ प्रभु बोले यह शिर हँसैगा हे सुग्रीव ! यह कुतुर्क करनी भली नहीं ॥ १५ ॥ (दोहार्थ)-सुलोचना शिरसे बोली हे नाथ ! शीघ्र हँसो नहीं तो तुम्हारे हाथका लिखा सत्य न माना जायगा ॥ ४३ ॥

सुलोचनाने बारबार कहा कि युद्धमें बडी मारकर स्वामी श्रमित हुएहैं ॥१॥

लगे लषण शर क्षोभ बढ़ावा । प्रभु समीप कसमोहिंलजावा ॥ २ ॥
जो मन वचन कर्म यह देही । पति देवता न आन सनेही ॥ ३ ॥
तौ प्रभु सभा बीच शिर बोलै । रहहि छाय यश सुयश अमोल ॥
जो जानति तव यह गति साँई । बोल पठावति पिताहि सहाई ॥ ५ ॥
सुन तिय वचन हँसेउ तब शीशा । चौंकेचकित भालुभट कीशा ६
हँसेउ ठठाय वदन सब देखा । विस्मयभयउसकलजिहि पेखा ७
सकुच कपीशहि तोषेउ नारी । बड आश्चर्य भयो वनचारी ॥ ८ ॥

दोहा-शीश पाइ प्रभुचरण गहि, बहु बिधि विनय सुनाय ।
आजको दिन रण परिहरहु, मम हित कौशलराय ४४
बाहर करि कपि कटकते, फिरेउ बिभीषण आप ।
बिसरेउ दशमुख वैरही, हृदय अधिक संताप ॥ ४५ ॥

शिर चढाय पालकीचढीसो । रघुपति कृपा प्रभाव बढीसो ॥ १ ॥

बाण लगनेसे क्षोभ बढ़ाया प्रभुके समीप मुझे क्यों लजाते हो २ जो मन वचन कर्मसे यह देही पतिव्रता है इसका और कोई स्नेही नहीं है ॥ ३ ॥ तौ प्रभुकी सभाके बीचमें यह शिर बोलै जगतमें अमोल यश छाजाय ॥४॥ हे स्वामी ! जो मैं जानती कि, तुम्हारी यह गति होगी तो सहायताके निमित्त पिताको बुलाभेजती ॥ ५ ॥ यह स्त्रीके वचन सुन वह शिर हँसा भालु वानर चकित होकर चौंकपडे ॥ ६ ॥ बडे वेगसे वह हँसा सब देखनेवालोंको विस्मय हुआ ॥ ७ ॥ सकुचाकर सुग्रीवने सुलो- [illegible] ।रियोंको बडा आश्चर्य हुआ ॥ ८ ॥ [illegible] ोंको प्रणाम कर विनय की, हे कौशल- नाथ ! आजके दिन मेरे निमित्त युद्ध मत करो ॥ ४४ ॥ उसको वानरोंके कटकसे बाहर कर बिभीषण लौट आया, रावणका वैर विसरगया हृदयमें बड़ा सन्ताप हुआ ॥ ४५ ॥ वह शिर चढाय पालकीपर चढ़ी रामचन्द्रकी कृपासे उसका प्रभाव बढगया ॥ १ ॥

दोहा–देत अनल ज्वाला बढ़ी, लपट गगन लगिजाय।
लखी न काहू जात तेहि, सुरपुर पहुँची धाय ॥ ४६ ॥

इति क्षेपक

षष्ठ दर्शन

[रावण मंत्र जपता है और अहिरावण पातालसे आता है]

अहिरावण–कहो तात कुशल तो है कैसे बुलाया?

रा०–तात कुशल अब सब इसिरानी। कटक निशाचर सकल नशानी॥
कुंभकर्ण घननादहु मारे। राम लषण दुइ मनुज विचारे ॥ २ ॥
आनेहु बोलि तोहिं निजपासा। कहहु सो यत्न होय रिपुनासा ३
कीन्हसेन कुल सरबस हानि
।। तदपिहरहुँतबलगि दोउभ्राता ५
लै पताल देविहिं बलि देहौं। यशपूरण निशिचर कुल लेहौं ॥६॥
जैहौं तुम जानउ [illegible]ां। रविसम तेज होइ निशि जबहीं ॥७॥

दोहार्थ–अनल देतेही ज्वाला बढा आकाशतक लपट लगी उसे किसीने जाते न देखा वह जाकर सुरपुर पहुँचगई ॥ ४६ ॥

षष्ठ दर्शन।

हे तात! अब सब कुशल गई राक्षसोंकी सब सेना नष्ट होगई ॥ १ ॥ कुम्भकर्ण मेघनादको भी राम लक्ष्मण दो विचारे मनुष्योंने मारदिया ॥ २ ॥ मैंने तुमको इस कारण बुलाया है कि, वह यत्न करो जिससे शत्रुओंका नाश होय ॥ ३ ॥ अहिरावण–बिनाविचारे तुमने लड़ाई ठानकर सेना, कुल और सर्वस्वकी हानि की ॥ ४ ॥ यद्यपि यह बात मुझे उचित नहीं है तौभी तुम्हारे निमित्त दोनों भाइयोंको हरण करूंगा ॥ ५ ॥ पाताल ले जाकर देवीको बलि दूंगा निशिचर कुलमें पूरा यश लूंगा ॥६॥ जब मैं लेजाऊं तब तुम जानना कि जब रात्रिमें सूर्यके समान प्रकाशहो७

दोहा-"कहि अस वचन प्रबोधकरि, शीश नाइ बल भाखि।
आयउ रघुपति कटक तब, निजदेविहिं उर राखि ॥ ४७ ॥
वेष विभीषण सब अनुहारी। पवनतनयपहँ गा छलकारी ॥१॥
ठाढ़ होउ बोलेउ सुन भ्राता। चलेउँ जहाँ कृपालु जनत्राता॥२॥
अ०-मैं रघुपतिसुन आयसुपाई।सन्ध्याकरनगयउँसुनुभाई ३
तेहिते तुरत चलेउँ प्रभु पाहीं।भइ बिलंब जनि रामरिसाहीं॥४॥
"आयसु पाय गयउसो तहँवा।रहे फणीश प्रभुदोऊ जहँवा॥५॥
अहिरावण मन कीन्ह प्रणामा।देखि राम सुंदर घनश्यामा॥६॥

दोहा-मोहनते मोहे सकल, मंत्रनते मुख मूँदि।
भयउ अदृश्य उठाइकरि, प्रभुहि चलेउ लै कूदि॥४८॥

यहि दुहुँन लै सोई।नभमारग प्रकाश अति होई
जागे वानर श्रीहत भारी। देखिय जिमि सरिता विनु वारी
एकहि एक लगे तब बूझन। कहां गये त्रैलोक्य विभूषन॥ ३।

अर्थ-यह वचन कह समझाकर शिर नवाय अपना बल कथन कर कुलदेवीको हृदयमें रख रामचन्द्रके कटकमें आया ॥ ४७ ॥ सम्पूर्णवेष बिभीषणके समान था वह छली महावीरपर गया॥ १ ॥ और खड़ा होकर बोला हे भाई ! मैं रघुनाथपर जाता हूं ॥ २ ॥ हे भाई ! मैं रामकी आज्ञा पाकर संध्या करनेको गया था ॥३॥ इससे बहुत शीघ्रतासे जाता हूं कहीं राम न रिसांय ॥ ४ ॥ इसप्रकार आज्ञा पाय वह रामलक्ष्मणके समीप गया ॥ ५ ॥ सुन्दर घनश्याम रामको देख अहिरावणने मनमें प्रणाम कियां ॥ ६ ॥ (दोहार्थ)-मोहन मंत्रसे सबको मोहा मंत्रोंसे सबके मुख मूँदादिये और अदृश्य हो प्रभुको उठाय कूदकर ले चला ॥४८॥
इसप्रकार वह दोनोंको ले गया आकाशमार्गमें प्रकाश बहुत हुआ ॥१॥ इधर वानर जागकर श्रीहत होगये बिना जलके नदीकी समान गति हुई ॥ २ ॥ तब एक एकसे बूझनेलगे. त्रिलोकीके भूषण कहां गये ॥३॥

-१ कटक तिन, नहि पाय दोउ वीर।
भे व्याकुल सब भालु कपि, जिमि जलचर गतनीर॥४९॥"
सब वानर-यातुधान सेना सब मारी। रहा एक रिपु रावण भारी
सोउ न रहत रामशर लागे। भाइउ हम सब परम अभागे॥२॥
जो दशशिर आर रणजाताहि। उत्तर कवन देब हम
"पवनतनय पुनि कह सब पाहीं। विस्मय एक होत मनमाहीं४
ह०-कोउ इक आव विभीषणवेखा। प्रभुके निकट जात हम देखा
विभी०-वचनसुनत बोलेउ लंकेशा। अहिरावणलैगा अवधेशा६
पन्नगलोकनिवासी सोई। मम तनुवेष अपर नहिं कोई॥ ७॥
महाबली जानै सब माया। निश्चय तेहिं दशशीश पठाया॥८॥
जेहि बल होइ तहां सो जाई। ताहि जीत आनै दोउ भाई९॥
जा०--कहेउ भालुपति सुन हनुमाना। तव बल तात सकल जग जाना
बेगि सो यत्न विचारहु ताता। कृपासिन्धु आनहु दोउ भ्राता११॥

दोहार्थ-सबने मिलकर कटक शोधा पर दोनों वीरोंको न पाया तब सब रीछ वानर जल सूखनेसे जलजीवोंके समान व्याकुल हुए ॥ ४९ ॥
सब बोले रावणकी सब सेना मारदी अब एक भारी शत्रु रावण रहा था॥ १ ॥ वह भी रामका बाण लगनेसे न रहता हे भाइयो! हम सब बड़े अभागी हैं॥ २ ॥ यदि हम रावणको युद्धमें जीतें तो फिर जानकीको क्या उत्तर देंगे॥ ३ ॥ फिर महावीरजीने सबसे कहा मनमें एक विस्मय होताहै ॥ ४ ॥ कोई एक विभीषणके वेषमें आया हमने प्रभुके समीप जाते देखाथा॥ ५ ॥ वचन सुनतेही विभीषण बोला अवधेशको अहिरावण हरकर ले गया॥ ६ ॥ वह नागलोकका निवासी है मेरा वेषधारी और कोई नहीं होसकता॥७॥ वह महाबली सब माया जानता है अवश्य उसको रावणने भेजा होगा ॥ ८ ॥ जिसको बल होय सो वहां जाकर उसे जीत दोनों भाइयोंको लावे ॥ ९ ॥ जाम्बवन्तने कहा हे महावीर! तुम्हारा बल सब जगत् जानता है ॥ १० ॥ हे तात! शीघ्र ही वह यत्न

ह०-सुनतवचनमारुतसुत बोला। राखेउ चितथिरकटकंअडोला
भुवन चारिदश तीनहु लोका। आनहुँ प्रभुबल प्रभुतजशोका १३
अब तुम सजग रहौ सबभाई। लरेउ काल सन जो चढिआई १४
"अस कहि सकृतचलेउ हनुमाना। गर्जत प्रलय पयोधिसमाना।
अभय प्लवंग पतालहिं गयऊ। अहिरावणपुरप्रविशतभयऊ १६
: कहत बहुरीशा १७"
हि तोहि डरनाहा। दीपहिजिमिनपतंगडराहीं

महावीर--कहतवचन शठ संयुतखारी। काम विवशकबभइ मतिमोरी
मम सुत बनासि मूढ केहि काजा। इतना कहत तोहिं नहिं लाजा
केहि प्रकारतें मम नि जोत्पन किनकहऊ
मकर०-सुनतकहहिंमकरध्वजवचना। कियउ अहिरावणपुररचना २२

र कृपासिन्धु दोनों भाइयोंको लाओ ॥ ११ ॥ यह सुन महावीर बोले चित्तको स्थिर कर सेना अडोल रक्खो॥ १२॥ हेप्रभु! चौदह भुवन तीन लोकमेंसेभी प्रभुको उनकी सामर्थ्यसे ले आऊँगा आप शोक त्यागो ॥ १३ ॥ हे भाई ! अब तुम सब सावधान हो जो कालभी चढि आवै तो युद्धकरना ॥ १४ ॥ यह कह प्रलयकालके मेघके समान गर्जते महावीर एकसाथचले ॥ १५ ॥ और निडरतासे एक कुलांचमें पातालमें जाय अहिरावणके पुरमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ वहांका द्वारपाल मकरध्वज वानर रिसकर डाटकर महावीरसे बोला ॥ १७ ॥ मुझे निदरकर जाते हो तुम्हैं डर नहीं जैसे दीपकके समीप जाते पतंग नहीं डरते हैं ॥ १८ ॥ मुझे नहीं जान्ते मैं हनूमानका पुत्र हूं स्वामीका भक्त कालकाभी मुख भंजन करता हूं॥ १९॥महावीर बोले अरे शठ ! यह दोषके वचन क्यों कहता है मेरी मति कब कामके वश हुई ॥२०॥ रे मूढ ! मेरा पुत्र किस निमित्त बनता है. इतना कहते तुझे लाज नहीं आती ॥ २१ ॥ मेरा पुत्र तू कैसे हुआ अपनी उत्पत्ति मुझसे कहो ॥ २२ ॥ मकरध्वजने कहा जब तुमने रावणका पुर

जब आयेउ चलि उदधि समीपा।बहेउ स्वेद तब तनु कपिदीपा
सो प्रस्वेद सागर महँ गयऊ। पियउ मीन तेहिते मैं भयऊ२५॥
यहिप्रकार मैं तव सुत ताता।गोपहुँ नहिं निज पिता न माता२६
अहिरावण सेवा मैं करहूँ। राखहुँ द्वार न कबहूँ टरहूँ ॥ २७ ॥
हनू०-दोहा-सत्य वचन हनुमान कहि, पुनि पूँछी सब बात ।
लावा लक्ष्मण राम कहँ, कहा करत सो तात ॥ ५० ॥
कहहु तात तेहि थलकर नाऊँ । जान चहूं मैं तव प्रभु ठाऊँ॥१॥
मकर०-य [illegible] वृत्तांत असजानेउ ताता। यह मैं श्रवण सुनेउँकछुबाता
[illegible] फणिपति साथा।स [illegible]
[illegible]ोम तेहि कारण आजू। देवि‍हि [illegible]
जो कछुनिज श्रवणनसुनि पायउँ।तातसकल सो तुमहिं सुनायऊँ
निजप्रभुकाज लागि दुख सहऊं।तुम सन सत्य वचन मैं कहऊं
जान कहहु तुम जान न देऊं।प्रभु आज्ञातजि अयश न लेऊं७॥

जलाया ॥२४॥ और फिर सागरके समीप आये तब तुम्हारे शरीरसे पसीना [illegible] सागरमें गया उसे मच्छीने पिया उससे मैं हुआ२५ इस प्रकारसे मैं तुम्हारा पुत्र हूँ अपने पिता माताको नहीं छिपाता हूं॥२६॥ मैं अहिरावणकी सेवा करता हूं द्वारपर रहता हूं कभी नहीं टलता हूं॥२७॥ (दोहार्थ)—हनूमानजीने कहा सत्य है फिर सब बात पूछी हे तात! वह रामलक्ष्मणको लाया है सो क्या करताहै ॥ ५० ॥

हे पुत्र! उस स्थानका नाम कहो मैं तुम्हारे प्रभुके स्थानमें जाना चाहता हूं॥१॥मकरध्वज—हेतात! जो मैंने सुनाहै सो कहताहूं यह वृत्तान्त इसप्रकार है ॥२॥ सीतापति और लक्ष्मणको यह निशाचरराज ले आयाहै ॥३॥ इस कारण होम करताहै और देवीको बलि देगा ॥४॥ हे तात! जो कुछ मैंने अपने कानोंसे सुना है सो सब तुमको सुनाया ॥ ५ ॥ अपने प्रभुके काज मैं दुःख सहता हूं तुमसे सत्य कहता हूं ॥ ६ ॥ तुम जाने कहतेहो सो मैं जाने न दूंगा प्रभुकी आज्ञा त्याग कर अपयश न लूंगा ॥ ७ ॥

"सुनि अस पेलि चलेउ हनुमाना। भयउ क्रोधमकरध्वजजाना
दोहा-तेहिं मुष्टिक कपि कहँ हनेउ, पुनि मारेउ कपि ताहि।
हनहिं परस्पर एक इक, बल समान घटनाहिं ॥ ५१ ॥
सुतहिं पूंछसों बांधि भवानी। चलेउ वातसुत विलँब न आनी १॥
धरि लघु रूप होम गृह देखा। जीव सजीव परैं नहिं लेखा॥२॥
(मालिनके फूलोंमें छिपते हैं)
जब देविहिं सो पुष्प चढ़ायउ। विकट रूप तब कपि दिखरायउ
दोहा-छुवत चरण देवी तुरत, धरणी रही समाइ।
मुख पसारि ठाढे भये, कपि छबि लखत डराइ॥५२॥"
राक्षस-कहहिंकिदेविप्रगटभइआजू। बडभागीभा निशिचरराजू
"जो जहँ रही वस्तु समुदाई। बची न एको सब कपि खाई ॥२॥
जबही होम सिद्ध तेहि जाना। लक्ष्मण राम तुरत तहँ आना ३॥
ठाढ कीन्हप्रभुकहँ तहँ आनी। निशिचर बहुआयुधधरिपानी ४

यह सुनकर महावीर पेलकर चले मकरध्वजको क्रोध हुआ ॥ ८ ॥

दोहार्थ-उसने कपिके और कपिने उसके मुष्टिक मारा परस्पर एक दूसरेको मारते हैं बल समान है न्यून नहीं है ॥ ५१ ॥

हे पार्वती ! फिर पुत्रको पूंछसे बांध शीघ्रतासे चले ॥ १ ॥ और छोटा रूपधर होमका घर देखा जीव सजीव जाने नहीं जाते ॥ २ ॥ [मालिनके फूलोंमें छोटा रूप धर बैठे] जब वह फूल देवीको चढ़ाया तब कपिने विकट रूप दिखाया ॥ ३ ॥ (दोहार्थ)-चरण छूतेही भूमिमें समागई और कपि मुख पसार खडे हुए उनकी छबि देख भय लगता है ॥ ५२ ॥

राक्षस कहते हैं आज देवी प्रगट हुई निशिचरराज बडे बडभागी हैं ॥ १ ॥ वहां जितनी वस्तु थी कुछ न बची महावीर सब खागये ॥ २ ॥ जब उन्होंने जाना होम सिद्ध हुआ तुरंत वहां राम लक्ष्मणको लाये ॥ ३ ॥ प्रभुको वहां लाकर खडा किया और राक्षस आयुध

आयसु पाइ खड्ग तिन काढ़े। मारन कहँ प्रभुपरभे ठाढ़े ॥५॥
कोउ कह राजनीति अनुसरहू। भरि त्रयदण्ड विलंब अब करहूँ
रा०—पुनि असवचनमूढमति कहहीं।सुमिरहु जो तुम्हरेहितु अहहीं
"जाना देवि रूप हनुमाना। विहँसि कहा तब राम सुजाना८॥"
राम-कालकौर तुम सुमिरहुरक्षक।भई तुम्हारि देवि तुव भक्षक
"गिरा सुनत तिन मारन ठयऊ।घन समान कपि गरजत भयऊ
निशिचरसकल त्रासित भे भारी।कहहिंवचन भय हृदय विचारी
रा०—अहिरावण भल कीन्ह न काजू।आनेसि कपट वेषसुरराजू
तेहिते देवि क्रुद्ध भइ आजू। अबभा सब कर मरण समाजू १३

दोहा—"प्रगट रूप करि पवनसुत, अट्टहास गंभीर।
अति भय त्रासित रजनिचर,सुनहु उमामतिधीर॥५३॥
तेहि क्षण कपि लीन्हें दोउ भाई। धुनत तूल निशिचर समुदाई१

ले खडे हुए॥ ४ ॥ आज्ञा पाकर उन्होंने खड्ग निकाले और मारनेको खडे होगये ॥ ५ ॥ कोई बोले राजनीतिका पालन कर तीन घड़ी विलम्ब करो ॥ ६ ॥ यह वचन सुन वे मूढ बोले जो तुम्हारे हितू हों उनको स्मरण करो ॥ ७ ॥ हनुमान्‌को देवीरूप जानकर हँसकर श्रीरामचन्द्र बोले॥ ८ ॥ तुमही कालके ग्रासमें हो अपना रक्षक स्मरण करो तुम्हारी देवी ही तुम्हारी भक्षक हुई है ॥ ९ ॥ यह वाणी सुन उन्होंने मारनेकी इच्छा की महावीर घनके समान गर्जे ॥ १० ॥ सब राक्षस व्याकुल हुए और भयसे मनमें विचार कर वचन बोले ॥ ११ ॥ अहिरावणने भला नहीं किया जो कपटके वेषसे सुरराजको ले आया ॥ १२ ॥ इसीसे देवी क्रुद्ध हुई है अब सबका मरण बनगया है ॥ १३ ॥ (दोहार्थ)—महावीर अपना प्रगट रूप कर बडे जोरसे हँसे, हे उमा! उस समय सब राक्षस व्याकुल हुए ॥ ५३ ॥

उसी समय कपिने दोनों भाई उठालिये और रुईके समान राक्षसोंको

छीन कृपाण लीन्ह हनुमाना। काटत भुज शिर कृषी समाना २॥
खंड खंड तब खलदल कीन्हा। गहिपद डारि अनलमहँ दीन्हा ३
इहि विधि सब निशिचर संहारे। अहिरावण लखि वचन उचारे ४
अहि०-रे कपि ढीठत्रास नहिं तोहीं। अहिरावणतैं जानन मोहीं ५

दोहा—कालनेमिसम नाहिं मैं, करु कपि वचन प्रमान।
अस कहि खड्ग प्रहार किय, कपितनु वज्रसमान ॥८४॥

"लै असि ताहि पवनसुत मारा। काटि शीश पावकमहँ डारा १
आहुति पूर्ण दीन्ह तब कीशा। लै पुनि चलेउ लषण जगदीशा २
मकरध्वज प्रणाम तब कीन्हा। बंधन छोरि राज्य तेहि दीन्हा ३॥
[illegible] राज्य भोगहु तुम ताता। भजहु सदा मम प्रभु दोउ भ्राता ४
अस कह कपि [illegible] ५
लेउ कपीश चर [illegible]

धुनने लगे ॥ १ ॥ महावीरजी कृपाण छीनकर राक्षसोंके शिर खेतीके समान काटने लगे ॥ २ ॥ सब दुष्टोंका दल खंड २ करके चरण [illegible] अग्निमें डालदिया ॥ ३ ॥ इस प्रकार सब राक्षस मारे तब [illegible] देखकर कहा ॥ ४ ॥ रे ढीठ वानर ! तुझे भय नहीं यह नहीं जानता मैं अहिरावण हूं ॥ ५ ॥ (दोहार्थ)—मेरे वचन मान मैं कालनेमिके समान [illegible] हूं ए [illegible] ॥ ८४ ॥

वही तलवार लेकर महावीरने अहिरावणको मारा और शिर काट [illegible] ॥ १ ॥ इसप्रकार पूर्ण आहुति कर राम और लक्ष्मणको [illegible] २ ॥ तब मकरध्वजने प्रणाम किया बन्धन छोड़कर उसे [illegible] ३ ॥ हे तात ! तुम यहां राज्य भोगो और मेरे प्रभुका सदा भजन करते रहो ॥ ४ ॥ यह कह हनूमानजी अपने दलमें दोनों भ्राताओंको लाये सब कटक प्रसन्न हुआ सबने सुख पाया ॥५॥ चरणोंमें माथा धर कपीश मिले फिर बिभीषणने चरण पकडे. ॥ ६ ॥

दोहा-जाम्बवन्त अंगद सहित, मिले भालु अरु कीश।
सनमाने कहि वचन प्रिय, लषण कौशलाधीश ॥ ५५ ॥
करि बहु विधि हरि आरती, वाणी सत्य सुनाय।
रामचरण अनुरागेउ, अमर सुमन झरि लाय ॥ ५६ ॥"

(रामका रावणसे युद्ध)

रावण-सुभटबुलायदशाननबोला। रणसन्मुखजाकरमनडोला
सो अबहीं वरु जाइ पराई। रणसन्मुख भागे न भलाई ॥ २ ॥
निज भुजबल मैं वैर बढावा। देहौं उतर जो रिपु चढि आवा॥३॥
"असकहिमरुतवेगिरथसाजा।बाजहिं सकल
चले वीर सब अतुलित बली।जनु कज्जलगिरि आँ "
कहै दशानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिनके

दक साहत सब राछ वानर मिले राम
सन्मान किया ॥ ५५ ॥ देवताभी अं
प्रभुकी आरती व [illegible] वाणी सुनाय फूलोंकी वर्षा कर रा
चरणोंमें प्रेम दिखानेलगे ॥ ५६

रावणने योद्धाओंको बुलाकर कहा युद्धके सन्मुख जिसका मन
डोला ॥ १ ॥ सो अच्छा है कि,

[illegible] मैंने वैर बढाया है,
जो शत्रु चढ़ आया है उसे मैं स्वयं उत्तर दूंगा ॥ ३ ॥ ऐसा कह
पवनके समान वेगगामी रथ सजाया और जुझाऊ बाजे बजने लगे
॥ ४ ॥ सब बड़े बली वीर चले मानो कज्जलपर्वत और आंधी चली ॥५॥
रावण बोला हे योद्धाओ! सुनो रीछ वानरोंके समूहोंको मर्दन करो।

हौं मारिहौं भूप दोउ भाई। अस कहि सन्मुख फौज चलाई॥७॥
दोहा"--दुहुँ दिशि जय जय कार करि, निज निज जोरी जानि।
भिरे वीर इत रघुपतिहि, उत रावणहिं बखानि ॥५७॥
रावण रथी विरथ रघुवीरा। देख बिभीषण भयो अधीरा॥ १ ॥"
बिभी०-नाथ न रथ नहिं तनु पदत्राना। किहि विधि जीतब रिपु बलवाना
राम--सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होय सो स्यंदन आना
शौरज धीर जाहि रथ चाका। सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका॥४॥
बल विवेक दम पर हित घोरे। क्षमा दया समता रजु जोरे ॥५॥
ईश भजन सारथी सुजाना। विरति चर्म संतोष कृपाना ॥ ६ ॥
दान परशु बुधि शक्ति प्रचंडा। वर विज्ञान कठिन कोदण्डा॥७॥
संयम नियम शिलीमुख नाना। अमल अचल मन त्रोन समाना
कवच अभेद विप्रपद पूजा। इहि सम विजय उपाय न दूजा९॥

और मैं उन दोनों भाइयोंको जो भूप कहातेहैं मारूंगा ऐसा कहकर सन्मुख सेना चलाई ॥ ७ ॥ (दोहार्थ)--दोनों ओर जयजयकार कर अपनी २ जोड़ी जानकर इधर राम उधर रावणकी जयजयकार कर वीर भिड़े ॥ ५७ ॥

रावण रथी और राम रथरहित थे यह देख बिभीषण अधीर हो बोला, ॥ १ ॥ हे नाथ! न तो आपके रथ न पदत्रान है इससे बली शत्रुसे कैसे जीतोगे॥२॥ रामचन्द्र बोले हे सखा! जिससे जय होतीहै वह स्यन्दन और है ॥ ३ ॥ शूरता और वीरता उसके पहिये हैं सत्य और शील दृढ ध्वजा पताका हैं ॥ ४ ॥ बल, विवेक, इन्द्रियनिग्रह, परोपकार ही चार घोडे हैं; क्षमा, दया, समताकी रज्जुमें जोड़े हैं ॥५॥ ईश्वरका भजन सारथी है वैराग्यकी ढाल और सन्तोष ही तलवार है ॥६॥ दान फरशा बुद्धि प्रचण्ड शक्ति विज्ञान ही कठिन धनुष्य ॥ ७ ॥ संयम नियम अनेक प्रकारके बाण हैं निर्मल अचल मन तर्कसके समान है ॥ ८ ॥ ब्राह्मणोंके चरणोंकी पूजाही अभेद कवच है इसके समान विजयका और उपाय नहीं है ॥ ९ ॥

सखाधर्ममय असरथजाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपुताके १०

दोहा--महाघोर संसार रिपु, जीति सकै को वीर ।
जाके अस रथ होय दृढ, सुनहु सखा मतिधीर ५८
सुनत विभीषण प्रभु वचन, मुदित गहे पदकंज ।
यहिविधि मोहिं उपदेश किय,राम कृपा सुखपुंज५९
विचलत देखा कपिकटक, कटि निषंग धनु हाथ ।
लक्ष्मण चले सकोप तब, नाय रामपद माथ ॥६०॥

ल०-रेखल का मारसि कपि भालू। मोहिंविलोकु तोर मैं कालू१
रा०-खोजतरहेउँतोहिं सुतघाती। आजुनिपाति जुड़ावोंछाती२॥
"असकहि छांडेसि बाणप्रचण्डा । लक्ष्मण किय शरहति शतखण्डा३
कोटिन आयुध रावण डारे । तिलसमान प्रभु काटि निवारें॥४॥
शतशतशर मारे दशभाला । गिरिशृंगनजनु प्रविशहिं व्याला ५

हे सखा ! जिसके धर्ममय ऐसा रथहै उसको कोई शत्रु नहीं जीतसकता ॥१०॥(दोहार्थ)—इस महाघोर संसाररूपी शत्रुको कौन जीतसकताहै हे मतिधीर सखा ! जिसके ऐसा रथ होय वही जीतसकताहै ॥ ५८ ॥ यह विभीषणने प्रभुके वचन सुन चरण स्पर्श कर कहा कृपासागर राम ! आपने इसप्रकार मुझे उपदेश किया है ॥ ५९ ॥ वानरोंका कटक विचलता देख कमरमें तरकस हाथमें धनुष ले रामके चरणोंमें माथा नवाय लक्ष्मण चले ॥ ६० ॥

लक्ष्मण—अरे दुष्ट ! रीछ वानरोंको क्या मारताहै मुझे देख मैं तेरा काल ॥१॥ रावण—हे सुतघाती ! मैं तुझको बहुत समयसे खोजता रहा आज मार छाती ठंढी करूंगा ॥ २ ॥ ऐसा कह तीक्ष्ण बाण चलाये लक्ष्मणने बाणमारकर उनके सौ सौ खण्ड किये ॥ ३ ॥ अनेक आयुध रावणने प्रहार किये प्रभुने तिलके समान काटकर फेंक दिये ॥४॥ सौ सौ बाण दश दश शिरोंमें मारे वह पर्वतशृंगमें सर्पके समान प्रवेश करगये५॥

पुनि शत शर मारे उरमाहीं। परेउ अवनि तनु सुधि कछु नाहीं
उठा प्रबल पुनि मूर्च्छा जागी। छांडेसि ब्रह्मदत्त जो सांगी ॥७॥
छंद-जो ब्रह्मदत्त प्रचण्ड शक्ति अनन्त उर लागी सही।
परयो वीर विकल उठाव दशमुख अतुल बल महिमारही।
ब्रह्माण्ड भुवन विराज जाके एक शिर जिमि रजकनी।
सो चह उठावन मूढ रावन जान नहिं त्रिभुवन धनी ॥१॥
दोहा--देखत धावा पवनसुत, बोलत वचन कठोर।
तेहि उर महँ हनेउ, मुष्टि प्रहार प्रजोर ॥ ६१
जानु टेक कपि भूमि न परेऊ। उठा सँभारि बहुरि रिस भरेऊ १
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ शैल जिमि वज्र प्रहारा२॥
मूर्च्छा गई बहुरि सो जागा। कपि बल विपुल सराहन लागा ३॥
म०--धिक् धिक् बलपौरुष धिक्मोही।जो तैंजियत उठा सुरद्रोही
"अस कहि कपि लक्ष्मण कहँल्याये। देखि दशानन विस्मय पायेध्

फिर सौ बाण हृदय ... [illegible]
सुधि न रही ॥ ६ ॥ फिर मूर्च्छा जागनेसे प्रबल हो उठा ब्रह्माकी दी हुई सांग छोड़ी ॥ ७ ॥ (छंदार्थ)—वह ब्रह्मदत्त शक्ति लक्ष्मणके हृदयमें लगी वह वीर मूर्च्छित हो भूमिमें गिरे तब रावण उठाने लगा अतुल बलकी मा रही, जिसके एक शिरपर रजकनके समान ब्रह्माण्ड विराजमान् मूढ रावण उस उठाना चाहता है, त्रिभुवनधनीको नहीं जानता ॥ १॥ दोहार्थ—देखतेही कठोर वचन कहते महावीर धावमान हुए और तेही रावणने उनके हृदयमें वेगसे एक मुष्टिक प्रहार किया ॥ ६१ ॥ जानु टेकदी पर महावीर भूमिमें नहीं गिरे और सँभल कर बड़े वेगसे उठे ॥ १ ॥ उसके एक घूंसा मारा और वह वज्रलगनेसे शैलके समान भूमिमें गिरा ॥ २ ॥ मूर्च्छा जानेसे रावण महावीरके बलकी सराहना करने लगा ॥ ३ ॥ महावीर—मेरे बल पौरुषको धिक्कार है हे सुरद्रोही ! जो तू जीता उठाहै ॥ ४ ॥ यह कह महावीर लक्ष्मणको लाये, देखकर

ह रघुवीर समुझि जिय भ्राता। तुम कृतांतभक्षक सुरत्राता ६॥
सुनत वचन उठि बैठ कृपाला। गगन गई सो श ७०।

दोहा—वहाँ दशानन जायकर, करन लाग कछु यज्ञ।

जय चाहत रघुपति विमुख, काल विवश शठ अज्ञ ६२

इहाँ विभीषण सब सुधिपाई। सपदि जाय रघुपतिहिं सुनाई १॥
विभी०-नाथकरैरावणइकयागा। सिद्ध भयेनहिंमरहिअभागा २
पठवहु नाथ वेगि भट बंदर। करहिं विध्वंस आव दशकंधर ३॥
"प्रात होत प्रभु सुभट पठाये। हनुम आदि बंदर सब धाये॥ ४॥
 कूदि चढे कपि लंका। पैठे रावण भवन अशंका ॥५॥
जबहीं यज्ञ करत तेहि देखा। सकल कपिन भा क्रोध विशेषा ६॥
रणते भाज निलज गृह आवा। यहां आयबकध्यान लगावा ७॥
स कहि

रावणको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ५ ॥ रामचन्द्र बोले हे भ्राता! समझदेखो कि तुम कालके भक्षक हो देवताओंके रक्षक हो ॥ ६ ॥ यह वचन सुन लक्ष्मण उठ बैठे वह कराल शक्ति आकाशको गई ॥७॥ (दोहार्थ)—उधर रावण जाकर यज्ञ करने लगा वह मूर्ख रामके विमुख होनेसे कालके वशी-जय चाहताहै ॥ ६२ ॥

यहां विभीषणने समाचार पाय शीघ्र रामसे जाय कहा ॥ १ ॥ हे नाथ! रावण एक यज्ञ करता है सिद्ध होनेसे वह अभागा नहीं मरैगा ॥ २ ॥ हे नाथ! शीघ्र ही सुभट वानर भेजो वह यज्ञविध्वंस करैं जिससे रावण आवे ॥ ३ ॥ प्रभात होतेही प्रभुने योद्धा भेजे हनूमान आदि सब बंदर आये ॥ ४ ॥ कौतुकसे कपि लंकामें कूद चढे और रावणके भवनमें अशंक हो घुसगये ॥ ५ ॥ उसे यज्ञकरते देख कपियोंको बड़ा क्रोध हुआ ॥ ६ ॥ हे निर्लज्ज! युद्धसे भाजकर घर आयाहै. और यहां बगलेकेसा ध्यान लगायाहै॥ ७॥ यह कह अंगदने लात मारी पर उस स्वार्थी शठने न देखा ॥ ८॥

छंद-नहिं चितव जब कपि कोपि तब गहि दशन लातन मारहीं
धरि केश नारि निकारि बाहर जब सो दीन पुकारहीं ॥
तब उठा कोपि कृतान्त सम गहि चरण वानर डारहीं ।
इहि भाँति यज्ञ विध्वंस करि कपि नेकु मनहिं न हारहीं १

दोहा-मख विध्वंस करि कपि सकल, आये रघुपति पास ।
चला दशानन क्रोध कर, छांडी जियकी आश ॥ ६३ ॥

देवन प्रभुहि पयादे देखा। उर उपजा अति क्षोभ विशेखा १॥
सुरपति निजरथ तुरत पठावा॥हर्ष सहित मातलि ले आवा॥२॥
तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा। विहँसि चढे कोशलपतिभूपा ॥३॥
रथारूढ रघुनाथहिं देखी। धाये कपि बल पाय विशेषी ॥ ४ ॥
तब लंकेश क्रोध उर छावा। गर्ज तर्ज कर सन्मुख धावा॥५॥"
रावण-जीतेउ जो भट संयुग माहीं। सुन तापस मैं तिनसम नाहीं ६
रावण नाम जगत यशजाना। लोकपाल जेहि बंदीखाना ॥ ७ ॥

छन्दार्थ-जब न देखा तब वानरोंने दांतोंसे काट लातोंसे मारना प्रारंभ किया बाल पकड़ उनकी स्त्रियोंको बाहर लेआये जब वे दीन होकर पुकारने लगीं तब कालके समान क्रोधकर चरण पकड वानरोंको डालने लगा. इस प्रकार यज्ञ विध्वंसकर वानर हार नहीं मानते ॥ १ ॥

दोहार्थ-यज्ञविध्वंस कर सब वानर रामचन्द्रपर आये इधर जीकी आश छोड़ क्रोधकर रावण चला ॥ ६३ ॥

देवताओंने प्रभुको पयादे देखा तब मनमें बडा क्षोभ हुआ ॥ १ ॥ इन्द्रने तुरत अपना रथ भेजा प्रसन्न हो मातलि ले आया ॥ २ ॥ वह तेजपुंज दिव्य और अनूप रथ था, उसपर कौशलपुरके राजा प्रसन्नहो चढे ॥ ३ ॥ रघुनाथजीको रथारूढ देख विशेष बलपाय वानर धावमान हुए ॥ ४ ॥ तब रावण क्रोधकर गर्जता हुआ सन्मुख आया, और बोला ॥ ५ ॥ हे तापस ! जो योद्धा तुमने समरमें जीतेहैं, मैं उनके समान नहीं हूं ॥ ६ ॥ मेरा रावण नाम है मेरे यशको जगत् जानताहै, लोकपाल

खर दूषण विराध तुममारा। हतेउव्याधइव वालि बिचारा ॥८
निशिचर सुभट सकल संहारे। कुंभकर्ण घननादहिमारे ॥ ९
आज वैर सब लेहुँ निबाही। जो रणभूमि भागि नहिं जाही१०
आज करौं खल काल हवाले। परेउ कठिन रावणके पाले११॥
'सुनिदुर्वचनकालवशजाना। विहँसिवचनकहकृपानिधाना१२'
राम-सत्यसत्य तवसब प्रभुताई।जनि जल्पसि देखब मनुसाई १३॥
"कहि दुर्वचनक्रोधदशकंधर।कुलिश समान लाग छाँडन शर १४
अनल बाण छांडे रघुबीरा। क्षणमहँ जरे निशाचर तीरा १५॥
छांडेसि तीव्र शक्ति खिसियाई। बाणसंग प्रभु फेरिपठाई१६॥

दोहा-पुनि रावण अति क्रोध कर, छाँडी शक्ति प्रचण्ड।
सन्मुख चली विभीषणहिं, मनहुँ कालकोदण्ड ॥६४॥

आवत देखि शक्ति खर धारा।प्रणतारति हरि विरद सँभारा॥१॥

जिसके बन्दीखानेमें हैं ॥ ७ ॥ खर दूषण और विराधको तुमने माराहै व्याधके समान बिचारे वालिको मारा ॥ ८ ॥ सब योद्धा राक्षस तुमने मारे मेघनाद कुंभकर्णको मारा ॥ ९ ॥ वह वैर आज सब निभालूंगा जो युद्धभूमि छोड़कर भाग न जाओगे तो ॥ १० ॥ हे शठ ! आज कालके हवाले करूंगा. कठिन रावणके पाले पड़ेहो ॥ ११ ॥ यह दुर्वचन सुन कालवश जान हँसकर रामचन्द्र बोले ॥ १२ ॥ तेरी वीरता सत्यहै बकवाद मतकर मैं धीरता देखूंगा ॥ १३ ॥ तब रावण दुर्वचन कह वज्रके समान बाण प्रभुपर छोडनेलगा ॥ १४ ॥ रघुवीरने अग्निबाण छोडे जिससे राक्षसके तीर क्षणमें भस्म होगये ॥१५॥ फिर, खिसियाकर तीक्ष्ण शक्ति चलाई. वह प्रभुने बाणके संगही लौटादी ॥ १६ ॥

दोहार्थ-फिर रावणने बड़ा क्रोध कर प्रचण्डशक्ति छोड़ी वह कालके धनुषके समान विभीषणके सन्मुख चली ॥ ६४ ॥

उस शक्तिको आती देख भगवान्ने शरणागतरक्षणका विरद सँभाला

देखि बिभीषण प्रभु श्रमपायउ। गहिकर गदा क्रोधकर धायउ ३"
"रे अभाग्य शठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग विरुद्धे ४
दर शिव कहँ शीश चढाये। एक एकके कोटिन पाये ॥ ५ ॥
लगि बांचा। अब तव काल शीशपर नाचा ६
राम विमुख शठ चहसि संपदा। असकहि हनेसि माँझ उर गदा ७
"देखा श्रमित बिभीषण भारी। धाये हनूमान गिरिधारी ॥८॥
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माँझ मारेउ तेहि लाता ॥ ९ ॥
भयो क्रोध रावण बलवाना। गहि पद महि पटके भटनाना ॥१०
भालुपति निजदल घाता। तासु हृदय महँ मारेउ लाता ११
मूर्च्छा विगत भालु कपि, ।
सकल निशाचर रावणहि, घेरि रहे अति त्रास ॥६५॥"

विभीषणको तुरत पीछे कर रघुनाथने सन्मुखही वह शेला सहा ॥ २ ॥ जब विभीषणने देखा कि प्रभुको श्रम हुआ तब गदा लेकर सन्मुख दौडा ॥ ३ ॥ विभीषण बोला रे अभागे शठ मन्द कुबुद्धि रावण ! तैंने सुर नर मुनि नाग सबसे विरोध किया है ॥ ४ ॥ आदरसे तैंने शिवको शीश चढ़ाकर एक २ के कोटिन पाये हैं॥५॥हे खल इसीसे अबतक बचा है पर अब तेरे शिरपर काल नाचा है ॥ ६ ॥ हे शठ ! रामके विमुख सम्पत्ति चाहता है ऐसा कह हृदयमें गदा मारी युद्ध होने लगा ॥ ७ ॥ तब विभीषणको श्रमित देख पर्वत खण्ड उठाय महावीर धावमान हुए ॥ ८ ॥ रावणके रथ घोड़े और सारथीको मारदिया हृदयमें लात मारी ॥ ९ ॥ तब रावणको बडा क्रोध हुआ, चरण पकड पकड योद्धाओंको भूमिपर पटकदिया ॥ १० ॥ तब जाम्बवन्तने अपने दलका घात देख रावणके हृदयमें लात मारी इससे वह मूर्च्छित हुआ ॥ ११ ॥

दोहार्थ–इधर मूर्च्छा छूटनेसे भालु कपि प्रभुके पास आये और सब निशाचर रावणको घेरकर दुःख करने लगे ॥ ६५ ॥

स्थान अशोक वाटिका।

(सीता त्रिजटाका संवाद वर्णन)

"तेहि निशि में कथा सुनाइ १
शिरभुज नेरी॥२॥"
सीता-होइहि कहा कहसि किन माता। केहि विधि मरहि विश्वदुखदाता
शर शिर कटे न म वि व ४॥
कह त्रिजटा सुन राजकुमारी। उरशर लागत मरहि सुरारी॥५॥
काटत शिर हुइहै विकल, छूटि जाय जब ध्यान।
तब रावणके हृदयशर, मारहिं कृपानिधान॥ ६६॥
यहां अर्धनिशि रावण जागा। निजसारथिसन खीजन लागा १॥
शठरणभूमि छुडायहु मोहीं। अधम निलज्ज लाज २

[फिर आनकर युद्ध करता है रामचन्द्र विभीषणकी ओर देखते हैं

१०-सुन सर्व ७

उसी रातमें सीतापर जाकर त्रिजटाने सब कथा सुनाई॥ १॥ शत्रुकी शिर और भुजाओंकी वृद्धि सुन सीताके मनमें बड़ा त्रास हुआ ॥ २॥ बोलीं कि, हे माता! कहो क्या होगा यह विश्वका दुःखदाता कैसे मरैगा ॥ ३॥ जब रामके शिर काटनेसेभी नहीं मरता तो यह विपरीत विधाताही सब चरित्र करता है॥ ४॥ त्रिजटा बोली हे राजकुमारी! यह देवशत्रु हृदयमें शर लगनेसे मरैगा ॥ ५॥ (दोहार्थ)-जब शिर कटतेमें व्याकुल होजानेसे तुम्हारा ध्यान छूट जायगा तब रावणके हृदयमें रामचन्द्र बाण मारैंगे॥ ६६॥ (गई)

यहाँ आधीरातको रावण जागा और अपने सारथीसे रिसाकर कहा॥ १॥ हे शठ! तैंने मुझे रणभूमि छुडाई अधम निर्लज्ज तुझको लाज नहीं आती॥ २॥

(फिर आकर महायुद्ध करता है तब श्रमित हो राम विभीषणको देखते हैं)

बिभीषण बोले हे सर्वज्ञ चर अचरके स्वामी! सुनो हे प्रणतपाल सुर

नाभीकुण्ड सुधा

"सुनत विभीषण वचन कृपाला । हर्ष गहे कर बाण कराला ॥५॥

दोहा—आकर्षेउ धनु श्रवण लगि, छांडे शर इकतीश ।
रघुनायक सायक चले, मानहु कालफणीश ॥ ६७ ॥

सायक एक नाभि सर शोषा, अपर लगे शिर भुजकरि रोषा ॥१॥
ले शिर बाहु चले नाराचा । शिर भुज हीन रुंड महि नाचा ॥ २ ॥
धरणि धसै धर धाव प्रचण्डा । तबप्रभुशरहति कृतयुगखंडा ३॥
गर्जेउ मरत घोररव भारी । कहाँ राम रण हतौं प्रचारी ॥ ४ ॥
[illegible]मि गिरत दशकंधर । क्षुभितसिन्धु सर दिग्गजभूधर ५
तासु तेज समान प्रभु आनन । हर्षे देखि शंभु चतुरानन ॥६॥

[illegible]ोंके सुख देनेवाले ॥ ३ ॥ रावणकी नाभिमें अमृत है, हे नाथ! रावण उसके बलसे जीता है ॥ ४ ॥ विभीषणके वचन सुन रघुनाथजीने प्रसन्न हो तीक्ष्ण बाण लिये ॥ ५ ॥ (दोहार्थ)—श्रवणपर्यन्त धनुष खैंच कर ३१ बाण छोडे वे रामके बाण कालके सर्पके समान चले ॥ ६७ ॥ एक बाणने नाभिका सर शोषा और शिर भुजाओंमें लगे ॥१॥ वह बाण शिर और भुजाओंको लेकर चले तब शिर भुजहीन रुण्ड भूमिमें नाचने लगा ॥२॥ उसके धावमान होनेसे पृथ्वी धसकगई तब प्रभुने बाण मार उसके दो खण्ड किये ॥३॥ मरते समय बड़ा घोर शब्द किया राम कहां हैं जो प्रचारकर मारूँ ॥ ४ ॥ रावणके गिरनेसे भूमि डोलगई, सागर सरोवर दिग्गज पर्वत क्षुभित होगये ॥ ५ ॥ उसका तेज प्रभुके मुखमें समागया

---

१ भंजन—रघुवर आज युद्ध कियो भारी । जब रावणने सब बिधि अपनी माया दीन पसारी । एक बाणमें सब प्रभु काटी जैसे मिटै तम रवि उजियारी ॥ १ ॥ इकतिस बाण लिये रघुवरने इक सँग धनुपर धारी । खैंच तान रावणके मारे शीश भुजा उड गये विबुधारी ॥ २ ॥ ले शिरबाहु मंदोदरी आगे राम शरन दिये डारी । विजयरामकी भई चहूं दिशि देवनने जय जयति पुकारी ॥ ३ ॥ सुर मुनि सिद्ध गानपवनादिक वरुणदेव तपधारी । मिश्र भये सबही प्रमुदित मन परमानद तनु सुरत बिसारी ॥ ४ ॥

जय ध्वनि पूरि रही नवखण्डा। जय रघुवीर प्रबल भुजदंडा॥७॥
वर्षहिं सुमन देव मुनिवृन्दा। जयकृपाल जय जयति मुकुन्दा॥८"
देवमुनि छंद-जयकृपाकन्द मुकुन्दद्वन्द्व हरणशरणसुखदप्रभो
खलदलविदारणं परमकारण कारुणीक सदा विभो॥
"सुर सुमन वर्षहिं हर्ष संकुल बाज. दुन्दुभि गहगही
.संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु शोभा ल
दोहा-कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु, अभय किये
हर्षे वानर भालु सब, जय सुखधाम मुकुन्द॥६८॥

अष्टम दर्शन।

(मन्दोदरी विलाप)

पतिशिर देखत मंदोदरी। मूर्च्छित विकलधरणिखसिपरी॥१॥"

शिव ब्रह्मा देखकर प्रसन्न हुए॥६॥ नौ खण्डोंमें जयकी धुनि फैलगई रामके अखण्ड प्रतापकी जय हो॥७॥ देवता फूल बरसाते हैं और समूह जय कृपालु जय मुकुन्द ऐसा कहते हैं॥८॥

छंदार्थ-हे कृपाकन्द मुकुन्द! दुःख हरनेवाले शरणागत सुखदायक हे प्रभु! खलोंका दल नाश करनेवाले परम कारण करुणामय सदाव्यापक आपकी जय हो, देवता प्रसन्न हो फूल बरसाते हैं आकाशसे गहगहे निशान बजते हैं संग्रामभूमिमें रामकी अनेक कामदेव समान शोभा होरही है॥१॥

दोहार्थ-प्रभुने कृपाकी दृष्टि कर सब देवताओंको अभय किया और सब रीछ-वानर प्रसन्न हो प्रभुकी जयजयकार करते हैं, हे सुखधाम मुकुन्द! आपकी जय होय॥६८॥ [रामचन्द्रजी स्वस्थानको गये]

अष्टम दर्शन।

पतिका शिर देख मन्दोदरी व्याकुल हो भूमिमें गिरपडी और बोली१

---

१ राग कान्हरा-राजत राम काम शत सुंदर॥ रिपु रण जीति अनुज सँग शोभित फेरत चाप विशिष वनरुह कर॥ श्यामशरीर रुचिर श्रम सीकर शोणित कण बिच बीच मनोहर॥ जनु खद्योत निकर हर हित गणै भ्राजत मर्कत शैल शिखर पर॥ घायल वीर विराजत चहुँ दिशि हर-

शेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सो तनु आजु परा भरि छारा

भुजबल जितेउ कालयम सांई। आजु परेउ अनाथकी नाईं॥५॥

भताई। जाई

राम विमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कुल कोउ रोवन हारा ७

छंद–जानेउ मनुज करि दनुजकाननदहनपावक हरि स्वयं।

भजेहु ना करुणामयं॥

दियो

हे नाथ! तुम्हारे बलसे पृथ्वी डोलती थी अग्नि चन्द्र सूर्य तेज हीन होगयेथे॥ २ ॥ शेष कमठ तुम्हारा भार नहीं सहसकते थे वह शरीर आज धूरिमें पडाहै ॥३॥ वरुण कुबेर इन्द्र पवन किसीनेभी तुम्हारे सन्मुख युद्धमें धीर न धरा॥ ४ ॥ हे स्वामी! काल और यमको भुजाओंके बलसे जीता आज अनाथके समान भूमिमें पडे हो ॥ ५ ॥ तुम प्रभुताइ जगत् विदित है सुत कुटुम्बियोंका बल नहीं कहाजाता ॥ ६ ॥ रामसे विमुख होनेसे तुम्हारा यह हाल हुआ कि कुलमें कोई रोनेवाला न रहा ॥७॥ (छंदार्थ)–जो राक्षसोंके वनको जलानेको स्वयं हरि हैं हे पिया! तुमने उनको मनुष्य करके जाना जिसको देवता सुर ब्रह्मादिक भजते हैं हे पिया! उस करुणासागरका तुमने भजन न किया जन्मसेही तुम पराये द्रोहमें रत रहे तुम्हारा यह शरीर पापसमूहमेंही रहा ऐसे तुमको भी जिन्होंने अपना धाम दिया उन रामको मैं प्रणाम करती हूं ॥ १ ॥

षित सकल ऋच्छ अरु वनचर। कुसुमित किंशुक तरुसमूह महँ तरुण तमाल विशाल विटप वर॥ राजिवनयन विलोकि कृपाकरि किये अभय मुनि नाग विबुध नर॥ तुलसिदास यह रूप अनूपम हृद सरोज बसि दुसहविपतिहर॥ १ ॥

दोहा-अहह नाथ रघुनाथसम, कृपासिन्धु को आन ।
मुनि दुर्लभ जो परमगति, तुमहिं दीन्ह भगवान ॥ ६९ ॥
"रुदन करत देखी सबनारी। भयो विभीषण मन दुख भारी॥१॥
लक्ष्मण तेहि बहु विधि समुझाये। सहितविभीषणप्रभुपहँआये२
कृपादृष्टि प्रभुताहि विलोका। करहु क्रिया परिहारि सब शोका ३
कीन्ह क्रिया प्रभुआयसु मानी। विधिवत देश कालगति जानी४
दोहा-मंयतनयादिक नारि सब, देइ तिलांजलि ताहि ।
भवन गईं रघुवीर गुण, गण वर्णति मनमाहि ॥ ७० ॥
आय बिभीषण पुनि शिरनावा। कृपासिन्धुतब अनुज बुलावा१
राम०तुम कपीश अंगद नल नीला। जाम्बवन्त मारुत नय शीला२
सब मिल जाहु विभीषण साथा। सारहुतिलककह्यो रघुनाथा३॥
पितावचन मैं नगर न जाऊं। आपु सरिस कपि अनुज पठाऊं ४
"सुनतचलेकपिसब प्रभुवचना। कीन्हींजाय तिलककी रचना५

दोहार्थ-हे नाथ! रघुनाथके समान कृपासागर कौन है जो मुनियोंको परमगति दुर्लभ है सो भगवान्‌ने तुमको दीहै ॥ ६९ ॥

इस प्रकार सब स्त्रियोंको रोता देखकर विभीषण परम दुःखीहुआ॥१॥ लक्ष्मणने उसको बहुत प्रकार समझाया बिभीषण सहित प्रभुके पास आये ॥ २ ॥ प्रभुने कृपादृष्टि कर उसको देखा और त्याग क्रिया करो ॥ ३ ॥ प्रभुकी आज्ञा मान देशकालके अनुसार विधि पूर्वक रावणकी क्रिया की ॥ ४ ॥ (दोहार्थ)-मन्दोदरी आदिने उसको तिलांजलि दी और रामके गुण मनमें वर्णन करती घरगई ॥ ७० ॥

बिभीषणने आनकर शिर नवाया तब रामचन्द्रने लक्ष्मणको बुलाया१॥ तुम सुग्रीव अंगद नल नील जाम्बवन्त और नीतिमान् हनूमान ॥ २ ॥ यह सब बिभीषणके साथ जाओ और इनका लंकाके राज्यमें तिलक करदो ॥ ३ ॥ पिताके वचनसे मैं नगरमें नहीं जाऊंगा परन्तु अपने समान कपि और अनुजको भेजताहूं ॥ ४ ॥ के

सादर सिंहासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी ॥ ६ ॥
जोरि पाणि सबही शिर नाये। सहित बिभीषण प्रभु पहँ आये ७
तब रघुवीर बोलि कपि लीन्हें। कहि प्रियवचन सुखीसबकीन्हें ८
राम-छंद-कियसुखी कहिवाणीसुधासम बल तिहारे रिपुहयो ।
पायो बिभीषण राज तिहुँ पुर यश तुम्हारो नित नयो ॥
मोहिं सहित शुभ कीरति तुम्हारी परमप्रीति जो गाइहैं ।
संसारसिन्धु अपार पार प्रयास विनु तर जाइहैं ॥ १ ॥
"दोहा–प्रभुके वचन श्रवणकर, नहिं अघात कपिपुंज ।
बार बार शिर नावहीं, गहहिं सकल पदकंज ॥ ७१ ॥
पुनि प्रभु बोलिलिये हनुमाना। लंका जाहु कह्यो भगवाना॥१॥"
राम-समाचार जानकिहिसुनावहु। तासुकुशल लै तुमचलिआवहु
"तब हनुमन्त नगरमें आये। सुनि निशिचरी निशाचर धाये३
पूजा बहुप्रकार तिन कीन्हीं। जनकसुतादिखाय पुनि दीन्हीं ४॥

सब कपि चले और जाकर तिलककी रचना की ॥ ५ ॥ आदरसे सिंहासनपर बैठाय हाथ जोड़ स्तुति की ॥ ६ ॥ हाथ जोड़कर सबने शिर नवाया फिर बिभीषणसहित प्रभुपर आये ॥७॥ तब रामचन्द्रने वानरोंको बुलाय प्रियवचन कह सबको सुखी किया ॥ ८ ॥ (छंदार्थ)–अमृतके समान वाणी सुनाय सबको सुखी किया कि मैंने तुम्हारे बलसे शत्रुको मारा बिभीषणने त्रिलोकीका राज्यपाया तुम्हारा यश नित नया है मेरे सहित जो तुम्हारी कीर्त्ति प्रेमसहित गावैंगे वह अपार संसारसागरको विना प्रयास तरजायँगे ॥ १ ॥

दोहार्थ–यह प्रभुके वचन श्रवण कर वानर नहीं अघाते हैं, और चरण पकड़कर बारंबार शिर नवाते हैं ॥ ७१ ॥

फिर प्रभुने महावीरको बुलाकर कहा तुम मेरे निमित्त लंकाका जाओ ॥ १ ॥ जानकीको समाचार सुनाकर उनकी कुशल ले बहुत शीघ्र आओ॥ २ ॥ तब महावीर नगरमें आये सुनकर निशिचरी और निशाचर सत्कारको दौड़े ॥ ३ ॥ बहुत भाँतिसे महावीरका सत्कार कर जानकीको

दूरहिते प्रणाम कपि कीन्हा । रघुपतिदूतजानकी चिन्हा ॥५॥"
सी०–कहहुतातप्रभुकृपानिकेता ।कुशल अनुजकपिसेनसमेता
ह०–सब विधि कुशल कौशलाधीशा।मातु समर जीत्यो दशशीशा
अविचल राज्य बिभीषण पावा । सुन कपिवचन हर्ष उरछावा॥८
–छंद–अतिहर्षमनतनुपुलकलोचनसजलपुनि २ कह रमा
का देहुँ तोहिं त्रैलोक्यमहँ कपि किमपि नहि वाणी समा॥
मातु मैं पायो अखिल जगराज आज न संशयम्।
रणजीत रिपुदल बन्धुयुत पश्यामि राम निरामयम् ॥२॥
सीता–दोहा–सुन सुत सद्गुण सकल तव, हृदय बसहु हनुमन्त
सानुकूल रघुवंशमणि, रहहिं समेत अनन्त ॥७२॥
। देखौं नयन श्याममृदुगाता१
"तब हनुमन्त रामपहँ आई । जनकसुताकी कुशल सुनाई॥२॥

दिखादिया ॥४॥ कपिने दूरसे प्रणाम किया जानकीने रामके दूतको पहँचाना ॥ ५ ॥ सीता–हे तात ! कहो कृपासागर प्रभु अनुज कपि और सेनासमेत कुशल हैं ॥ ६ ॥ महावीर–सब प्रकार रघुनाथजी कशल हैं हे मांता ! समरमें रावणको जीतलिया ॥७॥बिभीषणको अचल राज्य मिला यह कपिके वचन सुन मन बड़ा प्रसन्न हुआ॥८॥ (छंदार्थ)–मनमें हर्ष शरीरमें पुलकावली नेत्रोंमें जलभर जानकी बोलीं हे कपि ! मैं तुमको क्या दूं त्रिलोंकीमें वाणीके समान और कुछ नहीं है महावीर बोले हे माता ! इसमें सन्देह नहीं आज मैंने त्रिलोकीका राज्य पालिया जो शत्रुको कुटुम्बसहित जीतकर रामको भ्रातासहित कुशल देखताहूं ॥२॥

सीता–दोहार्थ–हे पुत्र सम्पूर्ण सद्गुण तुम्हारे मनमें बसैं और रघुवंशमणि भ्रातासहित तुमपर प्रसन्न रहैं ॥ ७२ ॥

हे तात ! अब सो यत्न करो जिससे श्याम मृदुगात भगवानका दर्शन करूं॥ १॥तब हनुमान्‌जीने रामपर आकर जानकीकी कुशल सुनाई॥ २ ॥

सुनि ।बोलि लिये युवराजविभी ॥"
४
" निश्च

देखि विभीषण तिनहिं सिखावा।सादर तिन्ह सीतहि अन्हवावा
।दिव्यवसन भूषण पहराइ । शिबकारुचिरसाजिपुनि लाई॥७॥
तेहि पर हर्ष चढ़ी वैदेही । सुमिरि राम सुखधाम सनेही ॥८॥
देखन भालु कीश सब आये। रक्षक कोटि निवारण धाये९॥"
राम--कह रघुवीर कहा मम मानहु।सीतहिं सखा पयाद आनहु
देखहिं कपि जननीकी नाईं
"सुनि प्रभु वचन भालु कपि हर्षे। नभते सुरन सुमन बहुवर्षे१२
सीता प्रथम अनलमहँ राखी।प्रगट कीन्ह चह अंतर साखी१३
दोहा--तेहि कारण करुणायतन, दुर्वा
सुनत यातु

यह वचन सुन रघुनाथजीने कपिराज और विभीषणको बुलाया ॥३॥ कि, तुम महावीरके साथ जाकर आदरसे जानकीको लाओ ॥ ४ ॥ यह सुन सब सीताके निकट गये उनको भयसे सब राक्षसी सेवन करती थीं ॥ ५ ॥ देखकर विभीषणने उनको सिखाया आदरसे उन्होंने जानकीको स्नान कराया ॥ ६ ॥ दिव्य भूषण वस्त्र पहराये और एक सुन्दर पालकी मँगाई उसे सजाया॥७॥उसपर जानकी प्रसन्न हो रघुराजका स्मरण करती चढ़ीं ॥ ८ ॥ जब जानकी आईं तब देखनेको भालु कीश दौडे अनेक राक्षस निवारण करने लगे ॥ ९ ॥ तब रघुनाथजी बोले हमारा कहना मानो हे सखा !-जानकीको प्यादे लेआओ ॥ १०॥ सब कपि माताके समान देखैं यह बात श्रीरामने हँसकर कही ॥ ११ ॥ यह प्रभुके वचन सुन भालु कपि प्रसन्न हुए आकाशसे फूल बरषे ॥ १२ ॥ पहले सीताको अनलमें रक्खाथा अब राम उसेही प्रगट करना चाहते हैं ॥ १३ ॥

दोहार्थ—इसीसे करुणासागर रामने कुछ दुर्वचन कहे कि अब

सीता–लक्ष्मण होहु धर्मके नेगी। पावक प्रगट करहु तुम बगार
"सुनत लषण सीताकी वानी। विरह विवेक धर्म नय सानी ३ ॥
लोचन सजल जोरकर दोऊ।

प्रगट काठ बहु लाये ॥५॥

य ह ही

सीता–जोमंन क्रम वच मम उर माहीं। तजिरघुवार आन गात नाहा ७
तौ कृशान सबकी गति जाना। मोकहँ होउ श्रीखण्डसमाना ॥८

कियो सुमिरि प्र

जय कोशलेश महेश वंदित चरणरज अति निर्मली ॥

मुनि

तुम हमारे कामकी नहीं
करने लगीं ॥ ७३ ॥

सीता प्रभुके वचन शिरपर धर, मन, वचन
बोली ॥ १ ॥ लक्ष्मण ! तुम धर्मके नेगी हो शीघ्रतासे अग्नि प्रगट करो यह विरह विवेक धर्म नीतिकी सनी सीताकी वाणी सुनकर लक्ष्मण ॥ ३ ॥ नेत्रोंमें जलभर प्रभुसे कछु न कहसके ॥ ४ ॥ रामका रुख देख लक्ष्मण गये और अग्नि प्रकट करनेको काठ लाये ॥ ॥ ५ ॥ जानकीने प्रबल अग्नि देखकर कुछ भय नहीं किया, मनमें प्रसन्न हुई ॥ ६ ॥ और बोलीं जो मन, वचन, कर्मसे मेरे हृदयमें रामको छोड़कर दूसरी गति नहीं है ॥ ७ ॥ तौ यह अग्नि सबकी गति जानती है मुझे चन्दनके समान होजाय ॥ ८ ॥ (छंदार्थ)–यह अग्नि चन्दनके समान होजाय यह कह जानकीने अग्निमें प्रवेश किया और महेशसे वंदना की हुई कोशलेशके चरणोंकी निर्मल रजकी जय हो यह कहा, प्रतिबिंब और लौकिक कलंक यह तो सब प्रचण्डअग्निमें जलगये प्रभुका

तव अनलभूसुररूप कर गहि सत्य श्रीश्रुति विदित जा ।
जिमि क्षीरसागर इंदिरा रामहिं समर्पी आनि ओ ॥
सोइ राम वाम विभाग राजत रुचिर अति
नवनीलनीरज निकट मानहु कनकपंकज की कली॥२॥
दोहा-हर्षि सुमन वर्षहिं विबुध, बाजहिं गगन निशान ।
गावहिं किन्नर सुरवधू, नाचहिं चढ़ी विमान ॥ ७४ ॥
श्रीजानकी समेत प्रभु, शोभाअमित अपार ।
देखि भालु कपि हर्षेउ, जय रघुपति सुखसार ॥ ७५ ॥
तव रघुपतिअनुशासन पाई।मातलि चले चरण शिर नाई ॥१॥
आये देव सदा स्वारथी । वचन कहहिं जनु परमारथी ॥ २ ॥"
देव-दीनबन्धु दयालु रघुराया । देव कीन देवनपर दाया ॥ ३ ॥
दोहा-"करि विनती सुर सिद्ध सब, रहे जहँ तहँ कर जोर ।
अतिशय प्रेम सरोजभव, अस्तुति करत बहोर ॥७६॥"

चरित्र किसीने नहीं जाना आकाशमें सुर, सिद्ध, मुनि खड़े देखते हैं॥१॥ तव अग्निने ब्राह्मणका रूप धारणकर जो सत्य श्री वेदमें विदित है वह रामको आनकर समर्पण की, जैसे पूर्वमें लक्ष्मीको क्षीरसागरने समर्पण किया था, सोई सीता रामके बाई ओर विराजमान हो ऐसे शोभित हुई जैसे नवीन नीलकमलके निकट सोनेकी कली हो ॥ २ ॥

दोहार्थ-तव देवताओंने प्रसन्न हो फूल वर्षाये आकाशमें बाजे बजे किन्नर सुरवधू विमानमें चढ़ीं नाचने गाने लगीं ॥ ७४ ॥ जानकीसमेत प्रभुकी बड़ी शोभा हुई देखकर भालु कपि प्रसन्न हुए कि, सुखसागर रामकी जय हो ॥ ७५ ॥

तव रघुनाथकी आज्ञा पाय चरणोंमें शिर नवाय मातलि चले ॥ १ ॥ फिर सदाके स्वार्थी देवता आये, परमार्थीके समान वचन कहने लगे॥२॥ हे दीनबन्धु दयालु रघुराज ! हे देव आपने देवताओंपर दया की ॥ ३ ॥

दोहार्थ-इस प्रकार सुर सिद्ध विनती कर जहाँ तहाँ हाथ जोड स्थित हुए ब्रह्माजी बडे प्रेमसे स्तुति करने लगे ॥ ७६ ॥

ब्रह्मा--जयराम सदा सुखधाम हरे। रघुनायक सायकचाप धरे १
भववारणदारण सिंह प्रभो। गुणसागर नागरनाथ विभो ॥ २ ॥
तनु काम अनेक अनूप छवी। गुण गावत सिद्ध मुनीन्द्र कवी ३॥
अजव्यापकमेकमनादि सदा। करुणाकर राम नमामि मुदा ४॥

दोहा-"विनय कीन चतुरानन, प्रेमप्रफुल्लित गात।
शोभासिन्धु विलोकत, लोचन नाहिं अघात ॥ ७७ ॥

तेहि अवसर दशरथ तहँ आये। तनयविलोकि नयन जल छाये
अनुजसहित प्रणाम प्रभु कीन्हा। आशिर्वाद पिता तब दीन्हा २
राम-तात सकलतव पुण्यप्रभाऊ। जीत्यउँ अजयनिशाचर राऊ
"सुन सुतवचन प्रीति अति बाढी। नयन नीर रोमावलि ठाढी ४
रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितै पितहिं दीन्हों दृढज्ञाना ५॥
[illegible] गये निजधामा ॥६॥

हे राम! हे सुखधाम! हे हरे! आपकी जय हो हे रघुनायक! आप धनुष बाण लिये हो आपकी जय हो ॥१॥ हे प्रभो! आप संसाररूपी हाथीके मारनेको सिंह हो, हे व्यापक चतुर! आपके गुण सब कोई गाते हैं॥२॥ आपके शरीरकी छबि अनेक कामके समान तथा उपमारहित है सिद्ध मुनिराज और कवि तुम्हारे गुण गाते हैं॥३॥आप अजन्मा एक व्यापक और अनादि हो हे करुणामय राम! मैं आपको सदा प्रणाम करता हूँ॥४॥

दोहार्थ-इस प्रकार प्रेमसे पुलकित हो ब्रह्माजीने विनय की और रघुनाथजीको देखकर नेत्र नहीं अघाते हैं ॥ ७७ ॥

उसी अवसरमें दशरथजी आये और पुत्रको देख नेत्रोंमें जल छागया १ प्रभुने भाईसहित प्रणाम किया तब पिताने आशीर्वाद दिया ॥ २ ॥ राम-हे तात! सब तुम्हारे पुण्यका प्रभाव है जो अजय निशाचरराजको जीता ॥ ३ ॥ यह पुत्रके वचन सुन बडी प्रीति बढ़ी, नेत्रोंमें जल भरा रुयें खडे होगये ॥ ४ ॥ रामचन्द्रने पहले प्रेमका अनुमान कर पिताको देख दृढ़ ज्ञान दिया.॥ ५ ॥ बारबार प्रभुको प्रणाम कर प्रसन्न हो दशरथ

सहित

छबि बिलोकि मन हर्षि अति, प्रस्तुति कर सुरईश ७८॥'

इन्द्र-छंद-जय राम शोभाधाम, दायक प्रणतविश्राम ॥

धृत तूण वर शर चाप, भुजदण्ड प्रबल प्रताप ॥ १ ॥

यह दुष्ट मारेउ नाथ, भए देव सकल सनाथ ॥ २ ॥

बोले

कहाकरौं सुनि प्रियवचन, बोले दीनदयालु ॥ ७९ ॥

सुनुसुरपति परेभूमि निशि

मम हित लागि तजे इन

(इन्द्र विमानमे बैठ अमृत बर्षाता है वानर उठते हैं)

"प्रभुचह त्रिभुवन मारि जिवाई। केवल शक्रहि दीन्ह बड़ाई ३॥

सुधाबरस कपि भालु जि र्षि सब प्रभु पहँ

अपने स्थानको गये ॥ ६ ॥ (दोहार्थ)-अनुज जानकीसहित प्रभु कौशलपति कुशलरूप हैं उनकी छबि देख प्रसन्न हो इन्द्र स्तुति करने लगे ७८

छन्दार्थ-हे शोभाधाम राम! आप दीनदासोंको विश्राम देते हो आपकी जय हो आप चाप तरकस धारे हो आपके भुजदण्डोंका प्रबल प्रताप है ॥ १ ॥ आप दूषण और खरके मारनेवाले हैं आप निशाचरोंके मारनेवाले हैं हे नाथ! इस दुष्टको मारा यह सब देवता सनाथ हुए ॥२॥

दोहार्थ-अब कृपाकर मुझे देखकर आज्ञा करो मैं क्या करूं यह प्रियवचन सुनकर दीनदयालु बोले ॥ ७९ ॥

हे सुरपति! हमारे कपि और भालु राक्षसोंके मारे भूमिपर पड़े हैं॥१॥ मेरे निमित्त इन्होंने प्राण त्यागे हैं हे इन्द्र! इन सबको जिवाओ ॥ २ ॥ प्रभु चाहैं तो त्रिभुवनको मारकर जिवादें केवल इन्द्रको यह बड़ाई दी॥३॥ इन्द्रने अमृत बर्षाकर कपि और भालुओंको जिवाय वे सब उठकर

देव अंश सब वानर रिच्छा। जिये सकल रघुपतिकी इच्छा ५॥
दोहा--सुमन बरषि सब सुर चले, चढि २ रुचिर विमान।
देखि सुअवसर रामपहँ, आये शंभुसुजान ॥ ८० ॥
परम प्रीति कर जोरि युग, नयन नलिन भरिवारि ।
पुलक गात गद्गद गिरा, विनय करत त्रिपुरारि ॥८१॥"

स्तुति।

शिवं-मामभिरक्षय रघुकुलनायक। धृतवरचापरुचिरकरसायक
महा मोह घनपटल प्रभंजन। संशय विपिन अनल जनरंजन२
अनुज जानकी सहित निरन्तर। बसहु राम नृप मम उरअन्तर
मुनिरंजन महि मंडलमंडन। तुलसिदास प्रभु त्रास विखंडन ४॥
"करि विनती जब शंभुसिधाये। तब प्रभु निकट विभीषणआये
नाय चरण शिर कह मृदुवानी। विनय सुनिय मम सारंगपानी ६
वि०-सकुल सदल प्रभुरावणमारा। पावनयशत्रिभुवनविस्तारा ७

रामचन्द्रपर आये ॥ ४ ॥ यह वानर रीछ देवअंश थे सब प्रभुकी इच्छासे जिये॥५॥ (दोहार्थ)—देवता फूल बरसायकर विमानपर बैठकर चले गये तब अच्छे समयमें शिवजी रामपर आये ॥ ८० ॥ परम प्रीतिसे हाथ जोड नेत्रोंमें जलभर शरीरसे पुलकित हो गदगद वाणीसे विनय करने लगे८१

शिव—हे रघुकुलनायक ! मेरी रक्षा करो आप चाप और बाण धारण किये हैं ॥ १ ॥ आप महामोहके घने अन्धकारको नाश करनेवाले हो आप सन्देहरूपी वनके जलानेको अग्निहैं जनोंके प्रसन्न करनेवालेहैं ॥२॥ हे रामनृप ! आप अनुज जानकी सहित निरन्तर मेरे मनमें बसो ॥ ३ ॥ मुनियोंके आनन्ददाता महिमण्डलका मण्डन करनेवाले त्रासके दूर करनेवाले प्रभुहो ॥ ४ ॥ विनती करके जब शिवजी चले गये तब प्रभुके समीप बिभीषण आये ॥ ५ ॥ चरणोंमें शिर झुकाय कोमल वाणीसे बोले हे भगवन् ! मेरी विनय सुनो ॥ ६ ॥ हे प्रभु ! आपने कुल और दलसहित रावण मारा त्रिलोकीमें पवित्र यशका विस्तार किया ॥ ७ ॥

ीन मलीन हीन मति जाती।मोपर कृपा कीन्ह बहुभाँती ॥ ८ ।
प्रभुकीजै।
देश कोश मंदिर संपदा। देहु कृपालु कपिन्ह कहँ मुदा ॥१०॥
सब विधिनाथमोहिंअपनाइय।पुनिमोहिंसहितअवधपुरजाइय
'सुनतवचनमृदुदीनदयाला।सजलनयनदोउभयेविशाला'१२
राम-दोहा-तोर कोष गृह मोर सब, सत्य वचन सुन तात ।
दशा भरत की सुमिरि मोहिं,पलक कल्पसम ज़ात॥८२॥
तापसवेष शरीर कृश, जपै निरंतर मोहिं ।
देखौंवेगिसोयत्नकर, सखा निहोरों तोहिं ॥ ८३ ॥
ज़ो जैहौं वीते अवधि, जियत न पाऊं वीर ।
प्रीति भरतकी समुझि प्रभु, पुनि २ पुलक शरीर ॥८४॥
करहु कल्पभरि राज्य तुम, मोहिं सुमिरेहु मनमाहिं ।
पुनि मम धाम सिधारेहु, जहाँ संत सब जाहिं ॥ ८५ ॥

दीन मलीन हीनमति हीनजातिवाले मुझपर आपने बडी कृपा की॥८॥ हे प्रभु ! अब आप दासका घर पवित्र कीजै । मज्जन करके युद्धका श्रम दूर करो ॥ ९ ॥ देश, कोश, मन्दिर, सम्पत्ति यह सब कपियोंको दीजिये ॥ १० ॥ हे नाथ ! सब प्रकारसे मुझे अपनाकर मेरे सहित अयोध्या चलो ॥ ११ ॥ दीनदयालु यह कोमल वचन सुन दोनों नेत्रोंमें जल भरकर बोले ॥ १२ ॥ (दोहार्थ)-हे तात ! तुम्हारा घर खजाना यह सब मेरा है यह सत्य वचन सुनो अब भरतकी दशा स्मरण कर एक पलकभी कल्पके समान बीतताहै ॥ ८२ ॥ तपस्वियोंका वेष, कृश शरीर निरन्तर मेरा जप करतेहैं, उनको शीघ्र देखूं सो यत्न करो हे सखा ! तुम्हारा निहोरा करताहूं ॥ ८३ ॥ जो अवधि बीते जाऊंगा तो वीरको जीता न पाऊंगा, भरतकी प्रीति समुझकर प्रभु बारंबार पुलकित शरीर होते हैं८४॥ तुम कल्पभर राज्य करके मनमें मुझे स्मरण करतेरहो, फिर मेरे धामको जाओगे जहां सब सन्त जातेहैं ॥ ८५ ॥

"सुनत बिभीषण वचन रामके। हर्षि गहे पद कृपाधामके ॥१॥
बहुरि बिभीषण भवन सिधाये। मणि गण वसनविमान भराये२
ले पुष्पक प्रभु आगे राखा। हँसिकै कृपासिन्धु अस भाषा॥३॥"
राम-चढ़ि विमान सुनु सखाबिभीषण।गगन जायवर्षहुपटभूषण
"नभपर जाय विभीषण तबहीं।वर्ष दिये पट भूषण सबहीं ॥५॥
जो ज़ेहि मन भावै सो लेहीं। मणि मुख मेलि डारि कपि देहीं६॥
हँसत राम सिय अनुज समेता। परम कौतुकी कृपानिकेता ७॥
भालुकपिन पट भूषण पाये।पहिरि पहिरि रघुपति पहँ आये८॥
चितै सबनि पर कीन्ही दाया। बोले मधुर वचन रघुराया॥९॥"
राम-तुम्हरेबलमैंरावणमारा।तिलक बिभीषणकोपुनिसारा१०
निज निज गृह अब तुम सब जाहू।सुमिरेहु मोहिं डरेहु जनिकाहू"
"वचन सुनत प्रेमाकुलवानर। जोरि पाणि बोले सब सादर१२"
वानर-सुनिप्रभुवचन लाजहममरहीं।मशक कबहुँखगपतिहितकरहीं

बिभीषणने भगवान्‌के यह वचन सुन प्रसन्न हो भगवान्‌के चरण स्पर्श किये ॥१॥ फिर बिभीषण घर गये और मणि, भूषण, वस्त्र विमानमें भराय॥२॥पुष्पक लेकर प्रभुके आगे धरा तब भगवान्‌ने हँसकर कहा॥३॥ हे बिभीषण ! मित्र विमानमें चढकर आकाशसे यह भूषण वसन वर्षादो ॥ ४ ॥ तब बिभीषणने जाय आकाशसे भूषण वस्त्र वर्षा दिये ॥ ५ ॥ जो जिसे मनभावे सो लेतेहैं मणि मुखमें डालकर उगल देतेहैं ॥ ६ ॥ परम कौतुकी कृपासागर राम यह देख सीतालक्ष्मणसहित हँसतेहैं ॥ ७ ॥ भालु कपियोंने पट भूषण पाये, पहर पहर कर सब प्रभुपै आये ॥ ८ ॥ रघुनाथने सबको देख, दया की और मधुर वचन बोले ॥ ९ ॥ तुम्हारे बलसे मैंने रावणको मारा और बिभीषणको तिलक किया ॥ १० ॥ अब तुम सब अपने २ घर जाओ मुझे स्मरण कर किसीसे मत डरो॥ ११ ॥ यह वचन सुन सब वानर प्रेमसे व्याकुल होगये हाथ जोड आदरसे सब बोले॥१२॥हे महाराज ! आपके वचनसुन हमको बडी लाज आतीहै कहीं

दीन जानि कपि किये सनाथा।तुमत्रैलोक्य ईशरघुनाथा ॥१४॥

दोहा-"प्रभुप्रेरित कपि भालु सब, राम रूप उर राखि ।
हर्ष विषाद समेत सब, चले विनय बहु भाखि ॥८६॥
जाम्बवन्त कपिराज नल, अंगदादि हनुमान ।
सहित बिभीषण अपर जे, यूथप अति बलवान ८७॥
कहि न सकहिं कछु प्रेम वश, भरि २ लोचन वारि ।
सन्मुख चितवहिं रामतन, नयन निमेष बिसारि८८॥

अतिशय प्रीति देखि रघुराई । लीन्हें सकल विमान चढाई॥१॥
मनमहँ विप्रचरण शिरनावा ।उत्तर दिशहिं विमान चलावा॥२"
राम--कह रघुवीर देखु रण सीता।लक्ष्मण हत्यो इहाँ इन्द्रजीता
अंगद हनूमानके मारे । रणमें परे निशाचर भारे ॥ ४ ॥
कुंभकर्ण रावण दोउ भाई । यहां हतेउँ सुर मुनि दुखदाई॥५॥

मशकसे खगपति गरुडका हित होसकताहै ॥१३॥ आपने दीन जानकर कपियोंको सनाथ किया हे रघुनाथजी ! तुम त्रिलोकीके ईश हो ॥ १४ ॥

दोहार्थ-प्रभुकी आज्ञासे सब कपि, भालु रामका रूप हृदयमें धारणकर बहुत विनयकर हर्षविषाद सहित चले ॥ ८६ ॥ जाम्बवन्त, सुग्रीव, नंल अंगदादि हनूमान बिभीषण सहित जो बलवान् यूथप थे ॥ ८७ ॥ यह सब प्रेमके कारण कुछ न कहसके नेत्रोंमें जल भरकर नेत्रोंके पलक विसार रामको देखनेलगे ॥ ८८ ॥

रामचन्द्रने उनकी अधिक प्रीति देख विमानपर चढालिये.॥ १ ॥ मनमें ब्राह्मणोंके चरणोंको शिर नवाय उत्तर दिशाको विमान चलाया २ रामचन्द्र बोले हे सीता ! रणभूमि देखो लक्ष्मणने यहां मेघनादको मारा था ॥ ३ ॥ अंगद हनूमानके मारे यहां बडे २ राक्षस पड़े हैं ॥ ४ ॥ कुंभकर्ण और रावण दोनों भाई सुरमुनियोंके दुःखदाई यहाँ मारेथे ॥ ५ ॥

अरु, थापेउँ शिव सुखधाम।

शंभुहिं कीन्ह प्रणाम ॥८९॥

" सों पाय अशीशा आये चित्रकूट जगदीशा १

बहुरि राम जानकी दिखाई। यमुनाकलिमल हरणिसुहाई ॥२॥

पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रणाम करु सीता ॥ ३ ॥

तीरथपतिपुनिदीखप्रयागा। निरखत जन्म कोटि अघ भागा४

दोहा--तब रघुनंदन सिय सहित, अवधहिं कीन्ह प्रणाम ।

॥९०॥

रे त्रिवेणी आय प्रभु, हर्षित मज्जन कीन्ह।

कपिन्हसमेत महीसुरन्ह, दान विविध विधि दीन्ह ९१.

प्रभुहनुमंतहि कहा बुझाई। धरि द्विजरूप अवध पुरजाई॥१॥"

कुशल हमारि सुनावहु।समाचार ले पुनिचालि आवहु२

"तुरत पवनसुत गवनत भयऊ।तब प्रभु भरद्वाज पहँ गयऊ ३

दोहार्थ--यहां पुल बांधकर शंकरकी स्थापना की थी सीता लक्ष्मण सहित प्रभुने शिवजीको प्रणाम किया ॥ ८९ ॥

फिर सब मुनियोंसे आशीश पाय प्रभु चित्रकूटमें आये॥१॥फिर रघुनाथजीने जानकीको पापहारिणी यमुना दिखाई॥२॥ फिर पवित्र गंगाजी देखी रामने कहा हे सीता ! प्रणाम कर ॥ ३ ॥ फिर प्रयागराजका दर्शन किया जिसको देखनेसे कोटिजन्मके पाप दूर होते हैं ॥ ४ ॥

दोहार्थ--तब रामचन्द्रने सीतासहित अयोध्याको प्रणाम किया नेत्रोंमें जल भर आया शरीर पुलकित होगया राम बारंबार हर्षित हुए ॥ ९० ॥ प्रभुने फिर त्रिवेणीमें आनकर प्रसन्न हो मज्जन किया और कपियों सहित ब्राह्मणोंको अनेकप्रकारके दान दिये ॥ ९१ ॥

फिर प्रभुने महावीरसे कहा तुम ब्राह्मणका रूप धर अयोध्याको जाओ ॥ १ ॥ भरतसे हमारी कुशल सुनाओ उनकी कुशल समाचार ले शीघ्र आओ ॥ २ ॥ महावीरजी तुरत गये तब प्रभु भरद्वाजपर गये ॥ ३ ॥

(प्रणाम कर चलते हैं)

सुरसरि लाँघि यान जब आवा। उतरातट प्रभुआयसु पावा ४॥

(जानकी प्रणाम करती हैं)

दीन्ह अशीश मुदित मनगंगा।सुंदरि तव अहिवात अभंगा॥५॥
सुनतहि गुह धायो प्रेमाकुल। आयो निकट परम सुखसंकुल ६
प्रभुहिं विलोकि सहित वैदेही।परेउ अवनि तनु सुधि नाहिंतेही ७
परम प्रीति विलोकि रघुराई। हर्षि उठाय लीन्ह उरलाई ॥८॥
छंद–लिये हृदय लाय कृपानिधान सुजान राम रमापती।
बैठारि परमसमीप बूझी कुशलसो कर वीनती ॥"
निषाद–अब कुशल पदपंकज विलोकि विरंचि शंकरसेव्य जे।
सुखधाम पूरणकाम राम नमामि राम नमामि ते ॥१॥

(मिलकर बैठते हैं)

दो०–"समर विजय रघुवीरके, चरित जे सुनहिं सुजान।
विजय विवेक विभूति नित, तिनहिं देहिं भगवान ॥९२॥

इति लंकाकाण्डं सम्पूर्णम्

वहांसे गंगाको लांघकर जब विमान चला तब प्रभुकी आज्ञासे किनारेपर आया ॥ ४ ॥ तब गंगाने प्रणाम करनेपर आशीश दी हे सुन्दरि ! तेरा सौभाग्य अभंगरहै ॥५॥ इधर निषाद सुनतेही प्रेमसे व्याकुल हो धावमान हुआ और प्रेमसे समीप आया ॥ ६ ॥ वैदेहीसहित प्रभुको देख पृथ्वीमें गिरा शरीरकी सुधि न रही ॥ ७ ॥ रामचन्द्रने उसकी परमप्रीति देख उठाकर हृदयसे लगालिया ॥ ८ ॥ (छंदार्थ)-कृपानिधान सुजान राम रमापतिने हृदयसे लगाय समीप बैठाय कुशल पूँछी वह विनती कर बोला अब तुम्हारे ब्रह्मा शंकरसे सेवित पदकमलोंको देखकर प्रसन्न हूं हे सुखधाम पूरणकाम राम ! आपको प्रणाम करता हूं ॥१॥ (सब बैठते हैं)

दोहार्थ–जो सुजान पुरुष रघुवीरके समरविजय चरित्र सुनेंगे भगवान् उनको विजय विवेक विभूति देंगे ॥ ९२ ॥

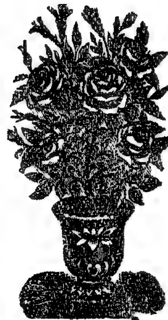
इति लंकाकाण्डं सम्पूर्णम्.

भजन।

ऐसो श्रीरघुवीर भरोसो। बारि न बोर सको प्रह्लादहि पावक नाहिं जरोसो। हिरणाकुश बहु भांति सतायो हठकर वैर करोसो। मान्यो चहै दास नरहरिको आपै दुष्ट मरोसो। मीराके मारनेके कारन पठयो जहर खरोसो। रामनाम अमृत भयो ताको हँसहँस पान करोसो। द्रुपदसुताको चीर दुशासन मध्यसभा पकरोसो। खैंचत खैंचत भुजबलहारे नेक न अंग उघरोसो। भारतमें भरुहीके अंडा कोटिन दल बिखरोसो रामनाम जब पक्षिन टेरो घंटा टूट परोसो। जारी लंक अंजनीनंदन देखत पुर सगरोसो। ताके मध्य विभीषणको गृह रामकृपा उबरोसो। रावणसभा कठिन प्रण अंगद हठकर हारि सुमिरोसो। मेघनादसम कोटिन योधा टारे पग न टरोसो। तुलसिदास विश्वास रामको काकर नारि नरोसो। और प्रभाव कहा लगि वरणौं जेहि यमराज डरोसो॥ १॥

भज मन रामचरण सुखदाई। जिन चरणनसे निकसि सुरसरी शंकर जटा समाई। जटाशंकरी नाम पर्योहै त्रिभुवन तारन आई। जिन चरणनकी चरणपादुका भरत रहे लवलाई। सोइ चरण केवट धो लीन्हें तब हरि नाव चलाई। सोइ चरण सतत जन सेवत सदा रहत सुखदाई। सोइ चरण गोतमऋषि नारी परस परमपद पाई। दण्डकवन प्रभु पावन कीन्हों ऋषियन त्रास मिटाई। सोई प्रभु त्रिलोकके स्वामी कनकमृगा संग धाई। कपि सुग्रीव बंधुभयव्याकुल तिन जयछत्र फिराई। रिपुको अनुज बिभीषण निशिचर परसत लंका पाई। शिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक शेष सहसमुख गाई। तुलसिदास मारुत सुतकी प्रभु निजमुख करत बडाई॥ २॥

इति।



इति

रामलीलारामायणे लंकाकाण्डं

समाप्तम् ।

श्रीगणेशाय नमः

अथ

रामलीलारामायणे उत्तरकाण्डं प्रारभ्यते



प्रथम दर्शन ।



[भरतमिलन]

दोहा-"रहा एक दिन अवधिकर, अति आरत पुरलोग ।
जहँ तहँ शोचहिं नारि नर, कृशतनु राम वियोग ॥१॥
भरत नैन भुज दक्षिण, फरकहिं वारंवार ।
जान शकुनमन हर्ष अति, लागे करन विचार ॥ २ "

भरत-कारण-कवन नाथ नहिं आये।जानि कुटिल प्रभु मोहिंबिसराये
अहह धन्य लक्ष्मण बड़भागी । राम पदारविन्द अनुरागी ॥२॥
कपटीकुटिल मोहिं प्रभुचीन्हा।ताते नाथ साथ नहिं लीन्हा ३॥
समुझैंप्रभुमोरी।नहिं निस्तार कल्प शत कोरी ॥ ४ ॥

प्रथम दर्शन ।

दोहार्थ--रामके आगमनमें एक दिन रहनेसे पु
होगये नारि नर कृशशरीर रामके वियोगसे जहाँ तहाँ शोच रहे हैं
भरतकी दहिनी भुजा और दक्षिणनेत्र वारंवार फडकने लगे शकुन जान
मनमें प्रसन्न हो विचारने लगे ॥ २ ॥

क्या कारण है जो स्वामी नहीं आये कुटिल. जानकर प्रभुने मुझे
.बिसार दिया ॥ १ ॥ अहह बड़भागी लक्ष्मण बडे धन्य हैं जो रामके चर-
णारविन्दके अनुरागी हैं ॥ २ ॥ मुझे प्रभुने कपटी कुटिल जाना इसीसे
स्वामीने साथ नहीं लिया.॥ ३ ॥ जो प्रभु मेरी करणी समझैं तो अनेक

जन अवगुण १

दृढसोई। मिलिहहिं राम शकुन अस होई

जो प्राणा। को पापी जग मोहिं समाना

"दोहा–राम विरह सागर महँ, भरतगमन मन होत।
विप्ररूप धरि पवनसुत, आयेगये जिमि पोत ॥ ३ ॥
बैठे देखि कुशासन, जटा मुकुट कृश गात।
राम राम रघुपति जपत, श्रवत नयन जलजात ॥ ४ ॥
मन महँ बहुत भाँति सुख मानी। बोले श्रवण सुधासमबानी १"
म०-जासु विरह शोचहुदिनराती। रटहुनिरंतर गुण गणपाती २
रघुकुलतिलकसुजन सुखदाता। आये कुशलदेवमुनित्राता ॥३॥
रिपुरणजीतिसुयश सुर गावत। सीता अनुजसहितप्रभु आवत ४
भरत-को तुम तात कहां ते आये। मोहिंपरमप्रियवचनसुनाये ५
म०-मारुतसुतमैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुन कृपानिधाना ६

कल्पांतक निस्तार न होगा ॥ ४ ॥ पर प्रभु कभी दासके अवगुण नहीं मानते उन दीनबन्धुका कोमलस्वभाव है ॥ ५ ॥ मेरे जीमें दृढ भरोसा है कि, रघुनाथजी मिलैंगे शकुनही ऐसे हो रहे हैं ॥ ६ ॥ अवधि वीते प्राण रहैं तो मेरे समान कौन पापी है ॥ ७ ॥ (दोहार्थ)–रामके वियोगरूप सागरमें भरतजी मग्न हुए जाते थे कि, उसीसमय ब्राह्मणका रूप धर महावीर जहाजके समान आगये ॥ ३ ॥ कुशासनपर बैठेहुए जटाओंका मुकुट कृश शरीर है राम राम रघुपति जपते हैं कमलसे नेत्रोंमें जल बहता है ॥ ४ ॥

मनमें बहुत भांतिसे सुख मानकर कानोंको अमृतके समान बाणी बोले १॥ जिसके विरहमें दिनरात शोचते हो और जिसके गुणसमूह निरन्तर जपते हो॥२॥ रघुकुलतिलक सुजनोंके सुखदाता देव मुनियोंके रक्षक सकुशलसे आये हैं ॥ ३ ॥ शत्रुको युद्धमें जीत देवताओंसे अपना यश गवाते हुए प्रभु. सीता और अनुजके सहित आते हैं॥४॥भरत–हे तात ! तुम कौन हो कहांसे आये हो ? मुझे परम प्रियवचन सुनाये हैं ॥५॥ मैं मारुतसुत हनूमान् हूं हे

दीनबंधुरघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेटे उठि सादर ॥७॥
भरत–कपि तव दरश सकलदुख बीते।मिले आजुमोहिंरामपिरीते
बारबार पूँछी कुशलाता। तो कहँ काह देउँ सुन भ्राता ॥ ९ ॥
यहि संदेश सरिस जगमाहीं। करि विचार देखा कछुनाहीं१०॥
नाहिन उऋण तात मैं तोहीं। अब प्रभु चरित सुनावहु मोहीं११
कहु कपि कबहुँ कृपालु गुसाईं।सुमिरत मोहिं दासकी नाईं१२॥
छन्द--निजदास ज्यों रघुवंशभूषण कबहुँ मम सुमिरन करचो।
सुनि भरत वचन विनीत अतिकपिपुलक तनुचरणनपरचो॥
रघुवीर निज मुख जासु गुणगण कहत अग जगनाथ जो।
काहे न होहु विनीत परम पुनीत सदगुण गाथसो ॥ १ ॥

दोहा–"राम प्राणप्रिय नाथ तुम, सत्य वचन मम तात।
पुनिपुनि मिलत भरतसन, प्रेम न हृदय समात ॥ ५ ॥
सोरठा–भरतचरण शिर नाय, तुरत गये कपि रामपहँ।
कही कुशल सब जाय, हर्षि चले प्रभु यान चढि ॥ १ ॥

कृपानिधान यही मेरानाम है॥६॥दीनबंधु श्रीरामका दास हूं सुनकर भरत आदरसे उठ मिले ॥ ७॥ भरत–हे कपि ! तुम्हारे दर्शनसे सब दुःख बीत गये मानो मुझे आज रामही मिलगये ॥८॥ बार २ कुशल पूछी हे भाई ! तुमको क्या दूं॥ ९ ॥ इस संदेशके समान जगतमें कुछ नहीं है विचार कर देखा॥१०॥हे तात! मैं तुझसे उऋण नहीं हूं अब प्रभुके चरित्र मुझे सुनाओ ॥ ११ ॥ हे कपि ! कहो तो कभी कृपालु गोसाईं मुझे दासके समान स्मरण करते हैं ॥ १२ ॥ (छंदार्थ)–अपने दासके समान रघुवंश मणिने कभी मेरा स्मरण किया यह भरतके विनीत वचन सुन कपि पुलकित शरीर हो चरणोंमें पड़े रामचन्द्र अपने मुखसे जिसके गुण कहते हैं वह चराचरके अधिपति ऐसे नम्र परमपुनीत सद्गुणोंके सिंधु क्यों न हों॥१॥

दोहार्थ–हे नाथ! हे तात ! तुम रामको प्रिय हो यह मेरे सत्यवचन हैं हृदयमें प्रेम नहीं समाता॥५॥

सोरठार्थ–भरतके चरणोंमें शिर नवाय महावीर राम पर गये और

हर्षि भरत कौशल पुर आये। समाचार सब गुरुहि सुनाये
पुनि मंदिरमें बात जनाई। आवत कुशल नगर रघुराई ॥ २ ॥
सुनत सकल जननी उठि धाई।कहिप्रभुकुशल भरत समुझाई३
समाचार पुरवासिन पाये। नर अरु नारि हर्ष उठिधाये ॥ ४ ॥
दोहा-हर्षित गुरुपुरजन अनुज, भूसुर वृंद समेत।
चले प्रेम अतिभरत मन, सन्मुख कृपानिकेत ॥ ६ ॥
यहां भानुकुलकमल दिवाकर।कपिनदेखावतनगरशुभाकर१॥
राम-सुन कपीश अंगद लंकेशा। पावनपुरी रुचिर यह देशा२॥
यद्यपि सब वैकुंठ बखाना। वेदपुराणविदित जगजाना ॥ ३ ॥
अवध सरिस प्रिय मोहिंन सोऊ।यह प्रसंगजानै कोउ कोऊ४॥
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिशि सरयूबह पावनि५॥

सब कुशल जाकर कही प्रभु पसन्न हो विमानपर बैठे चले ॥ १ ॥
भरत प्रसन्न हो कौशलपुर आये और गुरुसे सब समाचार कहे ॥ १ ॥ फिर मंदिरमें बात जनाई श्रीराम कुशलपूर्वक आते हैं ॥ २ ॥ सुनकर सब माता उठि धाई भरतने प्रभुकी कुशल कह समझाई ॥ ३ ॥ पुरवासियोंने समाचार पाये नरनारी प्रसन्न हो उठ धाये ॥ ४ ॥
दोहार्थ-गुरु पुरवासी शत्रुघ्न तथा ब्राह्मण जन यह सब साथमें ले प्रसन्नतासे रामसे मिलने चले ॥ ६ ॥
यहां सूर्यकुलकमल दिवाकर कपियोंको अपना मनोहर नगर दिखाने लगे ॥ १ ॥ हे कपीश अंगद लंकेश ! सुनो यह पुरी बड़ी पवित्र है और देश मनोहर है ॥ २ ॥ यद्यपि सब वैकुण्ठको बखानतेहैं वेद पुराणसे विदित है यह जगत् जान्ता है ॥ ३ ॥ परन्तु अवधके समान वहभी मुझे प्रिय नहीं इस प्रसंगको कोईही जानते हैं ॥ ४ ॥. यह जन्मभूमि मेरी

---

१ राग सोरठा-बैठी शकुन मनावति माता ॥ कब ऐहैं मेरे बाल कुशल घर करहु काग फुरिबाता ॥ दूधभातकी दोनीदैहौं सोने चोंच मढ़ै हौ ॥ जब सियसहित विलोकि नयनभरि रामलषण उरलै हौ ॥ अवधि समीप जानै जननी जिय अतिआतुर अकुलानी ॥ गणक बोलाइ पॉयपरि पूछत प्रेम मगन मृदुवानी ॥ तेहि अवसर कोउ भरत निकट ते समाचार लै आयो ॥ प्रभुआगमन सुनत तुलसी मानो मीनमरत जल पायो ॥ १ ॥

जा मज्जनतेविनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिंवासा॥६॥
अतिप्रिय मोहिं इहां के वासी। मम धामदा पुरी सुखरासी॥७॥
"हर्षे कपि सुनि प्रभुकी वानी। धन्य अवध जेहि राम बखानी८

दोहा–आवत देखे लोग सब, कृपासिन्धु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरे, उतरेउ भूमि विमान॥७॥
बहुरि कहेउ प्रभुपुष्पकहि, तुम कुबेरपै जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो, हर्ष विरह अति ताहु॥८॥

आये भरत संग सब लोगा। कृशतनु श्रीरघुवीर वियोगा॥१॥
वाम देव वशिष्ठ मुनिनायक। देखा प्रभु महिधर धनुसायक२॥
धायधरे गुरुचरणसरोरुह। अनुज सहित अति पुलकतनोरुह३
सकल द्विजन कहँ नायउमाथा। धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा॥४॥

शोभायमान है उत्तरकी ओर पवित्र सरयू बहती है॥५॥ इसके स्नानसे विनाही प्रयास प्राणी मेरे समीप निवास पावेंगे॥६॥ यहांके निवासी मुझे बड़े प्यारे हैं यह सुखकी खान पुरी मेरे धामकी देनेवाली है॥७॥ सब वानर प्रभुकी वाणी सुन प्रसन्न हुए अवध धन्य है जिसका रामने बखान किया है॥८॥ (दोहार्थ)–तब कृपासिन्धु भगवानने लोगोंको आते देखा और प्रभुकी प्रेरणासे नगरके निकट विमान उतरा॥७॥ तब प्रभुने पुष्पकसे कहा तुम कुबेरपर जाओ वह रामकी प्रेरणासे हर्षविषादयुक्त हो चलागया॥८॥

इधर सब लोगोंके संग भरतजी श्रीरघुवीरके वियोगमें कृशहुए आये॥१॥ वामदेव वशिष्ठजीको जब देखा तब प्रभुने पृथ्वीमें देखतेही धनुषवाणधरदिये॥२॥ और गुरुके दोऊ चरणकमल पकड़ लिये भाईसहित शरीर पुलकायमान हो गया॥३॥ सब द्विजोंको

१ सवैया–रामवशिष्ठके पाँय परे मिलबैठ भली रुचिसों पग धोये।
भूपतिकी विपरीत कथा सुनकै उमडे जलनैन समोये।
सिंधु धराधर नाग नदी वन बेहड जे पहले हम जोये।
देखत श्रीगुरुपायनको पलमें बिसरे प्रभुजू दुखखोये॥१॥

गहे भरत पुनि प्रभुपद पंकज। नमित जिनहिंशंकरसुरमुनिअज
परे भूमि नहिं उठतउठाये। बलकरकृपासिन्धु उरलाये ॥ ६ ॥
श्यामलगात रोमभये ठाढे। नव राजीव नयनजल बाढे ॥ ७ ॥
छन्द–राजीवलोचन श्रवत जल तंनु ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदय लगाय अनुजहिं मिले प्रभु त्रिभुवनधनी
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मो पहँ जात नहिं उपमा कही
जनु प्रेम अरु शृंगार तनुधरि विमलवर सुखमा लही॥१॥
पूँछत कृपानिधि कुशल भरतहिं वचन वेगि न आवई।
सुन शिवा सो सुखवचन मनते भिन्न जान न पावई ॥"
भरत–अब कुशल कौशलनाथ आरत जानि जन दर्शन दियो।
बूड़त विरहवारीश कृपानिधान मोहिं कर गहि लियो २

शिर नवाया, धर्मधुरंधर रघुकुलके अधिपति हैं ॥ ४ ॥ फिर भरतने प्रभुके चरणकमलोंको प्रणाम किया जिनको शंकर सुर नर मुनि अज प्रणाम करते हैं ॥ ५ ॥ भूमिपर गिरगये उठानेसे नहीं उठते बलकरके कृपासिन्धुने हृदय लगाया ॥ ६ ॥ श्यामशरीरके रूएँ खड़े हो गये नये कमलसे नेत्रोंमें जल भरि आया ॥ ७ ॥ (छन्दार्थ)–कमलसे नेत्रोंमें जलभर शरीरपुलकित हुआ अतिप्रेमसे अनुजको हृदयसे लगाय प्रभु मिले प्रभु जो अनुजसे मिलते हैं वह उपमा मुझसे नहीं कही जाती जानो प्रेम और शृंगार अपना शरीर धारणकर मिलते हैं और बड़ा सुख हो रहा है॥१॥ कृपानिधि भरतसे कुशल पूछते हैं पर उनपै वेगसे नहीं कहाजाता हे शिवा-पार्वती ! वह सुख वचन मनसे परेहै इससे जाना नहीं जाता भरत बोले हे कौशलेश अब कुशल है जो आपने जनको दुःखी जान

---

१ सवैया–कैकेयिनंदन दूरते आन प्रणाम कियो दुख नैन बहाये।
मूंड जटा नखवेष तपोधन भूपति झुड सबै पगलाये।
श्रीरघुबीर लगाय रहे छतियां मुखचूम कछूमुसकाये।
देख विभीषण और सुग्रीव न ग्रीव उठी बहुते शरमाये॥ १॥

दोहा-"पुनि प्रभु हर्षित शत्रुहन, भेंटे हृदय लगाय।
लक्ष्मण भरत मिले पुनि, प्रेम न हृदय समाय॥ ९॥
भरत अनुज लक्ष्मण तब भेंटे। दुसह विरह संभव दुख मेटे॥१॥
सीता चरण भरत शिर नावा। अनुज समेत परम सुख पावा॥२॥
अमितरूप प्रगटे तेहि काला। यथायोग्य मिलि सबहि कृपाला
कृपादृष्टि सब लोक विलोकी। किये सकल नरनारि विशोकी॥४॥
कौशल्यादि मातु सब धाईं। निरखि वत्स जनु धेनु लवाईं॥५॥
छन्द-जनु धेनु बालक वत्स गृह तजि चरनवन परवश गईं।
दिन अंतपुररुख श्रवतथन हुंकार करि धावति भईं॥
अतिप्रेम प्रभु सब मातु भेंटे वचन मृदु बहुविधि कहे।
गइ विषम विपति वियोगभव तिन्ह हर्षसुख अगणित लहे॥३॥
दोहा-भेंटे तनय सुमित्रा, रामचरण रति जानि।
रामहि मिलत कैकयी, हृदय बहुत सकुचानि॥ १०॥

दर्शन दिया मैं विरहसागरमें डूब रहाथा हे कृपासागर! हाथ पकड़ मुझे निकाल लिया॥ २॥ (दोहार्थ)-फिर प्रभु प्रसन्न हो शत्रुघ्नको हृदयसे लगाय मिले फिर लक्ष्मण और भरत मिले हृदयमें प्रेम नहीं समाता॥९॥ फिर शत्रुघ्न और लक्ष्मणने मिलकर महाविरहके दुःख मेटे॥१॥ भरतने सीताके चरणोंमें प्रणाम किया और शत्रुघ्नने शिर नवाय परम सुख पाया२॥ भगवान् उस समय अनेक रूपसे प्रकट हुए और कृपासागर यथायोग्य सबसे मिले॥ ३॥ कृपादृष्टिसे सब लोगोंको देखकर सब नर नारियोंको शोकरहित किया॥ ४॥ कौशल्यादि सब माता उठ धाईं वत्सको देखकर जैसे धेनु धावमान होतीहैं॥५॥(छन्दार्थ) जैसे धेनु बालक वत्सको छोडकर परवश हो वनमें चरने गईं, और दिनके अन्तमें दूध चुचाती हुंकारकरके धावमान् हुई अति प्रेमसे प्रभु सब माताओंसे भेंटे बहुत प्रकारसे कोमल वचन कहे और विषम विपत्ति गई और प्रसन्न होगईं सब दुःख दूर हुए॥३॥ दोहार्थ-रामके चरणोंमें प्रीति जान सुमित्रा पुत्रसे मिलीं और कैकेयी

लक्ष्मण सब मातन्ह मिले, हर्ष आशिषपाय ।
कैकेयि कह पुनि पुनि मिले, मनकर क्षोभ न जाय ॥ ११ ॥

सासुनसबहिंमिलीवैदेही । चरणनलागिहर्षअतितेही ॥ १ ॥
देहिं अशीश पूंछि कुशलाता । होउं अचल तुम्हार अहिवाता २
कनक थाल आरती उतारहिं । बारबार प्रभु गात्त निहारहिं ३॥
पुनि रघुपति निज सखा बुलाये।मुनिपद लागहु सबहि सिखाये[1]
राम—ये सब सखा सुनिय मुनि मेरे । भये समर सागरकहँ बेरे ५
मम हित लागि जन्म इन हारे । भरतहुते मोहिंअधिक पियारे६

कौशल्याके चरणन, पुनि तिन्ह नायउ माथ ।
आशिष दीन्ह हर्ष हिय, तुम प्रिय जिमि रघुनाथ ॥१२॥

रामसे मिलते मनमें बहुत सकुचाई ॥ १० ॥ लक्ष्मण सब माताओंसे मिले अशीश पाय प्रसन्न हुए कैकेयीसे बारंबार मिले मनका क्षोभ नहीं जाता ॥ ११ ॥

जानकी यथायोग्य सब सासुओंसे मिली जो जिस योग्य थी ॥१॥ वे कुशल पूछ अशीश देती हैं तुम्हारा सौभाग्य अचल होय ॥ २ ॥ सुवर्णके थालमें आरतीउतार बारंबार प्रभुके शरीरको निहारती हैं ॥ ३ ॥ फिर रघुनाथने अपने सब सखा बुलाये मुनिके चरणोंको प्रणाम करो यह सबको सिखाया ॥ ४ ॥ हे मुनिराज ! यह सब मेरे सखा समर सागरको बेड़े हुए हैं ॥ ५ ॥ मेरे निमित्त इन्होंने अपना जन्म हार दिया है यह मुझे भरतसे भी अधिक प्यारे हैं ॥ ६ ॥ (दोहार्थ)—मुनिको प्रणाम कर उन्होंने कौशल्याके चरणोंमें माथा नवाया और उन्होंने प्रसन्नहो

---

१ कवित्त—कहैं रघुराई मुनि सुनिये चितलाई हौंतौ कौन कौन कहौं उपकार कपिराजके ।
सीता शोधलाइ सिंधुपाटके बनाइ भलै ज्यायो लछमनजूको एतेबड़े काजके ।
नील नल हनूमान अंगदसों जाम्बवान येई हैं जितैया सब रावण समाजके ।
तातें हम इनके ऋणी हैं अजहू लौं मुनि लोचन हमारे न उठत भारे लाजके ॥ १ ॥

सुमनवृष्टि नभसंकुल, भवन चले सुखकंद ।
चढीं अटारिन्ह देखहीं, नगर नारि नरवृंद ॥ १३ ॥"

द्वितीय दर्शन ।

राम राज्य)

(शृंगार करके राम सीता लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न
सिंहासनपर राम बैठे हैं)

वशिष्ठ-सब द्विज देहु हर्षि अनुशासन। रामचन्द्र बैठहिं सिंहासन १
सब-अब मुनिवर बिलम्बनहिं कीजै। महाराजको तिलककरीजै
"प्रथम तिलकवसिष्ठमुनिकीन्हा। पुनि सबविप्रन आयसुदीन्हा

(सब तिलक करते हैं)

सुतविलोकि हर्षहिं महतारी । बार बार आरती उतारी ॥ ४ ॥

अशीशदी तुम रामके समान प्यारे हो ॥ १२ ॥ आकाशसे फू वर्षा हुई भगवान् घरको चले नगरके नारिनर अटारियोंपर चढे देखते हैं ॥ १३ ॥

द्वितीय दर्शन ।

आज सब ब्राह्मण प्रसन्न हो आशीर्वाद दें कि रामचन्द्र सिंहासनपर बैठैं ॥ १ ॥ हे मुनिवर! अब देर मत करो महाराजको तिलक करो ॥ २ ॥ पहले वसिष्ठजीने तिलक किया फिर सब ब्राह्मणोंने आज्ञा दी ॥ ३ ॥ पुत्रको देख महतारी प्रसन्न हुई बारबार आरती उतारी ॥ ४ ॥

---

१ कवित्त—मदमद चलत गयंदनके वृन्दवृन्द तरल तुरंग रंगरंगके सुहाये हैं ।
घर्घरत चक्ररथ भर्भरत पौरजन खर्खरत शस्त्रगण शत्रु भीति पाये हैं ।
देवता विमाननमें दशहू दिशाननमें रामचन्द्र चन्द्र ज्यों चकोर टकलाये हैं ।
राजन समाज सँग राज राज रघुराज अवध दराज दरवाजे लौं सिधाये हैं ॥ १ ॥

२ कवित्त—पद्मराग मर्कत मणीन्द्र नीलमणिकेरी विविध किताकी लतालसैं चहुँओर हैं ।
सूर्यमणि चन्द्रमणि चिन्तामणि चारु राजे औरहू अमोल लागे रतन करोर हैं ।
कोटिभानु भासभायो रतन सिंहासनको सुर नर मुनिनके मानसमे भोरहैं ।
गुरु अनुशासनते बैठिगे सिंहासनमें जानकी समेत रघुवंश शिरमौरहैं ॥ १ ॥

दोहा–भिन्न भिन्न स्तुतिकरि, गये सुर निज निज धाम।
वंदि वेषधर वेद तहँ, आये जहँ श्रीराम ॥ १४ ॥"
वेद-छन्द–जय सगुणनिर्गुणरूपराम अनूप भूप शिरोमणे।
दशकंधरादि प्रचंड निशिचर प्रबल खलभुजबल हने ॥
अवतार नर संसारभार विभंजि दारुण दुख दहे।
जय प्रणतपाल दयाल प्रभु संयुक्तशक्ति नमामहे ॥ १ ॥
तव विषम मायावश सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भव पंथ भ्रमित अमित दिवसनिशि कालकर्मन गुणभरे ॥
जेहि नाथ करि करुणा विलोकहु त्रिविध दुखतेहि निर्वहे।
भव खेदछेदन दक्ष हम कहँ रक्ष राम नमामहे ॥ २ ॥
जे चरण शिव अज पूज्य रजशुभ परसि मुनिपत्नी तरी।
नख निर्गता सुरवंदिता त्रैलोक्यपावनि सुरसरी ॥

दोहार्थ–भिन्न २ स्तुति करके देवता अपने २ स्थानको गये उस समय बंदीका वेष धारण कर वेद श्रीरामके समीप आये ॥ १४ ॥

छंदार्थ–हे राम! आपका सगुणनिर्गुणरूप है आप अनूपभूप शिरोमणि हो रावणादि प्रचण्डराक्षसोंको आपने अपनी प्रचण्डभुजाओंके बलसे नष्ट किया है आपका संसारमें नरावतार भूमिभारके निवारण करनेको है तथा तुम भक्तोंके दारुण दुःख दूर करते हो, हे दीनोंके पालक दयालु! शक्तिसहित आपको प्रणाम करता हूं ॥१॥ हे हरे! आपकी विषममायाके वशमें सुर असुर नाग नर अग चराचरहैं और अपने कालकर्मगुणोंके वश हो भवपंथमें दिनरात भ्रमतेहैं नाथ जिसे आप कृपाकर देखो उसके तीनप्रकारके दुःख जाते रहते हैं, हे संसारके दुःख दूरकरनेमें समर्थ! हे राम! हमारी रक्षाकरो हम तुमको प्रणाम करतेहैं ॥२॥ जो चरण शिव ब्रह्मादिसे पूज्य हैं जिनकी रजको स्पर्शकर मुनिपत्नी तरगई जिनके नखोंसे देवताओंसे वंदित तीनलोकको पवित्र करनेवाली गंगाजी निकली हैं जो ध्वज वज्र अंकुश कमलके चिह्नयुक्त चरण वनमें विचरतेहैं जिन्होंने वनमें फिर-

ध्वज कुलिश अंकुश कंजयुत बन फिर तकंटक जिन लहे।
पद कंज द्वंद्व मुकुंद राम रमेश नित्य भजामि हे ॥ ३ ॥
जे ज्ञान मान विमत्त तव भय हराणि भक्ति न आदरी।
ते पाय सुरदुर्लभ पदादपि पतित हम देखत हरी ॥
विश्वास करि सब आश परिहरि दास तव जे है रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भवनाथ सो स्मरामि हे॥४॥
अव्यक्तमूलमनादि तरुत्वक चारि निगमागम भने।
षट कंध शाखा पंचविंश अनेक पर्ण सुमन घने ॥
फलयुगल विधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवित फुल्लित नवल नित संसार विटप नमामि हे ॥ ५॥
जे ब्रह्म अज अद्वैत अनुभव गम्य मनपर ध्यावहीं।

नेसे कंटकादिके चिह्न धारण कर लिये हैं हे मुकुन्द ! हे [illegible] हम आपके उन चरणकमलोंको नित्य भजन करते हैं ॥ ३ ॥ जो ज्ञानमानमें विमत्त हैं और भयहरनेवाली तुम्हारी भक्ति जिन्होंने आदर नहीं की वह देवताओंके दुर्लभपदको पाकर भी फिर पतित होते हैं हे हरे ! यह हम देखते हैं, और जो विश्वास करके सब आश छोड़कर तुम्हारे दास हो रहे हैं, वे तुम्हारा नाम जपकर विना श्रमके भवसागर पार हो जाते हैं, हे नाथ ! आपका हम स्मरण करते हैं ॥ ४ ॥ अव्यक्त जिसका मूल है ऐसा वेदशास्त्र कथित यह अनादि वृक्ष है अण्डजादि चार खान त्वचा हैं, सुख दुःख शीत उष्ण ज्ञान अज्ञान छः कंधे हैं, पांचतत्त्व पांच उनके विषय, पांचज्ञानेन्द्रिय, पांचकर्मेन्द्रिय, अन्तःकरण मन बुद्धि चित्त अहंकार यह पच्चीस शाखा हैं अनेक प्रकारकी वासना पत्ते हैं जो लगते और गिरते हैं, संकलपरूपी फूल हैं वह कोई फलते हैं कोई वैसेही गिरते हैं वे फल पापपुण्यरूपसे खट्टे मीठे हैं। अविद्याकी बेल बढ रही है उसमें नित्य पत्ते निकलते हैं, नित्य फूलती हैं ऐसे संसारवृक्षरूप आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ५ ॥ जिस ब्रह्म अविनाशी अद्वैतको अनुभवसे प्राप्त होनेवाला मनसे परे कहकर ध्यान करते हैं हे नाथ ! वे इस बातको कहो

ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुण यश नित गावहीं ॥
करुणायतन प्रभु सद्गुणाकर देहु यह वर मांगहीं ।
मन कर्म वचन विकार तजि तव चरण हम अनुरागहीं६॥

दोहा--"सबके देखत वेदन, विनंती कीन्ह उदार ।
अन्तर्द्धान भये पुनि, गये ब्रह्मआगार ॥ १५ ॥"

(शिवजी आते हैं)

शिव-छं०-जयरामरमारमणं शमनं, भवतापभयाकुलपाहिजनं
अवधेश सुरेश रमेश विभो, शरणागत माँगतपाहिप्रभो१॥
दशशीश विनाशन बीशभुजा, कृतदूरि महामहि भूरिरुजा॥
रजनीचरवृंद पतंग रहे, शरपावक तेज प्रचण्ड दहे ॥ २ ॥

र जानो पर हम आपके सगुणरूपका यश गानेकी इच्छा करते हैं हे करुणासागर ! हे सद्गुणोंके आकर ! आप दीजिये आपसे यह वर मांगते हैं मन वचन कर्मसे विकार त्यागकर हम आपके चरणोंका अनुराग करैं॥६॥

दोहार्थ–सबके देखते वेदोंने बड़ी विनय की और अन्तर्द्धान होकर ब्रह्मलोकको गये ॥ १५ ॥

छन्दार्थ–शिवजी बोले हे रमारमण ! हे संसारके ताप शान्तकरनेवाले ! भक्तोंकी रक्षा करो हे अवधेश ! हे देवताओंके अधिपति । हे प्रभो ! शरणागत आपसे रक्षा चाहते हैं ॥ १ ॥ आप दश शिर बीसभुजावाले रावणके नाशक हो यह आपने भूमिका महाभार दूर किया है जो पतंगोंके समान राक्षसोंके वृन्द थे वह आपके बाणोंकी तीक्ष्ण अग्निमें भस्म होगये२॥

---

१ रागटोड़ी–आजु अवध आनंद बधावन रिपुरणजीति राम आए ॥ सजि सुविमान निशान बजावत मुदित देव देखन आये ॥ घर घर चारु चौक चदन मणि मगल कलश सबनि साजे ॥ ध्वज पताक तोरण वितान वर विविध भाँति बाजन बाजे॥ राम तिलक सुनि द्वीप द्वीपके नृप आए उपहार लिये ॥ सीय सहित आसीन सिंहासन निरखि जोहारत हरष हिए ॥ मगल गान वेदधुनि जयधुनि मुनि अशीश धुनि भुवनभरे ॥ वरषि सुमन सुर सिद्ध प्रशसत सबके सब सताप हरे ॥ राम राज भइ कामधेनु महि सुख संपदा लोक छाए ॥ जनम जनम जानकीनाथके गुणगण तुलसिदास गाये ॥ १ ॥

महिमण्डलमण्डन चारुतर, धृत पंगवरं ॥
मद मोह महा ममतारजनी, तमपुंज दिवाकर तेज अनी॥३॥
मन जात किरात निपात किये, मृगलोग कुभोग शरेण हिये ॥
हत नाथ अनाथ न पाहि हरे, विषयावन पामर भूलि परे॥४॥
बहुरोग वियोगन लोग हये, भवदंघ्रि निरादरके फल ये ॥
भवसिंधु अगाध परे नर ते, पदपंकज प्रेम न जे करते ॥५॥
अतिदीन मलीन दुखी नितहीं, जिनके पदपंकज प्रीति नहीं॥
अवलम्ब भवन्त कथा जिनके, प्रियसन्त अनन्त सदा तिनके६
नाहिं राग न रोष न मान सदा, तिनके सम वैभव वादि पदा ॥
इहिते तव सेवक होत मुदा, मुनि त्यागत योग भरोस सदा७
करि प्रेम निरन्तर नेम लिये, पदपंकज सेवत शुद्ध हिये
सम मान निरादर आदरही, सोइ सन्त सुखी विचरन्त मही८

आप सम्पूर्ण भूमिके अति सुन्दर शृंगार रूप हैं, श्रेष्ठ धनुषबाण और तरकस धारण किये हैं, मद मोह और ममताकी जो महारात्रि है उसके दूर करनेको आपका प्रकाश सूर्य है ॥ ३ ॥ कामरूप बटमारने लोगोंको मृगोंके समान कुभोगरूप बाणोंसे मारडाला है हे नाथ ! इसने उन पामर अनाथोंको मारा है जो विषयरूप वनमें भूले पडे हैं हे हरे ! उनकी रक्षा करो ॥ ४ ॥ अनेक रोग और वियोगमें व्याकुल हो रहे हैं यह आपके चरण कमल निरादरके फल हैं; वे मनुष्य अगाध संसारसागरमें पडे हैं जो आपके चरणकमलमें प्रेम नहीं करते ॥ ५ ॥ वह नितही दीन मलीन दुःखी हैं जिनकी आपके चरणकमलमें प्रीति नहीं है और जिनको भगवान्‌की कथाका अवलम्बन है उनको सन्तजन सदा प्रिय हैं ॥ ६ ॥ उनको राग रोष मान मद नहीं है जगत्‌की सम्पत्ति उनके सामने व्यर्थ है इसीसे मुनिजन योगकी आशा त्याग मुदितमनसे आपहीके सेवक होतेहैं ॥ ७ ॥ जो नियमपूर्वक शुद्ध हियेसे आपके चरणकमलमें सदा प्रीति रखने और सेवा करते हैं आदर निरादरको

नि मानस पंकज भृंग भजे, रघुवीर महारणधीर अजे ॥
हरि
गुणशीलकृपापरमायतनं, प्रणमामि निरन्तर श्रीरमणम्

, हर्षि
पद सरोज अनपायनी, भक्ति सदा सतसंग ॥ १६ ॥

नृत्य गान कौतुक होतेहैं

तृतीय दर्शन

[विभीषणादिका स्वदेशको विदा होना]

(स्थान रामसभा)

"तब रघुपति निजसखा बुलाये। आयसबनिसादरा॥
--तुम अति कीन्ह मोरि सेवकाई। मुखपर केहि
अतिप्रिय लागे। मम हितलागि भवन

समान जानते हैं वेही सन्त पृथ्वीपर सुखी हो विचरते हैं ॥ ८ ॥ आप मुनियोंके मनकमलके भ्रमर हैं, रघुवीर महारणधीर और अजय हैं, भयरोग और महामद मानके आप शत्रु हैं मैं आपका नाम जपता और प्रणाम करता हूं ॥ ९ ॥ आप गुणशील कृपाके परमस्थान हो हे श्रीरमण ! मैं आपको निरन्तर प्रणाम करता हूं, हे रघुनन्दन ! आप द्वन्द्वको दूर कीजिये हे महिपाल ! आप दीनजनोंको देखिये ॥ १० ॥

दोहार्थ--हे श्रीरंग बारंबार यही वर मांगता हूं कि, आप मुझे अपने चरणोंकी भक्ति दो ॥ १६ ॥

तृतीय दर्शन ।

तब रघुनाथजीने अपने सखा बुलाये सबने आय चरणोंमें शिर नवाया ॥ १ ॥ राम बोले--तुमने मेरी बडी सेवा की मुखपर तुम्हारी क्या बडाई करूं ॥ २ ॥ तुम मुझे इस कारण बहुत प्रिय लगे कि; तुमने मेरे

अनुज राज सम्पति वैदेही। देह गेह परिवार सनेही ॥ ४ ॥
सब मम प्रिय नहिं तुमहिं समाना। मृषा न कहौं मोर यह बाना॥५
सेवक प्रिय सबके यह नीती। मोरे अधिक दासपर प्रीती॥६॥
दोहा--अब गृह जाहु सखा सब, भजहु मोहिं दृढ़ नेम
सदा सर्वगत सर्व हित, जानि करहु अति प्रेम ॥ १७ ॥
" जाम्बवन्त नीलादि सब, पहिराये रघुनाथ।
राम स्वरूप सब, चले नायपद माथ ॥ १८ ॥
अंगद उठि नाय शिर, सजल नयन कर जोर।
अति विनीत बाल वचन "प्रेमरस बोर" ॥ १९ ॥
अंगद--सुन सर्वज्ञ कृपासुखसिन्धो॥दीन दयाकर आरतबन्धो१
मरती बार नाथ मोहिं वाली। गयो तुम्हारे पदतर घाली॥ २ ॥
अशरण शरण विरद संभारी। मोहिंजनि तजहु भक्त भयहारी ॥३॥
मोरे प्रभु तुम गुरु पितु माता। जाउँ कहां तजि पद जलजाता ४

निमित्त घर और सुखोंको त्याग दिया ॥३॥ अनुज राज सम्पत्ति जानकी देह घर परिवार स्नेही जन ॥ ४ ॥ यह सब कोई भी मुझे तुम्हारे समान प्यारे नहीं मैं मृषा नहीं कहता मेरी यह बान है ॥ ५ ॥ यह नीति है कि, सेवक सबको प्रिय होता है पर मेरी दासोंपर अधिक प्रीति है ॥ ६ ॥

दोहार्थ--हे सखा! अब सब तुम अपने घर जाओ दृढ नेमसे मेरा भजन करो सदा सर्वगत सर्वहितकारी जानकर प्रेम करो ॥ १७ ॥ जाम्बवन्त नील विभीषण सुग्रीवादिको रघुनाथने भूषण वस्त्रादि पहराये वे सब रामका स्वरूप हृदयमें धारण कर चरणोंमें माथा नवाय चले ॥ १८ ॥ तब अंगदने उठ शिर नवाय नेत्रोंमें जलभर हाथ जोड़ बड़ी नम्रतासे प्रेम रसमें सनी वाणीसे कहा ॥ १९ ॥

हे सर्वज्ञ! हे कृपा सुखके सागर! दीनोंपर दयाकरनेवाले आर्त्तबन्धु सुनो ॥ १ ॥ हे नाथ! मरतीबार वालि मुझे आपके चरणोंमें डाल गया था ॥ २ ॥ हे अनाथनाथ! अपना विरद विचारकर मुझे मत त्यागो॥३॥ हे प्रभु! तुमही मेरे गुरु पिता माता हो तुम्हारे चरणकमल छोड़ कहां जाऊं ४॥

तुमहि विचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काज मम काहा ५
बालक अबुध ज्ञान बल हीना। राखहु शरण जानि जन दीना ६॥
दोहा--" अंगद वचन विनीत सुन, रघुपति करुणासींव।
प्रभु उठाय उर लायऊ, सजल नयन राजीव ॥ २० ॥
निज उर माला बसन मणि, वालितनय पहिराइ।
बिदा किये भगवान तब, बहुप्रकार समुझाइ ॥ २१ ॥
भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भक्त चित चेता॥ १॥
अंगद हृदय प्रेम नहिं थोरा। फिरि फिरि चितवत प्रभुकी ओरा २
तब सुग्रीव चरण गहि नाना। भाँतिविनय कीन्हीं हनुमाना॥ ३॥"
ह०-दिन दश करि रघुपतिपदसेवा। तब फिरि चरणदेखिहौंदेवा ४
सु०--पुण्यपुंज तुम पवनकुमारा। सेवहु जाय कृपालु अगारा ५॥
"असकहिकपिपतिचलेतुरन्ता। अंगदकहेउसुनहुहनुमन्ता ६"

हे नरनाह! तुम ही विचारकर कहो कि, आपको छोड़ घरमें मेरा क्या काम है॥ ५॥ मैं बालक मूर्ख ज्ञानबलसे हीन हूं दीन जानकर मुझे अपनी शरणमें रक्खो॥ ६ ॥ (दोहार्थ) यह अंगदके विनीत वचन सुन रामचन्द्र कृपासागरने नेत्रोंमें जल भर उठायकर अंगदको हृदय लगाया ॥ २० ॥ अपने हृदयकी माला वस्त्र मणि वालिपुत्रको पहराकर और बहुत प्रकारसे समझाकर प्रभुने बिदा किया ॥ २१ ॥

भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न समेत प्रेमसे पहुँचाने चले॥ १ ॥ अंगदके हृदयमें बड़ा प्रेम है बारंबार प्रभुकी ओर देखताहै ॥ २ ॥ तब सुग्रीवके चरण स्पर्शकर महावीरने बहुत विनय की ॥ ३॥ कि हे देव! दश दिन रघुनाथजीके चरणकमलकी सेवा कर फिर तुम्हारे चरणकमलका दर्शन करूँगा ४॥ सुग्रीव बोले हे महावीर! तुम बड़े पुण्यात्मा हो जाकर रघुनाथजीकी सेवा करो ॥ ५॥ ऐसा कह सुग्रीव तुरंत चले तब अंगदने कहा हे हनुमान! सुनिये ॥ ६ ॥

---

१ सवैया--शशिसूर मणीनकी माल मनोहर सूरज ज्योतिसी भासकरै।
तिहुँलोकमें मोलहै तासु नहीं सुरवृन्द विलोकत शकभरै।
पहिरायदियो युवराजको सो रघुराज सहर्ष उठाय करै।
मणिमालमें मंडित कीशनयो कनकाचलमें चपला ज्यों फिरै ॥ १ ॥

अंगद-दो०कहेहु दंडवत प्रभु मन, तुमहिं कहौं कर जोरि ।
बारबार रघुनायकहि, सुरति करायहु मोरि ॥ २२
"अस कहि चलेउ वालिसुत, फिर आये हनुमान ॥
तासु प्रीति प्रभुसन कहीः मगन भये भगवान ॥ २३
पुनि कृपालु लिय बोलि निषादा।दीन्हेउ भूषन वसन प्रसादा १"
राम-जाहु भवन मम सुमरन करहू।मन क्रम वचन धर्म अनुसरहू
तुम मम सखा भरतसम भ्राता । सदा रहेउ पुर आवत जाता
"वचन सुनत उपजा सुख भारी।परेउ चरण लोचन भरि वारी४
चरण कमल उर धरि गृह आवा।प्रभुस्वभाव परिजनहिंसुनावा
रघुपति चरित देखि पुरवासी।पुनि पुनि धन्य कहहिं सुखरासी६
दोहा--वर्णाश्रम निजनिज धरम, निरत वेदपथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय शोक न रोग२४
दण्ड यतिन कर भेद जहँ, नर्तक नृत्यसमाज ।
जीतिय मनहिं सुनिय अस, रामचन्द्रके राज ॥ २५ ॥

बारबार रघुनायकको मेरी सुरत कराना ॥२२॥ यह कह अंगद गये महावीर लौट आये प्रभुसे उनकी प्रीति कही सुनकर भगवान् मग्नहुए ॥ २३ ॥

फिर श्रीरामने निषादको बुलाय भूषण वसन प्रसाद दिया ॥१॥ और बोले घर जाओ मेरा स्मरणकर मन वचन कर्मसे धर्म करते रहो ॥ २ ॥ तुम मेरे भ्राता भरतके समान सखा हो सदा हमारे पुरमें आते जाते रहो ३॥ वचन सुनकर बड़ा सुख उपजा नेत्रोंमें जल भर चरणोंपर गिरा ॥ ४ ॥ और चरणकमलोंको हृदयमें धर घर आया और कुटुम्बियोंको प्रभुका स्वभाव सुनादिया ॥ ५ ॥ रामके चरित्र देख पुरवासी धन्य धन्य कहने लगे ॥ ६ ॥ (दोहार्थ) वर्णाश्रम अपने २ धर्ममें निरत हैं लोग वेदमार्गमें चलते हैं सुख पाते हैं भय, शोक, रोग, नहीं है ॥ २४ ॥ दण्ड तो यतियोंके हाथमें है भेद नर्तकसमाजमें है और जीतना मनकाहै ऐसा राम-

विधु महि पूर मयूखन्ह, रवितप जितनहु काज ।
माँगे वारिद देहिं जल, रामचन्द्रके राज ॥ २६ ॥
(सब गये)

... राज्य है ॥ २५ ॥ चन्द्रमा किरणोंसे भूमिको पूर्ण करता है, कार्यके अनुसार सूर्य तपता है और रामचन्द्रके राज्यमें मेघ मांगनेसे जल देते हैं ॥ २६ ॥ (इस प्रकार रघुनाथजी अयोध्यामें विराजते हैं)

इति रामलीलारामायणे उत्तरकाण्डं सम्पूर्णम् ।

संवत ग्रह शर अंक विधु, श्रावणमास पवित्र ।
... थि ..., पूरचो रामचरित्र ॥ १ ॥

...

रामायण लीलाविधिः, संग्रह कीन सुभाय ॥ २ ॥
पढहिं सुनहिं मनलाय जो, पावहिं सब मन काम ।
सार यही सब जगतमें, भजिये सीताराम ॥ ३ ॥
बसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद ।
भजन करत हरिको सदा, बुध ज्वाला परसाद ॥ ४ ॥
दीनबंधु करुणायतन, कृपासिन्धु सुखधाम ।
चरणकमलसुखदायिनी, भक्ति देहु श्रीराम ॥ ५ ॥

॥ शुभमस्तु ॥

आरती-

आरती श्रीरामायणजीकी । कीरति कलित ललित सियपियकी ॥
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद । बाल्मीकि विज्ञान विशारद ॥
शुकसनकादि शेष अरु शारद । बरणि पवनसुतकीरति नीकी ॥ १ ॥
सतत गावत शंभु भवानी । औघटसंभव मुनि विज्ञानी ॥
व्यासआदि कवि पुगवखानी । कागभुशुण्ड गरुडके हियकी ॥ २ ॥
चारउ वेद पुराण अष्टदश । छहौ शास्त्र सब ग्रंथनको रस ॥
तन मन धन संतनकी सर्वस । सारअंश सम्मत सबहीकी ॥ ३ ॥
कलिमलहरणि विषयरस फीकी । सुभगसिंगार मुक्ति युवती की ॥
हरणि रोग भवभूरि अमीकी, तात मात सब विधि तुलसी की ॥ ४ ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बंबई.